CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त अभिलेख

एपिग्राफ्ज़

डॉ॰ वासुदेव उपाध्याय

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
पटना-३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

55-36

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त अभिलेख

(Gupta Abhilekha)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त अभिलेख

[Gupta Abhilekha]

लेखक

डॉ० वासुदेव उपाध्याय

(अवकाशप्राप्त प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय)

मंगला प्रसाद पारितोषिक, जोधसिंह पुरस्कार, बंगाल हिंदी मंडल पुरस्कार,

हीरालाल स्वर्णपदक एवं गुलेरी पदक विजेता

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

पटना–८००००३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

© बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, १९७४

विश्वविद्यालय-स्तरीय ग्रंथ-निर्माण-योजना के अंतर्गत भारत-सरकार (शिक्षा तथा समाज-कल्याण-मंत्रालय) के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित ।

प्रकाशित ग्रंथ संख्या ९९

प्रथम संस्करण : अप्रिल, १९७४
२०००

मूल्य : ५१·०० (एकावन रुपये) मात्र

State Archives Library Lucknow
5536

प्रकाशक :
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी,
कदमकुआँ, पटना–८००००३

मुद्रक :
श्री कामेश्वर प्रसाद
कालिका प्रेस,
पटना–८००००४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रस्तावना

शिक्षा-संबंधी राष्ट्रीय नीति-संकल्प के अनुपालन के रूप में विश्वविद्यालयों में उच्चतम स्तरों तक भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा के लिए पाठ्य-सामग्री सुलभ करने के उद्देश्य से भारत-सरकार ने इन भाषाओं में विभिन्न विषयों के मानक ग्रंथों के निर्माण, अनुवाद और प्रकाशन की योजना परिचालित की है। इस योजना के अंतर्गत अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है और मौलिक ग्रंथ भी लिखाए जा रहे हैं। यह कार्य भारत-सरकार विभिन्न राज्य-सरकारों के माध्यम से तथा अंशतः केंद्रीय अभिकरण द्वारा करा रही है। हिंदी-भाषी राज्यों में इस योजना के परिचालन के लिए भारत-सरकार के शत-प्रतिशत अनुदान से राज्य-सरकार द्वारा स्वायत्तशासी निकायों की स्थापना हुई है। बिहार में इस योजना का कार्यान्वयन बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के तत्त्वावधान में हो रहा है।

योजना के अंतर्गत प्रकाश्य ग्रंथों में भारत-सरकार द्वारा स्वीकृत मानक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, ताकि भारत की सभी शैक्षणिक संस्थाओं में समान पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

प्रस्तुत ग्रंथ **'गुप्त अभिलेख'** डॉ० वासुदेव उपाध्याय की मौलिक कृति है, जो भारत-सरकार के शिक्षा तथा समाज-कल्याण-मंत्रालय के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित की जा रही है। यह ग्रंथ विश्वविद्यालय-स्तर के विद्यार्थियों के तथा इतिहास के विद्वानों और अध्यापकों के लिए महत्त्वपूर्ण होगा, ऐसा विश्वास है!

आशा है, अकादमी द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन-संबंधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जाएगा।

नरेन्द्रनाथ मिश्र सुधांशु

अध्यक्ष
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

पटना,
दिनांक ८-४-७४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशकीय

प्रस्तुत ग्रंथ **गुप्त अभिलेख** डॉ० वासुदेव उपाध्याय की मौलिक रचना है। डॉ० उपाध्याय अनुभवी लेखक और प्रस्तुत विषय के विद्वान हैं। उन्होंने यह ग्रंथ परिश्रमपूर्वक लिखा है। आशा है, यह ग्रंथ विश्वविद्यालय-स्तर के इतिहास-विषय के विद्यार्थियों के लिए लाभदायक होगा।

इसका मुद्रण-कार्य **कालिका प्रेस**, पटना-८००००४ ने और प्रूफ-संशोधन का कार्य श्री गोपीरमण चौधरी ने किया है। प्रूफ पर मुद्रणादेश लेखक ने स्वयं देने की कृपा की है। आवरण-चित्र का निर्माण और आवरण की छपाई का काम **नेशनल ब्लौक एण्ड प्रिंटिंग वर्क्स** पटना-८००००४ ने किया है। ये सभी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

बैजनाथ सिंह

कार्यकारी निदेशक
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

पटना,
दिनांक ८-४-७४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सांकेतिक शब्दों की तालिका

अ०	=अध्याय
आ० स० रि०	=आर्क्योलाजिकल सर्वे रिर्पोट
ई०	=ईसवी
ई० स०	=ईसवी सन्
इ० ए०	=इंडियन एन्टीक्वेरी
इ० हि० क्वा०	=इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली
का० इ० इ० भा०	=कारपस इंशक्रपशनम इंडिकेरम भाग
कै० आ० म्यू०	=कैटलाग आर्क्योलोजिकल म्यूजियम
गु० सं०	=गुप्त संवत्
गु० ले०	=गुप्त लेख (फ्लीट)
ज० ए० सो० बं०	=जरनल आफ एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल
जे० बि० रि० सो०	=जनरल आफ बिहार रिसर्च सोसाइटी
जे० आ० ए० एस०	=जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी
पृ०	=पृष्ठ
प्रा० भा० अ० अ०	=प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन
भा०	=भाग
मा० सं०	=मालव संवत्
म० प्र०	=मध्य प्रदेश
मे० आ० स० रि० सं०	=मेमायर आफ आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट संख्या
बौ० ध० सू०	=बौधायन धर्म सूत्र
वि०	=विक्रमी
श० का०	=शक काल
से० बु० इ०	=सेक्रेड बुक आफ दि इस्ट
सं०	=संवत्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिवंगत

गुरुवर

डॉ० अनंत सदाशिव अलतेकर

की

पुण्य

स्मृति में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो शब्द

वर्षों पहले की घटना है। मेरी पुस्तक "गुप्त साम्राज्य का इतिहास" पर मंगला प्रसाद पारितोषिक मिल चुका था। प्रयाग हिंदी साहित्य सम्मेलन की एक गोष्ठी में श्रद्धेय बाबू श्री पुरुषोत्तमदास टंडन ने मुझ से कहा कि गुप्तवंश के इतिहास के साधन सामग्री पर भी एक पुस्तक होनी चाहिए। अभिलेख प्राचीन भारतीय इतिहास के मूल्यवान साधन माने जाते हैं। अतएव मैंने निर्णय किया कि गुप्त कालीन अभिलेखो पर एक ग्रंथ तैयार करूँगा। समय के थपेड़ो में वह निर्णय धूमिल सा पड़ गया। सामाजिक तथा साहित्यिक कार्यों में संलग्न हो जाने के कारण गुप्त अभिलेख की पांडुलिपि शीघ्र तैयार न हो सकी। डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी (भूतपूर्व कुलपति, सागर विश्वविद्यालय) जब उत्तर प्रदेश हिंदी समिति के अध्यक्ष हुए, तो डॉ० साहब ने इसे प्रकाशित करने का वचन दिया। किंतु अनेक कारणो से यह ग्रंथ प्रकाशित न हो पाया। अब बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी (पटना) उसे प्रकाशित कर रही है, यह प्रसन्नता की बात है।

गुप्त-अभिलेखों का संपूर्ण संग्रह अद्यावधि किसी भाषा में भी वर्तमान नहीं है। फ्लीट महोदय ने कारपस इंशक्रपशनम इंडिकेरम (भा० ३) में गुप्त लेखों का संग्रह किया है परंतु उन दिनों समस्त लेखों का समावेश संभव न था। डॉ० सरकार के सेलेक्ट इंशक्रपशंस में उत्तर गुप्तकालीन अभिलेखों को स्थान न मिल सका। डॉ० राजबली पाण्डेय द्वारा संपादित ऐतिहासिक तथा साहित्यिक लेखों का एक संग्रह चौखंबा संस्कृत सिरीज, वाराणसी से प्रकाशित हुआ है, परंतु इसकी भी वही अवस्था है। "प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन" नामक पुस्तक में मैंने राजवंशों के प्रतिनिधि अभिलेखों का ही विवेचन किया है।

गुप्त-अभिलेखों को एक साथ प्रकाशित करना इतिहास के विद्यार्थियों के लिए नितांत आवश्यक था। इसी विचार से प्रेरित होकर तथा टंडन जी के समक्ष कथित संकल्प को साकार बनाकर विद्वानों के सम्मुख 'गुप्त-अभिलेख' को प्रस्तुत करते हर्ष हो रहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस पुस्तक के चार खंड हैं—

(१) **ऐतिहासिक भूमिका**—जिसमें गुप्तवंश से संबंधित समस्त पहलुओं पर विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है।

(२) **मूल लेख**—मूल लेख तिथि-क्रम के अनुसार उपस्थित किए गए हैं। गुप्त प्रशस्तियाँ किसी न किसी संवत् से संवद्ध हैं, अतः उनके तिथि का निर्णय सरल हो जाता है। लेखों में शब्दों के विभिन्न पाठों का विश्लेषण तीसरे खंड में यथास्थान दिया गया है।

(३) **टिप्पणी**—जहाँ तक लेखक की जानकारी है, इस प्रकार की विशद् टिप्पणी किसी ग्रंथ में उपलब्ध नहीं है। भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा धार्मिक शब्दों या वाक्यों पर सुचारु रूप में विस्तृत व्याख्या उपस्थित की गई है। प्रायः व्याख्या अपेक्षित शब्दों पर टिप्पणियाँ मिलेगी। गुप्त मुहरों तथा सिक्कों पर उत्कीर्ण लेखों का अनुशीलन गुप्त इतिहास के समझने में अधिक सहायक होगा।

(४) **हिंदी अनुवाद**—हिंदी प्रेमियों को अभिलेखों में निहित ज्ञान-राशि की जानकारी इससे हो जायगी। कृपालु पाठकों को यदि उनमें कुछ आपत्ति प्रकट हो, तो क्षमा करेंगे।

परिशिष्ट में गुप्त साम्राज्य की राजधानी-प्रयाग से संबंधित समस्त प्रमाणों को प्रस्तुत करने का प्रयास है एवं इस गंभीर विषय पर संपूर्ण साक्ष्यों का अनुशीलन प्रार्थित है। स्कंदगुप्त के सुपिया अभिलेख का मूल भी उपस्थित किया गया है। भौगोलिक स्थानों की तालिका इसकी एक विशेषता है। इन शब्दों को समाप्त करने से पूर्व अपने पूजनीय भ्राता आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय (भूतपूर्व, निदेशक, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय) का साधुवाद करता हूँ जिन्होंने मेरे जीवन में भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग पैदा किया। पौत्र राजेश कुमार आशीर्वाद का भाजन है जिसने अनुक्रमणी तैयार कर मेरा कार्य सरल कर दिया।

इस कथन को समाप्त करने से पहले मैं बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के पदाधिकारियों का आभार मानता हूँ जिनकी तत्परता से यह ग्रंथ शीघ्र सुंदर रूप में प्रकाशित हो सका। भारतीय पुरातत्त्व विभाग के पुरालेखवेत्ता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनकी कृपा से पुरालेख का निगेटिभ फोटो ग्राफ एवं सुपिया लेख का मूल प्राप्त हो सका।

वासुदेव उपाध्याय

रामनवमी,
चैत्र शुक्ल २०३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

		पृष्ठ
	दो शब्द	७
अध्याय १—गुप्तवंश का उदय तथा स्थान	....	१–४
	उदय १	
	जाति ३	
	स्थान ४	
अध्याय २—गुप्तवंश का संक्षिप्त इतिहास	....	५–२६
	आदि पुरुष-गुप्त ५	
	प्रथम चंद्रगुप्त ६	
	समुद्रगुप्त ७	
	द्वितीय चंद्रगुप्त ९	
	विजय १०	
	प्रथम कुमारगुप्त ११	
	स्कंदगुप्त १३	
	उत्तराधिकार का प्रश्न १४	
	पुरुगुप्त एवं उसके वंशज १५	
	दो शाखाएँ १६	
	बुधगुप्त का शासन १८	
	विष्णुगुप्त से भानुगुप्त १९	
	वैन्यगुप्त २०	
	उत्तर गुप्तनरेश २१	
	आदित्यसेन २३	
	गुप्तवंशवृक्ष २५	

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुष्ठ

अध्याय ३—अभिलेख के आधार २७–३४
प्रस्तर एवं स्तंभ २७
गुहा लेख २८
ताम्रपत्र ३१
मुहरें ३२

अध्याय ४—अभिलेखों से इतिहास ज्ञान ३५–४८
युद्धगाथा एवं राज्यविस्तार ३५
वंश वृक्ष ३६
समकालीनता ३७
राजतंत्र एवं प्रजातंत्र ३८
शासन-पद्धत्ति ४०
केंद्रीय शासन ४१
'कर' की व्यवस्था ४३
प्रांत ४५
विषय ४६
ग्राम ४७

अध्याय ५—गुप्तकालीन समाज ४९–५९
वर्ण व्यवस्था ४९
कायस्थ ५२
आश्रम-प्रणाली ५२
सामाजिक दशा ५५
भोजन एवं पेय ५७
नागरिक का चरित्र ५८

अध्याय ६—गुप्त लेखों में आर्थिक-विवरण ६०–६८
आर्थिक संगठन ६१
श्रेणियाँ ६३
मुद्रानीति ६५
भूमि का स्वामित्व ६६
भूमि माप ६७

अध्याय ७—गुप्त अभिलेखों में धार्मिक-चर्चा ६९–८३
वैदिकधर्म तथा कर्मकांड ६९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ

बौद्ध धर्म ७०
जैन धर्म ७२
पौराणिक मत ७३
विष्णु पूजा ७४
अवतार कल्पना ७५
शिव पूजा ७७
दान का विवरण ७९
भारतीयकरण ८२
धार्मिक सहिष्णुता ८२

अध्याय ८—भाषा तथा लिपि ८४–९२
प्राकृत ८४
संस्कृत का प्रयोग ८६
लिपि चर्चा ८७
गुप्तलिपि ८९
गुप्त-लिपि की विशेषता ९०
कुटिल लिपि ९२

अध्याय ९—गुप्त अभिलेखों में तिथि गणना ९३–१०७
तिथि अंकन ९३
गुप्त संवत् ९७
संवत् का नामोल्लेख ९७
शक तथा गुप्तकाल १०१
लेखों का प्रमाण १०३
गुप्त संवत् का संस्थापक १०७

अध्याय १०—गुप्तकालीन लघु अभिलेख १०८–११८
मिट्टी की मुहरें १०८
वैशाली की मुहरें १०९
नालंदा की मुहरें ११०
सिक्कों पर अंकित लेख १११
सिक्कों के लेख से वर्णमाला का ज्ञान ११३
लघु लेखों का अनुशीलन ११४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त - प्रशस्तियाँ

		पृष्ठ
समुद्रगुप्त का लेख	....	१२१–१२७
(अ) प्रयाग प्रशस्ति १२१		
(ब) एरण प्रशस्ति १२५		
(स) नालंदा अभिलेख १२६		
(द) गया अभिलेख १२७		
रामगुप्त का लेख	....	१२८
पूर्वी मालवा का प्रतिमा लेख १२८		
द्वितीय चंद्रगुप्त के लेख	....	१२९–१३४
(१) मेहरौली लौहस्तंभ लेख १२९		
(२) उदयगिरि गुहा अभिलेख १३०		
(३) मथुरा स्तंभ लेख १३०		
(४) उदयगिरि गुप्त लेख १३१		
(५) गढ़वा लेख १३१		
(६) साँची वेदिका लेख १३२		
(७) मथुरा शिलालेख १३३		
प्रथम कुमारगुप्त के लेख	....	१३५–१५३
(१) बिलसद शिला स्तंभ लेख १३५		
(२) गढ़वा लेख १३६		
(३) उदयगिरि गुहालेख १३७		
(४) घनाइदह ताम्रपट्ट लेख १३७		
(५) मथुरा लेख १३९		
(६) तुमैन शिलालेख १३९		
(७) करमदंडा शिवलिंग लेख १४०		
(८) कुलैकुरि ताम्रपट्ट लेख १४०		
(९) दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख १४३		
(१०) दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख १४४		
(११) मनकुंवार बौद्ध प्रतिमा लेख १४५		
(१२) गढ़वा लेख १४६		
(१३) मंदसोर शिलालेख १४६		

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ

स्कंदगुप्त के अभिलेख १५४–१६७
(१) जूनागढ़ शिलालेख १५४
(२) कहौम स्तंभ लेख १६०
(३) इंदौर ताम्रपट्ट लेख १६०
(४) भितरी स्तंभ लेख १६१
(५) बिहार स्तंभ लेख १६४
(६) गढ़वा शिलालेख २४३

द्वितीय कुमारगुप्त का अभिलेख
(१) सारनाथ बौद्धप्रतिमा लेख १६८ .... १६८–१६९
(२) भितरी मुहर लेख १६८

बुधगुप्त का लेख १७०–१७५
(१) सारनाथ बौद्ध प्रतिमा लेख १७०
(२) बनारस स्तंभ लेख १७१
(३) दामोदरपुर ताम्रपट्ट लेख १७१
(४) एरण स्तंभ लेख १७२
(५) दामोदरपुर ताम्रपत्र १७३

वैन्यगुप्त का लेख १७९
(१) गुणैधर ताम्रपट्ट लेख १७६

भानुगुप्त का लेख १८०–१८३
(१) एरण स्तंभ लेख १८०
(२) दामोदरपुर ताम्रपट्ट लेख १८१

उत्तर गुप्तवंशी अभिलेख १८४–१८९
आदित्यसेन का अफसद लेख १८४
मंदारगिरि लेख १८८
शाहपुर लेख १८९

विष्णुगुप्त का लेख १९०
(१) मंगरांव शिलालेख १९०

द्वितीय जीवितगुप्त का लेख १९१–१९२
(१) देव वरनार्क लेख १९१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ

सामंतों के अभिलेख १९३–२१८
(१) वैग्राम ताम्रपट्ट लेख १९३
(२) पहाड़पुर ताम्रपत्र लेख १९५
(३) परिव्राजक महाराजा हस्तिन का लेख १९९
(४) जयनाथ का करितलाई ताम्रपत्र २०२
(५) खोह ताम्रपट्ट लेख २०४
(६) सर्वनाथ का लेख २०७
(७) खोह ताम्रपत्र २१०
(८) संक्षोभ का अभिलेख २१२
(९) सर्वनाथ का लेख २१५
(१०) भूमरा शिलालेख २१८

समसामयिक नरेश की प्रशस्तियाँ २१९–२३१
(१) यशोधर्मन का मंदसोर लेख २१९
(२) मंदसोर स्तंभ लेख २२४
(३) तोरमाण का एरण लेख २२७
(४) कुरा अभिलेख २२८
(५) मिहिर कुल की ग्वालियर प्रशस्ति २२९

मुहरों पर अंकित गुप्त लेख (नालंदा) ... २३२–२३४
(१) नरसिंह गुप्त की मुहर २३२
(२) द्वितीय कुमारगुप्त की मुहर २३२
(३) बुधगुप्त की मुहर २३३
(४) वैन्यगुप्त की मुहर २३३
(५) विष्णु गुप्त की मुहर २३४

वैशाली की गुप्तकालीन मुहर लेख २३५–२३८
(१) राजकीय २३५
(२) पदाधिकारियों की मुहरें २३५
(३) श्रेणी एवं निगम की मुहरें २३६
(४) मंदिर तथा धार्मिक लेख २३६
(५) व्यवसायीगण की मुहरें २३७

गुप्त मुद्रा लेख २३९–२४३
(१) स्वर्ण मुद्राओं पर अंकित लघु लेख २३९
(२) रजत मुद्रा लेख २४१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐतिहासिक टिप्पणी

पृष्ठ

समुद्रगुप्त का लेख २४७–२६५
(१) प्राप्ति-स्थान २२७
(२) तिथि २४८
(३) आर्यावर्त का विजय २४९
(४) दक्षिण विजय २५३
(५) सीमांत राज्यों का विजय २५८
(६) संघ राज्यों का पराजय २६०
(७) विदेश में प्रभाव २६३
(८) सम्राट् की नीति २६६

रामगुप्त के लेख २६७–२७४
(१) रामगुप्त २६७
(२) काचगुप्त की ऐतिहासिक वार्ता २६८
(३) साहित्यिक प्रमाण २६८
(४) प्रमाणों की प्रमाणिकता २७२
(५) काच की स्वर्णमुद्रा २७३

द्वितीय चंद्रगुप्त के लेख २७५–२८१
(१) मेहरौली स्तंभ लेख २७७
(२) चंद्र का समीकरण २७७

प्रथम कुमारगुप्त के लेख २८२–२९२
(१) बिलसद लेख पर टिप्पणी २८२
(२) तुमैन लेख २८३
(३) करमदंडा शिवलिंग लेख २८४
(४) वंशानुगत मंत्रीपद २८४
(५) कुलैकुरि ताम्रपत्र २८५
(६) मंगलमय श्लोक २८६
(७) दामोदरपुर ताम्रपट्ट लेख २८६
(८) शासकों की अवधि २८७
(९) नीवीधर्म २८७
(१०) मंदसोर प्रशस्ति २८८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ

(११) विक्रम संवत् (मालव संवत्) २८९
(१२) शिल्पीगण २९०

स्कंदगुप्त के अभिलेख २९३–३००
(१) सती स्तंभ २९४
(२) षष्ठी माता २९४
(३) जूनागढ़ लेख २९५
(४) उत्तराधिकार युद्ध २९५
(५) इंदौर ताम्रपट्ट लेख २९६
(६) वेदिक शाखाएँ २९६
(७) पंचमहापातक २९७
(८) हूण युद्ध २९८
(९) बिहार स्तंभ लेख २९९
(१०) सप्त मातृका २९९
(११) सुपिया लेख ३००

द्वितीय कुमारगुप्त एवं बुधगुप्त के लेख ३०१–३१४
(१) बुद्ध प्रतिमा लेख ३०१
(२) रजत मुद्रा लेख ३०२
(३) बुधगुप्त का दामोदरपुर ताम्रपट्ट ३०३
(४) शासन पदाधिकारी ३०३
(५) एरण स्तंभ लेख ३०५
(६) अधीनस्थ शासक ३०५
(७) वैन्यगुप्त का लेख ३०७
(८) बौद्धधर्म की वार्ता ३०८
(९) पूजन सामग्री ३०९
(१०) सत्र की स्थापना ३०९
(११) भूमि माप ३१०
(१२) स्कंदगुप्त के पश्चात् गुप्त वंशावली ३१२
(१३) भानुगुप्त कालीन लेख ३१३
(१४) शासन पद्धति ३१३
(१५) मधुपर्क ३१३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ

उत्तरगुप्त वंशी अभिलेख ३१५–३२१

(१) अफसद लेख ३१५
(२) राजवंश ३१६
(३) ईशान वर्मा का पराजय ३१७
(४) आत्म बलिदान ३१८
(५) आदित्यसेन की तिथि ३१९
(६) कुटिल लिपि ३१९
(७) जीवित गुप्त का देववर्णाक लेख ३२०
(८) धर्म श्लोक ३२०
(९) महान् पदाधिकारीगण ३२१

विष्णुगुप्त का मंगरांव लेख ३२२–३२३

(१) हर्ष संवत् में तिथि का उल्लेख ३२३

गुप्तकालीन मुद्राएँ ३२४–३३५

(१) मुद्रा का निर्माण ३२४
(२) वैशाली की मुहरें का विवेचन ३२५
(३) विभिन्न पदाधिकारी ३२७
(४) नालंदा की मुहरें ३२८
(५) गुप्त मुद्रालेखों का विवेचन ३३१

सामंत नरेशों के अभिलेख ३३६–३४९

(१) वैगाम ताम्रपट्ट लेख ३३६
(२) भूमि का क्रय ३३७
(३) भूमिमाप ३३९
(४) पहाड़पुर ताम्रपत्र लेख ३३९
(५) पंच स्तूप निकाय ३४०
(६) परिव्राजक एवं उच्छकल्प राजाओं के लेख ३४१
(७) धार्मिक परंपरा ३४१
(८) पंचपातक ३४३
(९) राजकीय कर ३४५
(१०) चतुर्दश विद्यास्थान ३४६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ

(११) वर्णाश्रम स्थापन ३४७
(१२) सर्वनाथ का ताम्रपत्र ३४८
(१३) विभिन्न 'करों' का विवरण ३४९

समसामयिक नरेश की प्रशस्तियाँ ३५०–३६०

(१) मंदसोर लेख ३५०
(२) मालव संवत् ३५१
(३) अरिषट्क ३५२
(४) मालवगण कालगणना ३५३
(५) हूण प्रशस्तियाँ ३५५
(६) तोरमाण विजय ३५५
(७) दशवल ३५७

अभिलेखों का हिंदी अनुवाद ३६१–४२२

(१) समुद्रगुप्त ३६३
(२) रामगुप्त ३६७
(३) चंद्रगुप्त द्वितीय लेख ३६७–३७०
(४) कुमारगुप्त प्रथम लेख ३७१–३८१
(५) स्कंदगुप्त के लेख ३८२–३८८
(६) द्वितीय कुमारगुप्त ३८९
(७) बुधगुप्त ३९०
(८) वैन्यगुप्त ३९२
(९) भानुगुप्त कालीन लेख ३९४
(१०) उत्तर गुप्तवंशी अभिलेख ३९६
(११) आदित्यसेन का लेख ३९७
(१२) सामंतों के अभिलेख ४००
(१३) समसामयिक नरेशों का अभिलेख ४१०
(१४) हूण अभिलेख ४१५
(१५) मुहरों पर अंकित लेख ४१८
(१६) गुप्तमुद्रा लेख ४२०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट :— ४२३–४३४

(१) गुप्त साम्राज्य की राजधानी—प्रयाग ४१३
(२) उत्तरी भारत के राजाओं की समकालीन ४२७
(३) गुप्तयुग का तिथिक्रम ४३०
(४) मागध गुप्त युग का तिथिक्रम ४३३
(५) सुपिया अभिलेख (मूल) ४३४

अनुक्रकणिका ४३५–४४०
भोगोलिक स्थानों की तालिका ४४१–४ ४
फलक संख्या १–६०
मानचित्र १ ८
मानचित्र २ १२
मानचित्र ३ २४
मानचित्र ४ ५६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमिका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १

गुप्त वंश का उदय तथा स्थान

उदय

ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी में प्राचीन मगध के सिंहासन पर एक दूसरे वंश को आरूढ़ पाते हैं। यह राजवंश गुप्तों का था। उत्तरी भारत में उनसे पूर्व अनेक छोटे राज्य स्थित थे। दूसरी सदी में कुषाण साम्राज्य का अंत हो गया था, जिसके पश्चात् ऐसी कोई भी शक्ति न थी, जिसका विस्तृत भूभाग पर शासन हो। इसी कारण गुप्तों से पूर्व का इतिहास कुछ अंधकारमय समझा जाता रहा। इस तथाकथित अंधाकार युग में कई छोटे राजा शासन करते रहे, जिनके अभिलेख तथा सिक्के प्राप्त हुए हैं। संभवतः उनमें कुछ कुषाणों के अधीन थे जो समय पाकर स्वतंत्र हो गए। गुप्त शासन से पूर्व उनको वृद्धि का अवसर मिला किन्तु चौथी शताब्दी में सभी गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित कर लिए गए। डा० काशी प्रसाद जायसवाल के मतानुसार इस युग में भारशिव नरेशों ने राज्य स्थापित कर शासन किया था। भारशिव तथा यौधेय लोगों ने कुषाण वंश के विनाश में हाथ बँटाया था। पुराणों में विदिशा (मध्य प्रदेश) के नागवंश-लोग ही भारशिव संज्ञा से प्रसिद्ध हुए। विद्वानों का मत है कि वाराणसी में दशाश्वमेध नामक स्थान भारशिवों द्वारा संपन्न दश अश्वमेधों के कारण विख्यात हुआ। ऐतिहासिक साधनों में इसे नाग या भारशिव की संज्ञा दी गई है। पुराणों में राजाओं के नाम के साथ नाग शब्द का प्रयोग मिलता है, अतएव वह नागवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन नागवंशी राजाओं को वाकाटक लेख में 'भारशिवां महाराजा' कहा गया है (बालाघाट तथा चमक प्रशस्ति,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ए०इ०, भा० ९, पृ० २६९ तथा फ्लीट, गुप्तलेख, संख्या ९५)। वाकाटक अभिलेखों के आधार पर यह कहा जाता है कि नागवंशी राजा ने यज्ञ के समय अपने सिर पर 'शिवलिंग' रक्खा था, उसी समय से इस वंश का नाम भारशिव हुआ।

पुराणों में विदिशा, मथुरा तथा पद्मावती का वर्णन मिलता है जो नाग लोगों के केंद्र थे। यह राजवंश अनार्य माना जाता है जिसके परिवार में नाग की पूजा होती थी। मथुरा से दत्त या मित्र नामधारी नाग सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। पद्मावती के नाग राजा भवनाग का नाम विशेष उल्लेखनीय है जो भारशिववंशी महाराजा माना गया है। विष्णुपुराण के निम्नलिखित वर्णन —**"भवनाग पद्मावत्यां कांतिपुरां मथुरायां"** से उपरियुक्त कथन की पुष्टि होती है। यह सब कार्य कुषाणों के पश्चात् ही संभव हुआ। संभवतः तीसरे भारशिव नरेश के समय में मथुरा के समीप नाग लोगों की शक्ति प्रबल हो गई थी। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने इन्हें परास्त कर राज्य को गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था। इस प्रकार नाग यानी भारशिव वंश का अंत हो गया।

गुप्तों से पूर्व कौशाम्बी में (प्रयाग के समीप) स्वतंत्र राज्य की स्थापना हो चुकी थी। भीमसेन नामक शासक ने स्वतंत्रता की घोषणा की थी। उसके पुत्र महाराजा पोथसिरि के लेख बंदोगढ़ से मिले हैं जिनकी तिथियाँ (८६, ८८, = १६४ तथा १६६ ई०) शक संवत् में उल्लिखित हैं। इसका तात्पर्य यह है कि कौशाम्बी में कुषाणो का प्रभाव विस्तृत रहा जिसके बाद भीमसेन स्वतंत्र शासक हो गया। कौशाम्बी से अनेक मग सिक्के मिले जिनके परीक्षण के आधार पर डा० अल्तेकर ने कई नरेशों की स्थिति बतलाई है। भद्रमग, शिवमग, विजयमग, आदि अनेक शासक कौशाम्बी के मग वंशी नरेश माने गए हैं। कौशाम्बी का विशेष महत्वपूर्ण स्थान था। पूर्वी भारत से पश्चिमी बंदरगाह का मार्ग कौशाम्बी होकर जाया करता था। अतएव गुप्तों ने भी इस पर अधिकार कर लिया।

गुप्तों से पूर्व युग में दक्षिण पूर्व तथा दक्षिण पश्चिम में वाकाटक वंश तथा क्षत्रप नरेशों का शासन था। वाकाटक नरेश प्रवरसेन प्रभावशाली शासक था जिसके वंशज द्वितीय रुद्रसेन से गुप्त वंशजा प्रभावती गुप्ता का विवाह राजनैतिक कारणों से संपन्न हुआ। दक्षिण पश्चिम भारत पर शासन करने वाले क्षत्रप राजाओं के नाम उनके चांदी के सिक्कों (अर्द्धद्रम) पर अंकित मिलते हैं। उस भूभाग में दो सौ वर्षों तक शक क्षत्रप शासन करते रहे जिनका प्रमाणिक इतिहास प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। यह कहना पर्याप्त होगा कि पाँचवी सदी के आरंभ में चंद्रगुप्त द्वितीय ने शकों को परास्त कर समस्त क्षेत्र को अपने साम्राज्य में मिला लिया। चंद्रगुप्त के अभिलेख (विदिशा के समीप सांची एवं उदयगिरि गुहा लेख), चांदी के सिक्के तथा वैष्णव प्रतिमाएँ प्रमाणित करती हैं कि दक्षिण पश्चिम भारत—मालवा, काटियावाड़ तथा गुजरात को गुप्त नरेश ने शकों से छीन लिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्मिोत्तर प्रदेश तथा पंजाब के राजाओं में भी संगठन का अभाव था अतः ससानियन शासन विस्तृत हो गया। उसी क्षेत्र में पिछले कुषाण नरेश राज्य करते रहे जिन्हें समुद्रगुप्त ने परास्त किया। कहा जाता है कि पिछले कुषाण सिक्कों के अनुकरण पर ही गुप्त मुद्रानीति का शुभारंभ हुआ था जिसे क्रमशः गुप्त राजाओं ने भारतीयता में रंग दिया। इस कथन का अभिप्राय यह है कि यद्यपि पश्चिमोत्तर प्रदेश गुप्त शासन के अंतर्गत न आ सका, तोभी किसी स्थल पर पिछले कुषाण अवश्य पराजित हुए थे। ऐसी विकट परिस्थिति, अशांत वातावरण, विभाजित राष्ट्रीय नीति तथा एकछत्र शासक की अनुपस्थिति में गुप्त वंश का उदय हुआ। जब उत्तरी भारत में एक महत्वशाली, प्रबल तथा पराक्रमी राजा का अभाव था उसी समय राजनीतिक क्षितिज पर गुप्तों का उदय हुआ।

जाति

गुप्तों के वर्ण निर्णय में विद्वानों में गहरा मतभेद है। सर्वप्रथम डा० जायसवाल ने 'कौमुदी महोत्सव' के आधार पर गुप्तों को कारस्कर बतलाया जिसे बौधायन नीच वर्ण का मानते हैं (बौ० ध० सू० १।१।३२)। 'कौमुदी महोत्सव' में चन्द्रसेन का वैवाहिक संबंध मगध राज्य के विरोधी लिच्छवियों से वर्णित है। इतिहासज्ञ से गुप्त-लिच्छवि संबंध की कथा छिपी नहीं है अतएव गुप्त शुद्र थे, यह कहना प्रमाणित नहीं हो सका। चन्द्रसेन स्वयं शूद्र जाति का था अतः साहित्य के आधार पर गुप्तों को शूद्र कहना युक्ति संगत नहीं है। इस परिस्थिति में 'कारस्कर' शब्द पर विशेष बल देना अनुचित होगा। प्रभावती गुप्ता के पूना ताम्रपत्र लेख में उल्लिखित धारण गोत्र से भी कोई प्रमाणिक तथ्य नहीं निकाला जा सकता।

गुप्तवंशी सम्राटों ने अपनी जाति का कहीं उल्लेख नहीं किया है। परन्तु सौभाग्यवश उत्तर-गुप्तवंश (Later Gupta Kings) के वंशजों के विषय में (जाति संबंधी) कुछ ज्ञातव्य बातें मिली हैं। मध्यप्रदेश के शासक महाशिव गुप्त को सिरपुर प्रशस्ति में क्षत्रिय कहा गया है—

चंद्रान्वयैक तिलकः खलु चंद्रगुप्तः राजाख्यया पृथुगुणः प्रथितः पृथिव्याम् (ए० इ०, भा० ११, पृ० १९०)—इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि गुप्तवंशी नरेश क्षत्रिय थे। बम्बई प्रदेश में स्थित धारबाड़ के शासक गुत्तल नरेश को उज्जैन के शासक चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के वंशज मानते हैं। बम्बई गजेटियर (भा० २, पृ० ५७८) में वह सोमवंशी क्षत्रिय कहा गया है। गुप्तों का वैशाली के लिच्छवियों से विवाह कम महत्त्वपूर्ण घटना नहीं है। प्रथम कुमार गुप्त का विवाह लिच्छवि कुमार देवी से हुआ था। उन्हीं लिच्छवियों को बौद्धग्रंथों में क्षत्रिय कहा गया है।

महापरिनिर्वाण सुत्त में वर्णन आता है कि भगवान् बुद्ध के निर्वाण पश्चात् शरीर के राख को कई राजाओं में विभक्त किया गया था। आठ क्षत्रिय जातियों ने उस राख के लिए दावा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपस्थित किया और यह घोषणा की थी कि भगवान् भी क्षत्रिय थे, तथा हम भी क्षत्रिय हैं। अतः शरीर का शेषांश (अवशेष) मिलना चाहिए—

भगवापि खत्तियो मयं पि खत्तियो मयंपि अरहा भगवतो शरीरानां भागम्।

(दीघनिकाय २, पृ० १८४)

क्षत्रिय जाति के दावा करनेवालों में लिच्छवि भी थे। अतः राख उनको भी मिला और उस पर स्तूप का निर्माण हुआ जिसे खनन के बाद पता लगाया गया है। कल्पसूत्र (से० बु० इ०, २२, पृ० २२६) के आधार पर भी कहा जा सकता है कि लिच्छवि महावीर के मातृकुल यानी क्षत्रिय जाति के वंशज थे। नेपाल की वंशावली में लिच्छवियों को सूर्यवंशी क्षत्रिय कहा गया है (ए० इ०, भा० ३७, पृ० ७९)। मनु ने भी (मनु १०।२२) लिच्छवियों को क्षत्रिय माना है जो बौद्धधर्म स्वीकार करने के कारण व्रात्य कहे गए। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति भी घोषित करती है कि क्षत्रिय वंशजा राजकुमारी कुमारदेवी गुप्तों से ब्याही थी। अतएव क्षत्रिय लिच्छवियों से विवाह के कारण गुप्त नरेश निःसंदेह क्षत्रिय माने जा सकते हैं।

स्थान

गुप्त राजाओं के आदि स्थान के विषय में विद्वानों में एक मत रहा है कि वे मगध के निवासी थे। संभवतः गुप्तवंश के आदि शासक आरम्भ में लिच्छवियों के सामंत थे और ई० स० २६० में श्रीगुप्त ने दक्षिण पूर्व बिहार में गुप्तवंश की नीव डाली। चीनी यात्री इत्सिंग के कथनानुसार गंगा के किनारे मृगशिखावन मंदिर था जिसके समीप चीनी मंदिर के अवशेष थे। यह कहा गया है कि इस मंदिर को गुप्तवंश के आदि पुरुष श्रीगुप्त ने बनवाया था। गुप्त अभिलेखों में श्री पदवी के साथ गुप्त नाम का उल्लेख है जिसके कारण उस वंश का गुप्तवंश नाम पड़ा। उस मृगशिखावन मंदिर की स्थिति में अधिक विवाद है। गांगूली महोदय उसे मुर्शिदाबाद में स्थित मानते हैं (इ० हि० क्वा०, भा० १४, पृ० ५३२)। दूसरा मत है कि वह मंदिर मगध में स्थित था। तीसरा मत समीचीन ज्ञात होता है कि वह मंदिर मृगदाव (सारनाथ, वाराणसी के समीप) में गुप्त ने तैयार किया था। संभव है गुप्तवंश का आदि स्थान प्रयाग के समीप रहा हो। इसकी संभावना है कि गुप्त लोग कौशाम्बी के समीप रहते थे और भारशिवों के अधीनस्थ सामंत थे। श्रीगुप्त के पौत्र प्रथम चंद्रगुप्त ने मग राजाओं को परास्त कर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। अतएव गुप्तों का मूलस्थान प्रयाग का प्रदेश मानना उचित होगा (ज० बि० रि० सो०, भा० ५७, पृ० ११–२०)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय २

गुप्तवंश का संक्षिप्त इतिहास

आदि पुरुष—गुप्त

प्राचीन भारतीय लेखों में सर्वत्र शासक की वंशावली का उल्लेख नहीं मिलता किंतु सौभाग्यवश गुप्तवंशी अभिलेखों में निम्न प्रकार का वर्णन आया है—

महाराज श्रीगुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्री घटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छवि दौहित्रस्य महादेव्यां कुमार देव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्तस्य।

(प्रयाग प्रशस्ति, गु० ले०, सं १)

यह अभिलेख प्रयाग स्तंभ पर खुदा है जिसमें समुद्रगुप्त की विजय-यात्रा की चर्चा की गई है। उसी प्रसंग में विजेता समुद्र के पूर्वजों के भी नामोल्लेख हैं। अतएव गुप्तवंश के आदि पुरुष का नाम श्रीगुप्त था। विद्वानों का मत है कि अभिलेखों में श्री सम्मानसूचक शब्द है अतः राजा का व्यक्तिगत नाम 'गुप्त' था। उसीके कारण उसके वंशज 'गुप्तवंश' के नाम से विख्यात हुए। अभिलेखों में उल्लिखित गुप्त नाम की पुष्टि पुराणों के वर्णन से की जा सकती है। वायुपुराण में **"भोक्षंते गुप्त वंशजाः"** का उल्लेख राज्य सीमा के संबंध में किया गया है। अतएव श्रीगुप्त की प्रमाणिकता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। इसकी महाराज की पदवी से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि वह केवल सामंत की पदवी से विभूषित रहा। उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी घटोत्कच भी सामंतावस्था में ही रहा। इन दोनों के विषय में अधिक कुछ ज्ञात नहीं है। सातवीं सदी में भारत में भ्रमण करने चीनी यात्री इत्सिंग आया था। उसने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह लिखा है कि पाँच सौ वर्ष पहले चेलिकेतो नामक राजा ने मृगशिखावन के समीप एक मंदिर का निर्माण किया था। यह विशेषतया चीनी यात्रियों के निमित्त बना था।

इतिहासज्ञ चीनी शब्द चेलिकेतो को श्रीगुप्त का अनुवाद मानते हैं। अलन ने इस इत्सिंग कथित राजा की समता गुप्तों के प्रथम राजा श्रीगुप्त से की है (गुप्त क्वायन्स इन ब्रिटिश म्यूजियम, भूमिका पृ० १५), कुछ विद्वानों की धारणा है कि महाराज श्रीगुप्त पाटलिपुत्र तथा समीपस्थ प्रदेशों पर शासन करता रहा। किंतु इसके स्वतंत्र होने की वार्ता संदिग्धमय है। लिच्छवि राज्य सीमा से छूता हुआ प्रदेश का वह सामंत रहा हो। प्रयाग के समीप में भी गुप्तों के निवास तथा सामंतावस्था में श्रीगुप्त के कार्य का प्रश्न उपस्थित किया गया है। मूलतः श्रीगुप्त तथा घटोत्कच महाराज पदवी धारण करते हुए भारशिवों के सामंत रहे तथा कालांतर में स्वतंत्रता की घोषणा उन्होंने की (ज० बि० रि० सो०, भा० ५७, पृ० ११-२०)।

प्रथम चंद्रगुप्त

गुप्तवंश का प्रथम शक्तिशाली एवं प्रतापी शासक प्रथम चंद्रगुप्त माना जाता है जिसने अपनी राज्य सीमा को दूर तक विस्तृत किया। प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त महाराजाधिराज चंद्रगुप्त तथा लिच्छवि कुमार देवी का पुत्र कहा गया है।

महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छवि **दौहित्रस्य महादेव्या कुमार देव्यामुत्पन्नः**। प्रयाग स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि इस शासक ने सर्वप्रथम महाराजाधिराज की पदवी धारण की तथा लिच्छवीवंश की राजकुमारी कुमार देवी से विवाह संपन्न हुआ था। इस बात की पुष्टि उसके स्वर्ण मुद्रा से होती है, जिसके अग्रभाग में राजा रानी खड़े हैं और दोनों का नाम— **चंद्रगुप्तः** एवं **कुमार देवी** उत्कीर्ण है। पृष्ठभाग पर '**लिच्छवयः**' शब्द खुदा है। अतएव वैवाहिक संबंध की घटना का समर्थन हो जाता है। किंतु इस संबंध का कारण क्या था, यह विवादास्पद प्रश्न है। क्या लिच्छवि शासक ने प्रथम चंद्रगुप्त को योग्य तथा यशस्वी मानकर विवाह किया अथवा किसी युद्ध के संधि स्वरूप। अलन अंतिम विचार से सहमत हैं कि प्रथम चंद्रगुप्त ने लिच्छवि पर आक्रमण किया था और संधि के फलस्वरूप कुमार देवी का विवाह गुप्त शासक से किया गया (गुप्त क्वायन्स)। इस राजा ने मगध, साकेत तथा प्रयाग के विस्तृत क्षेत्र पर शासन किया और विजय के पश्चात् राज्याभिषेक के अवसर पर '**महाराजाधिराज**' की पदवी धारण की। उसी समय इसने एक सम्वत् की स्थापना की जिसे 'गुप्तसम्वत्' कहते हैं और इसका आरंभ ई० स० ३१९ वर्ष माना गया है। गुप्तवंश के लिए यह एक विशेष घटना थी। इसी सम्वत् में गुप्त अभिलेखों की तिथियाँ उल्लिखित हैं। अपनी बढ़ती हुई प्रतिष्ठा एवं शक्ति को व्यक्त करने के लिए चंदगुप्त ने 'महाराजाधिराज' का सम्राट्-पद धारण किया। उसके राज्य सीमा का वास्तविक ज्ञान नहीं है। खेद है कि प्रथम चंद्रगुप्त के वीरतापूर्ण कार्य एवं ऐश्वर्य का ठीक-ठीक पता नहीं है। कौमुदीमहोत्सव नामक ग्रंथ के आधार पर गुप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतिहास की कुछ बातें उल्लिखित की गई हैं पर उसमें कहाँ तक ऐतिहासिक तथ्य है, यह कहना कठिन है।

समुद्रगुप्त

समुद्रगुप्त के अनंतर गुप्तवंश का इतिहास अधिक पूर्णरूप से ज्ञात है। इस वंश के बहुसंख्यक अभिलेखों की उपलब्धि से निश्चयात्मक बातें कही जाती हैं। प्रथम चंद्रगुप्त का पुत्र एवं उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त चौथी शताब्दी के मध्य में सिंहासन पर बैठा। संसार के दिग्विजयी नरेशों में सम्राट् समुद्रगुप्त का नाम एक विशेष स्थान रखता है। वह पराक्रमी, रणकुशल एवं प्रतापी नरेश था। अपनी भुजाओं की शक्ति से उसने आर्यावर्त तथा दक्षिणापथ के शासकों को परास्त किया। अशोक के प्रयाग स्तंभ पर अंकित अभिलेख समुद्रगुप्त के विजय तथा व्यक्तित्व का विशद विवरण उपस्थित करता है। इसमें तत्कालीन भारत की राजनैतिक स्थिति तथा समुद्रगुप्त के कार्यों का हरिषेण ने उल्लेख किया है। इस सम्राट् के इतिहास जानने का यह प्रमुख साधन है। उत्तरी भारत के राजाओं को जीतकर उसने गुप्त साम्राज्य का विस्तार किया पर दक्षिणापथ के नरेशों के साथ **'धर्मविजयीनृप'** के समान व्यवहार किया था। उसकी रणचातुरी शत्रुओं के हृदय में भयसंचार करती रही।

प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के विजयों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। हरिषेण ने केवल सैकड़ों युद्धों में सम्राट् की वीरता तथा समस्त शरीर पर घाव का सामान्य रूप से विवरण ही नहीं उपस्थित किया है अपितु युद्धों में पराजित शत्रुओं का नामोल्लेख भी किया है। उत्तरी भारत का युद्ध सामान्य था। शत्रुओं को पराजित कर समुद्रगुप्त ने उनके राज्यों को गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। आर्यावर्त के राजाओं की नामावली निम्न प्रकार है—

(१) रूद्रदेव
(२) मतिल
(३) नागदत्त
(४) चंद्रवर्म
(५) गणपति नाग
(६) नागसेन
(७) अच्युत
(८) नंदि, तथा
(९) बलवर्मा आदि

रैप्सन का अनुमान है कि यह नवराजा विष्णुपुराण में उल्लिखित नवनाग नरेश थे। इन नाग राजाओं के सम्मिलित शासन को समुद्रगुप्त ने नष्ट किया और गुप्तराज्य की सीमा मध्य भारत तक विस्तृत की। संभवतः इन पराजित नरेशों को शासन में अंतर्वेदी तथा पद्मावती का भूभाग शामिल था जिसे गुप्तसीमा में ले लिया गया।

आर्यावर्त के पश्चात् आटविक नरेश परास्त हुए जो मध्य भारत के जंगलों में शासन करते थे। इसके अनंतर दक्षिणापथ के राजाओं का नाम प्रयाग प्रशस्ति में वर्णित है जिन्हें समुद्रगुप्त के हाथों पराजित होना पड़ा। दक्षिणापथ के राजाओं को हराकर समुद्रगुप्त ने विजित प्रदेशों के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शासकों को उनकी भूमि लौटा दी, जो गुप्तों के छत्रछाया में राज्य करने लगे। ऐसे कार्य के लिए कालिदास ने रघु को **'धर्मविजयी'** राजा कहा है।

ग्रहीत प्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः।

(रघुवंश, सर्ग ४)

प्रयाग प्रशस्ति में इसे विभिन्न शब्दों में व्यक्त किया गया है—

सर्व दक्षिणापथ राजग्रहण मोक्षानुग्रह जनित प्रतापोन्मिश्रित महाभाग्यस्य।

पराजित राजाओं में महेन्द्र, व्याघ्रराज, मंटराज, स्वामिदत्त, दमन, विष्णुगोप, नीलराज, हस्तिवर्म, उग्रसेन, कुवेर तथा धनंजय की नामावली प्रशस्ति में मिलती है। विद्वानों में इन नरेशों के शासित प्रदेशों के विषय में विवाद है जिसका उल्लेख अगले पृष्ठों (खण्ड) में किया जायगा। संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि प्रयाग के समीप विंध्या के मार्ग से समुद्रगुप्त ने दक्षिण कोशल (जबलपुर का भूभाग) में प्रवेश किया था। वहाँ से उड़ीसा होते मद्रास से दक्षिण कांचीपुरम् तक विजय दुंदुभी बजाकर राजधानी वापस चला आया। विजित राज्यों को उनके स्वामी को लौटा दिया जो सामंत के रूप में शासन करने लगे।

समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ के राजाओं को परास्त कर सीमांत नरेशों को पराजित किया जिनकी नामावली हरिषेण ने उपस्थित किया है।

समतट (कोमिल्ला), डवाक (ढाका चंटगाँव), कामरूप (असम), नेपाल, कर्तृपुर (गढ़वाल, उत्तर प्रदेश) आदि सीमांत भूभाग को गुप्त राज्य में मिला लिया गया। समुद्रगुप्त ने मालव, आर्जुनायन, यौधेय, आभीर, सनकानिक आदि प्रजातांत्रिक नरेशों को पराजित कर नष्ट कर दिया उसी प्रसंग में उत्तर पश्चिम में रहनेवाले कुषाणवंशी शक्तिहीन नरेशों को भी युद्ध में हराया था। इतना ही नहीं, गुप्तसम्राट् ने श्री लंका पर भी विजय पाई तथा विशाल कीर्ति का प्रसार किया।

प्रयाग प्रशस्ति का विश्लेषण यह बतलाता है कि विदेशियों के साथ समुद्रगुप्त ने मित्रता का व्यवहार स्थापित किया और देशकाल के अनुसार अपनी नीति स्थिर की।

(अ) राजाओं को जीतकर राज्य लौटा देना

(ब) बलपूर्वक पराजित कर साम्राज्य में राज्य को मिला लेना

(स) सेवक बनाना

(द) आज्ञा स्वीकार कर 'कर' देने की क्रिया

(य) नष्ट राज्यों की पुनर्स्थापना

(र) पराजित राजाओं के आत्म निवेदन के पश्चात् राजाज्ञा की भिक्षा माँगने की क्रिया को स्वीकार करना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

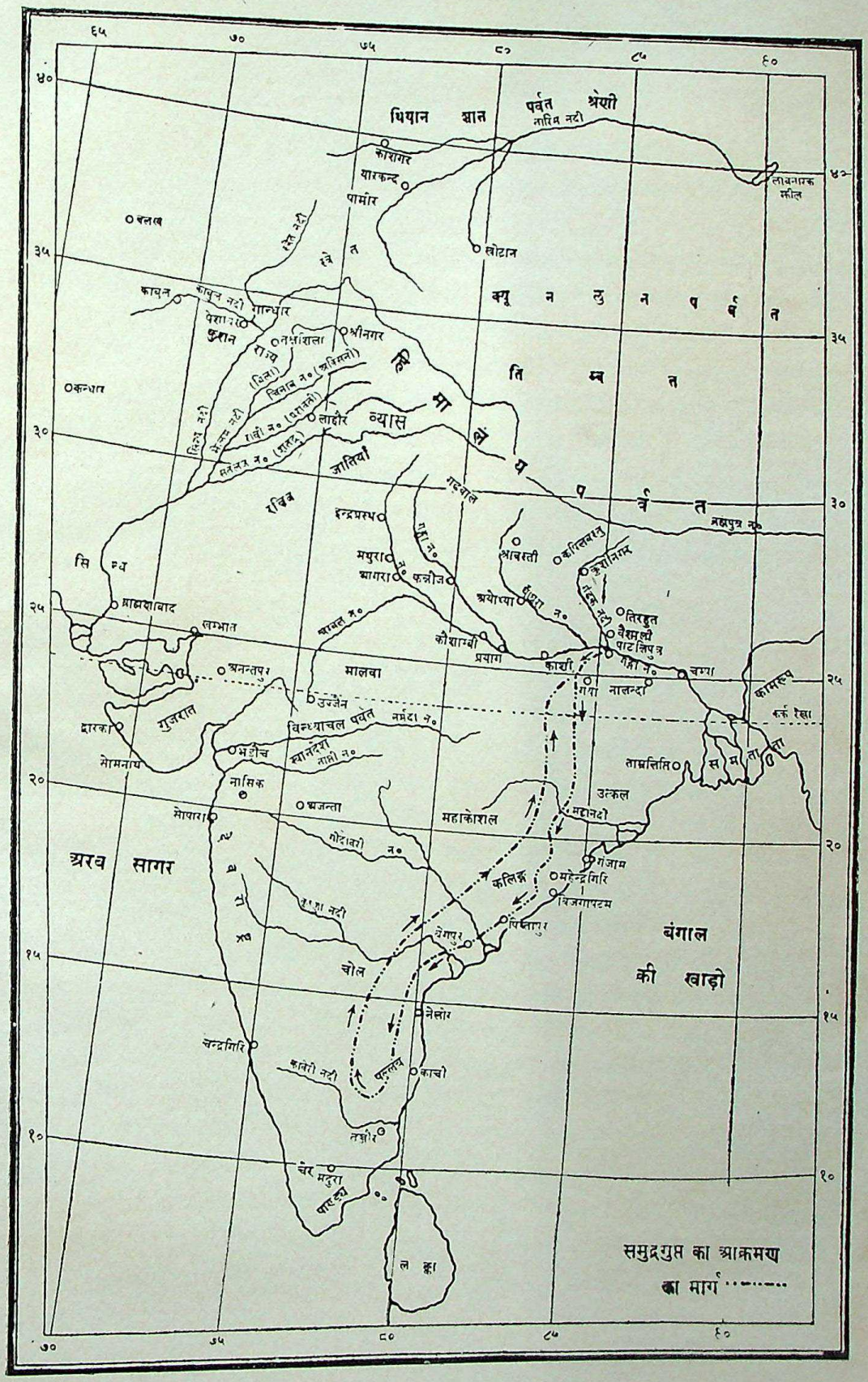

मानचित्र १ (पृष्ठ ८)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन सब कार्यों से समुद्रगुप्त ने नीति निपुणता, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति-कुशलता का पूर्ण परिचय दिया था। इसने गुप्त साम्राज्य की वास्तविक स्थापना को सुदृढ़ बनाया जिसे प्रबल शत्रु भी शताब्दियों तक शक्तिहीन न कर सके।

समुद्रगुप्त का सफल जीवन इतिहास में विख्यात है। इसके पिता प्रथम चंद्रगुप्त ने अलौकिक योग्यता के कारण ही मुग्ध होकर दरबारियों के समक्ष स्नेह से व्याकुल तथा आनंद भरे अश्रुओं से देखकर आलिंगन किया और कहा "तुम आर्य हो, समस्त पृथ्वी का पालन करो"! इस घोषणा से सभासदों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। इस प्रकार समुद्रगुप्त उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ। समुद्रगुप्त संगठनकर्त्ता तथा महत्वाकांक्षी विजेता था। उसने प्रायः चालीस वर्ष की लम्बी अवधि तक शासन किया जिसका अंत करीब ३७० ई० में हुआ।

इसके राज्यकाल में गुप्त मुद्राओं की विशेष ढंग से उन्नति हुई जो कलात्मक दृष्टि से उच्च कोटि के माने जाते रहे हैं। इसकी स्वर्ण मुद्राएँ राजा के जीवन घटनाओं का परिचय देती है। वीणा प्रकार तथा अश्वमेघ प्रकार (विजय के उपरांत अश्वमेघ किया था) को विशेष रूप से उल्लिखित किया जाता है।

द्वितीय चंद्रगुप्त

गुप्तवंश का अतुलनीय शक्तिवान् एवं प्रतापी सम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त माना गया है। जिसने समुद्रगुप्त के पश्चात् शासन की बागडोर संभाली। मथुरा से प्राप्त अभिलेख (गुप्त संवत् ६१) से प्रकट होता है कि वह ३८० ई० के समीप गद्दी पर आरूढ़ हो गया था। समुद्रगुप्त के शासन का अंत ३७५ ई० में हुआ था, अतएव इतिहासज्ञ इस मध्य की अवधि में एक अन्य राजा का शासन मानते हैं जिसे इतिहास में रामगुप्त कहा गया है। रामगुप्त की स्थिति **देवीचंद्रगुप्तम्** नाटक, वाण कृत **हर्षचरित, काव्यमीमांसा,** संजन आदि लेख तथा सिक्कों के आधार पर प्रमाणित हो चुकी है। इन सब प्रमाणों के अध्ययन से पता चलता है कि रामगुप्त अत्यंत शक्तिहीन तथा असमर्थ शासक था, जो समुद्रगुप्त के पश्चात् राजा हुआ। उसके समय शकों ने राज्य पर आक्रमण किया परंतु राज्य को सुरक्षित रखने के लिए उसने शत्रुओं से संधि की। संधि के फलस्वरूप उसने अपनी पत्नी ध्रुवदेवी को शकों को समर्पण करना स्वीकार कर लिया। उसका कनिष्ठ भ्राता द्वितीय चंद्रगुप्त इस पतन को देख न सका, अतः अपमानजनक कृत्य का विरोध किया और स्वयं स्त्रीवेष (ध्रुवस्वामिनी का) धारण कर शत्रुओं के शिविर में पहुँच गया। द्वितीय चंद्रगुप्त ने शक राजा को मार डाला और साम्राज्य की प्रतिष्ठा को बचा लिया। अंततोगत्वा किसी प्रकार चंद्रगुप्त रामगुप्त को मार डालने में सफल हुआ तथा उसकी स्त्री ध्रुव-देवी से विवाह भी कर लिया। विद्वानों ने इस उपकथा का पूर्णरूपेण विशद चित्र उपस्थित किया है। समुद्रगुप्त के प्रतापी शासन के पश्चात् गुप्त साम्राज्य का ऐसा अपमान होगा यह शीघ्रता से विश्वास नहीं हो पाता। परंतु रामगुप्त की ऐतिहासिकता सिद्ध हो चुकी है। इसका विस्तृत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवरण हमारे वर्त्तमान विषय के परिधि के बाहर है। यद्यपि यह ऐतिहासिक प्रश्न महत्वपूर्ण है तथापि रामगुप्त के संबंध में अधिक उल्लेख न कर द्वितीय चंद्रगुप्त के राज्य का विवरण उपस्थित किया जा रहा है।

समुद्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र कौन था, यह ठीक पता नहीं है परन्तु राजकीय अभिलेखों में समुद्रगुप्त द्वारा अंगीकृत्य (तत् परिगृहीत) पदावली का प्रयोग चंद्रगुप्त के लिए हुआ है। उसके उत्तराधिकारियों के लिए "तत् पादानुध्यात" (उसके चरणों द्वारा अनुगृहीत) पद उल्लिखित है। इसका तात्पर्य यह हो सकता है कि समुद्रगुप्त ने अनेक पुत्रों में से चंद्रगुप्त को उत्तराधिकारी चुना था। सांची के अभिलेख में **'महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्तस्य देवराज इति प्रिय नाम'** ऐसा उल्लेख है। अर्थात् उसके अन्य नाम भी थे—देवराज, देवश्री। उसकी दो पत्नियाँ थी—कुबेरनागा तथा ध्रुवस्वामिनी। चंद्रगुप्त की पुत्री प्रभावती गुप्ता के पूना ताम्रपत्र (ए० इ०, भा० १५) में कुबेरनागा का नामोल्लेख है तथा साहित्य में द्वितीय पत्नी ध्रुवदेवी (रामगुप्तकी विवाहिता पत्नी) के नाम मिलते हैं जिसके गर्भ से प्रथम कुमारगुप्त का जन्म हुआ था। इस सम्राट् के लेख निम्न स्थानों से मिले हैं—

(१) सांची, (२) मथुरा, (३) उदयगिरि (विदिशा के समीप) (४) गढ़वा (प्रयाग) तथा (५) मेहरौली स्तंभ लेख (दिल्ली के समीप)।

इस राजा के लेखों में तिथियों ६१, ८२, ९३ का उल्लेख मिलता है जिसका संबंध गुप्त संवत् से जोड़कर द्वितीय चंद्रगुप्त की तिथि ज्ञात हो जाती है। इस आधार पर यह शासक ३८० ई० (६१+३१९) से लेकर ४१३ ई० (सांची लेख ९३=४१३ ई०) तक राज्य करता रहा तथा लगभग बत्तीस वर्षों तक गुप्त साम्राज्य का शासक रहा।

द्वितीय चंद्रगुप्त के जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना दक्षिण पश्चिम तथा उत्तर के प्रदेशों का विजय है। समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ के राजाओं को परास्त कर उन्हें श्रीहत कर दिया था और सामंत के रूप में आज्ञा स्वीकार कर 'कर' देते रहे। द्वितीय चंद्रगुप्त की प्रखर किरणें सर्व-प्रथम पश्चिम में पहुँची। समुद्रगुप्त ने जिन शक मुरुण्डों को परास्त किया था वही शक पश्चिम भारत में राज्य करते रहे। इनको चंद्रगुप्त ने पराजित कर मालवा, गुजरात तथा काठियावाड़ पर अपने साम्राज्य को विस्तृत किया। पश्चिम भारत के पराजित शक नरेशों की उपाधि 'क्षत्रप' थी। यह जाति सर्वप्रथम उत्तर पश्चिम में शासन करने वाले कुषाण राजा के सामंत रूप में पश्चिम भारत में आई और कालांतर में स्वतंत्र हो गई। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के शक विजय के प्रमाण में तत्कालीन उत्कीर्ण लेख, प्राप्त सिक्के, तथा प्रचलित कथाएँ उपस्थित किए जाते हैं। मालवा के उदयगिरि पर्वत की गुफाओं में लेख खुदे हैं जिसमें वर्णन आया है कि चंद्रगुप्त का मंत्री वीरसेन सम्राट् के साथ उस भूभाग को जीतने आया था।

कृत्स्न पृथ्वी ज्यार्थेन राज्ञैवेह सहागतः (का० इ० इ०, भा० ३, नं० ६)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनको जीतकर मालवा में गुप्त साम्राज्य का शिविर स्थापित किया गया। शक राजाओं ने चाँदी सिक्के (अर्द्धद्रम) प्रचलित किए थे। उसीके अनुरूप गुप्त सम्राट् ने भी अपने वंश में सर्वप्रथम चाँदी के सिक्के निकाला जिनपर **"परमभागवत महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त विक्रमादित्य"** अंकित है। संभवतः यह विजय ४०१ ई० के समीप घोषित किया गया। उदयगिरि गुफा के दूसरे लेख की तिथि गु० स० ८२ (८२ + ३१९ = ४०१ ई०) उल्लिखित है। शक विजय के पश्चात् उज्जयिनी को राजनीतिक कारणों से द्वितीय राजधानी स्थिर किया। संभव है विक्रमादित्य की उपाधि चंद्रगुप्त द्वारा उसी समय से धारण की गई हो।

दिल्ली के समीप कुतुबमीनार के निकट मेहरौली का लौह स्तंभ खड़ा है जिसपर उत्कीर्ण लेख में 'चंद्र' नामक राजा का वर्णन है। चंद्र के संबंध में अधिक विवाद था किंतु चंद्रगुप्त विक्रमादित्य से इसका समीकरण किया गया है। उस लेख में चंद्र के दिग्विजय का वर्णन है। उसने पूर्वी पंजाब तक का प्रदेश विजित किया था **(सिन्धोर्जिता वाल्हिकाः)**। दक्षिण भारत पर विजय कर स्वयं शासन करना गुप्तों को अभिष्ट न था। किंतु द्वितीय चंद्रगुप्त ने पश्चिम भारत को साम्राज्य में मिलाकर दक्षिण के अन्य राजाओं से मित्रता स्थापित की। चंद्रगुप्त भलीभाँति समझता था कि दक्षिण नरेशों से मैत्री बिना पश्चिम भारत में सुचारु एवं शांतिपूर्ण वातावरण में शासन नहीं हो सकता। अतः उसने अपनी पुत्री प्रभावती गुप्ता का विवाह वाकाटक नरेश द्वितीय रुद्रसेन से किया। इस विवाह का रहस्य पश्चिम गुप्त प्रदेशों पर दक्षिण राजाओं के आक्रमण को रोकना था। यह नीति अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुई। मैसूर के कुंतल प्रदेश के कदंब नरेश के दरबार में गुप्त सम्राट् ने कालिदास को राजदूत बनाकर भेजा था। उस समय कुंतल देश पर ककुत्स्थ वर्मन राज्य करता रहा। कालिदास द्वारा रचित **'कुन्तलेश्वर दौत्य'** नामक ग्रंथ के आधार पर उपरि कथन की प्रमाणिकता सिद्ध होती है। इस प्रकार द्वितीय चंद्रगुप्त ने दक्षिणी तथा पश्चिमी भारत पर अपना प्रभुत्व तथा प्रभाव स्थापित किया था।

उसके विशाल साम्राज्य में शान्ति तथा वैभव का चित्र चीनी यात्री फाहियान के विवरण से मिल जाता है। यह यात्री विस्तृत प्रदेशों में भ्रमण करता रहा किंतु भारत के राजनैतिक अवस्था का कोई विवरण प्रस्तुत न कर सका। उसने महान् गुप्त सम्राट् का नामोल्लेख तक नहीं किया है। तथापि उसकी पुस्तक गुप्त युग की संस्कृति तथा सभ्यता की रूपरेखा प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण है। इस राज्य के अनेक विजय, शांति एवं वैभव की अवस्था गुप्त युग को श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं।

द्वितीय चंद्रगुप्त ने सोने के अतिरिक्त चाँदी तथा ताँबे का सिक्का भी प्रचलित किया था, जो उसकी प्रभुता, शक्ति, प्रभाव तथा व्यक्तिगत गुणों का परिचायक है।

प्रथम कुमार गुप्त

द्वितीय चंद्रगुप्त के मृत्यु के पश्चात् प्रायः ४१४ ई० में प्रथम कुमारगुप्त सिंहासनारूढ़ हुआ था। उसके राज्यकाल के तेरह अभिलेख प्राप्त हुए हैं जो किसी भी गुप्त सम्राट् के लेख से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बड़ी संख्या में हैं। यद्यपि उनसे राज्यकाल की घटनाओं पर अधिक प्रकाश नहीं पडता है किंतु उनका यह अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम कुमारगुप्त ने पैतृक राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखा। इसके काल के लेखों में वैशाली से अनेक मुहरें प्राप्त हुई हैं जिसमें चंद्रगुप्त की पत्नी ध्रुवस्वामिनी के पुत्र गोविंद गुप्त का नामोल्लेख है। (आ० स० रि०, १९०३-४—**महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त पत्नी महाराज श्रीगोविंद गुप्त माता महादेवी ध्रुवस्वामिनी**) परंतु भिलसद के लेख में (देखिए—प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, पृ० ३१७) प्रथम कुमारगुप्त ध्रुवदेवी से उत्पन्न बतलाया गया है :

महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्तस्य महादेव्या ध्रुवदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजधिराज कुमार गुप्तस्य।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कुमारगुप्त ही द्वितीय चंद्रगुप्त का उत्तराधिकारी था। उसकी पदवी '**महाराजाधिराज**' उल्लिखित है परंतु गोविंद गुप्त महाराज कहा गया है। अतएव दोनों भाईयों में ज्येष्ठ होने के नाते कुमारगुप्त ने शासन संभाला।

प्रथम कुमारगुप्त के अभिलेख तथा प्राप्त सिक्कों से यह प्रकट होता है कि वह अधिक समय (४० वर्ष) तक शासन करता रहा। कुमारगुप्त के अश्वमेध प्रकार के सिक्कों से विदित होता है कि उसने पितामह के सदृश अश्वमेध किया था किंतु किसी प्रकार के विजय की घटना का वृतान्त अज्ञात है। महाराष्ट्र (सतारा) तथा गुजरात (अहमदाबाद और भावनगर) से उसके सिक्के उपलब्ध हुए हैं जो पश्चिम दक्षिण पठार में गुप्त प्रभाव का संकेत करते हैं।

अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसके राज्यपाल तथा सामंत शासन में सहयोग करते रहे।

(१) घटोत्कच पूर्वी मालवा (एरण) में राज्य कर रहा था।
(२) सुदूर पश्चिम में बंधुवर्मा सामंत था जो दशपुर में राज्य करता रहा।
(३) इसके कनिष्ठ भ्राता गोविंद गुप्त वैशाली के भूभाग में शासन कर रहा था जो राज्यपाल रहा होगा।
(४) चिरातदत्त पुंड्रवर्धन (उत्तरी बंगाल) में शासन करता रहा।
(५) पृथ्वीषेण उत्तर प्रदेश (फैजाबाद) का शासक नियुक्त हुआ था।

इनके अनुशीलन से पता चलता है कि प्रथम कुमारगुप्त के शासन तंत्र के विधान में उन्नति हुई।

यद्यपि प्रथम कुमारगुप्त का शासनकाल शांत तथा वैभवपूर्ण था परंतु इनके अंतिम समय में पुष्यमित्र नामक शत्रु ने आक्रमण किया। भितरी प्रस्तर लेख का संदर्भ जो इस महत्वपूर्ण घटना के लिए प्रमाण है, असंदिग्ध है। संभवतः कुमारगुप्त का कोई प्रतिद्वंद्वी राजा पुष्यमित्र था (इसे **युद्धमित्रांश्च** भी पढ़ा गया है)। इस प्रसंग में यह कहना यथार्थ होगा कि वह शक्तिशाली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

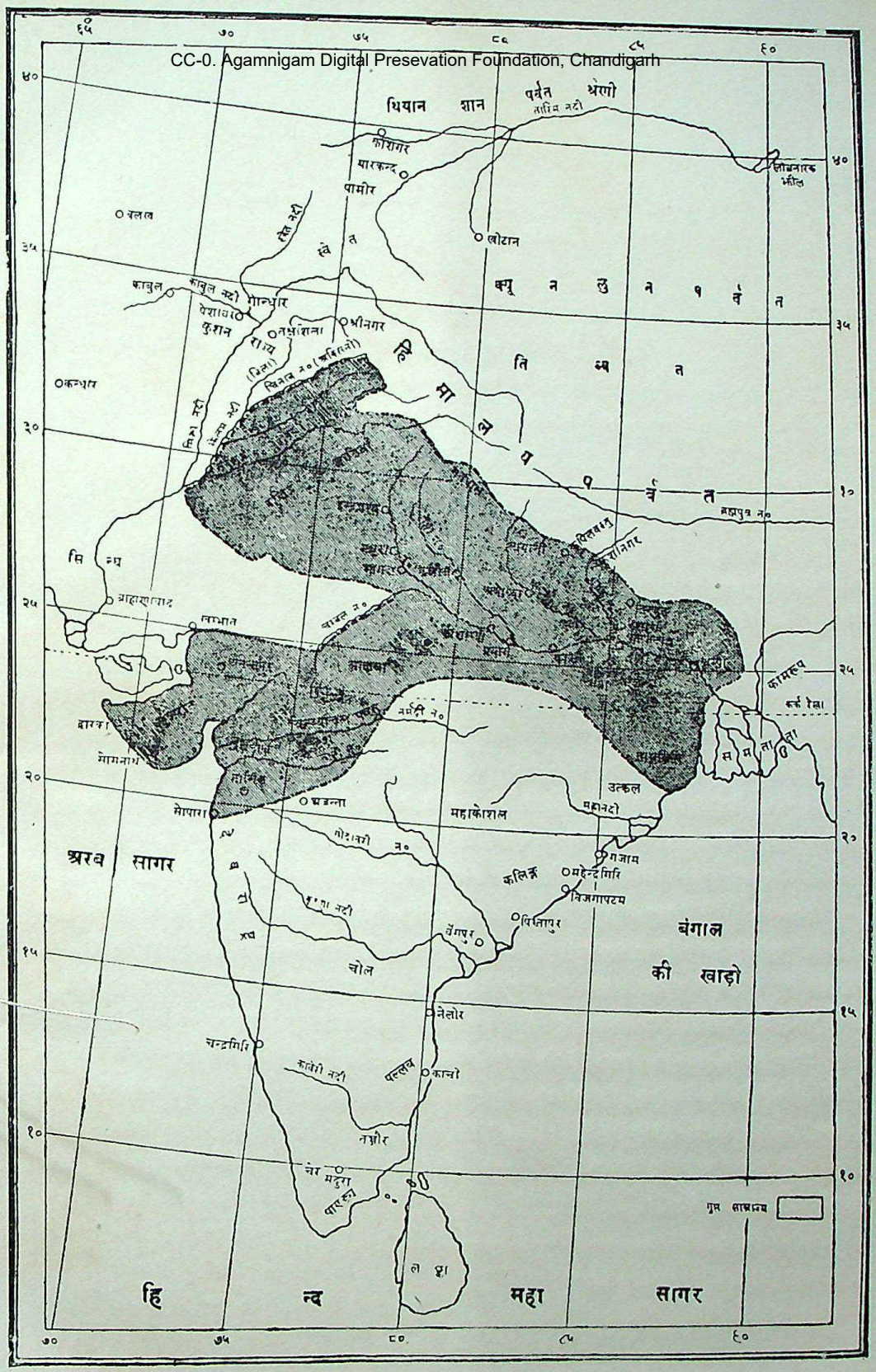

द्वितीय चंद्रगुप्त का राज्यविस्तार

मानचित्र २ (पृष्ठ १२)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था जिसका स्कंदगुप्त के भितरी अभिलेख में निम्न रूप में वर्णन मिलता है—

विचलित कुललक्ष्मीः स्तम्भनायोद्यतेन,
क्षितितल शयनीये येन नीता त्रियामा
समुदित बल कोशान् पुष्यमित्रांश्च जित्वा
क्षितिप चरण पीठे स्थापितो वामपादः

(प्रा० भा० अभिलेखों का अध्ययन, पृ० ३३३)।

इससे यह प्रकट होता है कि गुप्त सम्राट् को भारी क्षति उठानी पड़ी तथा बिभ्रंश का सामना करना पड़ा था।

प्रथम कुमारगुप्त का कोई भी ऐसा अभिलेख उपलब्ध नहीं है जो उसके युद्ध या राज्य-विस्तार का वर्णन कर सके। कहा जा सकता है कि उसने पिता के राज्य को सुचारु रूप से सुरक्षित रखा। शत्रुजन राजकुमार स्कंदगुप्त द्वारा युद्ध मैदान में मारे गए। इसका साम्राज्य काटियावाड़ से बंगाल तक विस्तृत था। उसने चौदह प्रकार की स्वर्ण मुद्राएँ प्रचलित की, जिससे उस काल की स्थिति का बोध होता है। चाँदी के सिक्कों का विस्तार पहली बार मध्यदेश में प्रथम कुमारगुप्त ने किया, जहाँ सिक्कों पर गरुड़ के स्थान पर मयूर अंकित हैं। राज्य संचालन की शक्ति कुमारगुप्त की योग्यता का परिचायक है। कुमारगुप्त गुणग्राही था तथा सार्वजनिक उपकारिता में संलग्न रहता था। पूर्वजों की तरह इसमें वीरता का अभाव था किन्तु यह सुशासक सम्राट् था। कुमारस्वामी का मत है कि गुप्त कालीन संस्कृति इस युग में चरमसीमा को पहुँच गई थी।

स्कंदगुप्त

ई० स० ४५६ में प्रथम कुमारगुप्त की मृत्यु के पश्चात् स्कंदगुप्त गद्दी पर आया। यह गुप्तवंश का अंतिम सम्राट् माना जाता है। गुप्त अभिलेखों के आधार पर विद्वानों की धारणा है कि प्रथम कुमारगुप्त के पश्चात् उत्तराधिकार का प्रश्न खड़ा हुआ। कुमारगुप्त के अन्य पुत्र भी सिंहासन के लिए प्रतिस्पर्धी थे। भितरी राजमुद्रा में पुरुगुप्त प्रथम कुमारगुप्त का पुत्र कहा गया हैं, माता महादेवी उल्लिखित है। स्कंदगुप्त की माता का नाम अभिलेखों में उल्लिखित नहीं है। अतएव यह संदेह हो जाता है कि स्कंदगुप्त पराक्रम के द्वारा वास्तविक उत्तराधिकारी को हटाकर राजसिंहासन को अपने अधिकार में कर लिया (विशेष जानकारी के लिए देखिए—गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भा० १, पृ० १०५)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वंश वृक्ष निम्न प्रकार है—

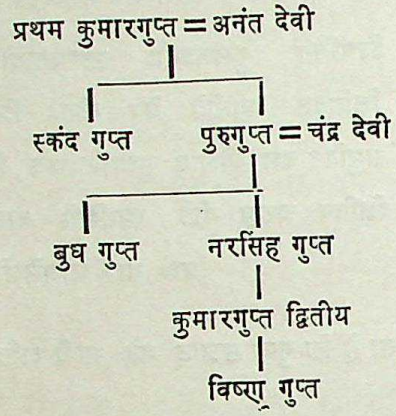

आश्चर्य यह है कि राजकीय मुद्रा में स्कंदगुप्त का नाम उल्लिखित नहीं है (भितरी की राजमुद्रा, ज० ए० सो० बं०, १८८९) । स्कंदगुप्त के अभिलेख में भी तीन पूर्वजों की राजमहिषियों के नाम मिलते हैं किंतु स्वयं उसकी माता का नाम अनुपस्थित है । इसीसे संदेह होता है कि वह वास्तविक उत्तराधिकारी न था । दायाधिकार के समर्थक विद्वान भितरी स्तंभ लेख से एक श्लोक उद्धृत करते हैं जो उनके कथन को पुष्ट करता है—

पितरिदिवमुपेते विप्लुतां वंशलक्ष्मी
भुजवल विजितारिर्य्यः प्रतिष्ठाप्यभूयः
जितमिव परितोषान् मातरं साश्रुनेत्रां
हतरिपुरिव कृष्णो देवकीमभ्युपेतः ।

पिता के मृत्यु के पश्चात् वंशलक्ष्मी चंचल हो गई । इसको अपनी भुजाओं के बल से पुनः स्थापित किया । शत्रुओं का नाश कर प्रेम अश्रुयुक्त माता के पास गया जिस प्रकार कृष्ण अपनी माता देवकी के पास गए थे । इसका तात्पर्य यह है कि वंशलक्ष्मी को विचलित करनेवाले स्वजन ही थे । स्यात्—इससे बाहरी शत्रुओं का भी संकेत हो सकता है ।

भितरी स्तंभ लेख का उपरियुक्त श्लोक सर्वथा प्रमाणयुक्त नहीं है क्योंकि इस अभिलेख के पौर्वापर्य विचार करने से गुप्तवंश-लक्ष्मी का विनाशक बाहरी शत्रु थे (राजघराने के पुरुष नहीं थे)। इन पुष्यमित्रों को परास्त कर स्कंदगुप्त ने प्रतिष्ठा कायम रखी । प्रथम कुमारगुप्त के पुत्रों में स्कंद गुप्त ही पराक्रमी एवं योग्य था, अतएव शासन की बागडोर लेकर कार्य करने लगा । जूनागढ़ की प्रशस्ति में स्पष्ट उल्लेख है—

व्ययेत सर्वान्मनुजेन्द्र पुत्रां लक्ष्मीः स्वयं यं वरयाञ्चकार ।

राजलक्ष्मी ने स्वयं ही स्कंदगुप्त को अपना पति चुना । इस सम्राट् के स्वर्णमुद्रा पर भी राजा तथा देवी की आकृतियाँ खुदी है जो जूनागढ़ लेख के कथन को प्रमाणित करती हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्कंदगुप्त ने पैतृक राज्य का संरक्षण करते हुए शत्रुओं के बढ़ते बल-प्रवाह को रोका था।

पूर्वजों के सदृश्य किसी दिग्विजय या विजय यात्रा का विवरण नहीं मिलता। किंतु भितरी तथा जूनागढ़ लेखों में हूणों का वर्णन आता है जिसे स्कंदगुप्त ने परास्त किया। हूणों ने मध्य एसिया के मैदान से आकर गांधार पर अधिकार कर लिया था। भारत में भी प्रवेश किया। पाँचवी सदी में गुप्तराज्य पर आक्रमण किया जिसका दुष्परिणाम उन्हें सहन करना पड़ा। यह युद्ध प्रायः ई० स० ४५६ के समीप हुआ था। पराजय के पश्चात् हूणों ने पश्चिमोत्तर प्रदेश में शरण ली।

गुप्त-उत्कर्ष युग का स्कंदगुप्त अंतिम सम्राट् था जिसके पश्चात् गुप्त साम्राज्य की अवनति होने लगी। कोई भी गुप्त राजा शत्रुओं के प्रवाह को रोक न सका। स्कंदगुप्त की मृत्यु के बाद हूण लोगों ने पंजाब तथा मध्य भारत पर अपना राज्य स्थापित कर लिया जिसके लेख उस भूभाग में मिलते हैं (एरण तथा ग्वालियर अभिलेख—प्रा० भा० अ० अ०, पृ० ३५८-५९)।

स्कंदगुप्त की स्वर्ण मुद्राओं से भी हूण आक्रमण के परिणाम का संकेत मिलता है। उसके पिता ने चौदह प्रकार की स्वर्ण मुद्राएँ प्रचलित की थी परन्तु इसने दो प्रकार को ही मुद्रित किया। वह भी विशुद्ध सोने का नहीं। संभवतः युद्ध के कारण कोश में अधिक धातु का आयात न होने के कारण मुद्राएँ मिश्रित धातु की तथा भारी बनी होगी।

स्कंदगुप्त की कीर्ति सर्वत्र व्यापिनी थी। वीरतापूर्ण कार्यों के कारण स्कंदगुप्त गुप्तवंश का 'वीर' कहा गया है—**जगति भुजबलाढ्यो गुप्तवंशैक वीरः**

प्रथितविपुलधामा नामतः स्कंदगुप्तः (भितरी लेख)

अधिरोहण के पश्चात् ही स्कंदगुप्त ने भिन्न-भिन्न प्रदेशों में राज्यपाल नियुक्त किए। सौराष्ट में पर्णदत्त तथा अंतरवेदि में सर्वनाग प्रतिनिधि के रूप में शासन करते रहे। इस प्रकार विस्तृत राज्य—सौराष्ट्र से बंगाल तक—का सुचारु रूप से स्कंदगुप्त शासित करता रहा। यह ४५६ ई० से ४६७ ई० तक शासन की अवधि मानी गई है।

पुरुगुप्त एवं उसके उत्तराधिकारी

पिछले पृष्ठों में इस विषय की चर्चा की गई है कि विद्वान गुप्त राज्य के दायाधिकार निमित्त युद्ध में विश्वास करने लग गए हैं। यदि प्रथम कुमारगुप्त ने स्कंदगुप्त को योग्य, शक्तिशाली एवं प्रतापी समझकर राज्य का स्वामी बनाया, तो उसके भ्राता पुरुगुप्त की क्या स्थिति थी? अशांतिमय वातावरण हटाकर तथा पुष्यमित्र नामक जाति को परास्त कर स्कंदगुप्त ने प्रशंसनीय कार्य किया था। संभवतः प्रयाग में रहकर उसने शासन किया और सामंत या राज्यपाल के सहारे राज्य करता रहा। ई० स० ४६७ में स्कंदगुप्त की मृत्यु हो गई। संभव है उसी तिथि के पश्चात् वृद्धावस्था में पुरुगुप्त ने शासन आरंभ किया। भितरी मुद्रा लेख में (जे० ए० सो० बं०, भा० ५८) पुरुगुप्त तथा उसके वंशज (नरसिंह तथा कुमारगुप्त) राजा के महान् पदवी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'महाराजाधिराज' से विभूषित थे। अतएव उन्हें अन्य गुप्त सम्राटों की तरह शासक मानना होगा। पुरुगुप्त से लेकर कुमारगुप्त द्वितीय तक शासन अवधि के विषय में हमारी जानकारी विशेष नहीं है। इसका अनुमान बुद्धगुप्त के सारनाथ प्रतिमा लेख की तिथि के आधार पर निश्चित किया जा सकता है। उस प्रतिमा लेख में गु० स० १५७ (=४७६ ई०) का उल्लेख है। यानी बुधगुप्त से पूर्व पुरुगुप्त के वंश राज्य कर चुके थे। ४६७ ई० (स्कंद की मृत्यु) तथा ४७६ ई० के मध्य दस वर्षों में तीन पीढ़ियों का राज्य समाप्त समझा गया है। बुधगुप्त पुरुगुप्त से अधिक प्रतापी राजा हुआ (आगे वर्णन किया जायगा)। अतएब ४७६ ई० से पहले ही तीन राजाओं (पुरु, नरसिंह, कुमारद्वितीय) का कार्य काल समाप्त समझना चाहिए। यह अवधि तीन पीढ़ियों के लिए छोटी है। अतः कुछ नए सुझाव उपस्थित किए गए हैं कि प्रथम कुमारगुप्त के पश्चात् गुप्त साम्राज्य को दो विभागों में विभक्त कर दिया गया। पाटलिपुत्र से पश्चिम स्कंदगुप्त तथा पूर्वी भाग में पुरुगुप्त शासन करने लगा। इस विचार के समर्थक निम्न प्रकार से दोनों शाखाओं की वंशवृक्ष का उल्लेख करते हैं :—

पहली शाखा

(१) स्कंदगुप्त
(२) सारनाथ लेख वाले (गु० स० १५४) कुमारगुप्त
(३) बुधगुप्त (एरण लेख, सारनाथ लेख, दामोदरपुर लेख)
(४) भानुगुप्त

दूसरी शाखा

(१) पुरुगुप्त
(२) नरसिंह गुप्त
(३) कुमारगुप्त (द्वितीय या तृतीय)
(४) विष्णुगुप्त
(५) वैन्यगुप्त

इस विचार को कालीघाट स्वर्ण सिक्कों के साक्ष से पुष्ट किया जाता है। कालीघाट निधि में पुरुगुप्त से लेकर उसके वंशजों के नाम वाले सिक्के उपलब्ध हुए हैं। जिसकी बनावट तथा भारीपन, उस निधि को स्कंदगुप्त शासन के बाद ही प्रचलित सिद्ध करती है। परंतु इस बँटवारे के विचार को पुष्ट करने के अन्य साधन नहीं है और विरोध में यह कहा जाता है कि पुरुगुप्त के बाद कुमारगुप्त द्वितीय का लेख भितरी तथा सारनाथ से प्राप्त हुए हैं। यदि प्रथम कुमारगुप्त के बाद राज्य का बँटवारा हो गया तो पाटलिपुत्र से पश्चिम (उत्तर प्रदेश) में सारनाथ तथा भितरी से इनके अभिलेख क्यों कर मिले ?

इस अध्ययन का तात्पर्य यह है कि स्कंदगुप्त की मृत्यु के पश्चात् पुरुगुप्त गद्दी पर आया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नालंदा तथा भितरी राजमुद्राओं से प्रथम कुमारगुप्त के पश्चात् उत्तराधिकारियों के वंशवृक्ष निश्चित करने में सहायता मिलती है—

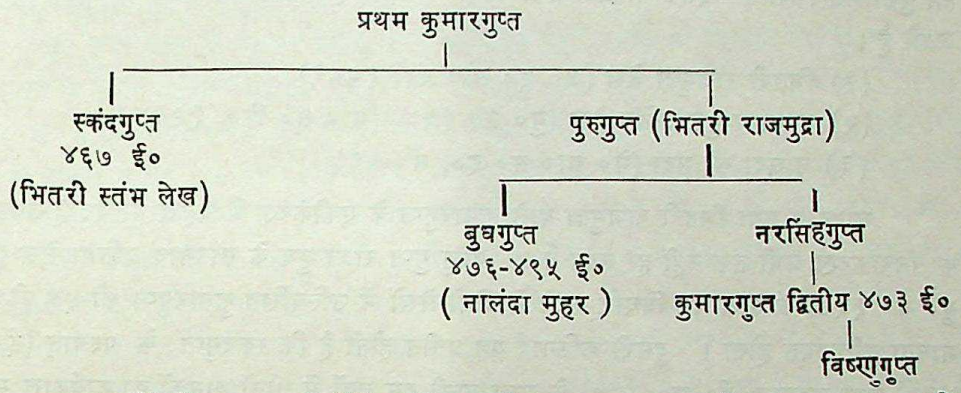

इन राजाओं की महान पदवियों से कोई वास्तविक प्रभाव तथा शक्ति का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। परन्तु यह निश्चित ही है कि स्कंदगुप्त के पश्चात् अनेक शासकों की स्थिति का पता चलता है जो गुप्त साम्राज्य के सीमा में राज्य करने लगे। प्राय: उनकी स्वतंत्रता का साक्ष भी मिलता है। उदाहरण के लिए—घटोत्कच नामक व्यक्ति मालवा में (४६५ ई०) शासक था। इसी के पश्चात् प्रभाकर का नाम लिया जा सकता है जिसकी स्थिति संदेहात्मक समझी जाती है। ई० स० ४७३ के मालवा अभिलेख के आधार पर समसामयिक शासन का परिज्ञान होता है किंतु उनकी प्रमाणिकता अस्पष्ट तथा अनिश्चित है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि साम्राज्य का पश्चिमी भाग (स्कंदगुप्त के बाद) गुप्तों के हाथ से निकल गया था। पूर्वी भाग में पुरुगुप्त तथा उनके उत्तराधिकारी ने राज्य को अक्षत बनाए रखा। वह अभिलेख में **'तत्पादानुध्यात'** (कानूनी उत्तराधिकारी) उल्लिखित है। पुरुगुप्त का कोई स्वतंत्र लेख अभी तक उपलब्ध नहीं है। जो कुछ भी ज्ञात है वह द्वितीय कुमारगुप्त के भितरी राजमुद्रा का साक्ष तथा कालीघाट स्वर्ण मुद्रा की निधि पर आधारित है। परमार्थकृत बसुवंधु के जीवन वृतांत से विदित होता है कि पुरुगुप्त बौधधर्मानुयायी था। उसने बसुवंधु से बौद्धधर्म की शिक्षा ली थी।

उसके पश्चात् नरसिंहगुप्त राज्य करता रहा। इसकी पदवी 'बालादित्य' की थी जिस कारण ह्वेनसांग कथित बालादित्य तथा नरसिंह गुप्त बालादित्य की समानता मानी जाती है। यह संदेहात्मक है क्योंकि दोनों की तिथियों में सौ वर्ष का अंतर है (गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भा० १, पृ १२५-८)। नरसिंह का कोई अभिलेख प्राप्त नहीं हुआ है किंतु कालीघाट निधि में इसके स्वर्ण सिक्के मिले हैं। द्वितीय कुमारगुप्त (ई० स०४७३) के पहले इनकी जीवन लीला समाप्त हो गई थी। इसके सिक्के पचास की संख्या में मिले हैं जिनकी तौल माप १४८ ग्रेन है तथा मिश्रित धातु के बने हैं। अतः इनकी तिथि स्कंदगुप्त की स्वर्ण माप तौल (१४४·६ ग्रेन) वाले सिक्कों से बाद ही स्थिर की गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय कुमारगुप्त पुरुगुप्त का पौत्र था जिसने पिता (नरसिंहगुप्त) के मृत्यु पश्चात् सिंहासन को सुशोभित किया। इसके दो लेख तथा सिक्के उपलब्ध हैं जिस आधार पर तिथि निश्चित की जाती है।

(१) भितरी राजमुद्रा लेख (ज० ए० सो० बं०, १८८९)

(२) सारनाथ बुद्ध प्रतिमालेख (गु० स० १५४) (आ० स० रि०, १९१४-५)

(३) नालंदा की मुद्रा (मे० आ० स० इ०, सं० ६६)

सारनाथ तथा भितरी राजमुद्रा वाले कुमारगुप्त के एकीकरण में गहरा मतभेद है तथा प्रश्न का निराकरण अभी तक नहीं हो सका है। परंतु गुप्त राजा बुध के सारनाथ प्रतिमा लेख (तिथि गु० स० १५७) के साक्ष पर विचार करने से दोनों लेखों में उल्लिखित कुमारगुप्त को एक ही व्यक्ति मानना युक्तिसंगत होगा। दूसरी कठिनाई यह प्रतीत होती है कि स्कंदगुप्त के पश्चात् (ई० स० ४६७) तथा बुद्धगुप्त (ई० स० ४७७) के मध्य यानी दस वर्षों में तीनों शासकों का कार्यकाल मानना पड़ेगा। इस अल्प अवधि में राज्य शासन की समाप्ति आश्चर्यमय घटना प्रतीत होती है। उपलब्ध सिक्के तथा अभिलेखों के साक्ष पर उपरियुक्त विचार से असहमत होना समीचीन न होगा।

बुधगुप्त का शासन

ई० स० ४७५ तक पुरुगुप्त के वंशजों का शासन काल समाप्त हो गया था जिसके पश्चात् गुप्त वंश के शक्तिशाली नरेश बुधगुप्त ने राज्य संभाला। सारनाथ के अभिलेख (गु० स० १५७) से विदित होता है कि ई० स० ४७६ में यह नृपति राज कर रहा था। बुधगुप्त के लेख तथा सिक्के यह प्रमाणित करते हैं कि इसने दूरवर्ती प्रदेशों पर भी शासन किया। बुधगुप्त पुरुगुप्त का पुत्र था पर द्वितीय कुमारगुप्त के बाद ही शासक बना। यों तो द्वितीय कुमारगुप्त के पुत्र विष्णुगुप्त के साथ महाराजाधिराज की पदवी संबंधित है यानी उसने भी शासन किया। ऐसी परिस्थिति में यह संभव हो सकता है कि बुधगुप्त राज्य का अधिक भाग लेकर शासन करने लगा और विष्णु-गुप्त का शासन पूर्वी भाग में सीमित हो गया। बुधगुप्त के निम्नलेखों से उसके राज्य विस्तार का अनुमान लगाया जा सकता है—

(१) सारनाथ लेख (गु० स० १५७)

(२) दामोदरपुर ताम्रपत्र (उत्तरी बंगाल)—इससे गुप्त शासन की अधिक बातें ज्ञात होती हैं। विषयपति तथा सभासदों की नामावाली मिलती है।

(३) पहाड़पुर ताम्रपत्र (राजशाही, उत्तरी बंगाल)—इसमें भूमि विक्रय का वर्णन मिलता है।

(४) एरण (सागर, मध्यप्रदेश) का स्तंभलेख—इस अभिलेख में वर्णन आता है कि बुधगुप्त का प्रतिनिधि सुरश्मिचंद यमुना एवं नर्वदा के मध्य भाग में शासन करता था।

(५) बुधगुप्त के दो प्रकार के सिक्के प्राप्त हुए हैं—(अ) सोना (जिसपर बुध लेख खुदा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है) तथा (ब) चाँदी के सिक्के। स्कंदगुप्त के पश्चात् मध्य देश में रजत सिक्कों का प्रचलन बंद हो गया था परंतु बुधगुप्त ने पुनः प्रचलित किया।

इन सभी साक्ष के आधार पर बुधगुप्त की शक्ति तथा प्रताप का अनुमान लगाया जा सकता है। उत्तरी बंगाल से मध्यदेश तक इसका राज्य विस्तृत था। जहाँ रजत सिक्के प्रचलित किए गए थे। इसके सिक्कों पर गु० स० १७५ (=ई० स० ४९५) की तिथि अंकित है। विस्तृत राज्य होने के कारण सामंत (राज्यपाल) के सहारे बुधगुप्त शासन करता रहा। प्रथम सुरश्मिचंद का नाम एरण स्तंभलेख से मिलता है। दूसरा राज्यपाल पुंड्रवर्धन (उत्तरी बंगाल) में शासन करता था। उसके अधीन शासकों ने महाराज की पदवी धारण की थी। ब्रह्मदत्त के अतिरिक्त सुरश्मिचंद भी महाराजा कहा गया है। इस सामंत के अधीनस्थ प्रदेश के पूर्वी दिशा में नृप परिव्राजक महाराजाओं का शासन था जिनके ताम्रपत्रों में **'गुप्त नृप राज्यभुक्तौ'** वाक्य का उल्लेख है। तात्पर्य यह है कि वह परिव्राजक गुप्तों के अनुशासन में थे। यद्यपि विशिष्ट गुप्त राजा का नामोल्लेख नहीं है किंतु बुधगुप्त के सामंत होंगे, यह निश्चित-सा मालूम पड़ता है।

परिव्राजक राज्य के समीपवर्ती उच्चकल्प (भूमरा, बुंदेलखंड) के राजाओं में जयनाथ तथा सर्वनाथ के नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके सात ताम्रपत्र प्रकाश में आए हैं परंतु परिव्राजक राजाओं के सदृश इनके दानपत्रों में गुप्तों की अधीश्वरता का संकेत नहीं है। इनकी तिथियों का निर्देश किस कालक्रम से है, यह ठीक कहा नही जा सकता।

डा० अलतेकर का मत है कि यद्यपि काठियावाड़ में भी मैत्रक कुल का शासन था परंतु द्रोणसिंह के अभिलेख (तिथि गु० स० १८३) में **'परमभट्टारकपादानुध्यात'** शब्दावली से प्रकट होता है कि द्रोणसिंह का कोई अधीश्वर था। मैत्रक शक्ति की वृद्धि तथा गुप्त सत्ता की अवनति की परिस्थिति में भी ई० स० ५०२ (गु० स० १८३) में गुप्त सम्राट् ही अधीश्वर माना जा सकेगा। इस राजनीतिक सिंहावलोकन से यह प्रकट होता है कि स्कंदगुप्त के क्रमागत गुप्त राज्य पर बुधगुप्त का आधिपत्य था एवं अनुशासन बना रहा। बुधगुप्त के रजत सिक्कों के परीक्षण से प्रकट होता है कि काठियावाड़ तथा गुजरात में गुप्तों के चांदी के सिक्कों का प्रचलन बंद हो गया था जो गुप्त शक्ति के ह्रास के द्योतक हैं। अतएव बुधगप्त का प्रभुत्व मध्य भाग पर ही सिद्ध होता है।

विष्णुगुप्त से भानुगुप्त

इस गुप्त नरेश का सीधा संबंध पुरुगुप्त के वंश से था जिसका उल्लेख नालंदा की मुहर में मिलता है। यह कुमारगुप्त का पुत्र कहा गया है जो निसंदेह द्वितीय कुमारगुप्त ही कहा जायगा। उसकी मुद्रा भितरी से मिली है। इस स्थिति में विष्णुगुप्त का शासन स्थिर करना कठिन है। यदि यह मान लिया जाय कि विष्णुगुप्त बुधगुप्त (ई० स० ४७६) के पश्चात् शासक हुआ तो उसे पूर्वी बंगाल का राजा मानना समुचित होगा। उसकी भद्दी कलारहित स्वर्ण मुद्रा उपलब्ध हुई है जो तौल में १५१ ग्रेन है जिसके पृष्ठभाग पर 'चंद्रादित्य' की पदवी अंकित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैन्यगुप्त

पूर्वी बंगाल से प्राप्त गुणैघर ताम्रपत्र अभिलेख के अनुशीलन से पता चलता है कि उस भूभाग में विष्णुगुप्त के पश्चात् वैन्यगुप्त शासन करने लगा। इस ताम्रपत्र की तिथि गु० स० १८८ (ई० स० ५०७) है। इसके वर्णन से ज्ञात होता है कि वैन्यगुप्त ने बौद्ध विहार को भूमि दान में दी थी। नालंदा मुहर में वैन्यगुप्त के लिए 'महाराजाधिराज' की पदवी उल्लिखित है (मे० आ० स० इ०, नं० ६६, पृ० ६३)। अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि बुधगुप्त के पश्चात् विष्णुगुप्त का उत्तराधिकारी वैन्यगुप्त बंगला देश पर शासन करता रहा। इसी के समकालीन मध्य प्रदेश में भानुगुप्त शासन करता था जिसका अभिलेख एरण (जिला सागर, म० प्र०) से प्राप्त हुआ है। उसकी तिथि गु० स० १९१ (ई० स० ५१०) अंकित है। इसका तात्पर्य यह है कि बुधगुप्त की मृत्यु पश्चात् पाटलिपुत्र से मध्य भारत तक के भूभाग भानुगुप्त के अधिकार में थे और पूर्वी बंगाल (बंगलादेश) विष्णुगुप्त एवं वैन्यगुप्त के अधिकार में।

भानुगुप्त के एरण वाले लेख से पता चलता है कि गुप्त राजा से हूणों का घनघोर युद्ध हुआ था जिसमें राजा का सेनापति गोपराज मारा गया। उस अभिलेख में गोपराज की स्त्री के सती होने का विवरण मिलता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मध्य भारत में ई० स० ५१० तक भानुगुप्त अधीश्वर था। गुप्त राजाओं के आंतरिक विभेद साम्राज्य को पतनोन्मुखी बना दिया। हूणों का विजय भी इस ह्रास का एक प्रमुख कारण हो सकता है।

भारतीय पुरातत्व सामग्रियों के अध्ययन से पता चलता है कि तोरमाण तथा मिहिर-कुल नामक दो हूण सरदारों ने मध्य भारत तक राज्य विस्तृत किया। उनके पूर्वजों के विषय में कोई संतोषजनक बातें कही नहीं जा सकती परंतु यह सत्य है कि हूण जाति ने भारत में प्रवेश कर गांधार प्रदेश को जीतकर गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण किया था। स्कंदगुप्त ने उन्हें परास्त भी किया। पर कालांतर गुप्तों की शक्ति को क्षीण जानकर उन्होंने भानुगुप्त के सामंत गोपराज को युद्ध में मार डाला। हूण अभिलेख तथा सिक्के मध्य भारत में हूण राज्य की स्थापना के साक्षी हैं। इस प्रकार भारत में गुप्त साम्राज्य की शेष शक्ति, प्रभाव एवं शासन का अंत हो गया।

हूण आक्रमण गुप्त साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण था। किंतु अन्य प्रदेशों में भी सामंत स्वतंत्रता की घोषणा कर रहे थे। बुधगुप्त के रजत सिक्के यह प्रकट करते हैं कि काठियावाड़ एवं गुजरात में मैत्रकों ने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया था। मालवा में यशोधर्मा का आधिपत्य था जिसके मंदसोर अभिलेख में मिहिरकुल का निर्देश है। लेख में यशोधर्मा गर्व करता है कि विख्यात राजा मिहिर ने उसके चरणों में सम्मान भेंट किया—

चुड़ापुष्पोपहारैः मिहिरकुल नृपेणार्चितं पादयुग्मम् (मंदसोर लेख—का० इ० इ०, भा० ३)

सैनिक विजयों द्वारा यशोधर्मा की सफलता के विषय में हमारा ज्ञान उस मंदसोर लेख में ही सीमित है। यह मानना पड़ेगा कि ई० स० ५२० के समीप अकस्मात् राजनीतिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षितिज पर उल्का सदृश यशोधर्मा प्रकट हुआ और शीघ्र ओझल भी हो गया । उसका साम्राज्य उसी के साथ विलीन हो गया ।

मंदसोर के आसपास का प्रदेश उसके राज्य का केंद्र रहा होगा । हूणों के पश्चात् उसकी शक्ति का अभ्युदय प्रकट होता है । परंतु संग्राम के क्षेत्र में चमत्कारी सफलता के अतिरिक्त कोई स्थायी फल दृष्टिगत नहीं होता । यशोधर्मा का अंत एक पहेली है । गुप्त साम्राज्य के सामंतो में एक विप्लव सा उठ खड़ा हुआ । उस समय अराजकता के फलस्वरूप अनेक शक्तियाँ स्थापित हो गई । उनमें सर्वाधिक शक्तिशाली मौखरी थे, जो कन्नौज पर शासन करते रहे । मगध में भी एक गुप्त वंश का राज्य स्थित था जो उत्तर-गुप्त नरेश के नाम से प्रसिद्ध हैं । यों तो गुप्त-साम्राज्य के खंडहर पर मालवा, बलभी, कन्नौज, थानेश्वर, मगध तथा गौड़ में राज्य खड़े हो गए परन्तु मागधगुप्त वंश का विवरण यहाँ दिया जायगा । प्राय सभी राजागण समसामयिक थे । मागधगुप्त राजनीतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुके थे । यह गुप्तनामधारी राजा किस वंश के थे अथवा गुप्त सम्राटों से इनका क्या संबंध था, इसका प्रमाणिक वृतांत अज्ञात है । अतएव गुप्त नामांत होने के कारण उनका विवरण प्रस्तुत करना सर्वथा उचित होगा ।

उत्तर-गुप्त नरेश (Later Guptas)

छठी शताब्दी के मध्य में गुप्त साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने पर अनेक स्वतंत्र राजा उत्तरी भारत में शासन करने लगे । यद्यपि राजनीतिक क्षेत्र में गुप्त नामधारी नरेश का कोई महत्व न था किंतु इनका शासन शताब्दियों तक स्थिर रहा । इन राजाओं के 'गुप्त' नामांत से यह प्रश्न उठता है कि इस वंश का किसी प्रकार का संबंध गुप्त सम्राटों से था या नहीं ? गुप्त साम्राज्य के एक भाग (मगध) पर शासन करने, समान गुप्त नाम धारण करने तथा अन्य नरेशों के समकालीनता से यह संभावना उपस्थित होती है कि पिछले गुप्त वंश का किसी रूप में पूर्व सम्राटों से संबंध रहा हो । किंतु यह अत्यंत आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि पिछले गुप्तों के अभिलेख में किसी प्रकार के संबंध का उल्लेख नहीं है । इस वंश के अफसद लेख में प्रथम राजा कृष्ण गुप्त को एक अच्छे वंश (**सद् वंश**) वाला कहा गया है । संभवतः प्रशस्तिकार के समय में यह अज्ञात था कि कृष्ण गुप्त का संबंध पूर्व गुप्त सम्राटों से था, अन्यथा प्रशस्तिकार अवश्यमेव उल्लेख करता । वह उस संबंध के विषय में अवहेलना न करता । इस परिस्थिति में पोषक प्रमाणों के अभाव में उत्तर-गुप्तों का पूर्व गुप्त-सम्राटों से पारिवारिक संबंध जोड़ना कठिन है । इस स्थान पर इतना कहना उचित होगा कि वंश परंपरा में न होते हुए भी मगध के समीपवर्ती प्रदेशों पर वे राज्य करते रहे । मागधगुप्त नाम सार्थक प्रतीत होता है । उत्तर-गुप्त वंश का प्रतापी राजा आदित्यसेन ने मगध में ही राज्य किया (अफसद लेख) । उसके उत्तराधिकारियों के लेख मगध में ही उपलब्ध हुए हैं ।

मागधगुप्त वंश में कुल ११ राजा हुए जिसमें प्रथम तीन—(१) कृष्ण गुप्त (२) हर्ष गुप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा (३) प्रथम जीवित गुप्त पाँचवी सदी के पिछले हिस्से में स्वतंत्र शासक के रूप में राज्य करते रहे। परन्तु इनके शासन का सबल प्रमाण नहीं मिलते। लेखों में इनके लिए कोई पदवी नहीं मिलती। संभव है सामंत (महाराज पदवीधारी) के रूप में गुप्त सम्राटों के अधीन हों तथा उनके युद्ध में भी सम्मिलित रहे हों। चौथा राजा कुमारगुप्त शक्तिशाली शासक था जिसने मौखरी वंश के महाराजाधिराज ईशान वर्मा को सन् ५५४ ई० में परास्त किया था।

भीमः श्रीशानवर्मक्षितिपति शशिनः
सैन्य दुग्धोदसिन्धुः
लक्ष्मी संप्राप्ति हेतु सपदि
विमथितो मंदरीभूययेन (अफसद लेख—का० इ० इ०, भा० ३)

इस विजय से यह संभावना बन जाती है कि उत्तर-गुप्त शासक पृथक राज्य स्थापित करने में समर्थ हो गए थे। इस तरह मौखरी या अन्य शक्तियों का सामना भी किया। गुप्त राजा मगध तथा उतरी बंगाल पर अधिकार बनाए रखे। मौखरियों से परंपरागत युद्ध में कुमारगुप्त का पुत्र दामोदर गुप्त सर्व वर्मन मौखरी द्वारा मार डाला गया। अतः मगध कुछ समय के लिए मौखरी के अधिकार में चला गया। यह स्थिति अधिक समय तक स्थायी न रह सकी क्योंकि महासेन गुप्त ने अपने पराक्रम से मगध को पुनः प्राप्त कर लिया।

सातवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध की वार्ता है कि कन्नौज तथा थानेश्वर पर सम्मिलित रूप से हर्ष-वर्धन शासन करने लगा। महासेन गुप्त का पुत्र माधव हर्ष के साथ रहता था और उसी माधवगुप्त ने मगध सिंहासन को सुशोभित किया। हर्षवर्धन के मृत्यु के पश्चात् माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन ने अपने बाहुबल से राज्य का विस्तार किया था जिसका साक्ष्य उसके अभिलेखों से मिलता है।

इस स्थान पर यह उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि आदित्यसेन के पितामह महासेनगुप्त के विषय में यह विवाद है कि वह मालवा का शासक था। **हर्षचरित** (उ० ४) में कुमारगुप्त तथा माधवगुप्त '**मालव राजपुत्रौ**' कहे गये हैं :—

मालव राजपुत्रौ भ्रातरौ भजाइव में शरीरा
दव्यतिरिक्तौ कुमारगुप्त माधवगुप्त नामा।

इस आधार पर कुछ विद्वानों का मत है कि आदित्यसेन से पूर्व उत्तर-गुप्त राजा महासेन गुप्त मालवा में शासन करता था। मगध में राज्य करने वाला प्रथम राजा माधवगुप्त था जिसके वंशजों ने इसी भूभाग में स्थायी रूप से राज्य किया था। आदित्यसेन के पश्चात् सभी गुप्त अभिलेख मगध प्रदेश से ही प्राप्त हुए हैं। डा० राय चौधरी ने भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया है कि आदित्यसेन से पूर्व शासक मालवा के शासक थे किंतु माधव गुप्त के पश्चात् मगध गुप्त-शासन का केंद्र हो गया।

हर्ष के पश्चात् उत्तरी भारत में गुप्तों की प्रधानता हो गई जिसका श्रेय आदित्यसेन को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। इस राजनीतिक परिवर्तन में माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन ने एक विस्तृत साम्राज्य स्थापित किया और पूर्व-गुप्तों की प्रतिष्ठा को वापस लाने का प्रयास किया।

उसके लेख चार स्थानों से उपलब्ध हुए हैं। जिनकी तिथि हर्ष संवत् से जोड़ी जाती है।

(१) अफसद का लेख (जिला गया)
इसमें लोक निर्माण एवं कल्याण की बातें वर्णित हैं।

(२) शाहपुर लेख (तिथि ६६)
यह तिथियुक्त लेख हर्ष संवत् (ई० स० ६०६) से संबंधित है जिस आधार पर शासक की तिथि ६७२ ई० निश्चित हो जाती है।

(३) मंदार का शिलालेख (बाँका, भागलपुर)
आदित्यसेन द्वारा अश्वमेघ की वार्ता लिखी है तथा राजा "**पृथिवीपति**" कहा गया है।

सातवीं सदी के उत्तरार्ध में हर्ष के मृत्यु के पश्चात् थोड़ी अराजकता फैल गई थी। इस उथल-पुथल में आदित्यसेन ने नीति से काम लिया। इसके लेख पटना, गया तथा भागलपुर जिलों से प्राप्त हुए हैं, अतएव गुप्त राज्य अंग एवं मगध में विस्तृत था। इसकी शक्ति के कारण ही लेखों में 'परमभट्टारकमहाराजाधिराज" तथा "पृथिवीपति" की महान् पदवियाँ उल्लिखित हैं। आदित्यसेन ने अपने विजय के उपलक्ष में 'अश्वमेघ' किया था। पूर्वी बंगाल (बंगला देश) से कुछ सोने के सिक्कों पर घोड़े की आकृति दीख पड़ती है अतएव भट्टशाली उसे आदित्यसेन का सिक्का मानते हैं। अन्य पृष्ठपोषक प्रमाण के अभाव में विशेष कहा नहीं जा सकता पर इस प्रतापी राजा के शासन में गुप्त राज्य की उन्नति हुई यह निश्चित है। लोकोपकारिता के अनेक कार्य किए गए।

इन राजाओं की तिथियाँ दो अभिलेखों से निश्चित की जाती हैं। प्रथम हरहा लेख की तिथि ई० स० ५५४ है (वि० स० ६११)। उस समय मौखरी 'महाराजाधिराज' ईशान वर्मा कुमारगुप्त द्वारा हराया गया जिससे समकालीनता स्पष्ट प्रकट हो जाती हैं। दूसरा लेख मंदार से प्राप्त सूर्य प्रतिमा के चरणपीठ पर खुदा है उसकी तिथि ६६ यानी (६०६ + ६६ = ६७२ ई०) मानी गई है। अतएव कृष्णगुप्त से आदित्यसेन तक राजाओं का शासन ई० स० ६७२ तक अवश्य समाप्त हो गया होगा। गुप्त नरेशों की लौकिक कार्य का विवरण इनके लेखों से मिलेगा।

आदित्यसेन के उत्तराधिकारी का नामोल्लेख देववरनार्क अभिलेख में मिलता है—

श्री आदित्यसेनदेव तस्यपुत्रः तत्पादानुध्यातो परमभट्टारिकायां राज्यां महादेव्यां श्री कोणदेव्यामुत्पन्नः परममाहेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर देवगुप्तदेव।

(का० इ० इ०, भा० ३, सं० ४६)

इसके पदवी से शक्तिशाली, महत्वाकांक्षी तथा प्रतापी नरेश की स्थिति का अनुमान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगाया जा सकता है। किन्तु उत्तर-गुप्त नरेश ऐसे महान सम्राट् न थे जिन्हें **'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर'** कहा जा सके। गुप्त सम्राटों की भी ऐसी पदवी न थी। शाहपुर के लेख से ई० स० ६७२ आदित्यसेन की अंतिम तिथि मानी गई है। अतः देवगुप्त उसके पश्चात् गद्दी पर आया। ई० स० ६८० के समीप चालुक्य राजा विनयादित्य द्वारा (सकलोत्तरापथ नाथ) उतरी भारत के किसी शासक के पराजय का विवरण मिला है। संभवतः उत्तरी भारत का राजा देवगुप्त हो। तत्पश्चात् उसका पुत्र विष्णुगुप्त शासक के रूप में वर्णित है। इसके सतरहवें वर्ष का एक लेख बक्सर तथा कैमूर पठार के उत्तर मंगरांव नामक स्थान से मिला है। उसमें भगवान श्री सुभदेश्वर के मंदिर में दीपक निमित्त एक पल तेल के दान का वर्णन है। मंगरांव लेख की तिथि के विषय में विद्वानों में मतभेद रहा है। एक पक्ष का कथन है कि उस प्रशस्ति में केवल १७ अंक पढ़ा गया है। यानी वह तिथि राज्यकाल से संबंधित है। दूसरा मत यह है कि इस लेख में ११७ अंकित है जिस का संबंध हर्ष संवत् (ई० स० ६०६) से किया जाता है। तात्पर्य यह है कि विष्णुगुप्त ई० स० ७२३ में (६०६ + ११७) राज्य करता था। उसका राज्य मगध से दक्षिण शाहावाद (आरा) तक विस्तृत था (ए० इ०, भा० २६)।

पूर्वी भारत से कुछ सोने के भद्दे सिक्के प्राप्त हुए हैं। उन पर अग्रभाग में 'विष्णु' तथा पृष्ठभाग में 'चंद्रादित्य' खुदा है। संभव है कि इन सिक्कों को विष्णुगुप्त ने प्रचलित किया हो। इन आधार पर यह गुप्त नरेश प्रभावशाली ज्ञात होता है जिसकी पदवी भी महान थी।

द्वितीय जीवित गुप्त इस वंश का अंतिम शासक था जो विष्णुगुप्त के बाद सिंहासन पर बैठा। इसके जीवन संबंध में किसी घटना का उल्लेख नहीं मिलता। आरा (बिहार प्रदेश) के देववरनार्क लेख में प्राचीन अग्रहार दान लिखने की शैली को काम में लाया गया है। इससे गोतमी किनारे जयस्कन्धावार की स्थिति का परिज्ञान होता है। इस गुप्त राजा ने दान देकर अपने दयापूर्ण तथा विशाल हृदय का परिचय दिया है। अभिलेख के परीक्षण से ज्ञात होता है कि जीवितगुप्त ने बालादित्य तथा मौखरी के अग्रहार-दान का अनुमोदन किया। इस आधार पर यह कहना कठिन होगा कि गुप्त राज्य मगध से उत्तर प्रदेश तक विस्तृत था क्योंकि गोमती किनारे जयस्कन्धावार का उल्लेख है। अतएव यह कहना कहाँ तक उचित होगा कि मगध से उत्तर प्रदेश तक गुप्तों का संतोषप्रद रूप में राज्य विस्तृत रहा तथा शासन भी करते रहे।

मागधगुप्तों के वंश का अंत किस प्रकार हुआ तथा कौन शासक उनके स्थान पर राज्य करने लगे, यह एक जिज्ञासा है। प्राकृत ग्रंथ गौडवहो से मागधगुप्तों की समाप्ति का कुछ परिज्ञान हो जाता है। उसमें गौड़ (उत्तरी बंगाल) नरेश गौडाधिप तथा मगधनाथ (मगध का स्वामी) की पदवियों से विभूषित है अतएव इस प्रमाण के अनुसार यह कहना सर्वथा उचित होगा कि कन्नौज के राजा यशोवर्मा द्वारा मागधगुप्तों का अंत किया गया। तात्पर्य यह है कि आठवीं सदी में मगध राज्य का अंत हो गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानचित्र ३ (पृष्ठ २४)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त-वंश-वृक्ष

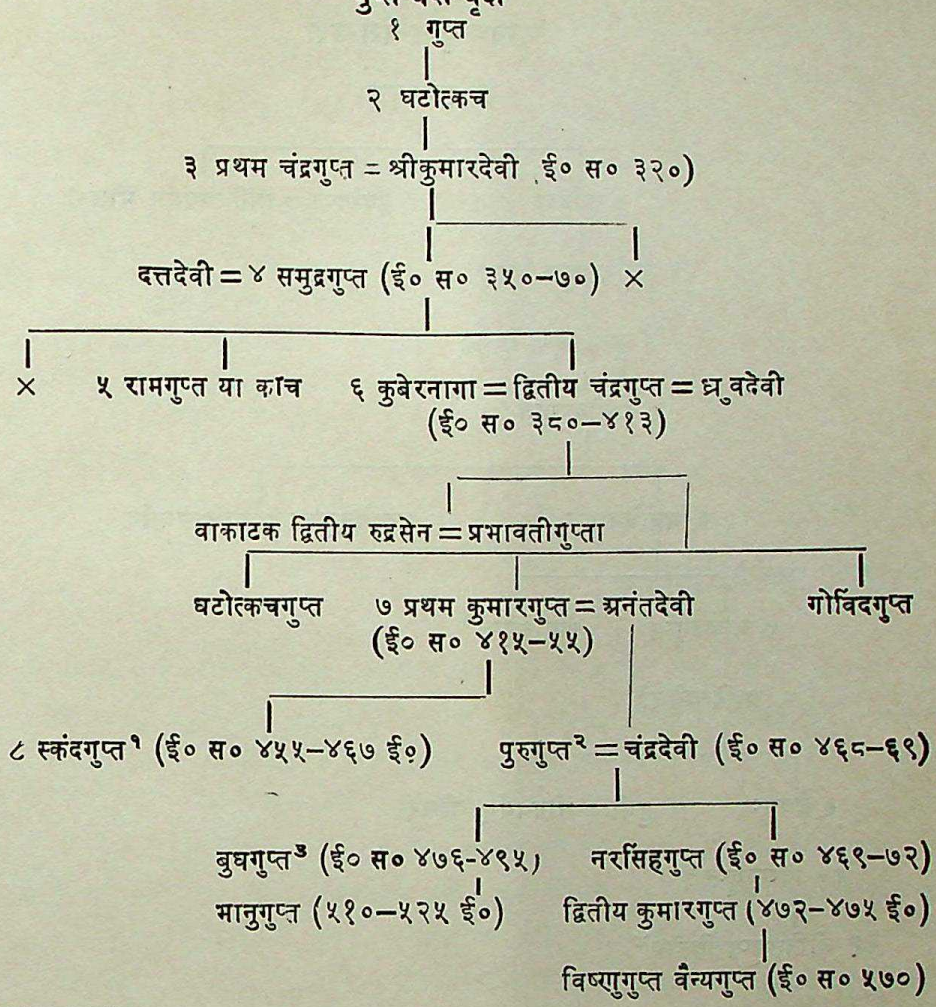

---

१. सिद्धम्: सर्वराजोच्छेत्तु पृथिव्यामप्रतिरथस्य चतुरुदधिसलिलास्वादितयशसो धनदवरुणेंद्रांतकसमस्य कृतांतपरशोः न्यायगतानेकगोहिरण्यकोटिप्रदस्य चिरोत्सन्नाश्वमेधाहर्तुः महाराज श्रीगुप्तप्रपौत्रस्य महाराज श्रीघटोत्कचपौत्रस्य महाराजाधिराज श्रीचंद्रगुप्तपुत्रस्य लिच्छविदौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्रीसमुद्रगुप्तस्य पुत्रः तत्परिगृहीती महादेव्यां दत्तदेव्यामुत्पन्नः स्वयं चाप्रतिरथः परमभागवतो महाराजाधिराज श्रीचंद्रगुप्तस्तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातोमहादेव्यां ध्रुवदेव्यामुपन्नः परमभागवतो महाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्तः तस्य सुतोऽयम् गुप्तवंशैकवीर प्रथितविपुलधामा नामतः स्कंदगुप्तः।—फ्लीट—गु०ले०, नं०१२। प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, खंड २, मूल लेख-पृष्ठ ७० : ७३।

२. भितरी की राजमुद्रा।

३. नालंदा की मुद्राएँ।

नोट—इन लेखों में गुप्त वंश-वृक्ष का पूरा विवरण मिलता है।

नोट—चिह्न (=) से विवाह का संकेत किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मागध-गुप्त-वंश-वृक्ष

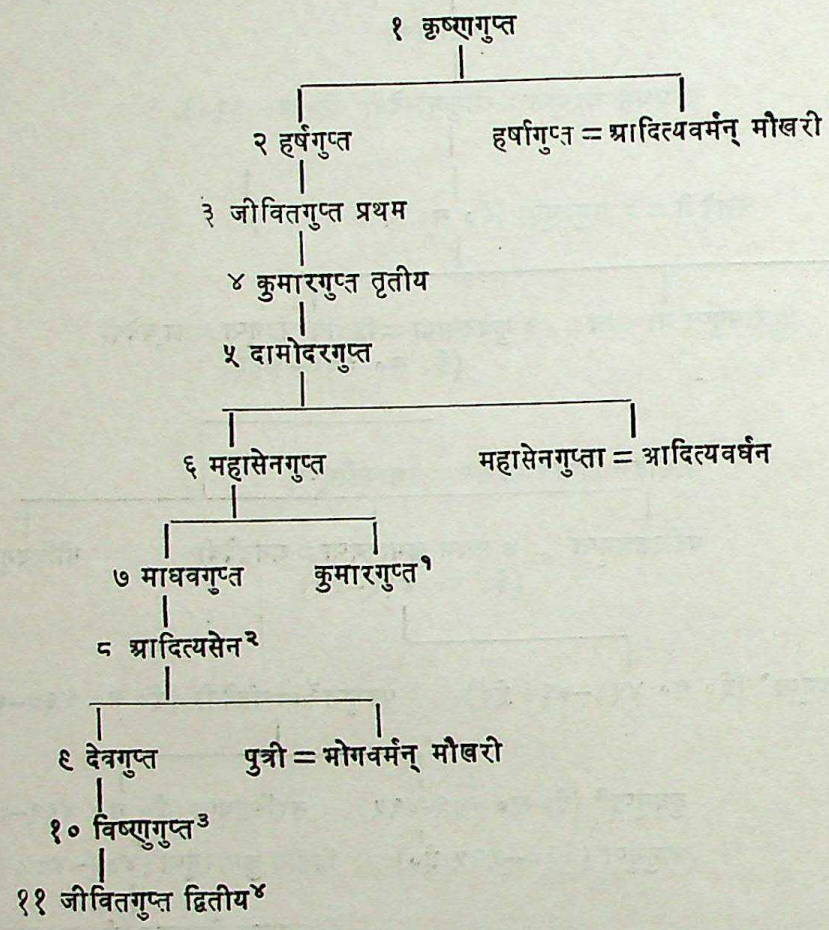

---

१. हर्षचरित उच्छ्वास ४।
२. अफसद का लेख।
३. मंगराँव प्रशस्ति (हर्ष सम्वत् ११७ = ई० स० ७२३)
४. देव-वरनाक की प्रशस्ति।

नोट—चिह्न (=) से गुप्तवंश की राजकुमारी का विवाह उन व्यक्तियों से संकेत किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ३

अभिलेख के आधार

प्रशस्तियों ने भारतीय इतिहास लिखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वर्तमान एवं मध्ययुग के अनेक साधन—कागज, भोजपत्र या ताडपत्र प्राचीनतम भारत में अज्ञात थे। अतएव लेखकों ने राजाओं की आज्ञा तथा प्रशस्तियाँ लिखने के आधार को ढूढ़ना प्रारम्भ किया। ईसवी पूर्व सदियों में प्रस्तर का सहारा लिया गया। राजाओं ने ऐसी चट्टान को खोजा जो यातातात की दृष्टि से प्रमुख स्थान पर स्थित थे। अत्यंत प्राचीन युग में सीमा के समीप प्रस्तर खंडो पर राजाज्ञा अंकित किए गए ताकि यात्रीगण उसे पढ़कर शासक की नीति या आदेश से विज्ञ हो जायँ। राज्य के भीतर प्रधान राजमार्गों के मुहानों पर भी राजाज्ञा प्रसारित की गई। उसके लिखने के आधार भी शिलास्तंभ थे। इस प्रकार समयानुकूल तथा स्थान विशेष को दृष्टि में रखकर अभिलेख विभिन्न आधार पर उत्कीर्ण किए गए। विभिन्न शासकों को परिस्थिति के अनुकूल कार्य करना पड़ा तथा उस माध्यम से राजाज्ञा प्रसारित की गई।

गुप्त काल में जितने अभिलेख उत्कीर्ण हुए उन्हें अधिकतर प्रशस्तियों की श्रेणी में रक्खा जाता है। सारांश यह है कि गुप्त नरेशों को अभिलेख अंकन के आधार पर विशेष आग्रह न था। समयानुकूल तथा स्थिति के अनुसार आधार का चुनाव किया जिन्हें कई श्रेणियों में विभाजित करते हैं। गुप्त सम्राटों ने निम्न प्रकार के आधारों का सदुपयोग किया था।

(१) प्रस्तर स्तंभ
(२) धातु स्तंभ
(३) गुहा की दीवार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(४) शिला खंड
(५) प्रतिमा चरण पीठ
(६) ताम्रपत्र
(७) मुहरे (मिट्टी की)
(८) सिक्कें (स्वर्ण,रजत तथा ताम्र)

कीर्ति लाभ की अभिलाषा कोई नयी बात नहीं है। **कीर्तिः यस्य स जीवति।** इस लक्ष्य की पूर्ति तथा उद्देश्य को लेकर भारत के प्राचीन नरेशों ने अभिलेख उत्कीर्ण कराए। गुप्तवंश के शासन आरंभ होने पर अनेक प्रशस्तियाँ लिखी गई। सर्वप्रथम समुद्रगुप्त ने प्रशस्ति खुदवाने का श्रीगणेश किया। उसके राजकवि हरिषेण ने सुंदर प्रशस्ति लिखकर समुद्रगुप्त को अमर बना दिया तथा जिस समय तक मानव उसे पढ़ते रहेंगे सम्राट् को भूल नहीं सकते। सम्राट् समुद्रगुप्त प्रयाग में राज्य करता था उसे प्रशस्ति खुदबाने के लिए निकट स्थान में कोशाम्बी का अशोक स्तंभ दिखलाई पड़ा। उस कोशाम्वी स्तंभ पर लेख खोदकर मौर्य सम्राट् अशोक ने संघ को दृढ़ करने की चेतावनी दी थी। समुद्रगुप्त के सामने कोई विकल्प नहीं था। अतएव हरिषेण रचित प्रशस्ति को अशोक के धर्म लेख के निचले भाग में उत्कीर्ण कराना पड़ा। वह प्रयाग स्तंभ-लेख के नाम से प्रसिद्ध है और समुद्रगुप्त के विजय—यात्रा का वर्णन करता है। इस गुप्त नरेश ने एरण (सागर, मध्य प्रदेश) स्तंभ पर दूसरा लेख खुदवाया जो उसकी गाथा सुना रहा है।

उसके उत्तराधिकारी द्वितीय चंद्रगुप्त के सम्मुख भी वही प्रश्न उपस्थित हुआ। उसने पश्चिमी भारत पर आक्रमण कर मालवा, गुजरात एवं काठियावाड़ को जीत लिया और उस प्रदेश की जनता को नवीन परिस्थिति से अवगत कराने के लिए अधिकारी वर्ग ने दो स्थानों पर लेख खुदवाए। प्रथम लेख उदयगिरी गुहा की दीवार पर खुदा है। गुहा की दीवार पर लेख अंकित करने की परिपाटी प्राचीन काल से चली आ रही थी। अशोक ने बराबर गुहा (गया के समीप बिहार प्रदेश) की दीवार पर अपना धर्म लेख खुदवाया था। ईसवी सन् की दूसरी सदी में क्षत्रप एवं सातवाहन नरेशों ने नासिक में अनेक गुहाएँ तैय़ार की थीं। उस स्थान पर शक राजा नहपान के जामाता ऋषभदत्त द्वारा लेख खुदवाए गए जिसका अनुकरण सातवाहन नरेशों ने किया। गौतमी पुत्र सातकर्णि ने युद्ध में नहपान को परास्त कर दिया था अतः जनता के परिज्ञान के निमित गुहा लेख उत्कीर्ण कराना आवश्यक था। उसी दिशा में मालवा क्षेत्र में भी उदयगिरी में गुफाएँ गुप्त काल में खोदी गई। एक स्थान पर वराह भगवान् की विशाल प्रतिमा खड़ी है। गुहा का बरामदा नष्ट हो गया है। वहीं दूसरी गुहा के दीवार पर लेख खुदा है। इस लेख में शक-विजय का वर्णन है कि पाटलिपुत्र का निवासी सेनापति वीरसेन गुप्त सम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त के साथ पृथिवी विजय करने आया था। इस प्रकार गुप्त शासन की प्रधानता प्रकट होती है। मथुरा के समीप में भी शिलाखंड के अभाव में चंद्रगुप्त ने प्रस्तर का ही प्रयोग किया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसका मथुरा लेख सर्व प्रसिद्ध है। इसकी तिथि गु० स० ६१ अंकित है। इससे प्रकट होता है कि ई० स० ३८० (६१ + ३१९) में इस स्थान पर (मथुरा) द्वितीय चंद्रगुप्त ने सर्व प्रथम लेख खुदवाया था। उस सम्राट् का एक लेख दिल्ली के समीप मेहरौली में स्थित लौह स्तंभ पर उत्कीर्ण है जिसमें एक चंद्र नामक शासक के दिग्विजय का वर्णन है। राजा चंद्र के समीकरण में मतभेद रहा है पर यह निर्णय सर्वमान्य हो गया कि वह चंद्र सम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त ही है; कोई दूसरा शासक नहीं। मेहरौली का लौह स्तंभ आधुनिक युग का आश्चर्यमय वस्तु है जो वैज्ञानिकों को विस्मय में डाल दिया है। चौथी शताब्दी से अद्यावधि यह धातु स्तंभ धूप तथा वर्षा में खड़ा है परंतु उस पर किसी प्रकार का दोष (जंक) दीख नहीं पड़ता। साधारणतया लोहे में पानी के स्पर्श से जंक लग जाता है किंतु मेहरौली का लौह स्वयं पूर्ववत खड़ा है। गुप्त युग के उच्चतम रसायनिक क्रिया का द्योतक है। इन आधारों के अतिरिक्त चंद्रगुप्त के सामने एक नई वस्तु का दृश्य था जिसे सांची स्तूप कहते हैं। सांची में स्तूप-पूजा तथा उसकी शोभा को निरीक्षण करने हजारों नर-नारी आया करते थे। अतएव गुप्त नरेश ने सांची वेदिका के पूर्वी भाग में सूची पर लेख उत्कीर्ण कराया ताकि आगंतुक यात्रीगण उस प्रशस्ति को पढ़ सकें। अभिलेख में वर्णन है कि उसने काकनाड (सांची का दूसरा नाम) महाबिहार मे भिक्षुओं के भोजन तथा रत्नगृह में दीपक निमित्त पचीस दीनार (स्वर्ण मुद्रा) का दान किया था। इस प्रकार उस प्रदेश में गुप्त नरेश की ख्याति की वृद्धि हुई। द्वितीय चंद्रगुप्त के शासन काल में ही सबसे अधिक संख्या में विभिन्न आधार का उपयोग किया गया। प्रस्तर तथा धातु निर्मित आधार पर लेख खोदे गए थे। मेहरौली का लौह स्तंभ आज भी वैज्ञानिकों के लिए कौतुहल का विषय है।

गुप्त नरेश प्रथम कुमारगुप्त के सामने भी वैसे प्रश्न थे। उसने स्थिति के अनुसार विभिन्न आधारों पर अभिलेख उत्कीर्ण करना निश्चित किया। उत्तर प्रदेश से उपलब्ध लेखों को तीन प्रकार के आधार पर खुदवाया गया था। भिलसद (एटा, उत्तर प्रदेश) नामक स्थान पर स्तंभ पर लेख मिला है। गु० स० ९६ (=ई० स० ४१५) में यह उत्कीर्ण स्तंभ लेख मंदिर से संबद्ध धर्मसत्र (सदावर्त या छत्र) की स्थापना की घोषणा करता है। (देखिए—प्रा० भा० अभि०, पृ० ११०) दूसरा लेख करमदंडा (फैजाबाद) शिवलिंग के अधोभाग प्रस्तर पर उत्कीर्ण है। इसकी तिथि ११७ (=४२६ ई०) अंकित है। तीसरा अभिलेख मनकुंवर (जिला इलाहाबाद) से प्राप्त बुद्ध प्रतिमा के आधार चौकी पर खुदा है। इसमें प्रथम कुमारगुप्त के राज्य में गु० स० १२९ (=४४८ ई०) में बुद्धमित्र द्वारा प्रतिमा-स्थापना का वर्णन है। उस समय तक पश्चिमी भारत का मालवा प्रदेश गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया था। मध्य प्रदेश के ग्वालियर राज्य में मंदसोर नामक स्थान समीप शिलाखंड पर एक विस्तृत अभिलेख खुदा है जिसकी तिथि मालव संवत् में लिखी है। उस भूभाग में मालवा संवत् प्राचीन काल से प्रचलित था। उस गणना को मालवा गणतंत्र ने प्रचलित किया था। अतः प्रथम कुमारगुप्त ने उस परिपाटी को ध्यान में रखकर मंदसोर का लेख उस काल गणना से संबंधित किया। बड़े मार्मिक शब्दों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में अनेक छंदों में यह लेख दशपुर के वैभव का वर्णन करता है तथा वहाँ की व्यापारिक संस्था श्रेणी (शिल्प संस्थान) का विवरण प्रस्तुत करता है। उसी प्रसंग में शिल्प संस्था के अनेक कार्यों का भी उल्लेल किया गया है। उत्तरी बंगाल में प्रथम कुमारगुप्त को एक सर्वथा नवीन आधार का उपयोग करना पड़ा जिसका प्रयोग पूर्वकाल में अज्ञात था। ताम्रपट्ट पर लेख खुदवाने की परिपाटी प्रायः गुप्त काल से आरंभ हुई और मध्ययुग में सर्वोत्तम उपयोगी आधार सिद्ध हुई। प्रथम कुमारगुप्त के दामोदरपुर (राजशाही, बंगला देश) ताम्रपत्र लेख अत्यंत प्रसिद्ध हैं। गु० स० १२४ तथा १२८ में लेख खोदे गए थे। इन दानपत्रों की प्रमुखता एक विशिष्ट कारण से मानी जाती है। उत्तरी बंगाल के उस भूभाग को गुप्त शासन की एक भुक्ति (कमिश्नरी) के रूप में परिणत कर दिया गया। उसका विषयपति भी भूमिदान से संबंधित रहा। दान पत्रों में भूमि विवरण के साथ दानग्राही एवं शासक (दान कर्त्ता) की वंशावली उल्लिखित की जाती थी। भूमि का क्षेत्रफल भी वर्णित मिलता है। प्रशस्तिकारों ने लेख के अंत में कुछ धार्मिक श्लोकों को स्थान दिया जिनमें दान वापस लेने की निंदा की गई है। दान पालन करने वाले राजा की प्रशंसा तथा मंगल कामना भी अंकित है। सर्वप्रथम कुमारगुप्त के दान पत्रों में मंगलमय तथा श्रापयुक्त श्लोको को स्थान दिया गया। उस काल से मध्ययुग के दानपत्रों में यह एक नियमित कार्य शैली बन गई और उन पद्यों का अंकन आवश्यक समझा गया।

प्रथम कुमारगुप्त के पुत्र एवं उत्तराधिकारी स्कंदगुप्त को साम्राज्य के विभिन्न प्रांतो में पृथक-पृथक अभिलेख आधार का उपयोग करना पड़ा। उसने पश्चिम भारत के काठियावाड़ प्रदेश में गिरनार पर्वत के चट्टान पर लेख खुदवाया जिसकी विशेष महत्ता थी। गिरनार पर्वत (जूनागढ़, काठियावाड़) पर अशोक के चौदह प्रधान शिलालेख खुदे थे। तत्पश्चात् दूसरी सदी (१५० ई०) में महाक्षत्रप रूद्रदामन ने भी लेख उत्कीर्ण कराया। अशोक का लेख ब्राह्मी लिपि तथा प्राकृत भाषा में लिखा था किंतु रूद्रदामन का अभिलेख काव्यमय संस्कृत का प्रथम ऐतिहासिक दृष्टांत है जिसके पूर्व लिखित संस्कृत का प्रचलन अज्ञात है। महाक्षत्रप रुद्रदामन के मुद्रालेख प्राकृत भाषा में हैं किंतु कारणवश उसने लेख को संस्कृत में खुदवाया। पाँचवी सदी में स्कंदगुप्त ने अपने लेख को संस्कृत भाषा में ही गिरनार पर्वत पर उत्कीर्ण कराया। इसमें राजनीतिक चाल क्या थी इस रहस्य का पता नहीं। दक्षिण पश्चिम भारत में शको का भारतीय-करण हो रहा था। संस्कृत (देववाणी) भाषा में लेख उत्कीर्ण करा कर रूद्रदामान ने उसी कार्य पद्धत्ति (भारतीयकरण) का अनुसरण किया था। स्कंदगुप्त के सम्मुख दूसरा विकल्प न था। उस ऐतिहासिक स्थल पर अभिलेख खुदवा कर स्कंदगुप्त ने अपने को अमर बना दिया। उस अभिलेख के अनुशीलन से पता चलता है कि स्कंदगुप्त को पश्चिमी भारत में अपना प्रतिनिधि नियुक्त करना था। शासन के भार को वहन करने वाला समझ कर पर्णदत्त की नियुक्ति हुई। उस भूभाग के सुप्रसिद्ध जलाशय 'सुदर्शन' के विकृत दशा में सुधार लाकर स्कंदगुप्त यश का भागी बना, ऐसा वर्णन उपलब्ध है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चिमी भारत के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में सारनाथ के समीप भितरी नामक स्थान से शिला स्तंभ पर उत्कीर्ण अभिलेख प्रकाश में आया है। इसके आरंभ में प्रशस्तिकार ने स्कंदगुप्त के पूर्वजों का नामोल्लेख कर गुप्तसम्राट् के गुणों का वर्णन किया है। उस स्थान पर आक्रमणकारी हूणों के पराजय की वार्ता को प्रमुख स्थान दिया गया है, जिसके पश्चात् स्कंदगुप्त पूर्णरूपेण शासक हो गया। उत्तर प्रदेश के बुलंद शहर जिला के अंतर्गत इंदौर स्थान से स्कंदगुप्त का एक ताम्रपत्र मिला है, जिसमें स्थानीय तैलिक श्रेणी का विवरण है। उस श्रेणी ने सूर्य भगवान् की स्थापना की थी। बिहार प्रदेश में भी दान देकर स्कंदगुप्त ने प्रस्तर स्तंभ पर लेख खुदवाया। स्तंभ लेख खंडित है तथापि शेष अभिलेख के अध्ययन से गुप्तवंशाली का परिज्ञान हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि स्कंदगुप्त ने शिखा खंड, प्रस्तर तथा ताम्रपत्र इन तीन आधारों का प्रयोग किया था।

यद्यपि प्रस्तर के बाद ही ताम्रपट्ट का प्रयोग हुआ, किंतु यह परिपाटी प्राचीन नहीं है। गुप्तवंश में प्रथम कुमारगुप्त से आरंभ होकर भानुगुप्त तक ताम्रपट्टिका पर लेख उत्कीर्ण होते रहे। ताम्रपत्रों के अध्ययन से कई विषयों पर प्रकाश पड़ता पड़ता है। राजनीतिक स्थिति के अतिरिक्त धार्मिक तथा सामाजिक बातों का उल्लेख पाया जाता है। स्कंदगुप्त का इंदोर ताम्रपत्र लेख 'शासन' समझा जाता है। गुप्तों के सामंत हस्तिन तथा संक्षोभ के अनेक ताम्रपत्र मध्य भारत के खोह नामक स्थान से मिले हैं। मध्य युगी ताम्रपत्र अत्यंत महत्वपूर्ण अभिलेख माने जाते हैं जो चतुर्भुजाकार होते हैं। राजकीय मुद्रा उस पर अंकित रहती है जिससे अभिलेख की प्रमाणिकता सिद्ध होती है। ताम्रपत्रों के आकार पर ही लेखों का विस्तार निर्भर रहता है।

गुप्त शासकों ने पांचरात्र मत के अनुसार चर्या और क्रिया को प्रधान कार्य समझा। अतएव दोनों कार्यों के निमित ताम्रपट्टिका पर दान लिखवाना आवश्यक समझा गया। ताम्रपट्टिका पर भूमि का पूर्ण विवरण लिखकर दानग्राही को दे दिया जाता जो उसे सुरक्षित रखता था। यही कारण है कि गुप्त नरेशों ने ताम्रपत्र का उपयोग किया। अभिलेख लिखने का कार्य उत्तरोत्तर बढ़ता गया। गुप्त शासन काल में इनका अधिक प्रचार एवं प्रसार हुआ।

स्कंदगुप्त गुप्त वंश का अंतिम प्रतापी, शक्ति संपन्न तथा प्रभावशाली नरेश था जिसकी मृत्यु के उपरांत सामंत स्वतंत्र होते गए। पश्चिमी भारत गुप्त साम्राज्य से पृथक हो गया। उसके उत्तराधिकारी सीमित क्षेत्र के शासक हो गए। उनके अभिलेख सीमित स्थान तथा अल्प संख्या में मिले हैं। सारनाथ के समीप भितरी (गाजीपुर, उत्तर प्रदेश) नामक स्थान से एक बड़ी मुद्रा (Seal) मिली है जिसमें प्रथम कुमारगुप्त के वंशज (स्कंदगुप्त को छोड़कर) के नाम उल्लिखित हैं। पुरु, नरसिंह तथा कुमार (द्वितीय) के नाम एक ही स्थान पर मिलते हैं। तीनों का कोई पृथक-अभिलेख प्रकाश में नहीं आया है। यानी एक मुद्रा लेख से तीन नरेशों के नाम उपलब्ध हैं। प्रायः दस वर्षों में तीनों शासक का राज्यकाल माना जाता है। ई० स० ४७६ में बुधगुप्त शासक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ जिसके लेख, (अ) प्रस्तर स्तंभ, (ब) प्रतिमा आधारशिला तथा (स) ताम्रपत्र पर अंकित हैं। एरण (सागर, मध्य प्रदेश) स्तंभ लेख में उसके सामंत का विवरण है जो गु० स० १६५ (=४८४ ई०) में शासन करता रहा। उत्तरी बंगाल में अनेक ताम्रपत्र उपलब्ध हुए हैं। दामोदरपुर (दीनाजपुर, बंगला देश) नामक स्थान से कई ताम्रपत्र प्राप्त हुए थे। गुप्त वंश के ताम्रपत्र अधिकतर दामोदरपुर या मध्य भारत (खोह) से प्रकाश में आए हैं। इन आधार के अतिरिक्त बुधगुप्त ने बुद्धप्रतिमा के आधार चौकी पर अभिलेख खुदवाया था जो सारनाथ संग्रहालय में सुरक्षित है। इसी स्थान से कुमारगुप्त नामक राजा का भी लेख प्राप्त हुआ है। बंगाल में शासन करने वाले अन्य शासकों ने भी ताम्रपत्र पर दान लेख उत्कीर्ण करवाया था।

उत्तर—गुप्त नरेशों में आदित्यसेन के कई शिलालेख मिले हैं। अफसद (नवादा, जिला गया) का अभिलेख अत्यंत प्रसिद्ध है जिससे अनेक शासकों के विषय में हमारी जानकारी होती है। आदित्यसेन तथा विष्णुगुप्त का मंगरांव शिलालेख हर्ष संवंत् से संबद्ध हैं। अभिलेखों के आधार संबंधी चर्चा समाप्त करने से पूर्व गुप्त मुद्राएँ (Seals) तथा सिक्कों (Coins) की वार्ता नितांत आवश्यक प्रतीत होती है। यद्यपि मुहर तथा सिक्कों पर विशेष प्रकार के संक्षिप्त अभिलेख खोदे गए हैं पर आधार की दृष्टि से वे कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। नालंदा तथा वैशाली से गुप्त कालीन मुहरें अधिक संख्या में उपलब्ध हुई हैं। कच्ची मिट्टी के पिंड पर लेख अंकित कर उसे आग में पकाया जाता था। उसी को मुहर का नाम (Seal) देते हैं। प्रशस्ति लिखने के आधार की सूची में इसकी गणना भी विशेष रूप से होनी चाहिए। राजकीय मुहरों का नाम भी लिया जाता है जिनपर शासक का नाम खोदा गया था। वे साधारणतया ताम्रपट्टियों से जुड़े रहते हैं। अन्य कर्मचारियों की भी मुहरें प्राप्त हुई हैं जिन्हें कार्यालय के पत्राचार में प्रयोग किया जाता था। निजी मुहरे भी खुदाई से निकली हैं। इस तरह की मुहरें उत्तरी भारत के अनेक स्थानों से प्राप्त हुई हैं (आ० स० रि०, १९०३-०४)। वैशाली, कसिया, नालंदा, राजघाठ, कौशाम्बी तथा भीटा से अधिक मुहरें प्रकाश में आई हैं। धातु मुहरों पर देवतागण की आकृति खुदी दिखाई पड़ती है। भीटा की मुहरों पर शिवलिंग, त्रिशूल तथा बृषभ की आकृतियाँ खोदी गई थीं। आकृतियों के निचले भाग में गुप्त लिपि में लेख भी अंकित हैं। नालंदा से धातु एवं मिट्टी की मुहरें प्रकाश में आई हैं। गुप्त वंश के भितरी राजमुद्रा पर गरुड़ की आकृति है। नीचे द्वितीय कुमारगुप्त के वंश की चर्चा है। पांचवीं सदी से वैशाली (वसाढ़, उत्तर विहार) में अधिक मुहरें तैयार होती रही। मिट्टी की मुहर धातु के साँचे द्वारा तैयार की जाती जिन पर आकृति तथा लेख दोनों उभर आते थे। वास्तव में साँचा ही लेख का आधार था जिस पर उलटे रीति से आकृति या लेख उत्कीर्ण किए जाते थे। मृत पिंड पर दबाव पड़ने से साँचे का कलात्मक नमूना उभर आता और इस कच्ची मिट्टी को आग में पका कर स्थायी मुहर तैयार किया जाता था। वैशाली की मुहरों पर राजकुमार गोविंदगुप्त, रानी ध्रुवदेवी के नाम भी खुदे हैं। उस पर खुदे अभिलेखों से निगम नामक संस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। इन पर व्यापारिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रेणियों तथा कार्यालय के नाम उत्कीर्ण है। इस प्रकार मुहरों के अध्ययन से गुप्त-शासन-पद्धति पर प्रकाश पड़ता है। कुछ मुहरों पर तीरभुक्ति (तिरहुत प्रमंडल) के राज्यपाल या सामंत का वर्णन है। उनपर खुदे कुछ लेख निम्न प्रकार के हैं—

(१) **तीरभुक्त उपरिकाधिकरणस्य** (तिरहुत के राज्यपाल का कार्यालय)
(२) **कुमारामात्याधिकरणस्य** (कुमारामात्य के कार्यालय का)
(३) **श्रेष्ठी निगमस्य** (श्रेष्ठी के संघ का)
(४) **श्रेष्ठी श्रीदासस्य** (श्रीदास सेठी की मुहर)

मुहरों के अतिरिक्त सिक्कों पर लेख खोदे जाते थे। गुप्त राजाओं के स्वर्ण सिक्कों पर शासक के नाम तथा संस्कृत में छंदवद्ध लेख (Legend) खुदे हैं। संभवतः गुप्तकाल में संस्कृत राजभाषा थी। सिक्के-लेख भी अमूल्य आधार हैं जिनसे गुप्त राजा के सामाजिक जीवन घटनाओं का परिज्ञान हो जाता है। समुद्रगुप्त ने दिग्विजय के पश्चात् अश्वमेव किया तथा सैकड़ों युद्धों में शत्रुओं को पराजित किया था। प्रथम कुमारगुप्त द्वारा सिंह तथा गैंडा के मारने की घटना का परिज्ञान मुद्रालेख (Legend) से हो जाता है। गुप्त चांदी के सिक्के भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। पश्चिम भारत के विजयोपरांत द्वितीय चंद्रगुप्त ने रजत सिक्के प्रचलित किए। स्वर्ण तथा रजत सिक्कों की प्रमुखता भूलाई नहीं जा सकती।

अंतिम आधार के रूप में कुम्हरार से मिट्टी के पात्र की भी गणना होती है। गुप्तकालीन विहार की खुदाई से पुरातत्व सामग्रियों में मिट्टी के पात्र भी उपलब्ध हुए हैं। एक पात्र पर "**आरोग्य विहारे भिक्षुसंघस्य**" वाक्य पढ़ा गया है। संभवतः वह पात्र औषधालय में प्रयुक्त किया जाता रहा, इस कारण उस प्रकार का लेख खोदा गया था। संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि गुप्तकाल में प्रायः सभी प्रकार के आधारों का उपयोग शासक कर चुके थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ४

अभिलेखों से इतिहास-ज्ञान

प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण सामग्रियों में उत्कीर्ण लेख सर्वोपरि माने गए हैं। अभिलेखों के ऐतिहासिक मूल्यांकन करते समय सतर्क रहना पड़ता हैक्योंकि सभी साधन सत्य की कसौटी पर उतारे नहीं जा सकते। पूर्व मध्ययुग से अभिलेखों में कुछ अत्युक्ति तथा प्रशंसात्मक बातें उल्लिखित हैं। प्रशस्तिकार ने अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने के निमित्त कुछ ऊंचे स्तुतिपूर्ण वाक्य लिखे भी हैं जो आश्चर्यजनक नहीं माने जा सकते। उदाहरण के लिए गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त तथा उत्तर-गुप्त वंश के अंतिम नरेश द्वितीय जीवित गुप्त की पदवियों पर विचार करने से उपरियुक्त बातें स्पष्ट हो जाती हैं। समुद्रगुप्त की पदवी प्रयाग प्रशस्ति में "महाराजाधिराज" मात्र उल्लिखित हैं किंतु देव बरनार्क लेख में जीवितगुप्त—"**परम माहेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर**" की महान पदवी से विभूषित किया गया है। यानी समुद्रगुप्त ऐसे दिग्विजयी तथा शक्तिशाली शासक के लिए प्रयुक्त न होकर द्वितीय जीवितगुप्त ऐसे नगण्य राजा के लिए उल्लिखित हैं। अतः ऐसे अवसर पर अतिशयोक्ति को ध्यान में रखकर लेख पर विचार करना चाहिए। लेख को विश्वसनीय समझने से पूर्व उसके पुष्ट करनेवाले साधनों पर विचार करना आवश्यक है। अभिलेखों से इतिहास निर्माण में जिस श्रेणी तक सहायता मिलेगी उसे उतना ही ऐतिहासिक घोषित किया जायगा। सभी विषयों पर गंभीरतापूर्वक गहन रीति से अनुशीलन कर प्रशस्ति का ऐतिहासिक मूल्यांकन करना चाहिए। एक घटना की पुष्टि अनेक लेखों से भी होती है। इस प्रकार इतिहास-लेखन में अभिलेखों ने जो सहायता पहुँचाई है वह अन्य पुरातत्व सामग्रियों से श्रेष्ठतर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन अभिलेखों के अध्ययन से गुप्त वंश के शासकों की कीर्ति, विजय तथा शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। अधिकतर लेख युद्ध गाथा की बातें बतलाते हैं।

युद्ध-गाथा एवं राज्य विस्तार

प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के विजय का वर्णन है कि वह सम्राट् पाटलिपुत्र से लेकर दिल्ली के भूभाग पर शासन करता रहा। अपने दिग्विजय के यात्रा में प्रयाग के दक्षिण कोशल (मध्यप्रदेश) होकर उड़ीसा को पार कर काँची तक (मद्रास से चालीस किलोमीटर दूर) उसने विजय पताका फहराई थी। उसने दक्षिणापथ के राजाओं को मुक्त कर धर्मविजयी नरेश का प्रशंसनीय कार्य किया था। गुप्त सम्राट् ने उत्तर तथा दक्षिण भारत में समान रूप से शत्रुओं को परास्त कर सम्राज्य का श्रीगणेश किया। उसके उतराधिकारी द्वितीय चंद्रगुप्त के मालवा के दो लेख—(१) उदयगिरि गुहा लेख तथा (२) साँची वेदिका लेख गुप्त सम्राट् के मालवा, गुजरात तथा काठियावाड़ के विजय की गाथा सुनाते हैं। गुप्त नरेश ने पाटलिपुत्र के निवासी सेनापति वीरसेन के साथ पश्चिमी भारत का विजय कर शकों को वहाँ से वहिष्कृत किया था। इस प्रकार के उल्लेख शासक द्वारा विजय की वार्ता प्रस्तुत करते हैं। दिग्विजय की यात्रा से गुप्त शासक के साम्राज्य विस्तार का परिज्ञान हो जाता है। समुद्रगुप्त महत्वाकांक्षी होने के कारण दिल्ली-ग्वालियर के भूभाग के शासक नागवंशी राजाओं को परास्त कर पाटलीपुत्र से ग्वालियर (मध्य प्रदेश) तक राज्य का विस्तार किया। दक्षिणापथ के पराजित शासकों को मुक्त करने से काँची तक के क्षेत्र पर उसका आधिपत्य फैल गया। उत्तरी भारत में ही साम्राज्य का विस्तार हुआ। उसके उत्तराधिकारी द्वितीय चंद्रगुप्त ने पैतृक साम्राज्य का विस्तार गुजरात, काठियावाड़ तक किया। अतएव साँची तथा उदयगिरि के अभिलेख गुप्त राज्य के विस्तृत क्षेत्र (राज्य) के द्योतक हैं। चंद्रगुप्त के पुत्र प्रथम कुमारगुप्त ने राज्य का संरक्षण मात्र से संतोष किया क्योंकि उसके शासन काल में किसी विजय की चर्चा लेखों में उपलब्ध नहीं हैं। उसने अश्वमेघ अवश्य संपन्न किया जो कुमारगुप्त के अश्वमेघ स्वर्ण मुद्रा से प्रमाणित होता है। परंतु उसके विजय के पोषक प्रमाणों का अभाव है। उसके उत्तराधिकारी स्कंदगुप्त के अभिलेखों में गिरनार का शिलालेख (जूनागढ़, काठियावाड़) प्रसिद्ध है। इससे यह परिणाम निकलता है कि स्कंदगुप्त के शासन काल तक काठियावाड़ तक साम्राज्य अवश्यमेव सुरक्षित रहा। कुमारगुप्त के पश्चात् स्कंदगुप्त पश्चिम भारत से उत्तरी बंगाल तक के भूभाग पर शासन करता रहा, जो स्कंदगुप्त के पश्चात् विकृत हो गया। स्कंदगुप्त के राज्य काल में हूणों का आक्रमण हुआ, जिसका उल्लेख भितरी स्तंभ लेख के निम्न पंक्तियों में मिलता है—

(१) हूणैर्य्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कंपिता

(२) विचलित कललक्ष्मी स्तंभनायोद्यतेन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(३) पितरि दिवमुपेते विप्लुतां वंशलक्ष्मी भुजबल विजतारिर्य्यः प्रष्ठिाप्य भूयः

(प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३३३)

अपितु उस आक्रमण को विफल बनाकर स्कंदगुप्त समस्त साम्राज्य पर सुचारु रूप से शासन करता रहा (काठियावाड़ से उत्तरी बंगाल)। उसकी स्वर्ण मुद्रा के अध्ययन से गुप्त राज्य के आर्थिक कठिनाई की वार्ता स्पष्ट हो जाती है। किंतु साम्राज्य पर किसी प्रकार के आक्रमण की घटना अज्ञात है। यह सत्य है कि स्कंदगुप्त के बाद गुप्त शासन की अवनति होने लगी। काठियावाड़ में मैत्रक लोगों का उदय संकेत करता है कि पश्चिमी भारत पर गुप्त अधिकार समाप्त हो गया था। स्कंदगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख के पश्चात् किसी गुप्त नरेश ने उस स्थल पर प्रशस्ति नहीं खुदवाई। उस भूभाग में पश्चिमी ढंग के रजत सिक्कों का प्रचलन की समाप्ति प्रमाणित करती है कि पश्चिम भारत में गुप्तशासन का अंत हो गया था। स्कंदगुप्त के उत्तराधिकारियों में बुधगुप्त का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है जिसने शक्ति बल तथा प्रभाव के कारण मध्यप्रदेश (एरण) से उत्तरी बंगाल तक शासन किया था। इसके दामोदरपुर के ताम्रपत्र अभिलेख उपरियुक्त बातों को प्रमाणित करते हैं। पश्चिम में वाराणसी तक (बौद्ध प्रतिमा का लेख के आधार पर) इसका अधिकार प्रकट होता है। सारांश यह है कि अभिलेखों का अनुशीलन एवं विश्लेषण गुप्त सम्राटों के युद्ध गाथा तथा राज्य विस्तार पर प्रकाश डालते हैं।

वंश वृक्ष

गुप्त शासकों की प्रशस्तियों के अध्ययन से विदित होता है कि उनमें गुप्तवंश की वंशावली प्रस्तुत की गई है। प्रशस्तियों में राजवंश की परंपरा का उल्लेख है। शासक के राज्यकाल में जितने लेख खोदे गए प्रायः सब में वंशावली का विवरण मिलता है। ईसवी पूर्व सदियों में ऐसी परिपाटी नहीं थी। सर्वप्रथम ई० स० १५० में जूनागढ़ लेख में महाक्षत्रप रूद्रदामन की तीन पीढ़ियों का उल्लेख किया गया है। गुप्त अभिलेखों में वंशावली का उल्लेख विशेष स्थान पर है। जिस शासक की प्रशस्ति है उसके पूर्वजों के नाम मिलते हैं। उदाहरण के लिए समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में श्रीगुप्त से लेकर समुद्रगुप्त तक राजाओं के नाम उल्लिखित हैं—

> श्रीगुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्रीघटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज श्रीचंद्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छविदौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यां उत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्तस्य।

श्रीगुप्त से वंशावली का विवरण द्वितीय चंद्रगुप्त के लेखों में नहीं मिलता। मथुरा स्तंभ लेख में केवल समुद्रगुप्त (पिता) तथा चंद्रगुप्त (पुत्र) के नाम उल्लिखित हैं। प्रथम कुमारगुप्त के भिलसद स्तंभ लेख में श्रीगुप्त से लेकर कुमारगुप्त के नाम मिलते हैं। यही दशा स्कंदगुप्त के भितरी स्तंभ लेख एवं विहार स्तंभ लेख का है। इन दोनों में पूरी वंशावली निम्न रूप से दी गई है :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाराज श्रीगुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्रीघटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज श्रीचंद्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छविदौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्रीसमुद्रगुप्तस्य पुत्रः तत्परिगृहीतो महादेव्यांनन्त देव्यामुत्पन्नः स्वयं चाप्रतिरथः परम भागवतो महाराजाधिराज श्रीचंद्रगुप्तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महादेव्यां ध्रुवदेव्यांमुत्पन्नः परम भागवतो महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्तः तस्य—सुतोऽयम नामतः स्कंदगुप्तः ।

अभिलेखों के परीक्षण से प्रकट होता है कि केवल स्तंभों पर वंशावली लिखने की रीति अपनाई गई । प्रथम कुमारगुप्त के मंदसोर तथा स्कंदगुप्त के जूनागढ़ प्रशस्तियों में वंशावली की रूपरेखा तक नहीं दीख पड़ती । इस वंशावली के अध्ययन से ज्ञात होता है कि लिच्छवि वंश से वैवाहिक संबंध का सर्वत्र उल्लेख है । कुमारदेवी के पश्चात् लेखों में महादेवी के नाम मिलते हैं । पश्चिमी भारत (मालवा, काठियावाड़) के लेखों में केवल शासक का नामोल्लेख है । जैसे—

(अ) कुमारगुप्ते पृथिवीं प्रशासति (मंदसोर लेख)

(ब) नृपतिगुन निकेतः स्कंदगुप्तः पृथुश्री (जूनागढ़ लेख)

इन अभिलेखो में प्रशस्तिकार ने गुप्त वंशावली का वर्णन न कर केवल शासक का ही उल्लेख किया है । इसमें क्या रहस्य था, इसे व्यक्त करना कठिन है ।

यदि द्वितीय कुमारगुप्त की भितरी राजमुद्रा पर विचार किया जाय तो दूसरी वंश परंपरा का ज्ञान हो जाता है । अन्य लेखों के सदृश प्रथम कुमारगुप्त तक राजाओं के नामों की समता है परंतु उसके पश्चात् स्कंदगुप्त का नामोल्लेख न कर पुरुगुप्त का नाम दिया है—

श्रीकुमारगुप्तः तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महादेव्यां अनंतदेव्यामुत्पन्नः महाराजाधिराज श्रीपुरुगुप्तः तस्य पुत्रः पादानुध्यातो महादेव्यां श्रीचंद्रदेव्यां उत्पन्नः महाराजाधिराज श्रीनरसिंहगुप्तः तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो परम भागवतो महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्तः ।

(प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३३६)

इस प्रकार लेखों के अनुशीलन से गुप्त वंशावली का परिज्ञान हो जाता है । इसके परीक्षण से यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि पूरी वंशावली का उल्लेख प्रशस्तिकार ने किस समय किया अथवा किसी अभिलेख में केवल शासक का नाम ही क्यों दिया ? ऐसे संदिग्ध विचार के विपरीत पोषक प्रमाण न होने से किसी तथ्य पर पहुँचना कठिन है ।

समकालीनता

भारतीय लेखों में प्रशस्तिकार संरक्षक के विजय यात्रा का विवरण उपस्थित करते समय अन्य समकालीन नरेशों के नाम भी प्रसंगवश उल्लेख करता है । युद्ध में शासक तथा प्रतिद्वंदी का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नामोल्लेख भी आवश्यक है। इसी कारण अशोक के द्वितीय तथा तेरहवें शिलालेख में अन्य राजाओं के नाम मिलते हैं। ईसवी सन् की पहली सदी में कुषाण नरेश कदफिस तथा भारतीय यूनानी राजा हरमेयस के संयुक्त सिक्के समकालीनता सिद्ध करते हैं। नासिक गुहालेख में सातवाहन राजा सातकर्णि तथा क्षत्रप नरेशों नहपान आदि के नाम मिलते हैं। इसी प्रकार प्रयाग स्तंभलेख में हरिषेण ने उन राजाओं के नाम दिए हैं जो समुद्रगुप्त द्वारा पराजित हुए थे। इसके अतिरिक्त प्रत्यंत नृपति (सीमा पर शासन करने वाले), समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल आदि राज्यों के नाम उल्लिखित हैं। उस समय दक्षिणापथ के शासक महेन्द्र तथा विष्णुगोप (काँची का राजा) आदि को समुद्रगुप्त ने परास्त किया था। अतः वे समुद्रगुप्त के समकालीन हो जाते हैं। प्रथम कुमारगुप्त तथा स्कंदगुप्त के अभिलेखों में हूण आक्रमण का वृत्तांत वर्णित हैं। संभवतः हूण सरदार तोरमाण स्कंदगुप्त का समकालीन शासक था। उत्तर-गुप्त नरेश आदित्यसेन के अफसद शिलालेख में वर्णन आता है कि हर्षवर्धन तथा उसका पिता माधवगुप्त मित्र थे। बाण ने भी हर्षचरित में ऐसा ही उल्लेख किया है। अतएव माधवगुप्त तथा हर्षवर्धन को समकालीन मानने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। कहने का तात्पर्य यह है कि लेखों के आधार पर समकालीनता स्थिर करने में बड़ी सहायता मिलती है।

प्राचीन प्रशस्तियों तथा मुद्रालेख के अध्ययन से यह विदित होता है कि प्राचीन भारत में दो प्रकार की शासन पद्धतियाँ वर्तमान थीं—(अ) राजतंत्र तथा (ब) प्रजातंत्र। प्रजातंत्र के लिए गण या संघ शब्द का प्रयोग मिलता है। ईसा पूर्व छठी सदी में षोडश महाजनपद युग से ही दोनों पद्धतियाँ वर्तमान रही और उनका क्रम गुप्तकाल तक चलता रहा। उत्तरी बिहार में वृज्जिसंघ इतिहास में सुप्रसिद्ध प्रजातंत्र था जिसका उल्लेख बौद्ध ग्रंथों में मिलता है। भगवान् बुद्ध कई बार वहाँ वर्षावास कर चुके थे। उसी प्रसिद्ध लिच्छवि वंश की राजकुमारी कुमार देवी का विवाह प्रथम चंद्रगुप्त से हुआ था। यही कारण है कि गुप्तवंश के अभिलेखों में समुद्रगुप्त सदा **लिच्छवि दौहित्रस्य कुमारदेव्यामुत्पन्नः**' कहा गया है। प्रथम चंद्रगुप्त के सोने के सिक्के पर भी अग्रभाग में राजा के नाम के साथ 'श्री कुमार देवी' अंकित है। पृष्ठभाग पर '**लिच्छवयः**' उत्कीर्ण है। अतएव गुप्तवंश से संबंधित इस गणराज्य का इतिहास अत्यंत पुराना है। मौर्य-युग से ही यौधेय, मालव, आर्जुनायन आदि संघों के नाम मिलते हैं जिसका पाणिनि ने भी उल्लेख किया है। यूनानी लेखकों ने इनका विवरण दिया है कि संघ-मुख्य राजाओं (राजतंत्र के शासक) से युद्ध होता रहा। अभिलेखों में विजय या पराजय की बातें मिलती हैं। ईसवी सन् १५० में महाक्षत्रप रुद्रदामन से यौधेयगण का युद्ध हुआ था जो क्षत्रिय वंश के 'वीर' कहे गए हैं। पश्चिमी भारत में शासन करने वाले गण-मुख्यों ने समय-समय पर कुषाण राज्य पर भी आक्रमण किया था। विद्वानों का मत है कि कुषाण राज्य की अवनति में यौधेय संघ ने हाथ बँटाया था। यही कारण है कि गण के सिक्कों पर '**यौधेयानां गणस्य जयः**' वाक्य खुदा है। यह संघ शासन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्तकाल तक चलते रहे। प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के हाथों उनके पराजित होने का विवरण पाया जाता है। निम्नलिखित उद्धरण उसे पुष्ट करता है—

मालव, आर्जुनायन, यौधेय भद्रकाभीरप्रार्जून सनकानीक काकखरपरिकादिभिश्च

(प्रयाग लेख)

इससे सारांश निकलता है कि समुद्रगुप्त ने संघ शासन का अंत कर दिया। ईसवी पूर्व सदियों से जो गण शासन थे उनका विनाश गुप्तकाल में हो गया। यानी इनका शासन सात सौ वर्षों (ईसा पूर्व तीसरी सदी से चौथी शताब्दी तक) प्रचलित रहा। इसके बाद प्रजातंत्र राजतंत्र में विलीन हो गए। मध्ययुगीन अभिलेखों में संघ शासकों का उल्लेख नहीं पाया जाता।

संघ शासन के विरोधी संस्था—राजतंत्र अनेक शताब्दियों से भारत में प्रचलित रहा। प्राचीन मगध में शिशुनाग वंश ने राजतंत्र को बलवान बनाने का प्रयत्न आरंभ किया। बिम्बिसार ने साम्राज्य स्थापना की भावना से छोटे राज्यों का अंत करना चाहा। पर वह पूर्ण रूपेण सफल न हो सका किन्तु मौर्य सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य साम्राज्य की स्थापना में सफल हो सका। उसने अफगानिस्तान से बंगाल तक तथा हिमालय से दक्षिण में मैसूर तक के विशाल भूखंड पर शासन किया। मौर्यों से पूर्व मगध में ही नंदों का शासन सीमित था। साम्राज्य स्थापना की उत्कट भावना ने ही चंद्रगुप्त मौर्य को विजयी बनाया तथा विशाल साम्राज्य की स्थापना में उसे सफलता मिली। उसके पौत्र अशोक ने साम्राज्य को सुरक्षित रखा। कलिंग युद्ध विद्रोह दबाने का एक मात्र उपाय था। साम्राज्य की वृद्धि में अशोक की कोई कामना न थी। उसकी नीति के कारण मृत्यु पश्चात् मौर्य साम्राज्य का बँटवारा हो गया। शताब्दियों पश्चात् ईसवी सन् के आरंभ में कुषाण नरेश कनिष्क साम्राज्य निर्माण की भावना से प्रेरित होकर मध्य एशिया से वाराणसी (उत्तर प्रदेश) तक के विस्तृत भूखंड पर शासन किया था। उसके उत्तराधिकारी क्रमशः शक्तिहीन होते गए। चौथी शताब्दी में गुप्त नरेश समुद्रगुप्त को यह लालसा थी कि वह वृहत्राज्य स्थापित करे। इसी कारण उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ के दिग्विजय का संकल्प किया। प्रयाग स्तंभ लेख में उसके विजय का पूर्ण वृत्तांत उल्लिखित है। उत्तरी भारत के राजाओं को जीतकर राज्य-सीमा बढ़ाया। दक्षिणापथ के शासकों के साथ धर्म विजयी राजा के सदृश व्यवहार किया। प्रत्यंत नृपति को जीता। संघ-मुख्यों को परास्त किया। इस प्रकार साम्राज्य के विस्तार एवं सुदृढ़ करने में सफलीभूत हो सका। विष्णुपुराण के आधार पर यह ज्ञात होता है कि उससे पूर्व प्रयाग से मगध तक ही गुप्त राज्य सीमित था। संभव है प्रथम चंद्रगुप्त के मन में साम्राज्य की भावना काम कर रही हो। किंतु वह प्रयत्नशील होकर भी अधिक सफलता प्राप्त न कर सका। परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के कारण ही महाराजाधिराज की पदवी धारण की तथा गुप्त संवत् आरंभ किया। समुद्रगुप्त द्वारा गण राज्यों का पराजय राजतंत्र की प्रमुखता का द्योतक है। सम्राट् ने प्रवल शक्ति द्वारा प्राचीन भावना (साम्राज्य स्थापना) को साकार बनाया और फलतः प्रजातंत्र को निर्मूल कर दिया। इसके पुत्र द्वितीय चंद्रगुप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अभिलेख बतलाते हैं कि वह भी पिता के विचार का समर्थक था। सेनापति वीरसेन के साथ मालवा, गुजरात, काठियावाड़ को विजीत किया। इस प्रकार चौथी सदी में गुप्तों के कारण प्रजातंत्र का विनाश हुआ एवं राजतंत्र की शक्ति को प्रश्रय मिला। गुप्त युग में राजतंत्र के विचार धारा की वृद्धि हुई। विशाल साम्राज्य की स्थिति न होने पर भी गुप्त शासक राजतंत्र शासन-पद्धत्ति का अनुसरण करते रहे।

अभिलेखों तथा मुद्रालेखों (Legends) में उल्लिखित पदवियों से भी शासक के स्थान का परिज्ञान हो जाता है। प्रजातंत्र-मुख्यों की कोई विशेष पदवी नहीं थी। शासन करने वाले प्रमुखों के नाम सिक्कों पर अंकित मिलते हैं। किंतु राजतंत्र पद्धति में राजा की महान् पदवियाँ भी उल्लिखित हैं। सर्वप्रथम भारतीय यूनानी शासकों ने इसे आरंभ किया और बैसिलियस बैसिलियान पदवी यूनानी सिक्कों पर खुदवाया। प्राकृत भाषा में **'महरजस रजरजस'** का प्रयोग मिलता है। संस्कृत में इसे **'राजातिराज'** कह सकते हैं। प्रयाग स्तंभ लेख में शाहानुसाहि पदवी उसी क्रम में उल्लिखित है जो पिछले कुषाण नरेशों द्वारा उत्कीर्ण करायी गयी थी। गुप्तलेखों में 'महाराजाधिराज' पदवी स्वतंत्र राज्य स्थापित हो जाने के पश्चात् शासकों के लिए प्रयुक्त है। आरंभ में श्रीगुप्त तथा घटोत्कच नामक शासकों के लिए **'महाराज'** पदवी ही मिलती है जो उनकी सामंतावस्था का द्योतक है। 'महाराजाधिराज' की स्वतंत्र पदवी का श्रीगणेश प्रथम चंद्रगुप्त ने किया था और स्कंदगुप्त तक यही क्रम लेखों में पाया जाता है। मेहरौली लौह-स्तंभ लेख में द्वितीय चंद्रगुप्त के लिए—**प्राप्तेन स्वभुज्जितं च रुचिरं चैकाधिराज्यं क्षितौ**। वाक्य उल्लिखित है। यानी चंद्र नरेश ने एकछत्र राज्य स्थापित किया था। घनाइदह ताम्रपत्र में प्रथम कुमार गुप्त के लिए **'परमभट्टारक महाराजाधिराज'** पदवी विशेषतया उल्लिखित है। इससे भी महान् पदवी उत्तर गुप्त कालीन नरेशों के लिए 'परममट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' (जीवित गुप्त के लिए) प्रयुक्त है। परन्तु, ऐसे उल्लेख का कोई महत्त्व नहीं दिया जा सकता। मगध की छोटी सीमा में शासन करते हुए, ऐसे महान् पदवी धारण करना संदेह पूर्ण है।

शासन पद्धत्ति

भारतीय लेखों के अनुशीलन से प्राचीन भारत के शासन पद्धत्ति का परिज्ञान हो जाता है। प्रशस्ति के खोदते समय अथवा दान पत्र लिखते समय कर्मचारियों से संबंधित राजाज्ञा का प्रसारण आवश्यक हो जाता है। प्रजाहित के लिए जिन आज्ञाओं की घोषणा की जाती है, उसे भी पदेन अधिकारियों को संबोधित कर प्रसारित किया जाता था। मौर्य सम्राट् अशोक के धर्म लेखों में राजुक तथा प्रादेशिक पदाधिकारियों के नाम मिलते हैं। साम्राज्य के विभिन्न प्रांतों का उल्लेख भी किया गया है (प्रा० भा० अ० पृ० ६२)। कुषाण युग में शक महाक्षत्रप राज्यपाल के रूप में शासन करता रहा। उनके नाम मथुरा तथा सारनाथ लेखों में उल्लिखित हैं। गुप्त अभिलेखों में भी शासन पद्धत्ति का विशद् वर्णन पाया जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त युग में राजा की उत्पत्ति का दैवी-सिद्धांत विचार ही लोकप्रिय था। यही कारण है कि प्रयाग स्तंभ लेख में समुद्रगुप्त को पृथिवी पर देवता (लोकधाम्नोदेवस्य) कहा गया है। लेखों में तथा स्मृतियों में वर्णन आता है कि राजा आदर्श स्थापना की कामना करता था। सम्राट् का ज्येष्ठ पुत्र युवराज घोषित किया जाता तथा विशेष अवस्था में राजा के अन्य पुत्र प्रांत के राज्यपाल नियुक्त किए जाते थे। प्रयाग स्तंभ लेख के चौथे श्लोक के अध्ययन से यह प्रकट होता है कि समुद्रगुप्त योग्य होने के कारण अन्य राजकुमारों के समक्ष (तुल्य कुल म्लाननो द्वीक्षितः) युवराज चुना गया। युवराज को प्रबंध संबंधी अनेक अधिकार दिये जाते थे। प्रथम कुमारगुप्त के पश्चात् भी राज्य के उत्तराधिकार का झगड़ा उपस्थित हुआ था। स्कंदगुप्त, शक्तिशाली, योग्य तथा कुशल राजकुमार होने के कारण पुरुगुप्त के बदले शासक नियुक्त किया गया। युवराज शासन में सम्राट् की सहायता करता रहा। प्रथम कुमारगुप्त का भ्राता गोविंद गुप्त मालवा का राज्यपाल था। लेखों के वर्णन चीनी यात्री फाहियान के कथन से पुष्ट होते हैं। सभी प्रकार के साक्ष्य के विश्लेषण से गुप्त कालीन शासन पद्धत्ति का परिज्ञान हो जाता है।

गुप्तकालीन शासन व्यवस्था उच्च कोटि की थी। सुशासन के निमित्त उसके चार विभाग निश्चित किये गये थे।

(१) केंद्रीय शासन।

(२) प्रांतीय शासन।

(३) विषय (जिला) का प्रबंध।

(४) ग्राम-शासन।

केंद्रीय शासन राजसत्ता से संबंध रखता था। सेना, राजनैतिक शासन तथा न्याय की व्यवस्था केंद्रीभूत थी। प्रत्येक उपविभाग के आमात्य थे। तौभी राज्य का संपूर्ण भार मंत्रियों पर स्थिर नहीं किया जाता था। स्वयं सम्राट् समुद्रगुप्त तथा चंद्रगुप्त ने विजय के नामित्त युद्ध में भाग लिया था। प्रयाग स्तंभ लेख में समुद्रगुप्त के शरीर में आयुध से छिद्र का वर्णन है। ऐसा कहा गया है कि समुद्रगुप्त युद्ध में दक्ष था, अपने भुजबल से विजय किया तथा शरीर में अनेक चोट के चिह्न बने थे—

विविध समर शतावतरण दक्षस्य स्वभुजबल पराक्रमैकबंधो व्रण शतांक शोभा समुदयो कान्ततर वर्ष्मणः।

द्वितीय चंद्रगुप्त स्वयं ही मालवा, गुजरात तथा काठियावाड़ विजय हेतु सेनापति वीरसेन के साथ यात्रा की—कृत्स्न पृथिवी जयार्थेन राज्ञैवेह सहागतः।

(उदयगिरि गुहालेख)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त नरेश चक्रवर्ती राजा थे। अतः उनकी प्रभुता सर्वत्र व्याप्त थी। लेखों में चारों समुद्र पर्यंत कीर्ति-विस्तार का वर्णन मिलता है (**चतुरुदधि सलिलस्वादित यशसः**)। गुप्त नरेशों के अधीन अनेक सामंत थे जिन्हें लेखों में 'महाराजा' कहा गया है। दक्षिणापथ के पराजित शासक सभी समुद्रगुप्त के सामंत बनकर शासन करते रहे और 'कर' देना स्वीकार कर लिया था (करदान आज्ञाकरण प्रणाम)। गुप्त सम्राटों के अधीनस्थ बुंदेलखंड के परिव्राजक तथा उच्चकल्प के सामंतों के लेख उपलब्ध हुए हैं। उनके लेखों में '**गुप्तनृप राज्यभुक्तौ**' के वाक्य उल्लिखित हैं।

दुर्भाग्य की बात है कि गुप्तों के केंद्रीय सरकार के विषय में हमें विस्तृत ज्ञान नहीं है। गुप्त सम्राट् की सहायता के लिए विद्वान् एवं कुशल आमात्यगण नियुक्त किए गए थे। उस मंत्री-परिषद् का प्रधान राजा होता था। उन मंत्रियों की विभिन्न पदवियों से कार्य के विभाजन का अनुमान हो जाता है। विभिन्न मंत्रियों तथा विभागाध्यक्षों के कार्यालय होते थे। प्रयाग स्तंभलेख के प्रशस्तिकार हरिषेण स्वयं समुद्रगुप्त के शासन काल में तीन पदों पर कार्य कर चुका था—

(अ) अन्तर्राष्ट्रीय मंत्री (सांधिविग्रहिक)।

(ब) कुमारामात्य।

(स) न्यायकर्त्ता (महादंड नायक)।

वह बहुत बड़ा संस्कृत का विद्वान् था। इसी कारण चम्पू काव्य शैली में प्रयाग-प्रशस्ति लिखने में समर्थ हुआ। द्वितीय चंद्रगुप्त का मंत्री वीरसेन व्याकरण, साहित्य, न्याय तथा लोकरीति का ज्ञाता था—

कौत्सशाव इतिख्यातो वीरसेन कुलाख्यया, शब्दार्थ न्याय लोकज्ञ कवि पाटलिपुत्रकः।
(उदयगिरि लेख—प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३१५)

उसी वीरसेन के लिए 'अन्वय प्राप्त सचिवो' (क्रमागत मंत्री का पद प्राप्त किया) वाक्य अभिलेख में उल्लिखित है। कर्मदंडा शिवलिंग लेख में वर्णन आता है कि प्रथम कुमारगुप्त का मंत्री पृथ्वीषेण उसके पिता चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के मंत्री शिखरस्वामी का पुत्र था (प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३१९)। इससे मंत्रियों के वंशानुगत पद का आभास मिलता है। गुप्त सम्राटों ने अन्तर्राष्ट्रीय नीति के विचार से राजपूतों की नियुक्ति कार्य संपन्न हेतु किया था। महाकवि कालिदास स्वयं कुंतलेश्वर के दरबार में चंद्रगुप्त विक्रमादित्य का राजदूत बनकर गया था। उस विभाग के मंत्री को 'सांधिविग्रहिक' कहा गया है जिसको (उस पद को) हरिषेण सुशोभित कर चुका था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न्यायालयों का भी शासन पद्धति में उच्च स्थान था। गुप्तकाल में न्याय की सीमा अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। गुप्त लेखों तथा वैशाली के मुहरों में दंडनायक, महादंडनायक या सर्वदंडनायक पदवियों सहित कर्मचारियों के उल्लेख मिलते हैं (आ० स० रि०, १९१३-१४)। गुप्त लेखों के विश्लेषण से उस समय के न्यायालय का परिज्ञान हो जाता है। तत्कालीन न्यायालयों में शारीरिक दंड देनेवाला व्यक्ति 'दांडिक' कहा जाता था। फाहियन ने गुप्त कालीन न्याय को सरल बताया है। केंद्रीय पुलिस विभाग के कई कर्मचारी होते थे। वैशाली मुहरों में पुलिस (आरक्षी) विभाग के प्रमुख अधिकारी को 'दंडपाशिक' कहा गया है।

अभिलेखों में केंद्रीय मंत्रिमंडल के अन्य पदाधिकारियों के निम्नलिखित नाम उल्लिखित हैं। इस मंत्रिमंडल को राज्यपाल या विशिष्ट कर्मचारियों की नियुक्ति करने का अधिकार था।

(१) महादंड नायक (न्यायाधीश)।

(२) सांधिविग्रहिक (राजदूत या वैदेशिक मंत्री)।

(३) सेनापति।

(४) भांडागाराधिकृत (कोषाध्यक्ष)।

(५) शाल्किक (कर लेने वाला)।

(६) गौल्मिक (जंगल का अध्यक्ष)।

(७) महाक्षपटलिक (अभिलेख विभाग का अधिकारी)।

(८) पुस्तपाल (महाक्षपटलिक का सहायक)।

(९) अग्रहारिक (दानाध्यक्ष)।

(१०) धर्माधिकरण (न्यायालय) की मुहरे नालंदा तथा वैशाली में मिली हैं।

(११) करणिक (आधुनिक रजिस्ट्रार)।

(१२) लेखक या लिपिक।

'कर' की व्यवस्था

प्राचीन साहित्य के अध्ययन से कुछ पदाधिकारियों का ज्ञान हो जाता है। भागधुक (राजकीय कर संग्रह करने वाला) तथा समाहर्ता (उपहार ग्रहण करने वाला) के नाम वैदिक रत्निन की सूची में मिलते है। शासन में अर्थ की आवश्यकता को द्वितीय स्थान नहीं दिया जा सकता। अतः 'कर' ग्रहण करने का विधान सर्वत्र पाया जाता है। भारत में कृषकों तथा पशुपालकों से 'कर' ग्रहण किया जाता था क्योंकि शासक को अर्थ की नितांत आवश्यकता होती थी। शासन के सप्तांग सिद्धांत में राजकोष को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। अतएव अर्थशास्त्र या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्मृति ग्रंथों में 'कर' वसूल करने का विचार व्यक्त किया गया है। यूनानी लेखकों ने पचीस फी सदी 'कर' का वर्णन किया है। संभव है कि इस ऊँचे 'कर' को घटाने के लिए मौर्य सम्राट् अशोक के रुम्मनदेई लेख में' 'अठभागिए च' (आठवां भाग) का उल्लेख किया है। यानी आठवां भाग उपज का 'कर' के रूप में देना होगा। संभवतः भूमि के उर्बरा होने के अनुसार 'कर' में असमानता थी।

धान्यानामष्टमो भागः षष्ठोद्वादश एव वा।

(मनुस्मृति ७/१३०)

प्राचीन समय में ब्राह्मण या मंदिर को दान देते समय भूमि का स्वामित्व राजा से संबंधित न होकर दानग्राही को चला जाता जो भूमिकर ग्रहण करने का अधिकारी हो जाता था। अभिलेखों में 'कर' के नाम यथास्थान मिलते हैं। अर्थशास्त्रियों ने पैदावार का छठा भाग ग्रहण करने का आदेश दिया है। राजा को 'कर' मुक्त करने का भी अवसर था। सार्वजनिक कार्य के निमित्त सदा राजा 'कर' आरोपित नहीं करता था। ऐसे उदाहरण अभिलेखों में मिलते हैं। ईसवी सन् दूसरी सदी में रुद्रदामन ने सुदर्शन झील के संस्कारार्थ नए 'कर' लगाना आवश्यक नहीं समझा। सातवाहन नरेश ने भी नासिक लेख में क्षेत्र को 'करमुक्त' करने की चर्चा की है—

एतस खेत सपरिहार वितराम।

गुप्त युगीन लेखों में भी उद्रंग तथा उपरि नामक शब्दों का उल्लेख मिलता है जो 'कर' के पर्यायवाची थे। स्मृति ग्रंथों में उल्लिखित भाग भोग (कर) से इनकी समता की जाती है। उद्रंग स्थायी 'कर' था। उपरि कर ('कर' के ऊपर या 'अस्थायी कर') के संबंध में फ्लीट का मत है कि यह कर अस्थायी कृषक पर लगाया जाता था। गुप्तयुग में भी उपज का छठा भाग 'कर' के रूप में लिया जाता था। फाहियान ने वर्णन किया है कि कृषक उपज का कुछ भाग शासक को दिया करते थे। फरीदपुर ताम्रपत्र लेख में छठे भाग का विवरण मिलता है (ए० इ०, १९१०)। यह कहना कठिन है कि छठे भाग में सभी 'कर' सम्मिलित थे या इससे केवल' भूमिकर' का बोध होता है।

गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में वर्णन आता है कि शासक ने उत्तरी भारत के राजाओं को पराजित किया और दक्षिणापथ के विजित नरेशों को 'कर' (शुल्क) देने के पश्चात् मुक्त कर दिया—

सर्वकर आज्ञाकरण प्रणाम आगमन परितोषित प्रचंड शासनस्य।

(प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३१२)

गुप्त कालीन अभिलेखों में **'चाटभट प्रवेश'** नामक अन्य 'कर' का उल्लेख मिलता है। चाटभट शब्द पुलिस (आरक्षी) तथा सेनानी के लिए प्रयुक्त हैं। यानी गुप्त नरेश राज्य में यात्रा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करते समय पुलिस तथा सेना के पदाधिकारी को साथ ले जाते और शासक के साथ कर्मचारीगण उसी स्थान पर निवास करते थे। उनका समस्त व्यय स्थानीय लोगों को देना पड़ता था। इसी कारण—'चाटभट प्रवेश दंड' नाम से अस्थायी द्रव्य (कर) की वसूली होती थी। स्मृति ग्रंथों में वर्णन आता है कि आपत्ति के समय प्रजा पर 'विशेष कर' लगाया जाता था किंतु गुप्त लेखों में इस प्रकार के 'कर' का उल्लेख नहीं मिलता। स्कंदगुप्त द्वारा प्रचलित मिश्रित सोने के सिक्कों के परीक्षण से अनुमान लगाया जाता है कि हूण आक्रमण के समय राजकोश में पर्याप्त धन न था, इस कारण मिश्रित सोने का प्रयोग सिक्कों के लिए किया गया। मिश्रित सोना तथा भारी तौल (सुवर्ण माप) के सिक्के प्रचलित कर स्कंदगुप्त ने आपत्ति का सामना किया किंतु कोई विशेष कर उस शासक ने आरोपित नहीं किया। इनके अतिरिक्त अर्थदंड भी शासक के लिए आय का साधन था। गुप्त काल में अपराध की संख्या नहीं के बराबर थी। अतएव अर्थदंड (जुर्माना) की मात्रा नगण्य थी।

प्रांत

शासन की सुव्यवस्था के लिए गुप्त साम्राज्य प्रांतों में विभक्त किया गया था जिसके प्रमुख पदाधिकारी को राज्यपाल (प्रांतपति) कहते थे। प्रांत के लिए लेखों में देश या भुक्ति शब्दों का प्रयोग मिलता है। गप्तकाल में निम्न शासन विभाग (भुक्ति) थे—

(१) पुण्ड्रवर्धन भुक्ति (उत्तरी बंगाल)
(२) तीरभुक्ति (=तिरहुत) उत्तरी बिहार
(३) मालवा—मंदसोर
(४) कौशाम्बी (प्रयाग समीप)
(५) सौराष्ट्र (काठियावाड़)
(६) पाटलिपुत्र (श्रीनगर भुक्ति)

गुप्त अभिलेखों में प्रांतपति को 'उपरिक महाराज' की पदवी दी गई है। उसे आधुनिक काल में राज्यपाल कह सकते हैं। अन्य लेखों में राष्ट्रीय, भोगपति, गोप्ता आदि पदवियाँ उल्लिखित हैं (आ० स० रि० १९०३-४ पृ० ८८; १९११-१२; १९२८-२९)। लेखों से कुछ उदाहरण उल्लिखित किए जाते हैं—

(अ) **पुण्ड्रवर्धन भुक्ति का उपरिक चिरातदत्त** (दामोदरपुर ताम्रपत्र)
(ब) **सर्वेषुदेशेषु विधाय गोप्तृन्** (जूनागढ़ लेख)
(स) **उपरिक कुमारामात्य** (वैशाली की मुहर)
(द) **पुंड्रवर्धन भुक्तावुपरिक महाराजा** (दामोदरपुर ताम्रपत्र—प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३२०, ३२६, ३३५, ३४१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैशाली की मुहरों से भी पता चलता है कि तीरभुक्ति का शासक द्वितीय चंद्रगुप्त का पुत्र गोविंदगुप्त था। ये सभी केंद्रीय शासक के प्रतिनिधि थे। इनकी सहायता के लिए भी क्षेत्रीय मंत्रिमंडल था। वैशाली से जो मुहरें प्राप्त हुई हैं वह किसी-न-किसी पदाधिकारी की हैं। महादंड नायक महाप्रतिहार, रणभांडागारिक आदि कर्मचारी भुक्ति शासन में सहायता करते रहे। दामोदरपुर ताम्रपत्र पर अंकित लेखों का अनुशीलन यह बतलाता है कि प्रांत (भुक्ति) शासक (राज्यपाल) की कार्य अवधि पाँच वर्षों की होती थी।

विषय

भुक्ति के अंतर्गत कई विषय (जिला) होते थे जिसके शासक को विषय पति कहा गया है। प्रांत का राज्यपाल उसकी नियुक्ति करता था। केंद्रीय शासक से इसका कोई संबंध न था। विषय पति प्रमुख नगर में रहता था जो अधिष्ठान कहलाता तथा उसके कार्यालय को 'अधिकरण' कहते थे। वैशाली की मुहरें इस पर अधिक प्रकाश डालती हैं। लेखों में विषयपति के लिए 'कुमारामात्य' की पदवी उल्लिखित है।

(१) कुमारामात्य अधिकरण

(२) युवराज प्रदीयकुमारामात्य

(३) युवराज भट्टारक प्रदीय कुमारामात्य

इनमें कुमारामात्य शब्द विवादास्पद है। इससे कुछ विद्वान राजकुमार के सभासद संबंधी अर्थ निकालते हैं। राजकुमार के मंत्री का भी तात्पर्य मानते हैं। प्रयाग प्रशस्ति में लेखक हरिषेण की भी उपाधि कुमारामात्य उल्लिखित है। संभवतः यह आमात्य राजकुमार के सदृश सम्मान पाता था। 'युवराज पदीय' शब्दों का अर्थ भी स्पष्ट नहीं है। इसका तात्पर्य यह हो सकता है कि यह कर्मचारी राजा या राजकुमार के कार्यालय से संबंधित था। शिखरस्वामी तथा पृथ्वीषेण द्वितीय चंद्रगुप्त तथा प्रथम कुमारगुप्त के मंत्री थे। इन सबको कुमारामात्य कहा गया है (करमदंडा लेख)। संभव है पदाधिकारी की योग्यता या वरीयता के कारण अधिक सम्मान दिया जाता होगा। विषय की क्षेत्रीय कार्यकारिणी का उल्लेख दामोदरपुर ताम्रपत्र में मिलता है जिसमें चार सदस्य होते थे।

(१) नगर श्रेष्ठी,

(२) सार्थवाह

(३) प्रथम कुलिक

(४) प्रथम कायस्थ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनके अतिरिक्त युक्त या आयुक्त छोटे राजस्व अधिकारी थे जो जिला तथा गाँव प्रशासन के मध्य कड़ियों का काम करते थे। ये चारों विषयपति के सभासद थे। विषयपति के कार्यकारिणी की अवधि का परिज्ञान दामोदरपुर लेख से हो जाता है। विषय के कर्मचारीगण पाँच वर्षों के लिए नियुक्त होते थे। उस ताम्रपत्र में अंकित तिथियों तथा पदाधिकारी के उल्लेख से यह बात स्पष्ट हो जाती है। दामोदरपुर ताम्रपत्र की तिथि गु० स० १२४ तथा गु० स० १२९ में एक समान पदाधिकारियों का नामोल्लेख है जिस आधार पर पाँच वर्ष की अवधि मानी गई है।

गु० स० १२४ के लेख में उल्लिखित पदाधिकारीगण—

पद	नाम
विषय पति	कुमारामात्य वेत्रवर्म्मन
नगर श्रेष्ठी	धृतिपाल
सार्थवाह	बंधुमित्र
प्रथम कुलिक	धृतिमित्र
प्रथम कायस्थ	शांबपाल
पुस्तपाल	(अ) रिसिदत्त (ब) जयनंदि (स) विभुदत्त

दामोदरपुर का दूसरा ताम्रपत्र (गु० स० १२९) में इन्हीं पदाधिकारियों के नाम मिलते हैं। (गुप्त साम्राज्क का इतिहास, भा० २, पृ० ३१)

ग्राम

गुप्त अभिलेखों के आधार पर नगर तथा ग्राम सभाओं का भी परिज्ञान हो जाता है। विषयपति नगर के पदाधिकारी की (द्रांगिक शब्द का प्रयोग किया गया है) नियुक्ति करता था। स्कंदगुप्त के ससय में सौराष्ट्र के राज्यपाल पर्णदत्त का पुत्र चक्रपालित सौराष्ट्र-नगरपति के पद को सुशोभित करता रहा—

यः सन्नियुक्तो नगरस्यरक्षां (जूनागढ़ लेख)

वैशाली नगर के शासक की भी मुद्रा उपलब्ध हुई है। गुप्तकालीन ताम्रपत्रों के अध्ययन से ग्राम शासन की भी बातें विस्तृत रूप में ज्ञात हो जाती हैं। विषय के अंतर्गत कई ग्राम होते थे। ग्रामपति 'महत्तर' कहलाता था। ग्रामाध्यक्ष की भी संज्ञा मिलती है जो ग्राम प्रशासन का अध्यक्ष होता था। उसकी सहायता के लिए पंचायत होती थी जिसके चार सदस्यों के पद दामोदरपुर ताम्रपत्र में उल्लिखित हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैशाली की मुहरों से भी पता चलता है कि तीरभुक्ति का शासक द्वितीय चंद्रगुप्त का पुत्र गोविंदगुप्त था। ये सभी केंद्रीय शासक के प्रतिनिधि थे। इनकी सहायता के लिए भी क्षेत्रीय मंत्रिमंडल था। वैशाली से जो मुहरें प्राप्त हुई हैं वह किसी-न-किसी पदाधिकारी की हैं। महादंड नायक महाप्रतिहार, रणभांडागारिक आदि कर्मचारी भुक्ति शासन में सहायता करते रहे। दामोदरपुर ताम्रपत्र पर अंकित लेखों का अनुशीलन यह बतलाता है कि प्रांत (भुक्ति) शासक (राज्यपाल) की कार्य अवधि पाँच वर्षों की होती थी।

विषय

भुक्ति के अंतर्गत कई विषय (जिला) होते थे जिसके शासक को विषय पति कहा गया है। प्रांत का राज्यपाल उसकी नियुक्ति करता था। केंद्रीय शासक से इसका कोई संबंध न था। विषय पति प्रमुख नगर में रहता था जो अधिष्ठान कहलाता तथा उसके कार्यालय को 'अधिकरण' कहते थे। वैशाली की मुहरें इस पर अधिक प्रकाश डालती हैं। लेखों में विषयपति के लिए 'कुमारामात्य' की पदवी उल्लिखित है।

(१) **कुमारामात्य अधिकरण**

(२) **युवराज प्रदीयकुमारामात्य**

(३) **युवराज भट्टारक प्रदीय कुमारामात्य**

इनमें कुमारामात्य शब्द विवादास्पद है। इससे कुछ विद्वान राजकुमार के सभासद संबंधी अर्थ निकालते हैं। राजकुमार के मंत्री का भी तात्पर्य मानते हैं। प्रयाग प्रशस्ति में लेखक हरिषेण की भी उपाधि कुमारामात्य उल्लिखित है। संभवत: यह आमात्य राजकुमार के सदृश सम्मान पाता था। 'युवराज पदीय' शब्दों का अर्थ भी स्पष्ट नहीं है। इसका तात्पर्य यह हो सकता है कि यह कर्मचारी राजा या राजकुमार के कार्यालय से संबंधित था। शिखरस्वामी तथा पृथ्वीषेण द्वितीय चंद्रगुप्त तथा प्रथम कुमारगुप्त के मंत्री थे। इन सबको कुमारामात्य कहा गया है (करमदंडा लेख)। संभव है पदाधिकारी की योग्यता या वरीयता के कारण अधिक सम्मान दिया जाता होगा। विषय की क्षेत्रीय कार्यकारिणी का उल्लेख दामोदरपुर ताम्रपत्र में मिलता है जिसमें चार सदस्य होते थे।

(१) नगर श्रेष्ठी,

(२) सार्थवाह

(३) प्रथम कुलिक

(४) प्रथम कायस्थ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनके अतिरिक्त युक्त या आयुक्त छोटे राजस्व अधिकारी थे जो जिला तथा गाँव प्रशासन के मध्य कड़ियों का काम करते थे। ये चारों विषयपति के सभासद थे। विषयपति के कार्यकारिणी की अवधि का परिज्ञान दामोदरपुर लेख से हो जाता है। विषय के कर्मचारीगण पाँच वर्षों के लिए नियुक्त होते थे। उस ताम्रपत्र में अंकित तिथियों तथा पदाधिकारी के उल्लेख से यह बात स्पष्ट हो जाती है। दामोदरपुर ताम्रपत्र की तिथि गु० स० १२४ तथा गु० स० १२९ में एक समान पदाधिकारियों का नामोल्लेख है जिस आधार पर पाँच वर्ष की अवधि मानी गई है।

गु० स० १२४ के लेख में उल्लिखित पदाधिकारीगण—

पद	नाम
विषय पति	कुमारामात्य वेत्रवर्म्मन
नगर श्रेष्ठी	धृतिपाल
सार्थवाह	बंधुमित्र
प्रथम कुलिक	धृतिमित्र
प्रथम कायस्थ	शांबपाल
पुस्तपाल	(अ) रिसिदत्त
	(ब) जयनंदि
	(स) विभुदत्त

दामोदरपुर का दूसरा ताम्रपत्र (गु० स० १२९) में इन्हीं पदाधिकारियों के नाम मिलते हैं। (गुप्त साम्राज्क का इतिहास, भा० २, पृ० ३१)

ग्राम

गुप्त अभिलेखों के आधार पर नगर तथा ग्राम सभाओं का भी परिज्ञान हो जाता है। विषयपति नगर के पदाधिकारी की (द्रांगिक शब्द का प्रयोग किया गया है) नियुक्ति करता था। स्कंदगुप्त के ससय में सौराष्ट्र के राज्यपाल पर्णदत्त का पुत्र चक्रपालित सौराष्ट्र-नगरपति के पद को सुशोभित करता रहा—

यः सन्नियुक्तो नगरस्यरक्षां (जूनागढ़ लेख)

वैशाली नगर के शासक की भी मुद्रा उपलब्ध हुई है। गुप्तकालीन ताम्रपत्रों के अध्ययन से ग्राम शासन की भी बातें विस्तृत रूप में ज्ञात हो जाती हैं। विषय के अंतर्गत कई ग्राम होते थे। ग्रामपति 'महत्तर' कहलाता था। ग्रामाध्यक्ष की भी संज्ञा मिलती है जो ग्राम प्रशासन का अध्यक्ष होता था। उसकी सहायता के लिए पंचायत होती थी जिसके चार सदस्यों के पद दामोदरपुर ताम्रपत्र में उल्लिखित हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(१) **महत्तर,**

(२) **अष्ट कुलाधिकारी** (आठ कुलों के प्रमुख)

(३) **ग्रामिक**—ग्राम का प्रधान व्यक्ति

(४) **कुटुम्बिन्**—परिवार के मुख्य

इनके द्वारा ग्राम का प्रबंध होता था। इन्हें चुना जाता या निर्वाचन होता यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। इसमें ग्राम निवासी को सारा अधिकार रहता था। लेखों के वर्णन से ज्ञात होता है कि भूमि संपादन (ग्रामसीमा में भूमि का क्रय-विक्रय) का कार्य पंचायत को सौंपा गया था। सीमा विवाद के झगड़ों का भी यही संस्था निर्णय करती थी। ग्राम-पंचायत एक स्वतंत्र इकाई संस्था थी जिसका ग्राम-सीमा में पर्याप्त अधिकार था।

(विस्तार के लिए देखिए—गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भा०, २, पृ० १३४)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ५

गुप्त कालीन समाज

वर्ण व्यवस्था

भारतीय समाज की सर्व प्रमुख संस्था को **'वर्णाश्रम'** कहते हैं। भारतीय इतिहास के सभी युगों में (वैदिक काल से आधुनिक युग तक) वर्ण-व्यवस्था हिंदू समाज की विशेषता रही है। अतः स्वाभाविक रूप में गुप्तकालीन समाज में जातियों का वही क्रम था। उस समय समाज में इतनी जटिलता न थी जैसा आज हम देखते हैं। भारत के उन्नयन तथा गौरवमय जीवन का बहुत कुछ श्रेय इसी संस्था को है। इतना कहना आवश्यक है कि वैदिककालीन वर्ण कालांतर में जाति का बोधक हो गया। स्मृतियों में चार-वर्णों के नाम आते हैं—

चत्वारो वर्णा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्राः।

(वशिष्ठ, अ० १।२२)

किंतु प्रथम तीन वर्णों को ही 'द्विज' कहा गया है। हिंदू शास्त्रकारों ने चारों वर्णों के सामाजिक स्थान तथा कार्यों का निर्देशन कर दिया है तौभी आधुनिक काल की तरह उपजातियाँ में कठोरता न थी। यद्यपि बौद्ध तथा जैनमतों के कारण वर्ण व्यवस्था को गहरा धक्का लगा तथापि उनका अस्तित्व सदा बना रहा। हिंदू धर्म के अभ्युदय के साथ इस संस्था की उन्नति हुई और गुप्तकाल से पूर्व ही वर्ण-व्यवस्था का पूरा विकास हो गया था। कामसूत्र में वात्स्यायन ने इसका विशद विवेचन किया है। ईसवी पूर्व सदियों में अशोक ने अपने धर्मलेखों में ब्राह्मण को श्रेष्ठ मानकर ब्राह्मण दर्शन को श्रेयस्कर कहा है। दक्षिण भारत के शासक सातवाहन नरेश अपने को ब्राह्मण कहकर गर्व का अनुभव करते रहे। इसीलिए सातवाहन नरेश पुलमावि के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नासिक लेख में 'एक वम्हण' (श्रेष्ठ ब्राह्मण) शब्दों का प्रयोग किया गया है। उसी स्थान पर उत्कीर्ण नासिक गुहालेख में दान प्रसंग में ब्राह्मण का नामोल्लेख है (**देवताभ्यःब्राह्मणेभ्यः षोडशग्रामदेन**)। इनके अतिरिक्त दूसरी सदी के शक राजा रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख में यौधेय गण को 'क्षत्रियों में वीर' वाक्य से अभिमत किया गया है। यानी क्षत्रिय जाति युद्ध में भाग लिया करती थी।

गुप्तकालीन अभिलेखों में तीन वर्णों का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया गया है। इंदोर (बुलंदशहर, उत्तरप्रदेश) नामक स्थान से एक ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है जिसमें ब्राह्मण को दान देने की चर्चा है। उस अग्रहार के दाता क्षत्रिय वंशी अचल वर्म तथा भ्रकुंट सिंह थे तथा उस प्रसंग में यह भी वर्णन है कि दोनों व्यक्ति वैश्य वृत्ति (व्यापार) से अपना जीवन-यापन करते थे। इस प्रकार दान पत्र से ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य वर्णों के नाम उपलब्ध होते हैं।

चतुर्विध सामान्य ब्राह्मण—इन्द्रापुरक वणिग्भ्यां क्षत्रियाचलवर्म भ्रकुंट सिंहाभ्याम्।

(स्कंदगुप्त का इंदोर ताम्रपत्र लेख)

इससे विदित होता है कि ब्राह्मण षटकर्मी थे। अपनी प्रकांड विद्वता, शुचि आचरण, विशाल हृदयता एवं लोकोत्तर व्यवहार कुशलता के कारण ब्राह्मण समाज में श्रेष्ठ समझे जाने लगे। ब्राह्मण शिक्षण कार्य तथा वैदिक यज्ञों का विधान करता था। प्रयाग स्तंभ लेख में वर्णन है कि समुद्रगुप्त ने ब्राह्मणों को दान की दक्षिणा में अश्वमेध प्रकार के स्वर्ण-सिक्के तैयार किया था। हजार गाय दान दिया था। **अनेक गो शत सहस्र प्रदायिनः**। समाज में इसका अपवाद भी था। ऊच्च वर्ण के साथ निम्न वर्ण की बधुओं का परिणय होते थे। वाकाटक नरेश ब्राह्मण थे जिन्होंने गुप्तों के यहाँ अनुलोम विवाह किया था। इस युग की वर्ण व्यवस्था में व्यवसाय जाति से बंधे नहीं थे। स्मृतियों में भी पर्याप्त सामग्री मिलती है कि ब्राह्मण ब्राह्मणेतर वृत्तियों का अनुसरण करता रहा। ब्राह्मण व्यापारी तथा सरकारी पदाधिकारी भी थे [का० इ० इ०, भा० ३, ११९]। वाकाटक वंश का संस्थापक बिंध्यशक्ति (ब्राह्मण) यज्ञ के स्थान पर खड्ग धारण किया था। मध्य भारत में गुप्तों के सामंत मातृविष्णु एक महत्वाकांक्षी ब्राह्मण था। उसके लेख में शासक का पितामह इंद्रविष्णु और वरुणविष्णु धर्मनिष्ट ब्राह्मण कहे गए हैं। ये यज्ञों में अपना जीवन व्यतीत करते थे। परंतु उस कुल की ख्याति का कारण यह था कि उसके वंशजों ने पुरोहिती कार्य को परित्याग कर सेना में प्रवेश किया और अंत में राज्य की स्थापना में सफलीभूत हुए। उसी स्थान में वर्णन मिलता है कि उसने रणक्षेत्र में शत्रुओं का पराभव कर चतुर्दिक अपनी कीर्ति फैलाई (का० इ०, इ० भा० ३, पृ० ८९)। इन अलौकि गुणों के कारण मनु ने ब्रह्मविद् ब्राह्मण को सेनापति आदि उच्च पद देने की व्यवस्था बतलाई है—

सेनापत्यं च राज्यं च दंडनेतृत्वमेव च
सर्व लोकाधिपत्यं च वेदशास्त्र विदर्हति।

(मनुस्मृति, १२।१००)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

असाधारण समाज में घटनाओं के लिए आपद्धर्म का विधान है। फाहियान ने गुप्तकालीन अनेक ब्राह्मण राजाओं का विवरण दिया है। शूद्रक लिखता है कि चारुदत्त ब्राह्मण होते हुए भी वणिक का कार्य करता था (मृच्छकटिक)। इस विवेच्य युग में ब्राह्मणों की उप जातियाँ भी विकसित हो गई। देश, धर्म, निरामिष भोजन तथा वैदिक शाखाएँ उपविभाजन के कारण थे। मथुरा संग्रहालय में स्थित एक नागमूर्त्ति पर उत्कीर्ण लेख से प्रकट होता है कि गुप्तयुग में 'प्रवर' का भी विचार समावेश हो गया था और ब्राह्मणों के तीन प्रवर वाली शाखा भी वर्तमान थी।

श्री अश्वदेवस्य भवन त्रिप्रवरकपुत्रस्य —कै० आ० म्यू० मथुरा, पृ० ९०, संख्या १६)

यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि ब्राह्मण जाति तीन तथा पाँच प्रवरों में विभक्त थी।

क्षत्रिय

समाज में क्षत्रियों को भी ऊँचा स्थान था। विष्णु स्मृति में क्षत्रिय का प्रधान कर्त्तव्य प्रजापालन बतलाया गया है। गुप्त शासक क्षत्रिय थे अतएव शास्त्रानुकूल उनका आचरण था। प्रायः क्षत्रिय ही शासक, सेनापति तथा योद्धा होते थे और शिक्षा भी उसीके अनुकूल होती थी। गुप्तों के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि राजकुमार प्रांतीय राज्यपाल का कार्य करते थे। उनके स्वर्ण सिक्कों पर खुदे लेख से परिज्ञान होता है कि राजा आखेट से प्रेम रखते थे। धनुर्धरांकित सिक्के तो धनुषवाण के प्रयोग में राजा की निपुणता की बात व्यक्त करते हैं। सिंह निहंता, गैंड़ा निहंता, अश्वारोही प्रकार के सिक्के क्षत्रिय राजा के कार्यों के द्योतक हैं। प्रयाग प्रशस्ति में सैकड़ों आयुध द्वारा युद्ध प्रक्रिया की बातें उल्लिखित हैं। समुद्रगुप्त ने अनेक युद्धों में शत्रुओं को परास्त कर साम्राज्य की स्थापना की थी। "**समरशत वितत विजयी जितरिपु**" का वाक्य उसके स्वर्ण सिक्कों पर खुदा है। मथुरा लेख में अचलवर्म नामक क्षत्रिय का नाम आया है जो वैश्य कर्म करता रहा।

वैश्य

तीसरा वर्ण वैश्यों का था जिनका प्रधान कर्म वाणिज्य ही था। गुप्त लेखों में वैश्य छोटी-छोटी समितियाँ (निगम) बनाकर व्यवसाय करते थे। समितियाँ उन्हीं के नाम से पुकारी जाती थी (दामोदरपुर ताम्रपत्र—प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३१९, ३४२)। उनके लिए कुलिक, श्रेष्ठी तथा सार्थवाह शब्दों का प्रयोग किया गया है। सार्थवाह व्यापारी समूह का अगुआ था। गुप्तकाल में व्यापार उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था। भारत में तथा अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में श्रेष्ठी माल लेकर जाया करता था। भारत के पूर्वी भाग (बंगलादेश) में तामलुक (समतट) नामक बंदरगाह से भारतीय जहाज दक्षिण पूर्व एशिया में जाते थे। समुद्रगुप्त ने समतट डवाक को जीतकर भारत से दक्षिण पूर्व एशिया का सांस्कृतिक संबंध आरंभ किया। गुप्तकाल में चाँदी का सदा आयात होता रहा जिसे रजत सिक्कों के निर्माण में प्रयोग किया जाता था। यदि वैश्यगण (निगम) संस्था बनाकर सामुद्रिक व्यापार न करते तो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाँदी के सिक्कों का निर्माण असंभव था। यह धातु भारतीय वस्तुओं के निर्यात के बदले (exchange) आया करती। बर्मा, ईरान कैकेसस के भूभाग से चाँदी का आयात प्रायः निश्चित था। फाहियान ने लिखा है कि जनपद के वैश्यों के मुखिया ने नगर में सदावर्त तथा औषधालय स्थापित किया था। उस यात्री ने सेठ सुदत्त द्वारा निर्मित विहार को देखा था। ह्वेनसांग ने भी लिखा है कि तीसरा वर्ण वैश्यों या व्यापारियों का था जो पदार्थों का विनिमय कर लाभान्वित होते रहे (वाटर–ह्वेनसांग, भा० १, पृ० ६८)। वैश्य पूर्णरूपेण एक ठोस जाति थी तथापि कृषक, व्यापारी, पशुपालक, लुहार, बढ़ई, तेली, जुलाहे तथा माली आदि ने अपनी पृथक-पृथक उपजातियाँ बना ली थीं। सिद्धांततः सभी वैश्य में नहीं गिने जाते थे। कार्य के कारण अपनी बिरादरी का अंग होने की चेतना उनमें अधिक थी। सभी वैश्य जाति के उपविभाग थे, यह कहना प्रमाण रहित होगा। इस विषय में अधिक साक्ष्य उपस्थित नहीं किया जा सकता।

कायस्थ

इन तीनों जातियों के अतिरिक्त वृत्ति के कारण कायस्थ नामक वर्ग का अभिलेखों में उल्लेख आया है। यह पेशेवर लेखक थे किन्तु यह संशयास्पद है कि उस युग में कायस्थों की एक जाति बन गई थी? गुप्तकालीन ताम्रपत्रों में प्रथम कायस्थ का उल्लेख है जो शासन में भाग लेते थे। संभव है विभिन्न जातियों के लोगों ने पेशे के अनुसार कायस्थ नामक समूह बनाया जो कालान्तर में जाति का रूप धारण कर लिया। अंतिम शूद्र वर्ण का द्विज मात्र की सेवा करना परम कर्त्तव्य बतलाया गया है। समाज में शूद्रों को उचित स्थान दिया गया था। आजकल की तरह अस्पृश्यता की भावना गुप्तकाल में अज्ञात थी। स्मृतिकारों ने शूद्रों को मंत्ररहित यज्ञ करने का विधान बतलाया है। सिद्धान्त रूप में जो भी कहा जाय किंतु शूद्र व्यापारी, शिल्पी तथा कृषक हुआ करते थे। अस्पृश्यता का विचार न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान था। फाहियान ने भी इसका विवरण प्रस्तुत किया है। अंत्यज तो ग्राम बस्तियों से बाहर रहा करते थे। अंत्यज के हीनपेशों के कारण उनके संपर्क से लोग बचते रहे। संक्षेप में कहना उचित होगा कि जातियों के कार्य ही समाज में उनके स्थान के प्रमुख कारण थे। विभिन्न जातियों के सीमित शास्त्र सम्मत कार्य होते हुए भी परिस्थिति तथा आपत्ति के समय वृत्ति का परिवर्त्तन आवश्यक था। समाज में सम्मान भी उसी के अनुरूप था। स्मृतिकार समय को पहचानते थे और हिन्दू समाज को खंडित होने से उन्होंने बचाया। हिन्दू धर्म में आपद्धर्म कहकर संगठन को नष्ट होने से रक्षा की। अत्रि ने कहा था कि अस्पृश्य जातियों का संसर्ग गर्हित नहीं है।

देवयात्रा विवाहेषु यज्ञ प्रकरणेषु च,
उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टो न विद्यते।

आश्रम-प्रणाली

गुप्तकालीन अभिलेखों में चारों आश्रमों का नामतः उल्लेख नहीं हैं परन्तु उनके विश्लेषण से प्रकट होता है कि किसी-न-किसी रूप में आश्रम का पालन होता रहा। सामाजिक कार्यों को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देखकर प्रारंभिक शिक्षा का अनुमान लगाया जा सकता है। स्मृति ग्रंथों में आचार्य तथा शिष्य की वार्त्ता उल्लिखित है। गुरुकुल में शिक्षा के लिए उपनयन संस्कार संपन्न किया जाता जिसे आगे चलकर विद्यारंभ संस्कार का नाम दिया गया। उपनयन से विद्यारंभ का कोई सीधा संबंध न था। द्विज मात्र के लिए उपनयन का विधान है। अतः शिक्षा के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम नितांत आवश्यक था। स्मृति ग्रंथों में गुरु-गृह तथा अंतेवासिन की दिनचर्या का विशद विवरण मिलता है। प्रत्येक वर्ष श्रावण मास से उपाकर्म होता तथा शिक्षा समाप्त करने पर वर्ष के अंत में समावर्तन संस्कार मनाया जाता था।

ब्राह्मणों का वेद वेदांग पठन-पाठन का विषय था किंतु क्षत्रिय राजकुमार के लिए राजनीति के साथ आयुध प्रयोग की शिक्षा दी जाती थी। समुद्रगुप्त नाना प्रकार के आयुध का प्रशिक्षण ले चुका था जिनके नाम प्रयाग प्रशस्ति में मिलते हैं—**परशु शंकु शक्ति प्रसासि तोमर भिन्दियाल नाराच वैतस्तिक अनेक।** इसके अतिरिक्त शास्त्र के अध्ययन के कारण वह 'कविराज' पदवी से विभूषित किया गया था। इसी तरह पाटलिपुत्र का **सेनापति वीरसेन** कई विद्याओं में दक्ष कहा गया है।

शब्दार्थ न्याय लोकज्ञः कवि।

(प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३१५)

गुप्त सम्राटों ने देववाणी संस्कृत को अपनाया और अभिलेखों के अतिरिक्त सिक्कों पर छंदवद्ध लेख उत्कीर्ण कराया। बौद्धशिक्षा प्रणाली के निमित्त मठों का निर्माण हो गया था जहाँ फाहियान ऐसे विदेशी चीनी यात्री ने भी शिक्षा ग्रहण की। ऐसी अवस्था में भी वैदिक प्रणाली समाप्त न हो पाई। यज्ञ तथा वेदों का अध्ययन गुप्तयुग में प्रगति पर था। गुप्त लेखों में वैदिक शाखाओं का वर्णन आया है (का० इ० इ०, भा० ३, सं० ५६, ६०)। परंतु स्मृतिकारों का आदेश था कि अपनी शाखा के अध्ययन बिना दूसरी शाखा का पठन-पाठन न किया जाय। लेखों में वेदाध्ययन के कारण उपाध्याय तथा चतुर्वेदी के नाम आए हैं। गुप्तकालीन साहित्य की प्रगति से शिक्षा क्रम तथा विद्याध्ययन का परिज्ञान हो जाता है। पाँच वर्ष की आयु से विद्यारंभ कर समावर्तन तक शिक्षा की अवधि थी। कालिदास ने भी लिखा है कि रघु को बालकपन में ही लिपिज्ञान कराया गया था—

लिपेर्यथावद् ग्रहणे न बांमयं
नदीमुखेनेव समुद्रमाविज्ञत्

(रघुवंश ३/१८)

गुप्तकाल में स्त्रीशिक्षा पर भी बल दिया गया था। आदर्श पत्नी तथा विदुषी बनने के लिए स्त्री शिक्षा की नितांत आवश्यकता थी। दक्षिण के वाकाटक राजा द्वितीय रुद्रसेन की पत्नी तथा द्वितीय चंद्रगुप्त की पुत्री प्रभावती गुप्ता उच्च श्रेणी की शिक्षिता महिला थी। अपने पुत्रों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के बाल्यकाल में राज्यकार्य का संचालन करती रही (ए० इ०, भा० १५)। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त तथा प्रथम कुमारगुप्त के अश्वमेध सिक्कों पर राजमहिषी का चित्र है। इससे प्रकट होता है कि गुप्तों की रानियाँ भी यज्ञ में भाग लिया करती थीं। गुप्त महिषी ध्रुवस्वामिनी के विदुषी होने में संदेह नहीं किया जा सकता। इतना ही नहीं, आदित्यसेन की पत्नी कोणदेवी सार्वजनिक कार्यों में दिलचस्पी रखती थीं। उसने सिंचाई के निमित्त तालाब का निर्माण कराया था (प्रा० भा० अ०, पृ० ३४५)। यह सभी शिक्षा के कारण ही संभव हो सका था।

समावर्तन के पश्चात् युवक गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। मनु तथा याज्ञवल्क्या ने आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया है— ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच। गुप्त काल में प्रथम स्वीकृत चार प्रकार के विवाह प्रचलित थे। परंतु गांधर्व विवाह के अस्तीत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कालिदास ने दुष्यंत तथा शकुंतला के गांधर्व-विवाह का उल्लेख किया है। इंदुमती के स्वयंवर का विवरण भी कालिदास ने दिया है। गुप्त अभिलेखों में राजमहिषी (महादेवी) के नाम उल्लिखित हैं। प्रयाग स्तंभ में लिच्छवि राजकुमारी से प्रथम चंद्रगुप्त के विवाह का वर्णन गर्व के साथ किया गया है। संभवतः वंश परंपरा का वर्णन करते समय उत्तराधिकारी के माता का (महादेव्यामुत्पन्नः) नामोल्लेख आवश्यक समझा गया। गुप्त राजाओं की अनेक पत्नियाँ थीं। लेखों से यह प्रमाणित भी होता है कि समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ के पराजित नरेशों की कन्याओं को स्वीकार किया था। 'आत्मनिवेदन कन्योपायन दान' वाक्य प्रयाग स्तंभ लेख में उल्लिखित है। गुप्त सम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त की दो पत्नियाँ थी —कुबेरनागा तथा ध्रुवस्वामिनी। प्रभावती गुप्ता कुबेरनागा की पुत्री थी तथा प्रथम कुमारगुप्त ध्रुवस्वामिनी का पुत्र।

परमभागवत महाराजाधिराज चंद्रगुप्त पुत्रस्य महादेव्यां ध्रुवदेव्यामुत्पन्नस्य
(प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३१७)

गुप्तकाल में विधवा विवाह की प्रथा प्रचलित थी, यह कहना कठिन है। यह स्वीकृत मत है कि द्वितीय चंद्रगुप्त ने अपने ज्येष्ठ भ्राता रामगुप्त की विधवा पत्नी से विवाह किया था परंतु इस प्रकार के अन्य साक्ष्य अज्ञात हैं। स्मृतियों में विशेष अवस्था में विधवा विवाह करने का विधान है—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतितेपतौ
पंचस्तु आपत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते
(नारद १२/९७, पराशर ४/३०)

देवर से विधवा स्त्री के विवाह को नियोग कहते हैं। परंतु गुप्तयुग में इस प्रकार के प्रमाण का अभाव है। विधवा के सती होने का उल्लेख भानुगुप्त के एरण लेख में मिलता है। भानुगुप्त के सेनापति गोपराज की पत्नी पति के मृत्यु के पश्चात सती हो गई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृत्वा तु युद्ध समुहत्प्रकाशं
स्वर्गं गतो दिव्यनरेन्द्रकल्पः
भक्ताऽनुरक्ता च प्रिया च कांता
भार्यावलग्नानुगताऽग्निराशिम्
(का० इ० इ०, भा० ३ सं० २०)

उस युग में स्वेच्छा से भी विधवा सती होती रही, जिस परंपरा को वाण ने राज्यश्री के विषय में उल्लिखित किया है (हर्ष चरित)। अतएव सतीप्रथा के अस्तित्व को भुलाया नहीं जा सकता। विवाह संबंधी अनुलोम तथा प्रतिलोम की बातें कही जा चुकी हैं। इन कारणों से गृहस्थ आश्रम का समाज में अधिक महत्व था। वह जीवन का आधार, समाज कल्याण का साधन, तथा मानव जीवन के धार्मिक कृत्यों का स्रोत था।

गुप्त युग में बानप्रस्थ का उल्लेख नहीं पाया जाता। राजकुमार को युवराज घोषित करने के पीछे यही भावना काम करती होगी परंतु राज्य त्याग कर जीवन दर्शन की ढ़ढ़ में लगने की कोई वार्ता उल्लिखित नहीं है। समुद्रगुप्त तथा स्कंदगुप्त के चुनाव का जो भी कारण हो, यह लेखो में अस्पष्ट है। पर राजा के कार्यभार को हल्का करने तथा चिंतामुक्त होने के लिए युवराज की घोषणा की जाती थी। उसी प्रकार सन्यास आश्रम में प्रवेश करने का सप्रमाण उल्लेख नहीं है। मानव का जीवनदर्शन उसी में सफलीभूत हो सकता था। मोक्ष की प्राप्ति ही पुरुषार्थ की अंतिम सीढ़ी थी। यों तो बौद्ध मत के प्रचार के कारण भिक्षु बनने का कार्य प्रगति के पथ पर था। वालक, युवा तथा वृद्ध के भिक्षु बनने से समाज का प्रश्न सुलझ न पाया। प्रजनन क्रिया की समाप्ति जीवनमुक्ति का वदिक साधन न था। अतएव हिन्दू धर्मावलम्बी शासक बौद्धधर्म के समर्थक न थे। गुप्त अभिलेखों में किसी प्रकार का सन्यास आश्रम का आभास तक नहीं मिलता। अफसद लेख में उल्लेख आता है कि उत्तर-गुप्त वंश का राजा कुमारगुप्त ने प्रयाग जाकर अग्नि में प्रवेश कर प्राण त्यागा था।

शौर्य सत्यव्रतधरो यः प्रयागगतो धने
अंभसीव करीषाग्नौ मग्नः स पुष्पपूजितः
(प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३४३)

प्रयाग इस प्रकार के धार्मिक मृत्यु के लिए पवित्र स्थान था। प्राचीन काल में सन्यासी न होकर राजा धार्मिक रीति से प्राण त्याग करते रहे (देखिए लखक की पुस्तक—सोसियोरिलिजियस कंडिशन ऑफ नार्थ इंडिया, पृ० १०८-१०)

सामाजिक दशा

मनुष्य के जीवन में समाज का बहुत बड़ा स्थान है। वर्णाश्रम की चर्चा हो चुकी हैं। गुप्त युग में सामाजिक जीवन (भौतिक) भी अत्यंत ऊँचा था। संसार के वैभव की उपलब्धि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो चुकी थी। सुख संपति पराकाष्ठा को पहुँची हुई थी। निवास के लिए अनेक महल बने थे जिसका विवरण शुद्रक ने दिया है। महलों के वातायन का वर्णन कालिदास ने भी उपस्थित किया है। अभिलेखों द्वारा भी सामाजिक जीवन पर अधिक प्रकाश पड़ता जितना साहित्य तथा कलात्मक नमूनों के अध्ययन से विदित हो जाता है। वस्त्राभूषण के संबंध में साहित्य तथा कला का साक्ष्य लेना पड़ता है। कालिदास ने चीनांशुक (चीनी रेशम) का उल्लेख किया है परंतु फाहियान (रेशमी वस्त्रों के अतिरिक्त) ऊनी वस्त्रों के प्रयोग का वर्णन किया है।

चीनांशुकमेव केतोप्रतिजातं नीयमानस्य—शाकुंतलम्

गुप्त युग में पुरुष तथा स्त्री के लिए भिन्न-भिन्न वस्त्रों का प्रयोग होता था। अधोवस्त्र (धोती) तथा उत्तरीय (चादर) का व्यवहार पुरुष किया करते थे। किंतु गुप्त कालीन स्वर्ण मुद्राओं पर राजा लम्बे कोट पहने दिखलाया गया है (प्राचीन भारतीय मुद्राएँ, फलक ५ सं० ४४-४५)। साधारण अवस्था में सिर पर पगड़ी है किंतु राजमुकुट का अभाव नहीं है (वहीं)। प्रायः विरक्त पुरुषों के लिए विभिन्न वस्त्र थे। बौद्ध, जैन, तथा हिन्दू साधु क्रमशः लाल, सफेद तथा भगवा कपड़े (वस्त्रों) का प्रयोग करते रहे। स्त्रियाँ साड़ी पहनती थी जो गुप्त मुद्राओं से स्पष्ट हो जाता है (वहीं, फलक ५)। गुप्त कालीन चित्रित गुफाओं में स्त्रियों के चित्र अंकित हैं जिनमें वह साड़ी तथा चोली पहने दीख पड़ती हैं। अजंता भित्तिचित्र में छींट की अंगिया भी पहने हैं। शरीर को रमणीय बनाने के लिए आभूषण का प्रचुर प्रयोग गुप्त काल में होता था। स्त्री पुरुष दोनों आभूषणों के प्रेमी थे। तत्कालीन मूर्तियाँ स्त्रियों के विविध आभूषणों की विभिन्नता का परिचय देती हैं। कान की बालियाँ तथा मोतियों के कंठहार आश्चर्यजनक थे। उरोजों तथा जंघों पर एक मोती का पारदर्शक गहना होता था। आभूषणों के अनुराग में पुरुष स्त्रियों से बहुत पीछे नहीं थे। गुप्त कालीन सिक्कों पर राजा कर्णभूषण तथा अंगूठी पहने दिखलाया गया है। गुप्तकालीन ऐतिहासिक स्थानों की खुदाई से जो मूर्तियाँ निकली हैं उनमें पुरुष के शरीर पर यज्ञोपवीत, कटिबंध तथा उदरबंध दीख पड़ते हैं। स्त्रियों के पैर में नूपुर, काड़ा, अंगूठी, हार, रत्नजटित भुजबंध तथा कुंडल आदि गहनों के उपयोग के प्रमाण मिलते हैं। चंद्रगुप्त तथा कुमारदेवी प्रकार की स्वर्ण मुद्रा पर राजा कुमारदेवी को अंगूठी भेंट करते अंकित किया गया है। वात्स्यायन ने भी इस प्रकार के आभूषणों के उपयोग की विशेष चर्चा की है।

सामाजिक जीवन में आनंद लाभ के लिए उत्सव मनाए जाते थे। सामूहिक यात्रा, उद्यान क्रीड़ा तथा गोष्ठियाँ मनोरंजन के साधन थे। फाहियान ने पाटलिपुत्र में प्रतिवर्ष रथयात्रा का विवरण दिया है। राजा का आखेट कम महत्वपूर्ण न था। गुप्त सिक्कों के परीक्षण से प्रकट होता है कि गुप्त नरेश आखेट प्रेमी थे। समुद्रगुप्त बाघ का शिकार करते तथा द्वितीय चंद्रगुप्त सिंह को मारते प्रदर्शित हैं। चंद्रगुप्त ने कृपाण से ही सिंह का विनाश किया था। परंतु वाण एवं धनुष का अंकन गुप्त सिक्कों पर अधिक मिलता है, (प्राचीन भारतीय मुद्राएँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

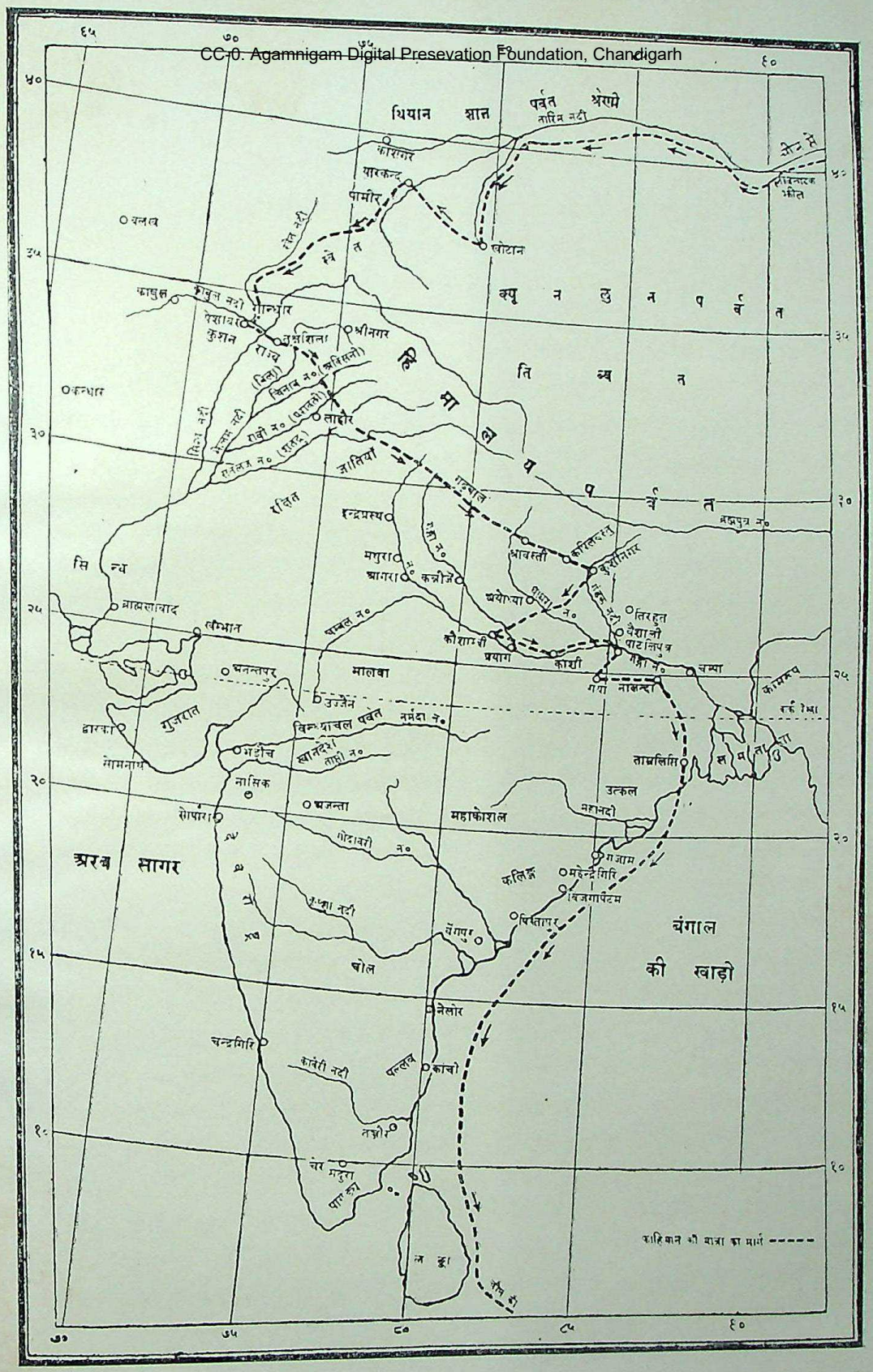

मानचित्र ४ (पृष्ठ ५६)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फलक सं० ६)। कुमारगुप्त गैंडा को मारते चित्रित है। तत्कालीन द्यूत-क्रीड़ा का भी साहित्य में वर्णन है। सोने के सिक्के पर राजा समुद्रगुप्त वीणा बजाते हुए प्रदर्शित हैं जिसकी पुष्टि प्रयाग-स्तंभ लेख में उल्लिखित निम्न वाक्य से होती है—

गांधर्व ललितैः व्रीडित त्रिदशपति गुरु तुम्बरू नारवादे

(प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३१२)

भोजन एवं पेय

समाज में तीन वस्तुओं की (भोजन, वस्त्र एवं आवास) ही प्रधान आवश्यकता समझी गई है। गुप्तयुग की प्रशस्तियों में वर्णित वैशाली, उज्जयिनी, दशपुर तथा पाटलिपुत्र नगरों का वर्णन यह प्रमाणित करता है कि आवास की सुविधा सर्वत्र थी। वैशाली की मुहरें उस स्थान की आर्थिक सफलता की बातें व्यक्त करती हैं। उज्जयिनी का वर्णन कालिदास ने 'पुरीं विशालां विशालाम्' आदि वाक्यों से किया है। मालवा का दूसरी नगरी दशपुर का वर्णन भी वत्सभट्टि ने अभिलेख में बड़े ही सुंदर शब्दों में किया है। गगनचुंबी अट्टालिकाओं की रमणीयता, सुंदर वाटिका तथा कासार की छटा हृदय को मोह लेती है। प्रशस्तिकार ने अत्यंत रमणीय तथा मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है—

कैलासतुंगशिखर प्रतिमानि च अन्यान्य भांति
दीर्घं बलभीन् सवेदिकानि
प्रासाद मालाभिरलं कृतानि धराविदार्यैव समुत्थितानि
विमानमाला सदृशानि यत्र गृहाणि पूर्णेन्दु करामलानि

(प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ३२२)

इस प्रकार गुप्तयुग में आवास का अभाव न था। स्कंदगुप्त के जूनागढ़ प्रशस्ति में वर्णन आता है कि कोइ आर्त या दुखी न था। उस समय भोजन सामग्री का आभाव न था। स्वाद्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे। भारतवासी साधारण जीवन में चावल, दाल, रोटी, दूध, घी, शक्कर आदि का प्रयोग करते थे। (सोसल लाइफ इन ऐंसियेंट इंडिया, पृ० १५९), कालिदास के वर्णन से प्रकट होता है कि धान तथा ईख की खेती प्रचुर मात्रा में होती थी—

इक्षुच्छायनिषादिन्यः तस्य गोप्तुर्गणोदयम्
आकुमार कथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः

(रघुवंश, ४।२०)

फाहियान ने लिखा है कि सारे देश में कोई अधिवासी हिंसा नहीं करता था। मद्य पीना तथा लहसुनप्याजा खाना ऊँच वंश में अज्ञात था। सूनागार और मद्य की दुकाने दीख नहीं पड़ती थी। केवल चांडाल मछली मारते तथा मांस बेचते थे।तात्पर्य यह है कि ऊँचे कुल के लोग मदिरा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा मांस भक्षण घृणित समझते थे। गुप्त अभिलेखों के अध्ययन से भोजन के मूल्य का अनुमान लगाया जाता है कि भोज्य पदार्थ अत्यंत सस्ते थे। द्वितीय चंद्रगुप्त के गढ़वा लेख में एक ब्राह्मण के लिए वार्षिक भोजन निमित्त दस दीनार (सोने का सिक्का) देने का वर्णन मिलता है। अल्प धन द्वारा गृहस्थ या शासक साधुओं को भोजन प्रदान करते थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी उल्लेख किया है कि भोजन के लिए सोने, चाँदी तथा ताम्बे के पात्रों का प्रयोग होता तथा समाज में घी, दूध, गेहूँ, शक्कर का अधिक व्यवहार होता था।

तत्कालीन क्रय-विक्रय के परिमाण का निर्धारण प्रमाणित नहीं हो सकता। द्वितीय चंद्रगुप्त के लेखों में स्थान-स्थान पर भिक्षुओं के भोजन निमित्त दान का उल्लेख है। बारह दीनार के सूद से प्रतिदिन एक भिक्षु के भोजन का प्रबंध होता था। दूसरे लेख में विवरण मिलता है कि आम्रकार्दव नामक व्यक्ति ने पचीस दीनार दस भिक्षुओं के वार्षिक भोजन व्यय निमित्त दान किया था। यह लेख चालीस वर्ष बाद उत्कीर्ण किया गया था परंतु इस अल्पकाल में भोजन सामग्री के भाव वृद्धि का अनुमान नहीं किया जा सकता। अतः वार्षिक भोजन व्यय बारह दीनार प्रति व्यक्ति मानना उचित होगा। गुप्तकालीन दीनार की तौल बारह मासे होती थी जिसका मूल्य बत्तीस रुपये था। इस प्रकार प्रति व्यक्ति का मासिक व्यय ढ़ाई रुपये ज्ञात होता है (देखिए—प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० ९२)।

समाज की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए नागरिकों के चरित्र का मूल्यांकन आवश्यक होता है। भारतवासियों का चरित्र सदा से उज्जल तथा पवित्र रहा है। गुप्त नरेशों ने किसी शत्रु का मानमर्दन नहीं किया और न साम्राज्य की लिप्सा में अत्याचार किया। समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ के पराजित राजाओं को उनका विजित राज्य लौटा दिया तथा नष्ट शासकों को पुनर्जीवित किया।

अनेक भ्रष्ट राज्योत्सन्न राजवंश प्रतिष्ठापनोद्भूत निखिल भुवन विचरण शांत यशसः

(प्रयाग स्तंभ लेख)

इस कार्य से उसका यश सर्वत्र फैल गया। फाहियान ने भी लिखा है कि भारतीय आदर्श नागरिक थे। गुप्तकाल में कोई व्यक्ति अधार्मिक, व्यसनी, दरिद्र, आर्त या पीड़ित न था—

आर्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो दंडो न वा यो भृश पीडितः स्यात्

(स्कंदगुप्त का गिरनार लेख—प्रा० भा० अ०, पृ० ३२६)

मृच्छकटिक में आर्य चारुदत्त के आदर्श चरित्र का सुंदर चित्रण मिलता है—

दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुण फलनतः सज्जनानां कुटुम्बी
आदर्शः शिक्षितानां सुचरितनिकषः शीलवेला समुद्रः
सत्कर्ता नावमन्ता पुरुष गुण निधिः दक्षिणोदार सत्वो
ह्येकः श्लाघ्यः सजीवत्यधिक गुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्य

(मृच्छकटिक, अ० १, श्लोक ४८)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्तकाल में स्त्रियों को उच्च श्रेणी का सम्मान तथा समादर प्राप्त था। मनु ने लिखा है कि भारत (प्राचीनकाल) में स्त्रियों का भी यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न किया जाता था (**पुराकल्पे तु नारीणां मौज्जीवंधनमिष्यते**)। इसका तात्पर्य यह है कि स्त्रियों को समान रूप से शिक्षा दी जाती थी। लौकिक तथा पारलौकिक कार्यों में गृहलक्ष्मी भी पति का साथ दिया करती थी। समुद्रगुप्त के अश्वमेध प्रकार के सिक्कों पर राजमहिषी का चित्र अंकित है जिससे प्रकट होता है कि राजमहिषी यज्ञ में भाग लेती रहीं। प्रभावती गुप्ता का नाम पूना ताम्रपत्र में उल्लिखित है जो राज्यकार्य कुशलता के साथ करती रहीं (प्रा० भा० अ०, पृ० ४१६)। गुप्तकाल में स्त्री शिक्षा का व्यापक प्रसार था। परदे की प्रथा अज्ञात थी। वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर सार्वजनिक कार्य में स्त्रियाँ भाग लेती रही। पुरातत्व-खनन से जो स्त्रियों की मृण्मयी मूर्तियाँ निकली हैं उनसे प्रसाधन का अनुमान लगाया जा सकता है। स्मृति ग्रंथों में अर्धांगिनी होने के कारण स्त्री को पति के चिता पर जलने का विधान मिलता है। गुप्तकाल में सती प्रथा के प्रमाण उपलब्ध हैं। एरण लेख के वर्णन से प्रमाणित होता है कि भानुगुप्त के सेनापति गोपराज की स्त्री सती हो गई थी। वाण ने भी लिखा है कि राज्यश्री स्वेच्छा से सती होने के लिए उत्सुक थी। स्त्रियों के दायाधिकार के विषय में तत्कालीन प्रशस्तियों में साक्ष्य नहीं मिलते। परंतु साहित्य के आधार पर तथा स्मृतियों के उल्लेख से दायाधिकार के अस्तित्व को भुलाया नहीं जा सकता। इस प्रकार गुप्तकालीन स्त्री-पुरुष के चरित्र का विवरण समाज के उन्नत अवस्था का द्योतक है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ६

गुप्त लेखों में आर्थिक-विवरण

भारत का जीवन ही पुरुषार्थ पर निर्भर है और समाज में धर्म के पश्चात् अर्थ को स्थान दिया गया है। प्रारंभिक काल से भारत में श्रेणियाँ (व्यापारिक संस्था) आर्थिक संगठन में लगी थी। प्राचीन भारत में व्यापार तथा उद्योग के सुसंगठित कार्य आर्थिक जीवन की विशेषता प्रकट करते हैं। ईसवी पूर्व सदियों में साम्राज्यवादी विचार धारा का उदय हुआ था और उसी काल से अर्थ नीति भी प्रभावित हुई। यह निश्चित रूप से ज्ञात है कि मगध के प्राचीन नंद वंश के शासकों ने देश के मापतौल पर अधिकार कर लिया था। श्रेणियाँ राज्य की अर्थ नीति का निर्देशन करती थी। उस समय धन का समाज में बँटवारा होता रहा। क्रमशः श्रेणियों की प्रभुता को मिटाने के लिए चाणक्य ने अर्थ नीति को केंद्रीभूत किया। मुद्रा नीति को राजकीय विषय घोषित किया तथा दो पदाधिकारियों की नियुक्ति की। कौटिल्य के अर्थ नीति को मौर्य सम्राट् अशोक ने पालन नहीं किया। उसने कोश के महत्व को नगण्य मानकर दान तथा 'कर-व्यवस्था' में छूट देकर राजकीय कोश को खाली कर दिया। कालान्तर में मौर्य राज्य के उत्तराधिकारियों ने कार्य पद्धत्ति में परिवर्त्तन किया तथा दक्षिण के सातवाहन नरेशों ने श्रेणी बैंकों को स्थापित कर धन जमा किया। सूद का भी प्रचलन आरंभ हुआ। नासिक गुहा लेख में इसके स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं (देखिए—प्रा० भा० अ०, पृ० १६५) शक एवं कुषाण नरेश अर्थ-नीति के परमविज्ञ थे। कनिष्क ने अंतर्राष्ट्रीय बाजार में जाने के लिए सोने का सिक्का चलाया। उस समय भारतीय व्यापारी रोम तथा मध्य एशिया तक व्यापार निमित्त जाया करते थे। मध्य एशिया में व्यापार के प्रसंग में भारतीय उपनिवेश बन गया और भारतीय संस्कृति का विस्तार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ। उस प्रसंग में रोमन सिक्के भारत में अधिक संख्या में आने लगे। यही कारण था कि रोमन नाम (डिनेरियस) तथा तौल (१२१ ग्रेन) को भारत की अर्थ नीति में अपनाया गया।

गुप्त शासकों ने भी उसी अंतर्राष्ट्रीय नीति को अपनाया। उन्होंने सोने के सिक्के तैयार किए तथा व्यापार सुदूर देशों तक विस्तृत किया। व्यापार के लिए ताम्रलिपि (वर्त्तमान ढाका) से जहाज दक्षिण पूर्व एशिया एवं द्वीपसमूह में जाने लगे। पूर्वी भारत के भूभाग को (समतट, डवाक) समुद्रगुप्त ने विजित किया जिसका विवरण प्रयाग प्रशस्ति में मिलता है। गुप्तकालीन जल तथा स्थल मार्गों से व्यापार में वृद्धि हुई। तत्कालीन लेखों के अध्ययन से भी आर्थिक जीवन का परिज्ञान हो जाता है।

भारत का मुख्य व्यवसाय कृषि रहा है तथा गुप्तकाल में जनता के जीविकोपार्जन का प्रधान साधन कृषि ही था। सभी प्रकार के अन्न तथा फल यहाँ पैदा होते थे। राजा समस्त भूमि का माप (Survey) कराकर छोटे-छोटे टुकड़ों में सीमा निर्धारित करता था। सिंचाई का बहुत अच्छा प्रबंध था तथा नहरों एवं तालाब से सिंचाई होती थी।

काठियावाड़ में चंद्रगुप्त मौर्य ने सुदर्शन नामक झील बनवाया था तथा उसके पौत्र अशोक ने उससे एक नहर निकलवायी जिसकी चर्चा गुप्त लेखों में भी मिलती है। गुप्तकाल में उस सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार सम्राट् स्कंदगुप्त ने किया।

अपीह लोके सकले सुदर्शनं पुत्रां हि दुर्दर्शनतां गतं क्षणात्

× × ×

धर्म पुरोधाम शुभानुबंधं राज्ञो हितार्थं नगरस्य चैव

(जूनागढ़ का लेख—प्रा० भा० अ०, पृ० ३२९)

उत्तर-गुप्तयुग में इसी विचार से प्रेरित होकर मगध के राजा आदित्य सेन की पत्नी ने भी एक वृहत् जलाशय का निर्माण कराया ताकि सिंचाई से भूमि उर्बरा हो सके—

तस्यैव प्रिय भार्यया नरपतेः श्री कोण देव्या सरः

(अफसद शिलालेख—वहीं)

आर्थिक अवस्था को सुदृढ़ करने के लिए समाज में कृषि के बाद व्यापार का प्रबंध किया जाता रहा। गुप्तकाल में व्यापार मुख्यतः छोटी-छोटी समितियों (श्रेणियों) के हाथ में था। नालंदा तथा वैशाली से गुप्तकालीन मुहरें प्राप्त हुई हैं जिनके परीक्षण से प्रकट होता है कि व्यापारिक संघ (वर्त्तमान चैम्बर आफ कामर्स) विद्यमान थे। व्यापार का कार्य गण पद्धति पर व्यवस्थित ढंग से चलता था। गुप्तलिपि में खुदी मुहरें इसके ज्वलंत उदाहरण है कि वैशाली एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था। उनमें व्यापारी, व्यवसायी तथा बैंक के कार्य में रत श्रेणियाँ थीं। वैशाली का गढ़ शब्द विवादास्पद हो गया है। गढ़ दुर्ग के लिए प्रयुक्त है यह कहना कठिन है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संभवतः गढ़ हाट या व्यापारिक केंद्र रहा हो। राजा विशाल का गढ़ कहने से किसी शासक के दुर्ग का बोध नहीं माना जा सकता। गुप्तकालीन मुहरें यह प्रमाणित करती है कि चौथी तथा पाँचवी सदी में निश्चित रूप में वैशाली एक प्रमुख व्यापारिक स्थल था। एक मुहर पर गुप्तलिपि में 'कुलिक हरिस्य' खुदा है। इससे उस बैंक समुदाय का पता चलता है जो भ्रमण किया करता था। साहित्य में भी श्रेणियों का विवरण पाया जाता है। व्यापारी, व्यवसायी आदि के संघ थे जिनके हाथ में सारा व्यापार था। आर्थिक नीति को वे प्रभावित करते रहे। श्रेणियाँ व्यापार तथा सिक्कों की शुद्धता पर ध्यान देती रहीं। इनका एक समुदाय था जिसके नियमों को सभी को पालन करना पड़ता था। नियमों का उल्लंघन करनेवाला हानि का उत्तरदायित्व लेता था। राजा भी इन संघों के नियमों का आदर करता था। स्मृति ग्रंथों (याज्ञवल्क्य, बृहस्पति तथा नारद आदि) में भी इनका विस्तृत विवरण पाया जाता है। महाजनों के अतिरिक्त जुलाहों (तंतुवाय) तैलियों, संगतराशों की भी श्रेणियाँ थी। यानी उच्च तथा निम्न सभी प्रकार की श्रेणियाँ संघटित थीं। गुप्त सम्राट् प्रथम कुमार गुप्त के राज्यकाल में पटकार समिति (तंतुवाय श्रेणी) का वर्णन मिलता है जो लाट से आकर दशपुर (मालवा) में निवास करने लगीं—

लाट विषयान्नगावृत शैलाज्जगति प्रथित शिल्पः
जातादरा दशपुरं प्रथमं मनोभिः
अन्वागताः ससुत बन्धु जनाः समत्यः

(मंदसोर प्रशस्ति—प्रा० भा० अ०, पृ० ३२१)

स्कंदगुप्त के लेख में— "**इंद्रपुर निवासिन्या तैलिक श्रेण्या**" (इंद्रपुर में रहनेवाली तेलियों की समिति) का उल्लेख मिलता है। उस समय शिल्पकार, वणिक आदि की भी श्रेणियाँ वर्त्तमान थीं। भीटा (प्रयाग के समीप) तथा वैशाली (उत्तरी विहार) की मुहरों में 'श्रेष्ठी सार्थवाह कुलिक निगम' का उल्लेख आया है (आ० स० रि०, १९०३-४)। लेखों में श्रेणी शब्द सर्वत्र व्यवहृत है। समिति के व्यापारिक नियम होते थे जिन्हें सभी सभासद को मानना पड़ता था। सदस्य समस्त कार्य संपादन करते थे। मंदसोर की प्रशस्ति में पटकार समिति के अनेक सदस्यों का उल्लेख है जो विभिन्न विधाओं में निपुण थे। कथा, संगीत तथा धर्म की चर्चा करनेवाले व्यक्ति भी सदस्य थे। धर्मशील एवं ज्योतिषी तथा साहित्यिक भी उसमें सम्मिलित थे। वस्त्र बुननेवालों (पटकार = तंतुवाय) की तो प्रधानता थी।

अधिकमविभाति श्रेणि एवं प्रकारैः

(प्रा० भा० अ०, पृ० ३२२)

हमारे युग में जो शक्ति तथा समृद्धि थी उसने अंतः प्रांतीय तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रगति प्रदान किया। श्रेणियों के विकास पर अपना प्रभाव पड़ा। वैशाली से इस प्रकार श्रेणियों की प्रायः तीन सौ मुहरें पायी गयी हैं। चूँकि श्रेणी की अनेक शाखाएँ थीं अतः किसी शाखा के पत्रों को प्रमाणित करने के लिए मुहरें (Seals) बनाई गई। उनमें ईशानदास, मातृदास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा गोभिस्वामी की अनेक मुहरें हैं। संभवतः ये प्रमुख नगरों में श्रेणियों के अध्यक्ष होंगे। वैशाली से दो व्यापारियों की संयुक्त मुहरें साझीदारी के रूप को प्रमाणित करती हैं।

श्रेणियाँ स्वतंत्र संस्था थीं। प्रायः शासक द्वारा ये नियम स्वीकृत तथा प्रतिष्ठित होते थे। याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि श्रेणियों का व्यवस्थित समुदाय था, नियमों का पालन करते थे तथा व्यापार में हानि-लाभ के उत्तरदायी थे—

समवायेन वणिजां लाभार्थं कर्म कुर्वताम्
लाभालाभौ यथा द्रव्यं यथा वा संविदा कृतौ

(याज्ञ० स्मृति, २।२५९)

राजा भी इनका समुदित आदर करता था तथा श्रेणियों के नियमों को ध्यान में रखकर अपना संविधान तैयार करता था—

पाषंडि नैगम श्रेणि पूग व्रात गणादिषु
संरक्षेत्समयं राज दुर्ग जनपदे तथा

(नारद, १०।२)

इसका मुख्य कारण यह था कि सभी समितियाँ अपने-अपने नियम में व्यवस्थित थी। इन पर जनता का विश्वास था। अतः बैंक का कार्य भी इन्हीं श्रेणियों पर निर्भर था। वैशाली मुहरों में नैगम के पृथक (Seal) मुहर मिली है। नैगम सिक्के भी प्रकाश में आए हैं (आ० स० रि०, १९०३-४)। गुप्त कालीन अग्रहार दान इन्ही श्रेणियों के अधीन था। श्रेणी सभा उस दानभूमि या द्रव्य को सुरक्षित रखती जिसके सूद से निर्दिष्ट कार्य संपन्न होते थे। इंदौर ताम्रपत्र में दीपक जलाने के निमित्त दान का वर्णन है। किसी उद्देश्य को सामने रखकर कार्य किया जाता था। दशपुर की पटकार समिति पर सूर्य मंदिर के पुनरुद्धार का भार था (मंदसोर प्रशस्ति)। यह समितियाँ जनता को धन पर कितना सूद देती थी यह अज्ञात है। इसके प्रमाण अभिलेखों में नहीं मिलते। परंतु तत्कालीन स्मृति ग्रंथों में पंद्रह प्रतिशत सूद का दर वर्णित है। यदि निगम (बैंक) कारणवश स्थान का परिवर्त्तन करती तो भी जनता का विश्वास खोती नहीं थी। प्रथम कुमारगुप्त के अभिलेखों में लाट (दक्षिण गुजरात) से आकर दशपुर (मालवा) में (बैंक) श्रेणी के स्थानांतरण का उल्लेख है (प्रा० भा० अ०, पृ० ३२१)। इस प्रकार स्थानांतरित होकर स्थान-स्थान पर व्यापार तथा शिल्प कार्य में श्रेणियाँ सहायता करती थी। जनता इनसे (श्रेणियों) द्रव्य उधार भी लेती थी। वर्त्तमान बैंकों के कार्य से प्राचीन श्रेणियों की तुलना की जा सकती है।

हमारे आलोच्य काल में व्यापारिक श्रेणियों द्वारा कार्यों तथा व्यापार की वस्तुओं के संबंध में कोई साक्ष्य नहीं है। संभावना इस बात की है कि आंतरिक व्यापार के मुख्य वस्तुएँ विभिन्न कपड़े, खाद्य पदार्थ, नमक, शक्कर, सोना, चाँदी तथा बहुमूल्य मणियाँ थी। विदेशी निर्यात में भी कपड़ तथा मणियाँ की गणना होती थी। चाँदी सदा आयात से उपलब्ध होता था। भरुकच्छ,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उज्जयिनी, विदिशा, प्रयाग, वाराणसी, गया, पाटलिपुत्र तक पश्चिम से पूर्वी भाग में सार्थवाह या श्रेणियों का समूह चला करता था। मथुरा, अहिछत्तर, से पूर्व ताम्रलिप्ति तक तथा पश्चिम में पेशावर (पुरुषपुर) तक मार्ग सुरक्षित थे और व्यापार के लिए माल का परिवहन उपरियुक्त स्थानों पर हुआ करता था। घोड़ागाड़ी द्वारा तथा नदियों (गंगा, ब्रह्मपुत्र, नर्वदा, गोदावरी आदि) के मार्ग से व्यापार होता था। नदियों द्वारा व्यापार सुविधाजनक था। पोत के निर्माण की बातें अज्ञान न थीं। सुदूर दक्षिण पूर्व एशिया एवं द्वीप समूह में ताम्रलिप्ति से जहाजें आया जाया करती थीं। यही बंगाल का मुख्य बंदरगाह था। जावा, चीन तथा लंका तक भारतीय व्यापार चलता था। कृष्णा के मुहाने तथा आंध्रप्रदेश के किनारों का संबंध बना था। व्यापार के प्रसंग में भारतीय संस्कृति के फैलाव को अधिक सहायता मिली। पश्चिमी देशों से अच्छे व्यापारिक संबंध थे। व्यापार के सुकर बनाने के लिए राजा आवश्यक स्थानों की सुरक्षा भी करता था। गुप्तकालीन लेखों में उस युग की संपत्ति, देश के पैदावार तथा व्यापार के कम ही संदर्भ मिलते हैं। फिर भी यात्रियों के विवरण तथा स्मृति ग्रंथों के उल्लेख से तत्कालीन आर्थिक दशा का परिज्ञान हो जाता है। वस्त्र निर्माण तो देश का मुख्य उद्योग था। प्रथम कुमारगुप्त के मंदसोर प्रशस्ति में पटकार समिति के कार्यों का वर्णन किया गया है। निगम व्यापार के अतिरिक्त व्यवसाय की शिक्षा (Technical Education) देता था। प्रत्येक सदस्य अपने बालक को श्रेणी के किसी कला में दक्ष बना देता ताकि पैत्रिक व्यवसाय की वृद्धि हो सके। विद्यार्थी संस्था में प्रवेश कर निश्चित समय तक व्यवसाय की शिक्षा ग्रहण करता था।

स्वशिल्पमिच्छन्नाहर्तुं बांधवानामनुज्ञया आचार्यस्य वसेदन्ते कालं कृत्वा सुनिश्चितम्

(नारदा स्मृति, ५/१६)

इन सब बातों से पता चलता है कि शिल्पियों तथा वणिकों के निकाय वैभवपूर्ण तथा शक्ति संपन्न होते थे। वे जनता के विश्वासपात्र थे। स्थायी आर्थिक नीति के कारण ही वैंक का उपयोग समाज में होता रहा। धन-हानि की कभी आशंका न थी। सर्वसाधारण भी व्यवसाय से धन-संग्रह कर सकता था।

विभिन्न प्रशस्तियों में दान के प्रकरण में तीन प्रकार की चुंगी का उल्लेख किया है। सर्वप्रथम वह 'कर' जो बाजार में बिकने वाली वस्तुओं पर लगता था। दूसरे प्रकार का 'कर' व्यवसाय (कारखाने) पर आरोपित किया जाता तथा तीसरे प्रकार का 'कर' मेला में क्रय-विक्रय से संबंधित था। दान देने पर दानग्रहीता सभी करों' की वसूली करता था। लेखों में बाजार के लिए 'हाट' तथा चुंगी घर के लिए 'मंडपिका' शब्द प्रयुक्त है। बेचने तथा खरीदने वाले दोनों व्यक्तियों को 'कर' देना पड़ता था। इसी प्रसंग में विभिन्न सिक्कों का उल्लेख किया गया है।

बाजार में माल ढोने के लिए बैल, ऊंट तथा बैलगाड़ी का प्रयोग होता था। पशुओं तथा गाड़ियों पर सामग्री की मात्रा एक सी नहीं रहती। इस कारण 'कर' भी न्यून या अधिक हुआ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करता था। गुप्तलेखों में तैलिक तथा पटकार श्रेणियों का वर्णन है। यानी दो प्रकार का व्यवसाय प्रमुख रहा। इसलिए 'कर' की मात्रा एक समान थी। तैलिक श्रेणी दीपार्थ (कर के रूप में) तेल दिया करती तथा तंतुवाय को 'नकद कर' देना पड़ता था।

आर्थिक नीति का निर्धारण करते समय गुप्त शासक मुद्रा (सिक्का) के प्रचलन पर भी ध्यान देते रहे। गुप्तकाल से पूर्व कुषाण वंशी राजाओं ने सोने का सिक्का चलाया था जो अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रचलित रहे। उनके लेखों में इसका वर्णन नहीं मिलता परंतु गुप्त शासकों ने पिछले कुषाण सिक्कों का अनुकरण किया था। इस युग में भी व्यापार सुदूर पश्चिम तथा दक्षिण पूर्व एसिया तक विस्तृत था। अतएव अंतर्राष्ट्रीय माप के लिए स्वर्ण मुद्रा का प्रचलन ही परमावश्यक था। रोमन सिक्कों की तौल (१२१ ग्रेन) को अपनाया गया तथा उसके सिक्का दिनेरियस (Denarius) का संस्कृत नाम करण-दीनार किया गया। प्रथम चन्द्रगुप्त ने महाराजाधिराज पदवी धारण करने के साथ सिक्कों का निर्माण कराया। उसने कुमार देवी (लिच्छवि राजकुमारी) के साथ स्वर्ण मुद्रा आरंभ की और संपूर्ण राज्य में संयुक्त मुद्राएँ प्रचलित की थी। इसमें लिच्छवि को बहुमूल्य सहायता का संदेह किया जा सकता है। उस सिक्के पर अग्रभाग में राजा रानी खड़े हैं। दोनों के नाम उनके पार्श्व में उत्कीर्ण हैं। पृष्ठभाग पर 'लिच्छवयः' शब्द लिच्छवियों का आभार प्रकट करता है। गुप्त सिक्कों के अध्ययन से उस युग की आर्थिक स्थिरता का परिज्ञान होता है। स्वर्ण मुद्राओं की वृद्धि आर्थिक स्थिति का द्योतक है। प्रथम चंद्रगुप्त के पश्चात् समुद्रगुप्त ने छः प्रकार के सिक्के प्रचलित किए। दक्षिणा पथ से समुद्रगुप्त को 'कर' के रूप में स्वर्ण अधिक मात्रा में मिली होगी। तभी अश्वमेघ के पश्चात् अश्वमेघ प्रकार के सोने के सिक्के दक्षिणा देने के लिए शुरू किया। प्रयाग प्रशस्ति में समतट डवाक (तामलुक, बंगला देश) का उल्लेख आया है। ताम्रलिप्ति बंदरगाह से सुवर्ण द्वीप तक व्यापार बढ़ने लगा। बहुत संभव है कि वहाँ से सोने के आयात के कारण द्वितीय चंद्रगुप्त ने सोने के सिक्के का तौल बढ़ा दिया। १२१ ग्रेन से १२४ ग्रेन की वृद्धि हुई तथा अनेक शैलियों के सोने के सिक्के प्रचलित किए गए। पश्चिमी भारत को जीतकर उसने रजत मुद्रा भी आरंभ किया था। गुप्तयुग में आर्थिक समृद्धि उत्तरोत्तर बढ़ती गई। प्रथम कुमार गुप्त के चौदह प्रकार की स्वर्ण मुद्राएँ उस प्रगति का संकेत करती हैं। इस शासक ने पश्चिमी भारत के रजत मुद्रा के सदृश गुप्तराज्य में भी (मध्यदेश) रजत सिक्के चलाया था। किंतु अंतिमकाल में राजनीतिक स्थिति में अस्थिरता एवं हूण आक्रमण के कारण आर्थिक दशा में ह्रास आ गया। प्रथम कुमार गुप्त के रजत मंडित मुद्राएँ आर्थिक मंदी के साक्षी हैं। चांदी का आयात प्रायः बंद हो गया अतः गुप्त सम्राट् ने ताम्र सिक्कों को चांदी का पानी चढ़ाकर रजत मुद्राएँ घोषित की। परिस्थिति के अध्ययन से प्रकट होता है कि अर्थ की तंगी के कारण रजत मंडित मुद्राएँ निकालने के लिए प्रथम कुमारगुप्त को बाध्य होना पड़ा। यह मंदी कालांतर में भी दीख पड़ती है। पिता के शासनकाल की स्थिति में स्कंदगुप्त सुधार न ला सका और दो ही प्रकार के सोने के सिक्के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रचलित किए। वह भी मिश्रित सोने की मुद्रा थी। रोमन तौल (१२१ ग्रेन) को त्याग कर भारतीय तौल को अपनाया। द्वितीय चंद्रगुप्त ने ही १२४ ग्रेन तौल बढ़ाया था जिसकी प्रथम कुमारगुप्त ने १३२ ग्रेन तक वृद्धि की। स्कंदगुप्त ने भारतीय सुवर्ण तौल माप का अनुसरण कर स्वर्ण मुद्राएँ १४४·६ ग्रेन तौल के बराबर प्रचलित किया। विश्लेषण से पता चलता है कि तौल-माप की वृद्धि होती गई परन्तु धातु की शुद्धता हीन हो गई। यह आर्थिक स्थिति के ह्रास का द्योतक है। पश्चिमी भूभाग के पृथक हो जाने के कारण स्कंदगुप्त के उत्तराधिकारी गरुड़ प्रकार के रजत सिक्के प्रचलित न कर सके जो पश्चिम भारत में सदियों से प्रचलित रहे। चांदी का आयात भी कम होता गया। पश्चिम भारत के पृथक हो जाने पर ईरान तथा पूर्वी अफ्रीका से व्यापारिक संबंध टूट गया और इसी कारण रजत के आयात में कमी आ गई। उत्तरगुप्त युग में बुधगुप्त ने मध्यदेशीय मयूर प्रकार के रजत सिक्कों को चलाया था परंतु उससे आर्थिक हीनता का ही पता चलता है। धातु सिक्कों के आपेक्षित मूल्य का अध्ययन भी इसी परिणाम पर ले जाता है। यद्यपि इस समस्या का प्रतिपादन कठिन है तथा विषय की सामग्री का अभाव है तथापि लेखों में यत्र तत्र वर्णन से आपेक्षित मूल्य का अनुमान लगाया जा सकता है। गुप्तयुग में स्वर्ण तथा रजत सिक्कों का भार क्रमशः १२० ग्रेन तथा ३० ग्रेन था। पांचवी सदी के मध्य में स्वर्ण मुद्राओं का भार १४८ ग्रेन तक पहुँच गया। स्वर्ण तथा रजत सिक्कों को क्रमशः दीनार तथा द्रम कहते रहे। साहित्य तथा लेख में दीनार शब्द प्रयुक्त है। प्रथम कुमारगुप्त के वैग्राम लेख से तत्कालीन सोने चांदी के सिक्कों के सापेक्षित अनुपात निश्चित किया जा सकता है। उसमें वर्णन आया है कि तीन कुल्यावाप (जमीन का माप) भूमि का मूल्य ६ दीनार (स्वर्ण मुद्रा) था तथा एक चौथाई कुल्यावाप भूमि आठ रूपक (चांदी के सिक्के) में विक्रय होती थी (ए० इ०, भा २१, पृ० २१ **षड् दीनारानष्ट च रूपकाना**)। इसका अर्थ यह था कि १६ चांदी के सिक्के एक सोने के सिक्के के मूल्य के बराबर थे। अतएव सोने चांदी का अनुपात ७:२ होता है। स्कंदगुप्त के शासन में स्वर्ण मुद्राएं पचास प्रति शत मिश्रित सोने की थी। जिससे ७:१ का अनुपात प्रकट होता है। इस युग की स्मृतियों में १४४ ग्रेनवाले सोलह ताम्रपण सोलह चांदी के कार्षापण के तुल्य थे। गुप्तकालीन ताम्र मुद्राएँ ९०,७५,६०,४०,२०,१० ग्रेन भार वाली मिली है। इस प्रकार के परीक्षण से क्रमशः गुप्तकालीन आर्थिक हीनावस्था के प्रमाण मिलते हैं। गुप्त सिक्के व्यापार के साधन थे। अतएव उनके देखने तथा परीक्षण से वास्तविक आर्थिक दशा का संकेत मिलता है। यदि सिक्कों का अध्ययन किया जाय तो इतिहास, समाज तथा धर्म संबंधी बातें भी ज्ञात हो जाती हैं। आर्थिक इतिहास में सिक्कों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

भूमि का स्वामित्व

कृषि प्रधान होने के कारण भूमि संबंधी समस्याएँ अनेक थीं। जमींदारी नामक कोई संस्था उस युग में वर्त्तमान न थी। भूमि का स्वामित्व कृषकों को था। गुप्त लेखों में जिस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूप में भी अग्रहार का वर्णन है, उस स्थिति में ग्रहीताओं को राजस्व पाने का ही अधिकार था। प्रदत्त गाँवों में उन्हें निवास करना पड़ता था। कृषकों को बेदखल नहीं कर सकते थे। स्मृतियों में पट्टेदारी का विवरण मिलता है। कृषक परिश्रम के बदले पैदावार का कुछ भाग लिया करता था। भूमि के स्वरूप अनुकूल उसका मूल्य बदलता रहता था। एक कुल्यावाप (भूमिमाप) भूमि दो या तीन दीनार (सोने की मुद्रा) में बेची जाती थी। भूमि ही संपत्ति का सर्व से मूल्यवान रूप था। इसका स्वामित्व परिवर्त्तन गांव की परिषद् की सहमति से होता था भूमि के स्वामित्व का परिवर्त्तन साधारणतया संभव न था, किंतु ग्रामवृद्धों की उपस्थिति में ही ऐसा होता जिसकी सीमा निर्धारित की जाती थी। गुप्तकालीन अभिलेख यह प्रकट करते हैं कि परती तथा बंजर जमीन का विक्रय ग्रामपंचायत के अनुमति से ही संभव था। उर्वरा भूमि को कुछ टुकड़े ग्रामों में राज्य की संपत्ति समझे जाते थे। इसका कारण यह था कि 'कर' प्रदान न करने की स्थिति अथवा उत्तराधिकारी के अभाव में राजा उस भूमि पर अधिकार कर लेता था। दान करते समय भी राजकीय 'करों' का ग्रहण करना मात्र ही ग्रहीता को प्राप्त होता अपितु स्वामित्व कृषक के हाथ में ही रहता। दान कर्त्ता ग्रहीता को कर ग्रहण करने का आग्रह करता न कि स्वामित्व का अधिकार देता। राजा के उत्तराधिकारी भी स्वामित्व के प्रश्न पर अधिक विचार नहीं करते अपितु राज देयों के वसूली में संलग्न रहते थे। इस प्रकार गुप्तकाल में कृषक को ही भूमि का स्वामित्व प्राप्त था।

भूमिमाप

गुप्तकालीन अभिलेखों में दान के प्रसंग में क्षेत्र की सीमा निर्धारित करते समय भूमिमाप का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। भूमि का राजस्व या बंधक के प्रसंग में माप करने की आवश्यकता थी अतः दानपत्रों में विभिन्न प्रकार के माप का वर्णन मिलता है। पहली श्रेणी में खेत की लंबाई चौड़ाई मापने के साधन का उल्लेख है। उनके नाम हैं—

(१) हल
(२) पादावर्त
(३) हाथ
(४) निर्वतन
(५) नल या नालक

प्रथम शब्द का भाव यह था कि एक हल से जितनी भूमि जोती जाय। उसका 'हलमाप' से उल्लेख है (हलस्य भूमि :—ए० इ०, भा० १, पृ० १६७) कहीं दान में **'पंच हलानि वहिष्कृत्य शेष भूमि शासनी कृत्य प्रदत्ता'** (ए० इ० भा० २०, पृ० १२९) वाक्य आया है। यानी पाँच हल भूमि को छोड़कर शेष दान में दिया गया। दूसरे माप को 'पादावर्त' कहते थे। बारह पादावर्त भूमि एक कुँआ से सीचने के योग्य समझी जाती थी। एक पादावर्त भूमि एक वर्ग पाद (९ इंच)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के बराबर मानी गई है। क्षेत्रफल-माप से सर्वथा भिन्न खेतों के नापने का वर्णन 'बीजमाप' से दिया गया है। गुप्त प्रशास्तियों में (दामोदरपुर ताम्रपत्र) 'कुल्यवाप' शब्द का अधिक प्रयोग मिलता है। दामोदरपुर, बैग्राम तथा पहाड़पुर के दान पत्रों में (सभी पूर्वी भारत) यह शब्द बार-बार आया है (ए० इ०, भा० १५, भा० २१, भा० २०, पृ० ६१)। निम्नलिखित उद्धरण गुप्त लेखों से प्रस्तुत किये जाते हैं—

(१) क्षेत्रस्य कुल्यवाप मेकस्य।
(२) त्रिदीनारिक कुल्यवाप विक्रम।
(३) खिल क्षेत्र कुल्यवाप त्रपं।
(४) कुल्यपेन क्षेत्राणि विक्रयमानकानि।

स्पष्ट है कि पांचवी सदी से ही कुल्यवाप क्षेत्रमाप के लिए उत्तरी भारत में प्रयोग होने लगा। इस शब्द के दो खंड हैं—कुल्य + वाप (= टोकरी + बोना) कुल्य की समता एक टोकरी से की जा सकती है। इसका तात्पर्य है कि एक टोकरी भरे बीज से बोने योग्य भूमि। डा० अलतेकर का मत था कि कुल्यवाय एक एकड़ भूमि के लगभग था। निर्वतन ढ़ाई एकड़ के लगभग। लेखों में द्रोण शब्द भी भूमिमाप के लिए प्रयुक्त है जो कुल्यवाप से छोटा था। आठ द्रोण = १ कुल्य। इसलिए द्रोण मात्र बीज बोनेवाली भूमि 'द्रोणवाप' कही गयी। निम्न उल्लेख आते हैं—

धान्य द्रोण द्वयं शिवे।
(ए० इ०, भा० १, पृ० १०६)

यवानां द्रोणं एकादश।
(वही पृ० १५९)

इसी कारण कुल्यवाप से छोटा द्रोणवाप भूमि का माप माना गया (इ० हि० क्वा०, भा० ४, पृ० ५३) अन्य लेखों में पाटक शब्द का भी संबंध कुल्यवाप से जोड़ा गया है।

८ द्रोण = १ कुल्यवाप।
५ कुल्यवाप = १ पाटक (४० द्रोणवाप)

अनुमानतः एक कुल्य को पार्जिटर ने एक एकड़ माना है जिसका साक्षी नहीं है। अतएव द्रोण, कुल्य, पाटक बीज के माप थे जिससे जितनी भूमि बोई जा सके। उसे क्षेत्रमाप के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ७

गुप्त अभिलेखों में धार्मिक चर्चा

भारत का प्राचीनतमधर्म वैदिकधर्म था। इसमें कर्मकांड की प्रधानता थी और यज्ञ-यागादि पर विशेष ध्यान दिया जाता था। दैनिक कार्यों में पंचयज्ञ का विधान था। उपनिषद युग में कर्मकांड के स्थान को ज्ञानकांड ने ले लिया। मानव का ध्यान दार्शनिक गुत्थियों के सुलझाने की ओर आकृष्ट किया गया। दार्शनिक विचारों की सतत भावना में ज्ञान को स्थान दिया गया और ईश्वर जीव का पारस्परिक संबंध तथा जीवन की असारता पर विचार करना ही उनका प्रमुख विषय था। नित्य प्रति अश्वमेध या गोमेध में जनता की रूचि न रही। कालांतर में दार्शनिक समस्याओं को सुलझाना मनुष्यों के लिए रहस्य हो गया। जनता नए विचारों को लेकर चलना चाहती थी जिससे उनके प्रश्नों का समाधान हो सके। इसी कारण नये मत का उदय हुआ जिसे बौद्ध एवं जैनधर्म कहते हैं।

भारतीय धर्म और दर्शन के इतिहास में गुप्तकाल एक महत्वपूर्ण युग था जिस काल में वैदिक धर्म पर आधारित पौराणिक मत का प्रचार हुआ और शासकों में धार्मिक विचार तथा सहिष्णुता की भावना भरी थी। ईसवी पूर्व सदियों में मौर्य युग में बौद्धमत को राजाश्रय मिला अतएव उसका वेग तथा कार्य प्रगति पर रहा। जैनमत भी उससे पीछे न था। इन्हें सुधारवादी आंदोलन कहने में अत्युक्ति न होगी। ईसवी पूर्व सदियों में ब्राह्मण मत में भी नवजागरण के विचार जागृत हुए। पौराणिक साहित्य में उन विचारों का विवरण मिलता है। ईसवी पूर्व शताब्दी में महाभारत एक ऐसा विश्वकोश संकलित हुआ जिसमें हिंदूसमाज के धर्म, दर्शन तथा नीतिशास्त्र के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया तथा नवहिंदूधर्म के मुख्य सिद्धांतो को लोकप्रिय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनाया गया। जिन सुधारवादी आंदोलनों में वर्ण व्यवस्था के लिए स्थान न था किंतु के प्रतिकूल पौराणिक धर्म में वर्णाश्रम धर्म की प्रमुखता रही। मनु ने समाज का बँटबारा किया तथा वर्ण एवं आश्रम का प्रतिपादन किया। गुप्तयुग में वही प्रणाली काम करती रही। हिंदूधर्म के दार्शनिक पक्ष तथा संप्रदायों—मीमांसा, योग, न्याय आदि की शिक्षाओं को व्यवस्थित रूप से समाज में उपस्थित किया गया। अवैदिक मतों में निर्वाण या कैवल्य पर विशिष्टि बल दिया गय जिसकी प्राप्ति ही भिक्षुओं का लक्ष्य था। हिंदूधर्म में भी मुक्ति की प्राप्ति अंतिम लक्ष्य था। भगवान के विभिन्न स्वरूप के प्रति भक्तों में उद्गार पैदा किया गया एवं भक्ति के सहारे मोक्ष लाभ का मार्ग बतलाया गया। भागवत मत के प्रभाव से हीनयान मत वाले अछूता न रह सके तथा ईसवी सन् में महायान का जन्म हुआ। इस नए संप्रदाय ने दृढ़ता पूर्वक कहना आरंभ किया कि गौतम बुद्ध धर्मकाय के अवतार थे। आवश्यकनुसार बार-बार अवतार ग्रहण करेंगे। बौद्धमत के महायान मत में देववाणी ने प्राकृत का स्थान लिया। संसार का कल्याण उनका लक्ष्य था। इस उच्च विचार का स्वरूप बोधिसत्व में प्रतिध्वनित होता है। इस संसार में बुद्ध का प्रतिनिधि बोधिसत्व हैं जो सदा दुर्बल तत्त्वों की सहायता के लिए उद्यत रहते हैं तथा मानव के निर्वाण के लिए स्वेच्छापूर्वक पुण्य उन्हें दे देते हैं। ईसवी पूर्व दूसरी सती से ईसवी सन् की दो सौ वर्षों तक धर्म तथा दर्शन के क्षेत्र में पर्याप्त विचार प्रस्तुत किए गए। गुप्तयुग में वह विवेचन सदा प्रगति पर था। गुप्त युग में धार्मिक सहिष्णुता की कोई विरोधी बातें दीख नहीं पड़ती परंतु प्रतिद्वंदी आंदोलनों के वाद-विवाद का प्रतिबिंब साहित्य में मिलता है। ईसवी पूर्व साहित्य में पारस्परिक खंडन के विचार दीख नहीं पड़ते। पौराणिक या हीनयान साहित्य में किसी के सिद्धांतों पर आक्रमण नहीं दृष्ठिगत होता। गुप्तकाल में पौराणिक साहित्य की पूर्णता हो चुकी थी एवं दार्शनिक पदत्तियों (स्कूल का वर्गीकरण हो गया था। क्रमशः उनके विचारों में विभिन्नता प्रकट होने लगी। यही कारण था कि ब्रह्मसूत्र तथा न्यायसूत्रों में अवैदिक मतों (बौद्ध तथा जैन) का खंडन का आरंभ हो गया था तथा तीक्ष्णता आ गई थी। गुप्त युग में पारस्परिक खंडन मंडन का वातावरण स्पष्ट दीख पड़ता है। वात्स्यायन तथा दिङ्नाग के विचार विरोधी तथा अलोचनात्म प्रकट होते हैं। उनमें विश्लेशण तथा खंडन मंडन की प्रमुखता थी।

गुप्तकाल में शासक सहिष्णु थे अतएव हिंदू तथा बौद्ध धर्मों में संतुलन विद्यमान था। दोनों पक्षों के साहित्यिकों में शास्त्रार्थ होने लगे। समुदायों के दार्शनिकों में शास्त्रार्थ के होते हुए भी समाज तथा आधारभूत उनके सिद्धांतों के मूल में एकरूपता थी। कोई भी व्यक्ति अपने अनुकूल विभिन्न सिद्धांतों का समन्वय कर सकता था और किसी भी भेदभाव को राजकीय संरक्षण प्राप्त था।

बौद्धधर्म

भारत की प्रशस्तियाँ इतनी बड़ी निधि है कि सभी प्रकार के ज्ञान प्राप्त किए जाते हैं। अभिलेखों का वर्गीकरण यह प्रकट करता है कि अधिकतर लेख धार्मिक भावना से प्रेरित होकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिखे गए थे। मौर्य सम्राट् अशोक ने धार्मिक सिद्धांतों के प्रतिपादन हेतु लेख खुदवाया था। डॉ० भंडारकर ने उसके लेखों के आधार पर सिद्ध कर दिया है कि अशोक बौद्ध धर्मानुयायी था। अहिंसा के सिद्धांत पर अटल रह कर उसने बौद्ध मत का प्रचार तथा प्रसार किया था। स्वयं भिक्षु बनकर प्रजा के संमुख आदर्श उपस्थित किया था। उसके लेख व्यक्त करते हैं कि उस समय बौद्ध मत राजधर्म का स्थान प्राप्त कर चुका था। कालांतर में राजाश्रय न मिलने से बौद्ध अनुयायियों तथा उपासकों की संख्या कम होने लगी। समाज में उस मत का घोर विरोध न था। शुंग काल में भी बोधगया, सांची तथा भरहुत में अनेक स्तूप, वेदिका तथा तोरण निर्मित हुए। ईसवी पूर्व उन्हीं सदियों में गीता तथा मनुस्मृति की रचना हो गई थी। ब्राह्मण मत के इन धार्मिक ग्रंथों तथा विचारों का प्रभाव बौद्ध मत हीनयान पर पड़ा और वैष्णव मत के कार 'महायान' मत का उदय हुआ। कनिष्क इस मत का समर्थक शासक था। गान्धार, मथुरा तथा सारनाथ में विशाल बौद्ध प्रतिमाएँ बनी तथा पूजित होने लगी।

गुप्तकाल में बौधमत के प्रसार का आभास सारनाथ की बौद्ध मूर्तियों से मिलता है जो सारनाथ शैली के नाम से संबंधित हैं। कई गुप्तवंशी अभिलेख भी बुद्ध प्रतिमा की चौकी पर खुदे हैं। एक लेख में वर्णन है कि चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के सेनापति आम्रकार्दव ने काकनड महाविहार में एक ग्राम तथा २५ दीनार दान दिया था। प्रथम कुमारगुप्त का एक लेख मनकुवारं (इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश) की बुद्ध प्रतिमा के आधार-शिला पर खुदा है। यह लेख **'नमों बुधान'** की प्रार्थना से आरंभ है। उस पर **'इमं प्रतिमा प्रतिष्ठापिताभिक्षु बुद्धिमित्रेण'** खुदा है। प्रथम कुमारगुप्त के शासन काल ई० स० ४४८ में (गु० स० १२९+३१९) यह प्रतिमा स्थापित की गई थी। इसी के समय (गु० स० १३५) मथुरा में एक बौद्ध लेख प्राप्त हुआ है। गुप्तकालीन बौद्ध प्रतिमाओं पर अंकित लेख में द्वितीय कुमारगुप्त तथा बुधगुप्त के नामोल्लेख तथा गु० स० में तिथियों (क्रमशः १५४ व १५७) मिलती हैं (प्रा० भा० अ०, पृ० ३३६–३३७)। बुद्ध की इन प्रतिमाओं को अभय मित्र ने बनाया था। चीनी यात्री फाहियान के विवरण से भी गुप्त युग के बौद्धमत पर प्रकाश पड़ता है। उसने हिंदू धर्म के साथ बौद्धमत के प्रचार का वर्णन किया है। यात्रामार्ग में फाहियान ने अनेक बौद्ध विहारों को देखा था। उसके कथन की पुष्टि निर्मित बुद्ध प्रतिमाओं से होती है। इतना ही नहीं बौद्धधर्म में मंजुश्री की कल्पना चौथी शताब्दी की है। इस प्रकार अभिलेख में उल्लिखित चर्चा से धार्मिक विचारों की संपुष्टि तथा बौद्धधर्म के प्रचार की बातें ज्ञात हो जाती हैं।

गुप्तयुग में बौद्धधर्म की शाखा—महायान की लोकप्रियता बढ़ती गई और उनके दार्शनिकों की महत्ता भी। बौद्ध पंडितों द्वारा प्रतिपादित दर्शन का समाज में आकर्षण था। आर्यदेव, असंग, बसुबंधु तथा दिङ्नाग ऐसे दार्शनिक कम थे जो जनसाधारण के चित्त को आकर्षित कर सकें। निरीश्वरवाद के विचार का प्रायः अंत हो गया। लोकोपकारी दैवी सहायक बोधिसत्व का सिद्धांत सामने आया। धर्मकाय के गूढ़तम विचार ने अनत्त (आत्मा की असत्ता) की बातों को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निसार बना दिया। मानव जीवन की अंतिम अभिलाषा सदा निर्वाण में निहित थी। अपितु बोधिसत्व उच्च विचार द्वारा तथा सुकृतों सहित (बहुजन सुखाय बहुजन हिताय) कल्याण करना चाहता था। वह भी आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग था। बसुबंधु ने अपने तर्कशास्त्र द्वारा हमारे युग में बौद्ध तर्कशास्त्र की नींव डाली। गुप्त शासकों ने बौद्धधर्म के विरोध में कोई कदम नहीं उठाया। किंतु बौद्धकला की उन्नति की। विहारों का निर्माण तथा चित्रित गुफाओं द्वारा बुद्धधर्म का प्रदर्शन यह प्रकट करता है उस युग में बुद्धधर्म का सतत विकास होता रहा।

जैनधर्म

जैनधर्म का प्रचार एवं प्रसार ईसवी पूर्व सदियों से हो रहा था। गुप्तयुग से पूर्व ही इसकी दोनों शाखाओं-दिगंबर तथा श्वेतांवर का विभिन्न भूभाग में कार्य संचालन चल रहा था। उत्तर प्रदेश का मथुरा प्रदेश श्वेतांबरों का प्रधान केंद्र था। परंतु दक्षिण भारत में दिगंबर मत का ही अधिक प्रचार था। यही कारण है कि मथुरा में कुषाण तथा गुप्तयुग में जैनमत के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर की प्रतिमाएँ बनाई गई। इस स्थान के अमोहिनी द्वारा प्रदत्त आयागपट्ट पर अभिलेख उत्कीर्ण है। जिसके मध्य महावीर की मूर्त्ति है। लखनऊ संग्रहालय में ऐसी महावीर की मूर्तियाँ सुरक्षित है जिन पर कुषाण लेख खुदे हैं। गुप्तयुग में भी ऐसी प्रतिमाओं का अभाव न था जिनके आधार शिला या चरण चौकी पर लेख उत्कीर्णन हो। गु० स० ११३ का मथुरा से एक लेख प्राप्त हुआ था जिसमें हरिस्वामिनी द्वारा जैन प्रतिमा के दान का वर्णन है। स्कंदगुप्त के शासनकाल में गु० स० १४१ भद्र नामक व्यक्ति ने आदि कर्तृन प्रतिमा सहित स्तंभ स्थापना की थी। वह लेख कहौम (जिला गोरखपुर, उ० प्र०) से प्राप्त हुआ है। लेख निम्न प्रकार है—

श्रोयोर्त्थ भूतभत्यै पथि नियम वताम् अर्हतां आदिकर्तृन्।

(का० इ० इ० भा० ३, पृ० ६७)

आदिकर्तृन से आदिनाथ, नेमिनाथ, शांतिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर इन पांच तीर्थंकरो की मूर्त्तियां समझी गयी हैं। उदयगिरि-गुहा (मध्यप्रदेश) में शंकर द्वारा पार्श्वनाथ की मूर्त्ति की स्थापना का वर्णन मिलता हैं (वहीं संख्या ६१) मथुरा मेंगुप्तकालीन अनेक जैनमूर्तियाँ मिली है जिससे जैनमत के प्रचार की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। उत्तरी बंगाल से भी अभिलेख प्राप्त हुआ है। पहाड़पुर (राजशाही, बंगलादेश) के अभिलेख में वर्णन है कि एक ब्राह्मण ने बटगोहली नामक स्थान में स्थित जैन प्रतिमा के पूजा निमित्त अग्रहार दिया था (ए० इ०, भा० २०, सं० ५) फाहियान ने वर्णन किया है कि जिस समय सूर्य पश्चिम में रहता है तो जैनियों के देवालय पर भगवान् के बिहार की छाया पड़ती है। जैनियों में पूजन की परिपाटी थी। महावीर की मूर्ति को सुवासित तैल और जल में स्नान कराया जाता था और उसपर पुष्पमालायें तथा सुगंधित द्रव्य चढ़ाये जाते थे। उसके आगे धूप दीप भीजलाये जाते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त युग को जैन विहारों में पर्याप्त दान दिया गया था। उस दान की आधी आय कर्मकांड में व्यय की जाती तथा शेष भिक्षुओं के भरणपोषण में व्यय होता था। इस युग में जैन अनुयायियों की संख्या तथा प्रचार का वास्तविक लेखा-जोखा नहीं दिया जा सकता। गुप्तकाल में जैन पंडितों ने अपने साहित्य का स्वरूप भी निश्चित किया था। बौद्धों तथा हिंदू धर्मों की तरह जैनमत में परिवर्तन या विकास का अभाव देखते हैं। उनका धर्म दर्शन अधिकतर रूढ़िरक्षक था। दार्शनिकों ने अपनी व्याख्याएँ लिखी। सिद्धसेन दिवाकर पाँचवी सदी का प्रसिद्ध तर्कवादी था जिसे जैन तर्कशास्त्र का जनक कहते हैं। राजाओं तथा जनता ने जैनमत को आश्रय तथा सम्मान भी प्रदान किया। कालांतर में जैन साधुओं में कुछ बुरी प्रवृत्तियाँ आ गई जिस कारण भिक्षु रंगीन वस्त्र धारण करने लगे तथा आराम का जीवन व्यतीत करना आरंभ किया। गुप्तकाल के पश्चात् राजपुताना तथा वलभी जैनमत के प्रसिद्ध केंद्र थे। इस प्रकार अभिलेख से अधिक साहित्य से जैनमत संबंधी ज्ञान प्राप्त होता है। गुप्त युग में शासक सहिष्णु थे और जनता जैनमत को दान देकर आदर किया करती थी। ब्राह्मण धर्म से जैनियों ने वादविवाद को प्रोत्साहन नहीं दिया जिस कारण आज भी उनकी स्थिति बनी है।

वैदिक धर्म एवं पौराणिक मत

ईसवी पूर्व शताब्दियों में मौर्य युग के पश्चात् बौद्ध सिद्धांतों का जनता ने स्वागत नहीं किया। उसमें वर्ण तथा आश्रम के लिए कोई स्थान नहीं था। इस कारण विरोध होने लगा। अशोक के मृत्यु बाद ब्राह्मण धर्म का जागरण हो गया। समस्त भारत में वैदिक यज्ञादि होने लगे। दक्षिण भारत के सातवाहन राजा सातकर्णि की पत्नी नायनिका के नानाघाट लेख में पति द्वारा मेधों का वर्णन मिलता है। पुष्यमित्र को दो अश्वमेध का कर्त्ता कहा गया है (**द्वि अश्वमेध याजिन सेनापतेः पुष्यमित्र**—अयोध्या का लेख) गुप्तों से पूर्व भारशिव राजाओं ने वाराणसी में दश अश्वमेध किया था जिस कारण उस स्थान का नाम दशाश्वमेध रखा गया है। ईसवी सन् ४०० तक वैदिक धर्म लोकप्रिय हो गया। राजाओं ने कई यज्ञ किये जिसमें अश्वमेध की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त तथा प्रथम कुमारगुप्त ने अश्वमेध किया था जिसके फलस्वरूप 'अश्वमेध प्रकार' की स्वर्णमुद्रा प्रचलित की। उनके समकालीन वाकाटक नरेशों ने भी अश्वमेध (यज्ञों) का अनुष्ठान किया था तथा अग्निष्टोम एवं वाजपेय यज्ञ आदि संपन्न किया। बिहार प्रदेश में स्थित गया के मौखरी नरेश ने चौथी सदी में वैदिक यज्ञ पूर्ण किया जिसके हविष को स्वीकार करने इंद्र को भी नीचे उतरना पड़ा (का० इ० इ०, भा० ३ पृ० २२८)। कोटा (राजस्थान) के मौखरी भी कम उत्साही नहीं थे। कहने का तात्पर्य यह है कि गुप्तों तथा उनके समकालीन शासकों ने वैदिक यज्ञ किए जिनका प्रमाण अभिलेखों में मिलता है। गुप्त राजाओं के अश्वमेध सिक्कों पर निम्न प्रकार का खुदा लेख पढ़ा गया है—

राजाधिराज, पृथिवीमवित्वा दिवं जयत्यप्रतिवार्य वीर्यः

पृष्ठ भाग पर—अश्वमेध पराक्रमः (समुद्रगुप्त का सिक्का)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवो जितः कुमारगुप्तोधिराजा श्री अश्वमेध महेन्द्रः ।

(प्रथम कुमारगुप्त का सिक्का)

मुद्रा लेखों (Coin-legends) से वैदिक यज्ञ-अश्वमेध की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। संभवतः यही लोकप्रिय यज्ञ था। अन्य यज्ञों की संपन्नता की चर्चा नहीं के बराबर है। पाँचवीं सदी से यज्ञ लुप्त हो गए। विद्वानों का मत है कि ईसवी पूर्व सदियों से महाभारत तथा मनुस्मृति का प्रभाव समाज में स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। गुप्तकाल तक वैदिक यज्ञों की लोकप्रियता बनी रही। यह भी संभव है कि बौद्धों तथा जैनियों की निंदा के कारण हिंदुओं में प्रतिक्रिया की भावना काम कर रही थी। ब्राह्मण धर्म को सब लोगों ने अपनाया, परंतु वैदिक यज्ञ समृद्ध वर्ग में ही प्रचलित था। याज्ञवल्क्य, (१,१२३-५) ने स्पष्ट रूप से कहा है कि धनीमानी व्यक्तियों को ही यज्ञ करना चाहिए। अनुष्ठान के लिए उनके पास पर्याप्त खाद्यान्न का संग्रह होना चाहिए। साधारण जनता में धन का अभाव था। अतः जनसाधारण में यज्ञ अप्रिय रहे। जनता गीता के प्रवचन पर अधिक विश्वास करने लगी कि यज्ञ आध्यात्मिक उन्नति में सहायक नहीं होते और न ईश्वर की दया प्राप्त करने में सहायक ही है। अतएव वैदिक यज्ञ उत्तम होने पर भी साधारण जनता में लोकप्रिय न हुए और उनका ह्रास होने लगा। गुप्तयुग में केवल अश्वमेध ही सीमित रहा। कालांतर में यज्ञ में लोगों की आस्था न रही। वैदिक धर्म में निहित पशुहिंसा से जनता के हृदय में घृणा उत्पन्न हो गई थी। फलतः यज्ञ यागादि के विधान में रुचि का अभाव दीख पड़ता है। उपनिषद् के ज्ञानकांड से उन्हें पूर्ण संतोष न हो सका। जन साधारण की दृष्टि में आत्मा तथा परमात्सा की सत्ता संबंधी शास्त्रार्थ में कुछ महत्व नहीं था। उनके शुष्क मस्तिष्क में गूढ़ दार्शनिक सिद्धांतों एवं तत्वों का प्रवेश सुकर न था। साधारण जनता निश्चित रूप से भक्ति प्रधान स्मार्त धर्म की ओर झुक रही थी। इसका सारा श्रेय भगवद् गीता को है। उसके द्वारा कर्म, ज्ञान तथा भक्ति में विभेद कर समाज में भक्ति की प्रधानता प्रकट हुई। महाभारत में भी नारायणीय मत या वासुदेव की उपासना भागवतधर्म के नाम से विहित है। इसमें भक्ति को प्रधान स्थान प्राप्त है और मोक्ष का मार्ग बतलाया गया है। ईसा पूर्व सदियों में मथुरा के शूरसेनों द्वारा वासुदेव-पूजा का उल्लेख है। घोषुडी के शिलालेख तथा हेलियोडोरस के बेस नगर स्तंभ लेख में भगवान् वासुदेव की पूजा का वर्णन है।

(अ) **संकर्षण वासुदेवाभ्यां पूजा शिला प्रकारो** (घोषुडी लेख)।

(ब) **देवदेवस वासुदेव गरुड़ध्वजे अयं करिते हेलियोडेरेन** (वेसनगर स्तंभ लेख)।

विष्णु-पूजा

अतः इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि प्राचीन युग में वासुदेव कृष्ण (विष्णु) की पूजा का प्रचलन था। बौद्धधर्म पर भी इस भागवत धर्म का अत्यधिक प्रभाव पड़ा और महायान का अभ्युदय हुआ। कुछ विद्वान हीनयान से महायान की उत्पत्ति मानते हैं। किंतु भिक्षु बनकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निवृत्ति मार्गगामी हीनयान से प्रवृत्तिमय एवं भक्ति संचारित महायान की उत्पत्ति कैसे मानी जा सकती है ? अस्तु भागवतधर्म का प्रचार तथा प्रसार गुप्तकाल में चरमसीमा को पहुँच गया था। गुप्त शासक परम वैष्णव थे, इसीलिए उनके अभिलेख तथ मुद्रालेख में 'परम भागवत' की उपाधि उल्लिखित है। गुप्त नरेशों ने अपनी स्वर्ण मुद्रा पर विष्णु की भार्या लक्ष्मी तथा वाहन गरुड़ की आकृतियाँ अंकित की। द्वितीय चंद्रगुप्त के सिक्कों पर 'विष्णु की आकृति' स्पष्ट दीख पड़ती है। गुप्त अभिलेखों के अध्ययन से पता लगता है कि उस युग के पूजनीय देवता 'विष्णु' ही थे। द्वितीय चंद्रगुप्त ने अपने विजयकीर्ति को स्थायी करने के लिए विष्णुपद नामक पर्वत पर विष्णुध्वज स्थापित किया था। लेखवद्ध कार्य के आरंभ में विष्णु की स्तुति पाई जाती हैं—

तेनाय प्रणिधाय भूमिपतिना भावेन विष्णोमति
प्रांशुर्विष्णु पदे गिरौ भगवतो विष्णुध्वजः स्थापितः

(मेहरौली लौह स्तंभ लेख—प्रा० भा० अ०, पृ० ३१७)

स्कंदगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख निम्नलिखित प्रार्थना से प्रारंभ होता है—

श्रियमभिमत भोग्यां नैक कालापतीनां
त्रिदशपतिसुखार्थंयोबलेराजहार
कमलनिलयनायाः शाश्वतंधाम लक्ष्म्यां
स जयतिविजितार्तिविष्णुत्यंतजिष्णुः

(जूनागढ़ का लेख—प्रा० भा० अ०, पृ० ३२६)

इसी लेख में सौराष्ट्र के राज्यपाल पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित द्वारा विष्णु मंदिर के निर्माण का वर्णन है—

कारितमक्रमतिना चक्रभृतः चक्रपालिते गृहम्।

द्वितीय कुमारगुप्त के भितरी राजमुद्रा पर विष्णु के वाहन गरुड़ की आकृति खुदी है, जो विष्णु-पूजा के प्रचलन का द्योतक है। महाराज बुधगुप्त का एरण स्तंभलेख विष्णु की स्तुति से प्रारंभ होता है। उसके सामंत मातृविष्णु द्वारा भगवान् विष्णु (जनार्दन) के ध्वजस्तंभ का निर्माण किया गया था, ऐसा उल्लेख है—

महाराज मातृविष्णु तस्यैवानुजेन तदनु विधायिना तत्प्रसाद परिगृहीतेन धन्य विष्णुना मातृपित्रोः पुण्याप्यनार्थमेष भगवतः पुण्य जनार्दनस्यध्वजस्तंभो अभ्युच्छ्रितः।

(का० इ० इ०, भा० ३,सं० १९)

अवतार-कल्पना

गुप्तकालीन अभिलेखों का अध्ययन यह भी प्रकट करता है कि विष्णु भगवान् के अवतारों की कल्पना पूर्ण हो गई थी और कुछ अवतार पूजित होने लगे थे। कलात्मक नमूने चतुर्भुजी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णु के नहीं मिलते हैं परंतु लेखों के वर्णन तथा कला के दृष्टांत यह सिद्ध करते हैं कि जनता में वैष्णवमत की प्रधानता थी और राजधर्म का स्थान प्राप्त कर लिया था। यों तो कला नमूनों में अनेक अवतारों की मूर्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं परंतु वराह अवतार का विशेष प्रचलन था। वराह प्रतिमा भी दो प्रकार की है। प्रथम मूर्ति में सिर का भाग वराह का तथा शेष मानव का है। द्वितीय दृष्टांत तो वराह (जानवर) की प्रतिमा से व्यक्त होता है। इस युग की वराह की सुविशाल मूर्ति एरण (सागर, म० प्र०) से प्राप्त हुई है। यह ठोस पाषाण की प्रतिमा है। मानो भगवान् ने वराह रूप में साक्षात् अवतार लिया हो। इस मूर्ति के साथ एक लेख अंकित है जिसमें वराह की प्रार्थना की गई है—

जयतिधरण्युद्धरणे घनघोरा घातघूर्णितः महींद्रः।
देवो वराह मूर्तिः त्रैलोक्य महागह स्तंभः।
(एरण लेख)

इस लेख से ज्ञात होता है कि तोरमाण के अधीनस्थ राजा धन्यविष्णु ने वराह मूर्ति का निर्माण कराया था।

धन्यविष्णुना तेनैव—भगवतो वराह मूर्तेः जगत्परायणस्य नारायणस्य शिला प्रासादः।
(प्रा० भा० अ०, पृ० ३५९)

गुप्तकालीन विशाल वराह प्रतिमा मध्यप्रदेश के भोपाल समीपस्थ उदयगिरी गुहा में दीख पड़ती है। गुप्त राजाओं के दामोदरपुर ताम्रपत्र में 'श्वेत वराह' स्वामिन् के लिए दान का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त उदयगिरी गुहा में शेषशायी विष्णु की प्रतिमा खोदी गई है। सारनाथ संग्रहालय में गोवर्धनधारी कृष्ण की मूर्ति है जो गुप्तकालीन मानी जाती है। भीटा, नालंदा तथा वैशाली से ऐसी अनेक मुहरें प्रकाश में आई हैं जिन पर शंख चक्र, त्रिशूल एवं नंदी जैसे वैष्णव एवं शैव चिह्न बहुलता से मिले हैं। यज्ञवेदि या यूप का चिह्न दुर्लभ है। विष्णु की पूजा तथा वैष्णव मत की लोकप्रियता का कारण पौराणिक साहित्य था जिसमें विष्णु को उच्चतम देवता मान लिया गया। अभिलेखीय साक्षी यह प्रदर्शित करते हैं कि दशावतारों में वराह सबसे प्रिय अवतार था। इसके स्वरूप वराह की विशालकाय प्रतिमा उदयगिरि गुहा में दिखलाया गया है। इसका तात्पर्य यह भी समझा गया है कि द्वितीय चंद्रगुप्त ने शकों की दासता से भूभाग को मुक्त किया था। इस युग में कृष्ण के कार्यों का भी वर्णन पहाड़पुर में मूर्तियों द्वारा प्रदर्शित है। इन सबका कारण यह था कि विष्णु पूजा जनता को अधिक आकृष्ट करती रही। गुप्त नरेशों ने सोने तथा रजत सिक्कों पर अपनी वैष्णव पदवी का भी उल्लेख किया है। इसीलिए द्वितीय चंद्रगुप्त के अश्वारोही प्रकार सिक्के के अग्रभाग पर नाम सहित 'परम भागवत' की पदवी अंकित है। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य तथा प्रथम कुमारगुप्त के रजत सिक्कों पर भी यही वैष्णव पदवी "परम भागवत" उत्कीर्ण है। राजाश्रय पाकर विष्णु पूजा का विकास होता गया। मध्ययुग में बौद्धमत भी इसी में सम्मिलित हो गया जो वैष्णव-सहजिया के नाम से विख्यात रहा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिवपूजा

गुप्तयुग के कई पुराणों में शिव का भी पर्याप्त वर्णन मिलता है। अतः शैवमत वैष्णव धर्म के समान ही लोकप्रिय था। गुप्तों से पूर्व कुषाण राजाओं के सिक्कों पर शिव की मानवीय मूर्ति खुदी है और उनका ओहशो (शिव) नाम यूनानी भाषा में उत्कीर्ण है। शिवपूजा कई रूपों में की जाती थी। शिव का आद्यतम चिह्न 'लिङ्ग' अतीव प्राचीनकाल में निर्मित होता रहा। गुप्तयुग में प्रथम कुमारगुप्त का एक लेख करमदंडा शिवलिंग के अधोभाग पर खुदा है। स्यात् वही उस युग का अंतिम शैवचिह्न (लिंग) था। क्योंकि उसके पश्चात् लिंग के साथ मानवीय आकृति का समिश्रण होने लगा। भूमरा (मध्य भारत) से जितनी शिव प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं सब में मानवीय मुख जुड़ा है। वैशाली के बनिया ग्राम से चतुर्मुख शिवलिंग की मूर्ति प्राप्त हुई है जो मंदिर में प्रतिष्ठित है। इस देवता के आयुध त्रिशूल या शिव के वाहन नंदी का रूप मुहरों पर मिलता है। द्वितीय चंद्रगुप्त के मथुरा स्तंभ लेख का विश्लेषण यह प्रकट करता है कि मथुरा में पाशुपत का लकुलीश संप्रदाय अधिक लोकप्रिय था। ऐसा प्रतीत होता है कि लकुलीश के चार प्रधान शिष्यों में एक कुशिक था जो ई० स० १५० में अपने को अधिष्ठित कर चुका था। इस स्थान पर उसने तथा उसके शिष्यों ने दश पीढ़ियों तक पाशुपत सिद्धांत का प्रचार किया। आचार्य के लिए भगवान् की उपाधि लेख में उल्लिखित है। गुप्तकालीन मथुरा का स्तंभ लेख पराशर, उपमित, कपिल तथा उदित नामक पाशुपत आचार्यों का नामोल्लेख करता है। उनके शिक्षा के परिणाम स्वरूप लकुलीश लोकप्रिय देवता हो गए—

> अस्यां पूर्व्वायां भगवत्कुशिकात् दशमेन
> भगवत् पराशर चतुर्थेन भगवत्कपिल
> विमले शिष्य शिष्येण भगवत् उपमित
> विमल शिष्येण आर्यः उदित आचार्येण।
>
> (मथुरा स्तंभ लेख—ए० इ०, भा० २१, पृ० ८)

इनके अनुयायियों ने दिवंगत आचार्य की स्मृति में मंदिर बनवाया था—

> गुरुणा च कीर्त्यर्थं उपमितेश्वर कपिलेश्वरौ गुर्व्वा यतने गुरु—प्रतिष्ठापितो।
>
> (वहीं)

मथुरा के पाशुपतों द्वारा समर्थित शिवोपासना के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान नहीं है किन्तु इस युग में भक्त शिवलिंग को सिर पर धारण किये प्रदर्शित किये गये हैं (शिवलिंगोद्वहन)। द्वितीय चंद्रगुप्त का मंत्री वीरसेन ने उदयगिरि पर शिवपूजा के निमित्त एक मंदिर का निर्माण किया था—

> भक्त्या भगवतः शंभोर्गुहामेतामकारयत्।
>
> (प्रा० भा० अभि०, पृ० ३१५)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाँचवीं सदी में प्रथम कुमारगुप्त के शासनकाल में ध्रुव शर्मा नामक व्यक्ति ने भिलसंद (एटा, उ० प्र०) में महासेन मंदिर को दान दिया था।

स्वामी महासेनस्य आयतने। (वहीं, पृ० ३१७)

दामोदरपुर (उत्तरी बंगाल) ताम्रपत्र में नामलिंग तथा कोकमुख स्वामिन के निमित्त अग्रहार का उल्लेख मिलता है (ए० इ०, भा० १५)। सम्राटों के अतिरिक्त गुप्तों के सामंत हस्तिन के खोह लेख शिव-वंदना से प्रारंभ होते हैं—नमो महादेवाय। भगवान् शिव के जीवन घटनाओं का प्रदर्शन कला में उपलब्ध है। शिव परिवार के संबंध में भी हमारा ज्ञान परिमित है। महिषमर्दिनी दुर्गा की मूर्तियाँ उदयगिरि तथा भूमरा (मध्यप्रदेश) से मिली हैं। शिव के दो पुत्रों में गुप्तयुग में कार्तिकेय को प्रमुख स्थान दिया गया था। प्रथम कुमारगुप्त की स्वर्ण मुद्रा पर कार्तिकेय की मूर्ति खुदी है। कलाभवन (काशी विश्वविद्यालय) में भी उसी काल की कार्तिकेय की सुंदर प्रतिमा सुरक्षित है। अतः लेखों तथा कलात्मक उदाहरणों से प्रमाणित होता है कि गुप्तकाल में शिवपूजा का भी प्रचार था।

पंचदेवों में विष्णु एवं शिव के पश्चात् सूर्य की गणना होती है। वैदिककाल से सूर्यपूजा का प्रचलन भारत में रहा है। जो देवता समस्त जगत को प्रकाश देता है तथा दिन-रात का कारण है उसकी पूजा स्वाभाविक है। विद्वानों का मत है कि ईरान से सूर्यपूजा का प्रचार भारत में हुआ। ईसवी सन् के आरंभ से भारत में इस देवता की उपासना होने लगी थी। कुषाण राजा कनिष्क के सिक्कों पर मीरो (मिहिर = सूर्य) शब्द अंकित पाया जाता है। गुप्तकाल में विष्णु तथा शिव के बाद सूर्योपासन का स्थान था। प्रथम कुमारगुप्त के मंदसोर (मालवा) वाले लेख में भगवान् भास्कर की स्तुति ललित तथा काव्यमय भाषा में पठनीय है—

योवृत्यर्थेमुपास्यते सुरगणैः सिद्धश्च सिद्धार्थिभिः।
ध्यानैकाग्रपरैर्विधेय विषयैः मोक्षार्थिभिः योगिभिः।
भक्त्या तीव्र तपोधनैश्च मुनिभिः शाप प्रसादक्षमैः।
हेतुर्यो जगतः क्षयाभ्युदययोः पायात्स वो भास्करः।
तत्वज्ञान विदोपि यस्य न विदुः ब्रह्मर्षयोभ्युद्यतः।
कत्स्नं यश्च गभस्तिभिः प्रवृसृतैः पुष्पाणि लोक त्रयम्।
गन्धर्वामर सिद्ध किन्नर नरैः संस्तूयते अभ्युत्थितो।
भक्तेभ्यश्च ददाति योभिलषितं तस्मैः सवित्रे नमः।
यः प्रत्यहं प्रतिविभात्यु दयाचलेन्द्रः।
विस्तीर्ण तुंग शिखरः खलितांशु जालः।
क्षीवांगना जन कपोल तलाभि ताम्रः।
पायात्सवः सुकिरणा भरणो विवस्वान्।

(गुप्त साम्राज्य का इतिहास, पृ० १९२-३)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस स्तुति से प्रार्थयिता की सूर्यपरक भक्ति का पूर्ण परिचय मिलता है। लेख के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि प्रथम कुमार गुप्त के प्रांतपति बंधु वर्मा के शासन में दशपुर (मालवा में तंतुवाय की क्षेणी द्वारा एक सूर्य मंदिर का पुनः संस्कार तथा निर्माण भी हुआ था।

(१) संस्कारितमिदं भूयः श्रेण्या भानुमतोगृहं
(२) श्रेण्या देशेन भतया च कारितं भवनं रवेः
(३) श्रेणीभूतैः भवनमतुलं कारितं दीप्त रश्मेः

(प्रा० भा० अ०, पृ० ३२४-५)

सम्राट् स्कंदगुप्त के इंदोर ताम्रपत्र लेख से प्रकट होता है कि अंतर्वेदि में दो क्षत्रियों द्वारा सूर्यपूजा निमित्त एक सुंदर भास्कर मंदिर का निर्माण किया गया था।

प्रतिष्ठापितः भगवते सवित्रे

उस लेख का प्रार्थना-पद्य सूर्य की स्तुति से आरंभ है।

पायाद्वः स जगत्पिधान पुटमि-द्रश्म्या करो भास्करः

(का० इ० इ०, भा० ३, सं० १६)

सूर्य मंदिरों के निर्माण के अतिरिक्त गुप्तकालीन सूर्य प्रतिमा भी उपलब्ध हुई हैं। इन मूर्त्तियों से लेखों में उल्लिखित सूर्य पूजा के प्रमाण की पुष्टि होती है। भूमरा से एक अत्यंत सुंदर सूर्य प्रतिमा प्रकाश में आई है। गुप्तयुग से पूर्व सूर्य रथ में चार घोड़े प्रदर्शित किये जाते थे पर गुप्तकाल में सात घोड़ों का रथ निर्मित्त होने लगा। अजमेर संग्रहालय में सूर्य प्रतिमा के चरण पीठ पर सात घोड़े अंकित हैं। यह गुप्तकालीन मूर्ति प्रकट होती है। गुप्तकाल में ही सूर्य के सात घोड़ों की वैज्ञानिक कल्पना विकसित हुई। वैशाली में अनेक मुहरें मिली हैं जिन पर "भगवतो आदित्यस्य" खुदा है। (आ० स० रि०, १९११-२, पृ० ५८) संभवतः सूर्य मंदिर की वह मुद्रा होगी। लेखों में उल्लिखित सूर्य की स्तुति भक्तों के प्रगाढ़ भक्ति का साक्षी है। इन सभी विवरण के आधार पर यह कहना न्याय संगत होगा कि गुप्तकालीन समाज में सूर्य पूजा का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था।

दान का विवरण

गुप्त युग के सार्वजनिक मंदिरों में पूजा का पर्याप्त प्रचार हो गया था। मंदिरों के अवशेष इसके साक्षी हैं जो मध्य भारत में पाए जाते हैं। शनैः शनैः मंदिर हिंदू धर्म तथा संस्कृति के केंद्र बन गए। अतः यह स्वभाविक था कि ऐसे मंदिरों को (धर्म में सहयोग देने वाले) अधिक-से-अधिक दान दिया जाय। ऐसे मंदिरों में सदावर्त चलाने का विवरण गुप्त लेखों में पाया जाता है। प्रथम कुमारगुप्त के लेख में उसे धर्म सत्र कहा गया है।

प्रासादाग्राभिरूपं गुरुवर भवनं धर्मसत्रं यथावत। (भिलसद का लेख)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुर्भाग्यवश गुप्त लेखों में दान के अवसर का उल्लेख नहीं मिलता किंतु हिंदू धर्म के विभिन्न पर्वों तथा धार्मिक उत्सवों पर दान देने की प्रथा प्रचलित होगी। गुप्तयुगी साहित्य में पुराणों का अंतिम संकलन हो गया था। अतः उनमें वर्णित तीर्थ तथा पूजा का विधान समाज को अज्ञात न था। अभिलेखों में इसका साक्षी नहीं है क्योंकि अधिकतर अभिलेख शासक के विजय का वर्णन करते हैं। इनके पश्चात् दान (अग्रहार भूमि) का विवरण पाया जाता है। गुप्तकालीन अभिलेखों में दान के उद्देश्य को तीन विभागों में विभक्त किया जा सकता है।

(१) देवमंदिर का निर्माण तथा संस्कार

(२) देवपूजा संबंधी दान

(३) मठ में भिक्षुओं के निमित्त यानी सत्र की स्थापना

नवीन मंदिरों के निर्माण का विवरण ऊपरी पक्तियों में प्रस्तुत किया गया है। पुराने मंदिरों के जीर्णोद्धार या संस्कार को भी पुण्य कार्य समझा जाता था। इसलिए अभिलेखों में "खंडस्फुट संस्कार" शब्दों का प्रयोग मिलता है। यदि मंदिरों का इतिहास देखा जाय तो स्पष्ट प्रकट होता है कि हिंदू मंदिरों के निर्माण कला का आरंभ गुप्त युग में हो गया था। ऐसी परिस्थिति में मंदिरों के खंडित होने का प्रश्न नहीं उठता। परंतु दानकर्त्ता का यह विचार था कि कालान्तर में खंडित हो जाने पर मंदिर के संस्कारार्थ दान पत्रों में उल्लेख होना चाहिए। दामोदरपुर ताम्रपत्रों तथा गुणैघर लेख में "खंड स्फुट प्रति संस्कार करणाय" तथा "स्वेत वराह स्वामिनों देवकुल खंड स्फुट प्रति संस्कार" वाक्य विशिष्ट रूप से उल्लिखित है (प्रा० भा० अ०, पृ० ३३९)।

भानुगुप्त के शासन कालीन (छठी सदी का आरंभ, दामोदरपुर ताम्रपत्रों में मंदिर के पूजा निमित्त भूमिदान का वर्णन आया है—

अप्रदा धमेण भगवते श्वेत वाराह स्वामिने शश्वत काल योग्या दत्ताः

(प्रा० भा० अ०, पृ० ३४२)

शाश्वत शब्द के प्रयोग की सार्थकता थी क्योंकि उसी के बाद कुछ श्लोक उल्लिखित हैं, जिनमें दान का महत्व बतलाया गया है।

बहुभिः बसुधादत्ता दीयते च पुनः पुनः
यस्य यस्य यदा भूमिः तस्य तस्य तदाफलम्।

दानपत्रों में देवपूजा की चर्चा है। करमदंडा शिवलिंग लेख में धार्मिक कार्य तथा पूजा निमित्त दान का वर्णन है। स्कंदगुप्त के इंदोर ताम्रपत्र में दीपदान का उल्लेख है, उसके लिए दो पल तैल दान किया गया था। गुणैघर ताम्रपत्र में बुद्ध देव की पूजा निमित्त गंध पुष्पदीप आदि सामग्रियों का विवरण मिलता है—

"बुद्धस्य सततंत्रिकाल गंध पुष्पदीप धूपादि"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्वेत वराह स्वामि के पूजा निमित्त सामग्रियों के नाम निम्न प्रकार हैं—

श्वेत वराह स्वामिनी देवकुले
गंधधूपपुष्प प्रापण मधुपक्तृदीपादि उपयोगाय

(दामोदरपुर ताम्रपत्र—ए० इ०, भा० १५)

विष्णु-पूजा की प्रधानता तथा अवतारों की कल्पना से संबंधित चर्चा लेखों में अधिक नहीं है। किंतु दान के प्रकरण में ऐसी बातों का संग्रह किया गया है जिस कारण दान-कार्य अक्षुण रूप से होता रहे। उस पवित्र कार्य में विघ्न उपस्थित न हो, इस कारण प्रशस्तिकार धर्मग्रंथों से उद्धरण देते रहे कि दान कार्य से पुण्य लाभ होता है अन्यथा दानहर्ता को नरक गामी होना पड़ेगा। जनसाधारण में स्वर्ग नरक में विश्वास का परिज्ञान लेखों के अंतिम पद्यों से हो जाता है जिसमें दानकर्त्ता को स्पष्ट बतलाया गया है कि दान की प्रतिष्ठा से स्वर्ग तथा अपहरण से नरक मिलेगा। बृहस्पतिस्मृति तथा पुराणों से उद्धरण अभिलेखों के अंतिम अंश में उल्लिखित है।

(१) **स्वदत्तापरदत्ता वा यो हरेत वसुंधरां।**
(२) **स कृमिभूत्वा पितृभिः सह पच्यते।**
(३) **षष्टि वर्ष सहस्राणि स्वर्ग मोदति भूमिदः।**
(४) **आक्षेप्ता चानुमंता च तान्येव नरके वसेदिति।**

(दामोदरपुर ताम्रपत्र—प्रा० भा० अ०, पृ० ३३८-४०)

अभिलेखों में इसे **"व्यासेन गीताः श्लोका."** या **"भूमिदान संबंधी श्लोकः"** (वही पृ० ३३९) वाक्य द्वारा व्यक्त किया गया है। स्कंदगुप्त के इंदोर ताम्रपत्र में दान अपहरण से गो, द्विज तथा गुरु की हत्या का पाप लगता है, ऐसा उल्लेख है। द्वितीय चंद्रगुप्त के सांची लेख में 'गो ब्रह्म हत्या' से उत्पन्न पाप का वर्णन है (का० इ० इ०, भा० ३)। कहने का तात्पर्य यह है कि गुप्त युग में पाप, पुण्य, स्वर्ग तथा नरक में लोकविश्वास निहित था। अतएव इस युग को कलियुग कहा गया है। जहाँ तीर्थों की चर्चा है उसमें प्रयाग का नाम प्रमुख रूप में मिलता है। वहीं शासक वृद्धावस्था में प्राण त्यागना पुण्यकार्य समझता था। यही कारण है कि प्रयाग में द्वितीय कुमारगुप्त ने स्वर्ग प्राप्ति की कामना से आग में जलकर प्राण त्यागा। दानपत्रों में भी **'आत्मनश्च पुण्याभिवृद्धये'** वाक्य लिखकर प्रशस्तिकार ने दान की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया है।

इस युग में सामान्य ब्राह्मण दैनिक जीवन में स्मृतियों में विहित मार्गों का अवलंबन करता था। संध्योपासना के अतिरिक्त पंचमहायज्ञ का भी विधान मानता और पितृपूजा पर भी ध्यान रखता था। अभिलेखों में धर्मात्मा व्यक्ति द्वारा पंचमहायज्ञ के संपादन का उल्लेख है। समाज में धार्मिक संस्कारों का कितना पालन होता था, यह कहना कठिन है। पूर्व मध्ययुग के लेखों के अध्ययन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गुप्तयुग में धार्मिक कृत्यों पर लोगों का ध्यान रहा होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीयकरण

भारतीय धर्म में विदेशियों को आत्मसात करने का कार्य सदियों से चला आ रहा था परंतु गुप्तकाल में इसमें कुछ विशेष प्रगति आई। हिंदूधर्म में यह शक्ति (अन्य जातियों को पचा लेने) अक्षुण्ण बनी रही। गुप्तपूर्व शताब्दियों में यूनानी, शक, पह्लव तथा कुषाण लोगों ने भारत में राज्य किया था जिनका स्वांगीकरण सनातन धर्म में हो गया। गुप्त युग में द्वितीय चंद्रगुप्त ने भी शकों को परास्त किया और उनका आत्मसात हिंदू समाज में अवश्यमेव हो गया। पाँचवी सदी में हूण लोगों के आक्रमण हुए जो पराजित होकर भारत के ही निवासी हो गए और भारतीय समाज में घुलमिल गए। संभवतः दूसरी सदी तक पंजाब के कुषाण हिंदू बन चुके थे। शकों की भी यही दशा हुई। विदेशियों के भारतीयकरण की पद्धति गुप्तकाल से चली आ रही थी और कई अन्य जातियाँ को समाज में लीन पाते हैं। हुणों का विवरण गुप्त युग के बाद अभिलेखों में मिलता है। कलचूरि राजा ने हूण कन्या से विवाह भी किया था। विदेशी हूण सरदार तोरमाण के अभिलेख से ज्ञात होता है कि वह हिंदू धर्म तथा दर्शन के दृष्टिकोण से प्रभावित हुआ था। उसी ने मुल्तान (मूलस्थान) पश्चिमी पाकिस्तान में सूर्य मंदिर का निर्माण किया था तथा अपने उत्तराधिकारी पुत्र का नाम मिहिर (सूर्य) रखा। तोरमाण के पुत्र मिहिरकुल भी भारत में राज्य किया जिसके लेख तथा सिक्के साक्ष्य रूप में उपस्थित किए जा सकते हैं। वह एक पक्का शैव था जिसका साक्ष्य उसके सिक्कों के परीक्षण से मिल जाता है। सिक्के पर नंदी की आकृति है तथा "जयतु वृषः" (शिव के वाहन की विजय) लेख अंकित है। इस प्रसंग में यह कहा जा सकता है कि गुप्त युग में भारतीय संस्कृति का विस्तार दक्षिण पूर्व एशिया तथा द्वीप समूह –जावा, सुमात्रा एवं बोर्नियो में हुआ। यह सर्वथा संभव है कि वहाँ के आदिम वासियों को शिक्षा देकर हिंदूधर्म में आत्मसात कर लिया गया हो। पश्चिमी एशिया में भी हिंदू संस्कृति तथा धर्म का प्रचार हुआ था। परंतु निश्चित साक्ष्य के अभाव में वास्तविक स्वरूप को उपस्थित करना कठिन है। ब्राह्मणों ने अन्य व्यक्तियों के भारतीयकरण में आपत्ति भी नहीं की। तात्पर्य यह है कि गुप्त युग तक विदेशियों का स्वांगीकरण हो गया था।

धार्मिक सहिष्णुता

प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन एक विशेष प्रकार की सद्भावना से परिचय कराता है जो इतिहास में अद्वितीय घटना प्रकट होती है। मौर्यकाल से लेकर बारहवीं सदी तक के शासक धार्मिक सहिष्णुता के भावना से प्रेरित थे। गुप्त युग में बौद्ध तथा भागवत धर्म की प्रतिष्ठा प्रायः समान थी। भागवतधर्म राजधर्म अवश्य हो गया था किंतु शासकों के सहिष्णु होने के कारण बौद्ध साहित्य तथा कला की विशेष उन्नति हुई। दोनों मतों के अनुयायियों में शास्त्रार्थ होते थे जिसका निर्देश प्रशस्तियों में मिलता है। धार्मिक क्षेत्र में सीमित ढंग से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विचार व्यक्त किये गये हैं। संयम (वचोगुति) का विचार अशोक के धर्मलेख में उल्लिखित है। सातवाहन नरेश 'एक ब्राह्मण' की घोषणा करते हुए भी बौद्धमत के मदावनीय तथा महासंघिक शाखाओं को गुप्तदान दिया (नासिक गुहा लेख—प्रा० भा० अ०, पृ० २७५)।

परम भागवत गुप्त नरेश विष्णु के पुजारी होकर भी पंचदेव (विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा तथा गणेश) की पूजा के समर्थक थे। उन्होंने अन्य संप्रदायों के प्रसार में योग किया। गुप्त सम्राटों ने शैव तथा जैन धर्मानुयायियों को प्रश्रय दिया। परम भागवत द्वितीय चंद्रगुप्त से लेकर बुधगुप्त तक लेखों में विहार दान का वर्णन मिलता है। उत्तरगुप्त काल में बौद्ध, जैन, शैव तथा वैष्णव पारस्परिक कलह तथा अत्याचार से पीड़ित हुए थे। परंतु गुप्तकाल में ऐसी घटना का अभाव रहा। विभिन्न संप्रदायों के पंडितों में शास्त्रार्थ होता रहा परंतु सामान्य जनता, साधारण बुद्धि से अपने स्वभाव तथा विचार के अनुकूल सिद्धांतों का समन्वय करती तथा भेदभाव को छोड़ कर आपस में प्रेम रखती एवं संरक्षण प्रदान करती थी। अजंता के एक लेख में वर्णन आता है कि बौद्धमत की प्रगति से कृष्ण, शंकर तथा अन्य देवताओं ने द्रुतगति से पलायन किया। विभिन्न अनुयायियों के बीच उत्तेजित शास्त्रार्थ हुआ परंतु ऐसा कोई साक्षी नहीं है जो यह प्रदर्शित करे कि उससे इन धर्मों के सामान्य अनुयायियों के जीवन की पद्धत्ति विक्षुब्ध हुई हो। बौद्ध राजा पौराणिक धर्म संबंधी चर्चा में विश्वास रखता था। पुण्ड्रवर्धन की रानी हिंदू होते हुए जैन अर्हतों की पूजा में विश्वास करती तथा भूमिदान कर आध्यात्मिक कल्याण की मनोकामना करती रही (ए० इ०, भा० १७, पृ० ३२८)। समुद्रगुप्त हिंदूधर्म का अनुयायी तथा वैदिक संस्कृति में आस्था रखने वाला शासक था। अश्वमेध भी संपन्न किया, तौभी अपने पुत्र की शिक्षा का भार बौद्ध आचार्य बसुबंधु को उसने सौंपा। गुप्त अभिलेखों में जैन आदिकर्तृन की प्रतिमा स्थापना का वर्णन है। उसके शासन की प्रशंसा जैन लेखों में भी मिलता है। हिंदू जैन आचार्य और जैनी हिंदू विद्वानों का समादर करते रहे। वैष्णव सम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त ने अपने कल्याण के लिए साँची के बौद्ध मंदिर को दान दिया था। उत्तर गुप्त नरेश वैन्यगुप्त ने भी एक महायान बौद्ध मंदिर को दान देकर पुण्य लाभ किया था। गुप्तयुग की धार्मिक कृत्यों के परीक्षण से पता चलता है कि भागवत धर्म के मानने वाले वैदिक कार्यों से विमुख हो (यज्ञ यागादि) चले थे। पांचवी सदी से यज्ञ निश्चित रूप से ह्रासोन्मुख थे। प्रथम कुमारगुप्त का अश्वमेध यह व्यक्त करता है कि गुप्त शासक वैदिक परंपरा के विरोधी नहीं थे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि शक्तिशाली शासक होने के नाते गुप्त राजाओं ने अश्वमेध किया पर हिंदूधर्म के पुनरुज्जीवन के बाद वैदिक यज्ञ इतने लोकप्रिय नहीं रहे जो तीसरी सदी में थे। इस प्रकार गुप्त युग में सहिष्णुता की बातों का परिज्ञान हो जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ८

भाषा तथा लिपि

प्राकृत

तीन सौ वर्षों तक उत्तरी भारत में (चौथी से छठी सदी) गुप्त सम्राटों के लेख उपलब्ध हुए हैं। तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव भी अभिलेखों के अध्ययन से प्रकट होता है। प्रशस्ति लिखने की कला के साथ भाषा संबंधी विचार भी उपस्थित करना आवश्यक प्रतीत होता है। जो हम बोलते हैं, वही भाषा है। प्राचीनकाल में भी प्रचलित भाषा को ही लेखों में स्थान दिया गया ताकि उसके तात्पर्य को जन-साधारण समझ सके। अशोक के धर्मलेख तो प्रजाहित में खोदे गए थे। अतएव जनता की भाषा का उपयोग किया गया। उससे साहित्य का सीधा लगाव न था इस कारण साहित्य का सहारा न लेकर अभिलेखों की भाषा ही विचारणीय प्रश्न है। आजकल साधारणतया लोगों को अभिलेखों की भाषा संबंधी ज्ञान अपूर्ण है। पालि के नाम से प्रायः सभी परिचित हैं और इसी को बुद्धधर्म-ग्रंथ एवं अशोक के धर्मलेख की भाषा मानते हैं। इसे मागधी भी कहा गया है। वर्त्तमानकाल से पचीस सौ वर्ष पहले अशोक ने समस्त भारत में अपने लेख खुदवाए जिनकी 'मागधीभाषा' प्राचीनतम भाषा मानी गई है। भगवान् बुद्ध ने लोकभाषा होने के कारण 'मागधी' का प्रयोग किया था। बौद्धग्रंथ चुल्लवग्ग (५, ३३, १) में ऐसा वर्णन आता है कि बुद्ध ने लोगों को अपनी भाषा से बुद्ध-वचन सीखने की आज्ञा दी थी।

अनुजानामि भिक्खवे निमत्तियां बुद्धवचनं

कच्चायन व्याकरण में इसका निम्न प्रकार उल्लेख है—

सा मागधी मूलभाषा संबुद्धा चापि भासरे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भगवान के बोलने की मूल भाषा का नाम मागधी था। अन्य प्रमाण भी इसे पुष्ट करते हैं कि बुद्ध ने मागधी में ही अपना प्रवचन आरम्भ किया था। अशोक ने उसी भाषा का प्रयोग लेखों में किया। अशोक के पश्चात् मागधी नाम प्रचलित न रहा किंतु पालि शब्द से वह भाषा प्रसिद्ध हुई। अशोक से लेकर शुंगकाल तक लेख तथा जातक प्रदर्शनों की भाषा (भरहुत वेदिका पर अंकित) पालि है। बौद्धसाहित्य की भाषा पालि या मागधी रही। जनसाधारण (प्रकृति) की भाषा होने से इसका 'प्राकृत' नामकरण भी हुआ।

विद्वानों के विचार में यही प्राकृत संस्कृत भाषा की उत्तराधिकारिणी हुई। चूंकि मौर्य तथा शुंग-सातवाहन युग के लेखों में प्राकृत का ही प्रयोग मिलता है अतः अभिलेखों के आधार पर प्राकृत ही प्राचीनतम भाषा थी। संस्कृत शिष्ट आर्य लोग बोलते थे, अतएव लेखों में इसका प्रयोग अशोक ने नहीं किया। वही प्रयोग शुंग-सातवाहन युग में दिखलाई पड़ता है। संस्कृत (Old Indo-Aryan Language) के बाद ही प्राकृत का प्रचलन हुआ। अतएव इंडो-आर्यन समूह में प्राकृत का स्थान मध्य में रखा जाता है (Middle Indo-Aryan) जिसका प्रसार ईसा पूर्व ६०० से ईसवी सन् ११०० तक होता रहा।

संस्कृत अभिलेख का इतिहास यह प्रकट करता है कि महाक्षत्रप रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख की भाषा काव्यमय संस्कृत रही। वह संस्कृत भाषा का प्रथम दृष्टांत है। उसके पश्चात् संस्कृत का प्रयोग गुप्तकाल में वृद्धि पर था। संस्कृत से प्राकृत का विनाश न हो सका अपितु दोनों का प्रयोग गुप्तकाल में साथ साथ होता रहा। बोलचाल की भाषा का प्रश्न विषयांतर होगा। गुप्त अभिलेखों की भाषा शुद्ध संस्कृत है जो राजभाषा का स्वरूप धारण कर ली। यदि लेखों की भाषा का परीक्षण किया जाय तो पता चलता है कि वैदिक यज्ञ को संपन्न करने वाला पुष्यमित्र भी लेखों में संस्कृत का प्रयोग न कर सका। मौर्य शासन के दक्षिण भारत के उत्तराधिकारी सातवाहन अपने को "एक ब्राह्मण" (श्रेष्ठ एवं उच्च ब्राह्मण) कहते रहे किंतु उनके सभी अभिलेख तथा मुद्रालेख प्राकृत ही में अंकित किए गए थे। नासिक, कनहेरी तथा कार्ले के लेख प्राकृत में खुदे हैं। आश्चर्य तो यह है कि उच्च वर्ग की भाषा संस्कृत का नाम तक नहीं मिलता। वैदिक यज्ञों का उल्लेख प्राकृत भाषा में किया गया है। इसका एक मात्र कारण यह था कि प्राकृत लोकभाषा थी और अभिलेख जन-साधारण के लिए खोदे गए थे।

अभिलेखों के सर्वेक्षण से विदित होता है कि ईसवी सन् की पहली सदी से मिश्रित संस्कृत का प्रचार होने लगा। शुंगकालीन अयोध्या लेख में संस्कृत प्राकृत से प्रभावित प्रकट होती है। जैसा कहा गया है द्वितीय शताब्दी में शक राजा रुद्रदामन ने काव्यमय संस्कृत में लेख खुदवाया था। **"स्फुट लघु मधुर चित्रकांत शब्द समयोदार अलंकृत गद्यपद्य"** वाक्य का उल्लेख किया गया है (प्रा० भा० अ०, पृ० ३०१)। यह स्पष्ट हो जाता है कि पश्चिमी भारत के शक नरेश संस्कृत से अनभिज्ञ नहीं थे। परंतु कारणवश उन्हें प्राकृत का प्रयोग करना पड़ता था। जिस शक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाक्षत्रप रुद्रदामन का गिरनार लेख संस्कृत में है उसी के मुद्रालेख (Legends) प्राकृत में हैं। उसके पुत्र एवं पौत्र के मुद्रालेख मिश्रित संस्कृत में है। प्राकृत पुतस के स्थान पर पुत्रस तथा रञो के स्थान पर संस्कृत राज्ञो शब्दों को अपनाया गया। उत्तर पश्चिम भारत में भी कुषाणवंशी लेख मिश्रित संस्कृत में हैं। उदाहरण के लिए--

महरजस्य रजतिरजस्य देवपुत्रस्य कनिष्कस्य

वाक्य में प्राकृत 'स' के बदले संस्कृत षष्टी विभक्ति 'स्य' का प्रयोग होने लगा था।

संभवतः उस युग में विदेशियों का भारतीयकरण हो रहा था, अतः प्राकृत के स्थान पर देवभाषा (संस्कृत) का प्रयोग किंचित् आरंभ किया गया। महायान साहित्य में भी पहली सदी से संस्कृत अपनाया गया। ईसवी सन् की तीसरी सदी से सर्वत्र भारत में राजकीय अभिलेख संस्कृत में ही उत्कीर्ण किए गए। वही क्रम गुप्तकाल में पूर्णरूप से कार्यान्वित किया गया।

संस्कृत का प्रयोग

ईसवी पूर्व सदियों में पाणिनि द्वारा अष्टाध्यायी की रचना हुई थी और पतंजलि ने ई० पू० दूसरी शताब्दी में महाभाष्य भी लिखा। इस प्रकार के संस्कृत व्याकरण का प्रभाव तत्कालीन लेखों पर अवश्यमेव पड़ा। गुप्तयुग से पूर्व अभिलेखों में मिश्रित संस्कृत का स्थान प्रमुख होता गया। गुप्त लेख तो सर्वथा संस्कृत में ही लिखे गए। गुप्तों की राजभाषा संस्कृत हो गई। चौथी शती में गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति हरिषेण द्वारा चम्पू भाषा में लिखी गई। क्रमशः समस्त गुप्त अभिलेख, मुद्रालेख तथा उत्तर—गुप्तयुग की प्रशस्तियाँ संस्कृत में अंकित हुई। उत्तरी भारत के अतिरिक्त दक्षिणापथ के अभिलेखों में संस्कृत अपनाया गया और वहाँ के लेख, प्रशस्तियाँ, ताम्रपत्र संस्कृत भाषा में ही खोदे गये। संस्कृत साहित्य में गुप्तकालीन पदाधिकारी हरिषेण का नाम अज्ञात है जिसने समुद्रगुप्त की कीर्ति को अमर बनाने तथा दिग्विजय एवं अश्वमेध की चर्चा निमित्त प्रशस्ति की रचना की। यह चम्पू काव्य शैली का सुंदर उदाहरण है। इसमें श्रग्धरा तथा शार्दूलविक्रीडित आठ छंद हैं। संस्कृत भाषा से साधारण जनता तक विज्ञ थी अतः समुद्रगुप्त के मुद्रालेख छंदोवद्ध मिले हैं। मुद्रालेख उपगीति आदि छंदों में हैं। स्वयं सम्राट् समुद्रगुप्त को हरिषेण ने 'शास्त्र-तत्वार्थ भर्त्ता' लिखा है। प्रकट होता है कि शासक संस्कृत काव्य का पारंगत पंडित था, इसी कारण उसे 'कविराज' की पदवी प्रयाग प्रशस्ति में दी गई है (प्रतिष्ठित कविराज शब्दस्य)। इस प्रकार प्रथम कुमारगुप्त के 'खंगनिहंता प्रकार' सिक्के पर भी छंदोवद्ध लेख हैं जिसमें 'खड्ग' शब्द का श्लेषात्मक प्रयोग है। खड्ग शब्द का अर्थ है—तलवार या गैंडा। मुद्रालेख इस प्रकार है—

भर्त्ता खड्गत्राता कुमारगुप्तो जयत्य निशम्।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुमारगुप्त सदा विजयो हो जो खड्गत्राता है यानी तलवार (खड्ग) से रक्षा करता है। अथवा गैंडा के आतंक से (खड्गात्) बचाता है। प्रयाग प्रशस्ति तथा कालिदास की रचनाओं में समानता है। शब्द तथा भाव की अनोखी समता है। उदयगिरि तथा मंदसोर लेख के रचयिता क्रमशः वीरसेन एवं वत्सभट्टि के नाम सर्वविदित है। द्वितीय चंद्रगुप्त का दरबार कवि वीरसेन न्याय, व्याकरण एवं राजनीति का प्रकांड पंडित था—

शब्दार्थ न्याय लोकज्ञ कवि पाटलिपुत्रकः
कौत्सशाव इतिख्यातो वीरसेन कुलाख्यया

(उदयगिरि गुहा लेख)

प्रथम कुमारगुप्त की मंदसोर प्रशस्ति के रचयिता वत्सभट्टि ने दशपुर का मनोरम वर्णन तथा भवनों का सजीव चित्रण सुंदर शब्दों में किया है। इसकी अलंकृतभाषा की समता कालिदास की अलकापुरी के वर्णन से की जा सकती है। वत्सभट्टि के मंदसोर प्रशस्ति में ऋतुओं का वर्णन कालिदास के ऋतुसंहार से मिलता जुलता है। इसकी कविता सरस तथा रसीली थी। यह वैदर्भी रीति में लिखे गये काव्य का उत्कृष्ट नमूना है। संक्षेप में यह कहना पर्याप्त होगा कि गुप्तकालीन प्रशस्ति संस्कृत साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। कुछ प्रशस्तियों के लेखकों का नाम अज्ञात है तथापि साहित्य के दृष्टि से पठनीय है। स्कंदगुप्त का गिरनार (जूनागढ़) लेख इसका ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसमें सुदर्शन झील के संस्कार की घटना अलंकारिक भाषा में लिखी गई है। इससे जनता में संस्कृत के प्रति अनुराग का परिज्ञान हो जाता है। जूनागढ़लेख में प्रशस्तिकार नदियों के (रैवत तथा पलाशिनी) प्रवाह का वर्णन करते हुए लिखता है कि मानों दोनों नदियों (स्त्रियों के रूप में) अपने पति (समुद्र) से मिलने के लिए द्रुतगति से जा रही हैं (प्रवाहित हो रही हैं)। यह उपमा पठनीय है—

इमाश्च या रैवतकाद्विनिर्गताः, पलाशिनीयं सिकता विलासिनी
समुद्रकांताः चिरवन्धनोषिता, पुनःपतिं शास्त्रयथोचितं ययुः ।।

लिपि की चर्चा

गुप्तकालीन अभिलेख, प्रशस्ति तथा दानपत्र एक विशिष्ट प्रकार की लिपि में उत्कीर्ण हैं जिसे 'गुप्त-लिपि' कहते हैं। भारत में लेखन कला के उद्गम के विषय में मतभेद हैं। भारतीय विद्वानों तथा पश्चिमी इतिहासज्ञों के विचारधारा में मतैक्य नहीं है। इस कारण यह विषय विवादास्पद बना है। भारतवर्ष में लिपि के अज्ञात उद्गम के संबंध में कोई वास्तविक चर्चा न कर उसे ब्रह्मा से उत्पन्न कहने लगे। यही भारत के प्राचीन लिपि के विषय में चरितार्थ होता है तथा प्राचीनतम लिपि का संबंध ब्रह्मा से जोड़कर उसे ब्राह्मी का नामकरण किया गया। इस विचार को बाद में भी प्रस्तर पर प्रदर्शित किया गया है। वहाँ ब्रह्मा के हाथ में ताड़पत्र का समूह दृष्टिगत होता है (इ० ए०, भा० ६, पृ० ३६६)। यानी ब्रह्मा लिखते दृष्टिगत हो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहे हैं। पश्चिमी विद्वानों का मत था कि आर्यों के आगमन के पश्चात् भारत में लेखन कला का विकास हुआ। परंतु हरप्पा संस्कृति के प्रकाश में आने पर विचार में परिवर्तन आ गया है। मैक्समूलर लेखन कला की उत्पत्ति ई० पू० ८०० से पूर्व कथमपि मानने को तैयार नहीं है (ए० इ० १९००, परिशिष्ट पृ० १७)। यूनानी लेखक, जो सिकंदर के आक्रमण पश्चात् भारत आये, भारतीय लेखनकला के प्रसार को विभिन्न रूप से व्यक्त किया है। ईसा पूर्व चौथी सदी का यूनानी राजदूत मेगास्थनीज ने मार्गों पर स्थित प्रस्तरों पर अंक को उत्कीर्ण देखा था यानी लिखना सभी जानते थे। करटियस ने भोजपत्र के प्रयोग का उल्लेख किया है। तात्पर्य यह है कि भारतवासी लिखने की कला से विज्ञ थे। चीनी यात्रियों ने भी भारतीय लिपि के संबंध में अपना मंतव्य प्रकट किया है। चीनी ग्रंथ में ब्राह्मी के विषय में उल्लेख है।

ईसवी पूर्व छठी शताब्दी में बौद्ध ग्रंथों का संकलन हो गया था। लेखन कला के संबंध में भी उल्लेख है। सूत्तांत नामक ग्रंथ में भिक्षुओं को अक्षरिका नामक खेल खेलना निषेध किया गया था। इस खेल में व्यक्ति के पीठ पर अक्षर के संकेत को समझ कर पहचानना पड़ता था। अन्य साक्ष्य भी इसे पुष्ट करते हैं। कई जातकों में पत्रों का लेखन, सरकारी घोषणा, तथा हस्तलिखित पुस्तकों का विवरण मिलता है। महावग्ग में लेख, गणना तथा रूप को प्रारंभिक शिक्षा का विषय कहा गया है। जातकों में फलक पर कलम (लेखनी) से लिखने की चर्चा है। ललितविस्तर में बुद्ध के लिपिशाला (पाठशाला) जाने का वर्णन आता है। अतएव बौद्ध साहित्य के आधार पर ईसा पूर्व ६०० के समीप लेखनकला की जानकारी भारतवासियों को अवश्य थी। इससे भी पूर्ववशिष्ठ धर्मसूत्र (१६, १०, १४) में वर्णन आया है कि लिखित पत्र को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। भारतीय वेदांग में कल्प के साथ व्याकरण का नामोल्लेख है। साहित्य (यानी लिखे ग्रंथ) के आधार पर व्याकरण तैयार होता है। अतएव यह कथमपि संभव नहीं कि व्याकरण तथा दर्शन के प्रचारकों को लेखन कला का ज्ञान न हो? पाणिनि के अष्टाध्यायी में लिपि, लिपिकार या यवनानी शब्दों का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि समाज में लेखन कला का समुचित ज्ञान था। नारद तथा बृहस्पति ने लिखा है कि ब्रह्मा द्वारा लिखने की कला उत्पन्न की गई जिससे लोगों को शास्त्र का ज्ञान हो सके। खेद है कि ईसा पूर्व पाँचवी सदी से पूर्व लिखित दृष्टांत उपलब्ध नहीं है। प्राचीन काल में कंठगता विद्या थी और गुरुमुख से श्रवण कर शास्त्रों का पठन पाठन किया जाता था। डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने अपने ग्रंथ 'प्राचीन भारतीय लिपिमाला' में इस विषय की चर्चा करते समय यह मत व्यक्त किया है कि प्राचीनयुग में लिखित प्रतिशाख्य वर्त्तमान था यानी लेखनकला का ज्ञान भारतवासियों को अवश्य था। सभी प्रमाणों के आधार पर यह मत व्यक्त करना यथार्थ होगा कि ईसा पूर्व हजार वर्ष में भारत में लेखनकला का प्रारंभ हो गया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्राह्मी का विकास

ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से अशोक के धर्मलेख प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित करते हैं कि ब्राह्मी लिपि का विकास हो गया था। उस सम्राट् के सभी लेख (पश्चिमोत्तर प्रदेश को छोड़कर) ब्राह्मी में खोदे गये थे। अशोक के लेखों का विश्लेषणात्मक अध्ययन यह बतलाता है कि भारत में लिपि का पूर्व ज्ञान था जिसका विकास अशोक के शासनकाल में हुआ। यह सही है कि उत्तर से दक्षिण तक के लेखों में समान अक्षर नहीं हैं। गिरनार, सिद्धपुर' धौली आदि के अक्षर असमान हैं। स्थान विषमता से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि लिपि का प्रचार पहले से ही था। अशोक ने प्रस्तर पर चिरस्थायी होने के हेतु लेख खुदवाए थे—

अयि ध्रमदिपि लिखितचिर-ठितिक होतु तथ च में प्रज अनुवटतु।

(शिलालेख ५, मानसेरा पाठ प्रा० भा० अ०, पृ० २५०)

गुप्तलिपि

गुप्त अभिलेखों का संबंध लेखन कला तथा लिपि से इतना गंभीर है कि उनका अध्ययन नितांत आवश्यक है। भारत में संस्कृति के आरंभ से लिखने-पढ़ने का कार्य अवश्य होता रहा। लेखनकला के कारण ही ज्ञान की स्थिरता मानी गई है। इस कारण लेखनकला के जन्मदाता को ईश्वरीय शक्ति से संपन्न मानते हैं। भारत की लिपि की उत्पत्ति ब्रह्मा से मानकर सारे मानसिक विकास हुए। उसी ब्राह्मी से गुप्तलिपि कालांतर में विकसित हुई। यों तो विश्व में आकृतियाँ द्वारा या चित्र द्वारा मनुष्य अपने विचारों को व्यक्त करता रहा (मिश्र, मेसोपोटामिया आदि देश में चित्रलिपि) परंतु भारत में ऐसे चिह्न नहीं मिलते। उच्चारण के लिए अक्षर चिह्न (प्रतीक) स्थिर किए गए जिनका विशिष्ट स्थान था। पाणिनि के व्याकरण का आरंभ इन्हीं स्थानों के वर्णन से होता है। कंठ के स्थानों से अक्षरों का घनिष्ठ संबंध है। लिपि की उत्पत्ति का इतिहास विस्तृत है जिसके विवेचन में जाना विषयांतर होगा। जिस लिपि से भारत की लिपियाँ विकसित हुई यानी ब्राह्मी (उस) का नाम जैनसाहित्य में (**समवायांग सूत्र**) **बम्भी** ब्राह्मी) उल्लिखित है। अशोक के समय में जिस ब्राह्मी लिपि का प्रयोग हुआ उसीका विकसित रूप गुप्तलिपि या अन्य लिपि मानी गई है। संक्षेप में यह मत व्यक्त करना अप्रासंगिक न होगा कि वैज्ञानिक रूप में ब्राह्मी के प्रत्येक अक्षर ध्वन्यात्मक चिह्न हैं। लिखने तथा बोलने में समता है। यानी जो कुछ लिखा जाता है उसीके समान उच्चारण भी करते हैं। ब्राह्मी भारत की राष्ट्रीय लिपि है जो ईसा पूर्व ५०० से ३०० ई० तक समान रूप में पाई जाती है। कालांतर में उसमें कील तथा न्यूनकोण का समावेश हुआ। गुप्तकाल की ब्राह्मी में परिवर्त्तन स्पष्ट हो जाता है। इसी को ध्यान में रखकर ब्राह्मी के दो उपविभाग किये गए हैं—

(१) उत्तर भारत की शैली।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२) दक्षिण भारत की शैली ।

डिरिंजर के मतानुसार अशोक कालीन ब्राह्मी में कालांतर में परिवर्त्तन आने लगा । इसी कारण उड़ीसा के हाथीगुंफा लेख तथा सातवाहन नरेशों के (नासिक) लेखों की लिपि में एकरूपता नहीं है । गुप्तयुग से पूर्व में भी मथुरा का रंजुबल का अभिलेख तथा कुषाण प्रशस्तियों में समान अक्षर नहीं मिलते । प्रारंभिक अवस्था में ब्राह्मी में स्वर के चिह्न अक्षर के सिरे पर या नीचे लगाए जाते थे । विसर्ग का नाम न था । सर्वप्रथम नासिक लेख में इसका व्यवहार हुआ तथा गिरनार लेख में संयुक्त अक्षर का प्रयोग सुनिश्चित रूप से होने लगा । ब्राह्मी की गोलाई के भाग में परिवर्त्तन किया गया । ईसवी सन् से दीर्घ स्वर के लिए पृथक रूप सामने आया । दूसरी सदी से हलंत वाला अक्षर साधारण अक्षरों के नीचे (उसी सीध में नहीं) लिखा जाने लगा । अक्षरों की सिरो-रेखा गिरनार लेख (१५० ई०) में एक छोटी रेखा के रूप की दिखलाई पड़ती है जो कालांतर में लंबी लकीर बन गई और एक शब्द के लिए एक रेखा का रूप धारण कर लिया । अक्षरों के स्वरूप में भी परिवर्त्तन होने लगे ।

चौथी शताब्दी से भारतीय लिपि में विशेष रूप से भिन्नता आ गई । तीसरी शदी तक ब्राह्मी में आमूल परिवर्त्तन नहीं दिखलाई पड़ता । अक्षरों के कुछ नए रूप आ जाने पर भी नामकरण में परिवर्त्तन न किया गया । किंतु चौथी शदी से छठी शदी तक नर्वदा के उत्तर में प्रचलित लिपि को 'गुप्तलिपि' की संज्ञा दी गई क्योंकि उस अवधि में गुप्त शासक राज्य करते रहे । समय तथा स्थान के कारण ब्राह्मी में विभेद आ गया । गुप्तलिपि का प्रयोग संस्कृत भाषा में सर्वत्र होने लगा । उदयगिरि (चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के लेख) की प्रशस्ति में जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय का सर्वप्रथम प्रयोग मिलता है । गुप्तलिपि के अध्ययन के फलस्वरूप दो उपविभाग किये गये है ।

(१) पश्चिम ढंग के अक्षर (जिसमें कोई नया रूप नहीं है)—प्रथम कुमारगुप्त के मिलसद (एटा जिला) लेख की लिपि पश्चिमी उपविभाग की प्रतिनिधि मानी गई है । इसमें स्वर के चिह्न स्पष्ट हैं ।

(२) पूर्वी शैली—इस लिपि में, ल, स, ह, तथा म अक्षरों का नया रूप दृष्टिगोचर होता है । प्रयाग का स्तंभलेख इसका प्रतिनिधित्व करता है । ई के लिए दो बिंदु तथा सामने लंबवत् रेखा का प्रयोग (: ।) मिलता है । सभी अक्षरों में कोण तथा सिरे पर रेखा का समावेश गुप्तलिपि में किया गया है । इसी को सिद्धमातृका के नाम से पुकारते हैं । गुप्तलिपि के कुछ अक्षरों की विशेषता निम्नलिखित है—

(१) गुप्तलिपि के कुछ अक्षरों में दाहिनी तरफ इतना विस्तार हुआ कि उनका दूना कद हो गया । उन अक्षरों में अ, ग, ड, त, भ को गिना जाता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२) उस युग के छ, प, फ, श एवं स अक्षरों के अंतिम छोर पर न्यूनकोण का सृजन हो गया था जिससे लंबवत् वृद्धि हो गई ।

(३) स्वर में आ का चिह्न लंबवत् भाग के अंत में जोड़ दिया गया है ।

(४) गुप्तकाल में दो प्रकार ई का चिह्न प्रकट हुआ—लंबवत् रेखा तथा दो बिंदु । दूसरे प्रकार में इसका ठीक उलटा रूप प्रकट हुआ । : तथा : ।

(५) अक्षर ज में मध्य की रेखा छठी शदी तक ऊपर टेढ़ी लकीर बन जाती है ।

(६) ण का विशिष्ट रूप इस युग में विकसित हुआ । चतुर्भुज की ऊपरी रेखा दोनों पार्श्व में टेढ़ी हो जाती है ।

(७) ब्राह्मी में थ अक्षर को केंद्र बिंदु सहित वृत्त से प्रकट करते थे । किंतु गुप्तलिपि में वृत्त के परिधि को स्पर्श करती एक सीधी रेखा बन जाती है ।

(८) य का विशिष्ट रूप सामने आता है ।

(९) इ तथा ई का नया रूप प्रकट होता है । सिरे पर बिच्छु के डंक का रूप लुप्त हो गया ।

(१०) उ मात्रा को कई प्रकार से दिखलाया गया है । प्रयाग प्रशस्ति में अक्षर के नीचे बाईं ओर वक्ररेखा से व्यक्त किया है । ग, त तथा भ अक्षरों में दाहिनी ओर मुड़ा है । प, म तथा व में अक्षरों के नीचे दाहिनी तरफ एक छोटी रेखा से व्यक्त किया गया है । बड़ी ऊ की भी यही दशा है ।

(११) रेफ का छोटा (अर्द्ध) रूप अक्षरों के सिरे पर दृष्टिगत होने लगा ।

(१२) पांचवी शदी से गुप्तयुग में म, ल, ह, स तथा भ का पश्चिमी तथा पूर्वी स्वरूप स्पष्ट हो गया ।

इसके नामकरण में विद्वानों में मतभेद हुआ कि पूर्वी, पश्चिमी या उत्तर अथवा दक्षिणी प्रकार से नामकरण किया जाय । परंतु यह नामकरण कसौटी पर नहीं उतरते । उदयगिरि गुहालेख में पूर्वी प्रकार तथा सांची लेख में पश्चिमी प्रकार के अक्षर दीख पड़ते हैं । इसका मुख्य कारण यह था कि संग तराश पाटलिपुत्र से वहाँ गए थे अतएव उत्तरी प्रकार के अक्षरों को भी अंकित किया । अतः उत्तरी गुप्त अक्षरों का पहुँचना स्वाभाविक है । वाकाटक रानी प्रभावती गुप्ता से पूना ताम्रपत्र लेख की भी यही दशा है । पूर्वी प्रकार के गुप्त अक्षरों का उसमें समावेश स्पष्ट है । संभवतः पूर्वी भारत से संग तराश वहाँ गए । अतएव उन अक्षरों का स्वरूप दीख पड़ता है । वहाँ भी शनैः शनैः गुप्त राज्य के पश्चिमी भाग में लोप हो गए । इसी कारण अक्षरों में विभेद दृष्टिगत होता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुटिल लिपि

गुप्तयुग के पश्चात् छठी शदी तक गुप्त-ब्राह्मी में अधिक भिन्नता उत्तरी भारत के लिपि में दिखलाई पड़ने लगी। गुप्तलिपि के प्रत्येक अक्षर में नीचे की ओर खड़ी रेखाएं बाईं ओर लंबी हो गई। इस लिपि को 'कुटिल' का नाम दिया गया। यह शब्द लेख में **'कुटिलाक्षराणि'** कहा गया है। विक्रमांकदेव चरित में **'कुटिलिपि'** शब्द उल्लिखित है। कालांतर में इसे **'विकटाक्षरा'** भी कहने लगे। पिछले गुप्तनरेश आदित्यसेन के अफसद लेख (गया जिला) तथा विष्णुगुप्त का मंगरांव (शाहाबाद जिला) लेख में इसी लिपि का प्रयोग किया गया है। उत्तरप्रदेश, बिहार तथा राजस्थान के लेख इस लिपि में खुदे हैं। इसी को नागरी अक्षर का पूर्वरूप मान सकते हैं। नागरी इसी से विकसित हुई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ९

गुप्त-अभिलेखों में तिथि-गणना

तिथि-अंकन

भारतीय इतिहास के समालोचक सदा इस विषय का उल्लेख करते हैं कि प्राचीन लेखकों ने इतिहास लिखते समय तिथि का अंकन आवश्यक नहीं समझा। इससे उनकी ऐतिहासिक जिज्ञासा परिलक्षित नहीं होती। ऐसे विवरण उपस्थित करने का कारण यह था कि आलोचकों ने साहित्य को छोड़कर अभिलेखों का समुचित अध्ययन नहीं किया था, जिनमें ज्ञानराशि भरी पड़ी है। अशोक के धर्मशासन का अध्ययन किसी परिणाम पर नहीं ले जाता; किंतु मध्यकालीन लेखों में अपरिमित सामग्री भरी पड़ी है। साधारणतः; गुप्तयुग ईसवी-सन् चौथी शदी से पूर्व के अभिलेख धार्मिक भावना से ओतप्रोत हैं। कलिंगराजा खारबेल तथा महाक्षत्रप रुद्रदामन् के जूनागढ़ के लेख प्रशस्ति की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। इन लेखों में तिथि के उल्लेख की एक विशेष रीति थी, जिसे 'राज्यवर्ष' कह सकते हैं। राजा के शासनकाल में अमुक समय यह घटना हुई या राज्यवर्ष की अमुक तिथि को शासक ने धार्मिक कार्य सम्पन्न किया, ऐसा उल्लेख ईसवी-सन् की दूसरी शदी तक के अभिलेखों में पाया जाता है। यद्यपि उस तरह के उद्धरणों से निश्चित शासनकाल का परिज्ञान नहीं होता, तथापि अन्य साधन भी सहायक हो जाते हैं, जिस आधार पर तिथियाँ स्थिर की जाती हैं। यदि नासिक-गुहा के अभिलेखों का अध्ययन किया जाय, तो स्पष्ट हो जाता है कि सातवाहन नरेश तथा मालवा एवं काठियावाड़ के क्षत्रप शासक समकालीन थे। सातवाहन-लेखों में गौतमीपुत्र शातकर्णी के १८वें या २४वें राज्यवर्ष का उल्लेख है। उसी नासिक-गुहा के अन्य लेखों में नहपान के ४२वें या ४६वें वर्ष की घटना का वर्णन किया गया है। अनुमानतः, श क-क्षत्रपों की तिथियों का संबंध शक-संवत् से था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहपान तथा गौतमीपुत्र शातकर्णी की समकालीनता निश्चित कर विभिन्न राजाओं की तिथियाँ स्थिर की जाती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रचलित संवत् से तिथि का संबंध जोड़कर शासनकाल की समस्याओं को सुलझाया गया है।

अभिलेखों में वर्ष की समस्या के साथ मास तथा पाक्षिक तिथियों का उल्लेख भी एक विचारणीय प्रश्न है। पश्चिम भारत (मालवा, काठियावाड़ तथा महाराष्ट्र) के क्षत्रप तथा सातवाहन-लेखों में एक नये ढंग से तिथि का उल्लेख मिलता है, जिसे ऋतु-संबंधी तिथि कह सकते हैं। इसका एक मूल कारण यह था कि शक-संवत् से जुड़ी हुई तिथियाँ ऋतु-संबंधी थीं। चूँकि, क्षत्रप तथा दक्षिण के सातवाहन नरेशों के लेखों में शक-संवत् में तिथियाँ मिलती हैं, इसीलिए उनमें ऋतु का उल्लेख है। मास तथा पक्ष का विवरण नहीं पाया जाता। उदाहरण के लिए, नासिक के गुहालेखों में—(क) **गीम्हाणं पखे वितिये** (२); (ख) **वासान पखे ४ दिवसे पंचमे** और (ग) **हेमंत पखे ३ दिवसे १** का उल्लेख है, जिससे प्रकट होता है कि उन दिनों वर्ष को तीन प्रधान विभाग—ग्रीष्म, वर्षा तथा शीत में विभक्त किया गया था। प्रत्येक ऋतु चार मास की होती है तथा प्रत्येक मास में दो पक्ष होते हैं। इस प्रकार, हर एक ऋतु में आठ पक्ष हो जाते हैं। निश्चित समय बतलाने के लिए पक्ष की संख्या तथा तिथि से कार्य किया जाता था। **गीम्हाणं पखे वितिये** (ग्रीष्म के दूसरे पक्ष) से चैत्र शुक्लपक्ष का बोध होता है। **हेमंत पखे ३** से मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष का ज्ञान हो जाता है तथा **वासान पखे ४** से श्रावण शुक्लपक्ष की गणना की जाती है। सातवाहत-काल में इस प्रकार तिथि-गणना का प्रभाव कई शदियों तक दक्षिण में वर्त्तमान था। यही कारण था कि चौथी शदी के पल्लवनरेश शिवस्कंधवर्मन् के लेख में **गिम्हा पखो छठो दिवस पंचमि** का उल्लेख है, जिसका अर्थ होता है कि वह लेख वैशाख शुक्ल-पंचमी के अवसर पर अंकित किया गया था। चौथी शदी के इक्ष्वाकु नरेश विरूपाक्षदत्त के नागार्जुनी-लेख में भी प्राचीन ढंग की ऋतु तथा पक्ष का प्रयोग किया गया है। प्रायः ईसवी-पूर्व शदियों से दूसरी शदी तक ऋतु-संबंधी तिथि-गणना का अधिक प्रचार था। यद्यपि-उत्तर-पश्चिमी भारत में शक-संवत् का प्रचार था, तथापि यूनानी प्रभाव से भारत में मास एवं तिथि का उल्लेख प्रारंभ हो गया। शक-संवत् ५२ के रुद्रदामन् के अंडो-लेख (कच्छ) में **फगुण बहुलस द्वितिय वारे** का उल्लेख स्पष्ट प्रकट करता है कि मास नाम के साथ पक्ष एवं तिथि का अंकन भी होने लगा था।

गुदफर के तख्तेवहाई (शाहवाजगढ़ी)-लेख में **वैशखस मसस दिवसे प्रठमे वहले पक्षे** (वैशाख कृष्णपक्ष-प्रतिपदा) का उल्लेख मिलता है। कलवान (तक्षशिला के समीप)-लेख में **श्रवणस मसस दिवसे त्रेविशे** (श्रावण मास २३) तथा आरा (अटक के समीप)-शिलालेख में **जेठस मासस दिवसे १** वाक्य उल्लिखित हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर-पश्चिम भारत में यूनानियों ने मास एवं तिथि का प्रसार किया था। पटिक के तक्षशिला-ताम्रपत्र से यूनानी मास **पनेमस मसस** उल्लिखित है, जो भारतीय आषाढ से मिलता है। ईसवी-सन् १५० में लिखित रुद्रदामन् की जूनागढ़-प्रशस्ति में भी **मार्गशीर्ष बहुल प्रतिपद** द्वारा तिथि का उल्लेख मिलता है। कुषाणवंशी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानिकियाला-शिलालेख में आषाढ (**अषड़स मसस**), जेदालेख में कार्त्तिक तथा आरा-प्रशस्ति में ज्येष्ठ मास (**जेठस मसस**) के नाम मिलते हैं। यहाँ तक कि रुद्रसिंह की गुंडा-प्रशस्ति में **वैशाख शुद्धे पंचमे पुण्य तिथौ** वाक्य भारतीय तिथि-गणना में आमूल परिवर्त्तन का द्योतक है (विस्तृत विवरण निमित्त देखिए—प्रा० भा० अ०, पृ० १७५-७)।

चौथी शदी से उत्तर भारत में गुप्तशासन के प्रारंभ हो जाने पर भारतीय तिथि-गणना में नई पद्धति का समावेश किया गया। इतना ही नहीं, दक्षिण या पश्चिम भारत में जहाँ गुप्त-प्रभाव विस्तृत हुआ, नई तिथि-गणना के प्रकार का अनुकरण किया गया। समस्त प्रशस्तियों के अनुशीलन से गुप्तयुग में 'वार' की गणना दो विभिन्न प्रणालियों से की जाती थी। पहली रीति में मास के तीस दिवस को पृथक्-पृथक् स्थानानुसार उल्लिखित किया जाता था, यानी कृष्ण या शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से क्रमशः अमा या पूर्णिमा तक का समावेश न था। उदाहरण के लिए, गुप्तनरेश द्वितीय चन्द्रगुप्त के साँची-लेख में **भाद्रपद दिवस ४** उल्लिखित है तथा प्रथम कुमारगुप्त के मंदसोर-लेख में **जेष्ठ मास दिवस १८** एवं दामोदरपुर (बंगाल) ताम्रपत्र में **फाल्गुन दिवस ७** अंकित है। बंगाल के दूसरे अभिलेखों में अन्यतम गुणैघर (वैन्यगुप्त)-लेख में **पौष मास २४ दिवसे** लिखा है। वैग्राम ताम्रपत्र में **माघ दिवस १९**, फरीदपुर-ताम्रपत्र में **वैशाख दिवस ५** तथा खोह से प्राप्त ताम्रपत्र में **चैत्र दिवस २८** का उल्लेख है। कहने का तात्पर्य यह है कि पक्ष का नाम (बहुल अथवा शुक्ल) न लिखकर एक से तीस तक दिवस की संख्या लिख दी जाती थी।

जैसे माघ का १९वाँ दिन या चैत का २८वाँ दिन कहने से एक निश्चित समय का ज्ञान हो जाता है। दिन की संख्या से ही मास का आरंभ, मध्य या उत्तर भाग का बोध हो जाता था। दूसरी प्रणाली अधिक वैज्ञानिक ढंग से काम में लाई गई। संभवतः, अधिक वैज्ञानिक स्वरूप का समावेश गुप्तयुग के गणित के विद्वानों द्वारा किया गया। मालवा के गंगधर-लेख में **शुक्ले त्रयोदश दिवसे—कार्त्तिक मासस्य** का उल्लेख घोषित करता है कि पाँचवी शदी से मास के दो पक्षों की गणना आरंभ हो गई थी। एक पक्ष पंद्रह दिनों का होता था, ऐसा परिज्ञान लेखों के अध्ययन से हो जाता है। मंदसोर-शिलालेख में बंधुवर्मा के कार्यों का वर्णन करते हुए निम्नलिखित पंक्तियाँ भी मिलती हैं—

सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्तेऽह्नि त्रयोदशे।
मङ्गलाचारविधिना प्रासादोऽयं निवेशितः॥

इसी प्रकार, मध्यप्रदेश के जबलपुर-ताम्रपत्र में महाराज हस्तिन् ने **फाल्गुन मास शुक्लपक्ष पञ्चम्यां** तिथि पर दान किया था, ऐसा वर्णन आया है। मध्यभारत में भी पूर्ण वैज्ञानिक तिथि-गणना काम में लाई जाती थी। बुधगुप्त के एरण-प्रस्तर-स्तंभ-प्रशस्ति में **आषाढ मास शुक्ल**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वादश्यां तिथि का उल्लेख किया गया है। खोह (मध्यभारत) से जितने ताम्रपत्र उपलब्ध हुए हैं, उनमें मास, पक्ष तथा १ से १५ तिथियों तक का विवरण है। संक्षोभ्य के ताम्रपत्र में **चैत्रमास शुक्लपक्ष त्रयोदश** उल्लिखित है। यह कहा जा चुका है कि गुप्तशासन द्वारा प्रभावित क्षेत्र में भी इसी रीति की तिथि-गणना प्रयुक्त होती रही। द्वितीय चंद्रगुप्त की पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह दक्षिण के वाकाटक नरेश से हुआ था और वहाँ के शासन में गुप्तनरेश का भी हाथ था। इसीलिए, वाकाटक-राजा प्रवरसेन के लेख में **कार्तिक मास शुक्लपक्ष १२** तथा **जेष्ठ मास शुक्ल पक्ष १३** तिथियों का उल्लेख है। पश्चिम भारत के वलभी-नरेश गुप्त-शासक के अधीन तो न रहे, परंतु काठियावाड़ में गुप्त-संवत् का प्रयोग होता रहा। अलबेरूनी ने उसे भ्रमवश 'वलभी-संवत्' लिखा है। गुप्त-संवत् के प्रयोग से वैज्ञानिक तिथि-गणना का भी प्रचार काठियावाड़ में हो गया और इस कारण से वलभी-नरेश द्रोणसिंह के अभिलेख में **श्रावण शुदि १०** की तिथि उल्लिखित है। इसी वंश के राजा विध्यशक्ति के वसिम-लेख में प्राचीन रीति का प्रयोग मिलता है। **हेमंत पक्खं पढ़य दिवस पथम** से **पौष कृष्ण-प्रतिपदा** का बोध होता था। तात्पर्य यह है कि प्रारंभिक अवस्था में दक्षिण भारत में सातवाहन एवं पल्लवनरेश की प्रशस्तियों में जो प्राचीन रीति प्रचलित थी, वह गुप्त-प्रभाव से लुप्त हो गई। वाकाटक का अभिलेख इसका उदाहरण है। इसी प्रकार, वलभी-नरेश के लेखों से गुप्त-संवत् के प्रचार से वैज्ञानिक तिथि-गणना के समावेश का परिज्ञान हो जाता है।

अभिलेखों का सर्वेक्षण यह बतलाता है कि शक-संवत् से संबद्ध लेखों में ऋतु-संबंधी तिथि-गणना का आरंभ हुआ; परंतु यूनानी प्रभाव से वह प्रयोग में न आ सका। गुप्तों के अभ्युदय से वैज्ञानिक रीति का समावेश होने लगा। पहली प्रणाली, यानी पक्षरहित तिथि (एक से तीस तक का प्रचार) का स्थान दूसरी पूर्ण वैज्ञानिक रीति ने ले लिया। मास नाम के साथ तिथि-संख्या का त्याग कर पक्ष एवं उसकी तिथि (प्रतिपदा से अमा या पूर्णिमा) का उल्लेख सर्वत्र दिखलाई पड़ता है।

मध्ययुग के दानपत्रों में इसी वैज्ञानिक रीति का उपयोग किया गया। गहड़वाल-राजा के दानपत्र में पितृश्राद्ध के अवसर दान का वर्णन है, जिसकी तिथि **आश्विनमासे कृष्णपक्षे १५, पितुः सांवत्सरिक श्राद्धे** का उल्लेख है। परमार तथा कलचुरी-दानपत्रों में इसी तरह तिथि-गणना (**ज्येष्ठमासे कृष्णपक्षे १५ तिथौ**) मिलती है। पुण्य उत्सव की तिथियाँ भी उसी शैली में उल्लिखित हैं। अक्षय तृतीया (वैशाख शुक्ल ३), देवोत्थान एकादशी (कार्त्तिक शुक्ल ११), रथसप्तमी या महासप्तमी (माघ शुक्ल ७) आदि अवसरों का विवरण प्रशस्तियों में आता है। **भाद्रपद मासि शुक्लपक्षे तृतीयायां तिथौ** का उल्लेख दान के संबंध में किया गया है। अतः, संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि स्वर्णयुग (गुप्तकाल) तथा उत्तर-गुप्त से भारत में तिथि-गणना पूर्ण वैज्ञानिक रीति से होने लगी थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त-संवत्

भारतीय ऐतिहासिक गवेषणा में विद्वानों को अमुक राजा वा राजवंश के काल-निर्णय में अत्यंत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। कब और कहाँ आदि प्रश्न ऐतिहासिक परिशीलन में प्रायः पूछे जाते हैं। भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों में पूर्वकाल में अनेक संवत् प्रचलित हुए थे, जिन्हें विभिन्न समयों पर पृथक् पृथक् राजाओं ने स्थापित किया था। इन संवतों के आधार पर भारत का तिथि-क्रमयुक्त शृङ्खला-वद्ध इतिहास लिखने में बड़ी सहायता मिली है। ईसा की चौथी से छठी शताब्दी तक गुप्त इतिहास की घटनाएँ काल क्रमानुसार निबद्ध करने में विद्वानों को कठिनाइयों की संभावना थी, परंतु गुप्तलेखों में 'गुप्तकाल' और गुप्तवंश की राज-परंपरा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है जिससे काल-निर्णय में सरलता हो जाती है। अतएव गुप्तकाल की प्रारंभिक तिथि (गुप्त-संवत् में) को निर्धारित करना समुचित प्रतीत होता है। यह संवत् (गुप्त-संवत्) किस राजा ने चलाया, इस विषय में लिखित प्रमाण अब तक नहीं मिला है।

प्रायः समस्त गुप्तलेखों में एक प्रकार की तिथि का उल्लेख मिलता है जिससे अमुक राजा की शासन-अवधि स्थिर की जाती है। सब तिथियों के अनुशीलन से यह प्रकट होता है कि तिथि का क्रम शनैः शनैः एक शासक से उसके उत्तराधिकारी के लेख में बढ़ता जाता है। गुप्त-सम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त के लेखों में ८८ या ९३ आदि तिथि उल्लिखित हैं,[1] तो उसके पुत्र प्रथम कुमारगुप्त की प्रशस्तियों में ९६, ९८, ११७, १२९ आदि तिथियाँ मिलती हैं।[2] इन अंकों से यह तात्पर्य नहीं निकाला जा सकता कि द्वितीय चंद्रगुप्त ने ९३ वर्ष तक शासन किया तथा प्रथम कुमार १२९ वर्ष तक राज्य करता रहा। यदि इन अंकों पर विचार किया जाय तो ज्ञात होता है कि गुप्तसम्राट् किसी अमुक समय से काल-गणना करते थे। ये अंक यही सूचित करते हैं कि गुप्तनरेश ९३वें वर्ष तथा १२९वें वर्ष में शासन करते थे। अतएव उस समय को निश्चित करना परमावश्यक प्रतीत होता है।

गुप्त-संवत् का नामोल्लेख

कतिपय लेखों तथा ग्यारहवीं शताब्दी के मुसलमान इतिहासज्ञ अलबेरूनी के वर्णन से स्पष्ट पता चलता है कि गुप्तों के नाम से किसी समय की गणना होती थी; जिसे 'गुप्त-काल' या 'गुप्त-संवत्' कहते हैं। इस कारण यह प्रतीत होता है कि लेखों की समस्त तिथियाँ इसी गुप्त-संवत् में दी गई हैं। गुप्तसम्राट् स्कंदगुप्त के जूनागढ़ लेख में स्पष्ट रीति से उल्लेख मिलता है कि इस प्रशस्ति की तिथि 'गुप्तकाल' (गुप्त-संवत्) में दी गई है :—

---

१ श्री चंद्रगुप्त राज्य संवत्सरे ८८ (का० इ० इ०, भा० ३, नं० ५, ७)

२ 'श्री कुमारगुप्तस्य अभिवर्धमान विजयराज्ये संवत्सरे षण्णवते' (वहीं, नं० ८, १०, ११)

नोट—इसके विवरण में—गु० स०—गुप्त संवत्, श० का०—शक काल, मा० स०—मालव संवत्, वि०—विक्रमी तथा श०—शक के लिए प्रयोग किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वादश्यां तिथि का उल्लेख किया गया है। खोह (मध्यभारत) से जितने ताम्रपत्र उपलब्ध हुए हैं, उनमें मास, पक्ष तथा १ से १५ तिथियों तक का विवरण है। संक्षोभ्य के ताम्रपत्र में **चैत्रमास शुक्लपक्ष त्रयोदश** उल्लिखित है। यह कहा जा चुका है कि गुप्तशासन द्वारा प्रभावित क्षेत्र में भी इसी रीति की तिथि-गणना प्रयुक्त होती रही। द्वितीय चंद्रगुप्त की पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह दक्षिण के वाकाटक नरेश से हुआ था और वहाँ के शासन में गुप्तनरेश का भी हाथ था। इसीलिए, वाकाटक-राजा प्रवरसेन के लेख में **कार्तिक मास शुक्लपक्ष १२** तथा **जेष्ठ मास शुक्ल पक्ष १३** तिथियों का उल्लेख है। पश्चिम भारत के वलभी-नरेश गुप्त-शासक के अधीन तो न रहे, परंतु काठियावाड़ में गुप्त-संवत् का प्रयोग होता रहा। अलबेरूनी ने उसे भ्रमवश 'वलभी-संवत्' लिखा है। गुप्त-संवत् के प्रयोग से वैज्ञानिक तिथि-गणना का भी प्रचार काठियावाड़ में हो गया और इस कारण से वलभी-नरेश द्रोणसिंह के अभिलेख में **श्रावण शुदि १०** की तिथि उल्लिखित है। इसी वंश के राजा विध्यशक्ति के वसिम-लेख में प्राचीन रीति का प्रयोग मिलता है। **हेमंत पक्खं पढ़य दिवस पथम** से **पौष कृष्ण-प्रतिपदा** का बोध होता था। तात्पर्य यह है कि प्रारंभिक अवस्था में दक्षिण भारत में सातवाहन एवं पल्लवनरेश की प्रशस्तियों में जो प्राचीन रीति प्रचलित थी, वह गुप्त-प्रभाव से लुप्त हो गई। वाकाटक का अभिलेख इसका उदाहरण है। इसी प्रकार, वलभी-नरेश के लेखों से गुप्त-संवत् के प्रचार से वैज्ञानिक तिथि-गणना के समावेश का परिज्ञान हो जाता है।

अभिलेखों का सर्वेक्षण यह बतलाता है कि शक-संवत् से संबद्ध लेखों में ऋतु-संबंधी तिथि-गणना का आरंभ हुआ; परंतु यूनानी प्रभाव से वह प्रयोग में न आ सका। गुप्तों के अभ्युदय से वैज्ञानिक रीति का समावेश होने लगा। पहली प्रणाली, यानी पक्षरहित तिथि (एक से तीस तक का प्रचार) का स्थान दूसरी पूर्ण वैज्ञानिक रीति ने ले लिया। मास नाम के साथ तिथि-संख्या का त्याग कर पक्ष एवं उसकी तिथि (प्रतिपदा से अमा या पूर्णिमा) का उल्लेख सर्वत्र दिखलाई पड़ता है।

मध्ययुग के दानपत्रों में इसी वैज्ञानिक रीति का उपयोग किया गया। गहड़वाल-राजा के दानपत्र में पितृश्राद्ध के अवसर दान का वर्णन है, जिसकी तिथि **आश्विनमासे कृष्णपक्षे १५, पितुः सांवत्सरिक श्राद्धे** का उल्लेख है। परमार तथा कलचुरी-दानपत्रों में इसी तरह तिथि-गणना (**ज्येष्ठमासे कृष्णपक्षे १५ तिथौ**) मिलती है। पुण्य उत्सव की तिथियाँ भी उसी शैली में उल्लिखित हैं। अक्षय तृतीया (वैशाख शुक्ल ३), देवोत्थान एकादशी (कार्त्तिक शुक्ल ११), रथसप्तमी या महासप्तमी (माघ शुक्ल ७) आदि अवसरों का विवरण प्रशस्तियों में आता है। **भाद्रपद मासि शुक्लपक्षे तृतीयायां तिथौ** का उल्लेख दान के संबंध में किया गया है। अतः, संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि स्वर्णयुग (गुप्तकाल) तथा उत्तर-गुप्त से भारत में तिथि-गणना पूर्ण वैज्ञानिक रीति से होने लगी थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त-संवत्

भारतीय ऐतिहासिक गवेषणा में विद्वानों को अमुक राजा वा राजवंश के काल-निर्णय में अत्यंत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। कब और कहाँ आदि प्रश्न ऐतिहासिक परिशीलन में प्रायः पूछे जाते हैं। भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों में पूर्वकाल में अनेक संवत् प्रचलित हुए थे, जिन्हें विभिन्न समयों पर पृथक् पृथक् राजाओं ने स्थापित किया था। इन संवतों के आधार पर भारत का तिथि-क्रमयुक्त शृङ्खला-वद्ध इतिहास लिखने में बड़ी सहायता मिली है। ईसा की चौथी से छठी शताब्दी तक गुप्त इतिहास की घटनाएँ काल क्रमानुसार निबद्ध करने में विद्वानों को कठिनाइयों की संभावना थी, परंतु गुप्तलेखों में 'गुप्तकाल' और गुप्तवंश की राज-परंपरा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है जिससे काल-निर्णय में सरलता हो जाती है। अतएव गुप्तकाल की प्रारंभिक तिथि (गुप्त-संवत् में) को निर्धारित करना समुचित प्रतीत होता है। यह संवत् (गुप्त-संवत्) किस राजा ने चलाया, इस विषय में लिखित प्रमाण अब तक नहीं मिला है।

प्रायः समस्त गुप्तलेखों में एक प्रकार की तिथि का उल्लेख मिलता है जिससे अमुक राजा की शासन-अवधि स्थिर की जाती है। सब तिथियों के अनुशीलन से यह प्रकट होता है कि तिथि का क्रम शनैः शनैः एक शासक से उसके उत्तराधिकारी के लेख में बढ़ता जाता है। गुप्त-सम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त के लेखों में ८८ या ९३ आदि तिथि उल्लिखित हैं,[1] तो उसके पुत्र प्रथम कुमारगुप्त की प्रशस्तियों में ९६, ९८, ११७, १२९ आदि तिथियाँ मिलती हैं।[2] इन अंकों से यह तात्पर्य नहीं निकाला जा सकता कि द्वितीय चंद्रगुप्त ने ९३ वर्ष तक शासन किया तथा प्रथम कुमार १२९ वर्ष तक राज्य करता रहा। यदि इन अंकों पर विचार किया जाय तो ज्ञात होता है कि गुप्तसम्राट् किसी अमुक समय से काल-गणना करते थे। ये अंक यही सूचित करते हैं कि गुप्तनरेश ९३वें वर्ष तथा १२९वें वर्ष में शासन करते थे। अतएव उस समय को निश्चित करना परमावश्यक प्रतीत होता है।

गुप्त-संवत् का नामोल्लेख

कतिपय लेखों तथा ग्यारहवीं शताब्दी के मुसलमान इतिहासज्ञ अलबेरूनी के वर्णन से स्पष्ट पता चलता है कि गुप्तों के नाम से किसी समय की गणना होती थी; जिसे 'गुप्त-काल' या 'गुप्त-संवत्' कहते हैं। इस कारण यह प्रतीत होता है कि लेखों की समस्त तिथियाँ इसी गुप्त-संवत् में दी गई हैं। गुप्तसम्राट् स्कंदगुप्त के जूनागढ़ लेख में स्पष्ट रीति से उल्लेख मिलता है कि इस प्रशस्ति की तिथि 'गुप्तकाल' (गुप्त-संवत्) में दी गई है :—

---

१ श्री चंद्रगुप्त राज्य संवत्सरे ८८ (का० इ० इ०, भा० ३, नं० ५, ७)

२ 'श्री कुमारगुप्तस्य अभिवर्धमान विजयराज्ये संवत्सरे षण्णवते' (वहीं, नं० ८, १०, ११)

नोट—इसके विवरण में—गु० स०—गुप्त संवत्, श० का०—शक काल, मा० स०—मालव संवत्, वि०—विक्रमी तथा श०—शक के लिए प्रयोग किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संवत्सराणामधिके शते तु त्रिंशद्भिरन्यैरपि षड्भिरेव ।
रात्रौ दिने प्रौष्ठपदस्य षष्ठे गुप्तप्रकाले गणनां विधाय[1] ।।

गुप्त नरेश द्वितीय कुमारगुप्त तथा बुधगुप्त के सारनाथ वाले लेख में भी गुप्त-संवत् का नामोल्लेख मिलता है[2] :—

'वर्षे शते गुप्तानां सचतुः पंचाशदुत्तरे भूमि ।
शासति कुमारगुप्ते मासे ज्येष्ठे द्वितीयाम्' ।
'गुप्तानां समतिक्रान्ते सप्तपंचाशदुत्तरे ।
शते समानां पृथिवीं बुधगुप्ते प्रशासति' ।।

ईसा की दसवीं शताब्दी के मोरवि ताम्रपत्र में भी तिथि का उल्लेख गुप्त-संवत् में पाया जाता है। उस ताम्रपत्र में 'गौप्ते' शब्द से स्पष्ट प्रकट होता है कि गुप्त लोगों की भी कुछ काल-गणना अवश्य थी[3] :—

'पञ्चाशीत्या युतेतीते समानां शतपञ्चके ।
गौप्ते ददावदो नृपः सोपरागेकंमण्डले' ।।

गुप्त सम्राटों के सामंत परिव्राजक महाराजाओं के लेखों में तिथि का उल्लेख 'गुप्तनृपराज्यभुक्तौ' के साथ मिलता है।[4] अतः यह ज्ञात होता है कि गुप्त-संवत् की अवश्य ही स्थिति थी जिस समय से गुप्तों की काल-गणना प्रारंभ हुई।

अलबेरूनी का कथन

ग्यारहवीं शताब्दी में महमूद गजनवी के साथ मुसलमान इतिहासज्ञ अलबेरूनी भारत में आया था। उसने भारत के अनेक विषयों का वर्णन अपनी पुस्तक में किया है। भारतीय संवतों की वार्त्ता को उसने अछूता नहीं छोड़ा परंतु अक्षरशः उसके वर्णन को सत्य नहीं माना जा सकता। अलबेरूनी ने गुप्त-संवत् के बारे में भिन्न विवरण दिया है—'लोग कहते हैं कि गुप्त शक्तिशाली तथा क्रूर नरेश थे। जब उस वंश की समाप्ति हुई उसी समय से इस संवत् की गणना होने लगी। यह ज्ञात होता है कि बलभ उनका अंतिम राजा था, क्योंकि बलभी-संवत् के समान गुप्तकाल की गणना शककाल के २४१ वर्ष बाद प्रारंभ होती है'।[5]

---

१ गु० ले०, नं० १४

२ आ० स० रि०, १९१४–१५

३ गु० ले०, भूमिका ९७। इस ताम्रपत्र के गौप्ते की समता फ्लीट किसी ग्राम से बतलाते हैं, परंतु यह निर्विवाद है कि इसका संबंध गुप्त लोगों से है। (कलेक्टेड वर्क्स आफ, सर भण्डारकर, भा० ३, पृ० ३९३–४)

४ गु० ले०, नं० २२, २३, २५ आदि।

५ As regards the Gupta Kala, people say that the Guptas were wicked powerful people and that when they ceased to exist this date was used

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि जिस गुप्तकाल या गुप्त-संवत् का उल्लेख किया गया है, वह किस समय चलाया गया तथा इसके प्रतिष्ठाता कौन थे ? इस संवत् का समय निर्धारित करने में अलबेरूनी से बहुत सहायता मिलती है।

अनेक संवतों की समानता दिखलाते हुए अलबेरूनी ने (१) १०८८ विक्रम संवत् (२) ९५३ शक शंवत् (काल) (३) ७१२ वलभ काल =(गुप्त काल) का उल्लेख किया है; जिससे उसके कथन की पुष्टि होती है कि गु० स० श० का० से २४१ वर्ष बाद प्रारंभ हुआ। अलबेरूनी के इन संवतों की तिथि ठीक है, परंतु उसके समस्त वर्णन जनश्रुति के आधार पर लिखे गये हैं। उसके कथन से ज्ञात होता है कि गुप्त-संवत् उस वंश के नष्ट होने पर प्रारंभ हुआ। वलभ, जो वलभी नगर (सौराष्ट्र में स्थित) का शासक था, उस वंश का अंतिम नरेश था। वलभी संवत् उसीके नाम से प्रारंभ हुआ। जैसा ऊपर कहा गया है, समस्त विवरण जनश्रुति के कारण अविश्वसनीय है। उसकी अप्रामाणिकता के लिए अन्य प्रमाण भी दिये जा सकते हैं। अलबेरूनी लिखता है कि शककाल विक्रमादित्य द्वारा शक-पराजय के समय से प्रारंभ हुआ;[1] परंतु चालुक्य-प्रशस्तिकार रविकीर्ति ने शक-संवत् का आरंभ शक राजा के सिंहासनारूढ़ होने के समय से बतलाया है;[2] जो वस्तुतः ठीक सिद्धांत है। इसी प्रकार गुप्तों के विषय में भी उस इतिहासज्ञ ने असत्य बातें लिख डाली हैं। यदि वलभी लेखों पर ध्यान दिया जाय तो अलबेरूनी का कथन सर्वथा ग्राह्य नहीं हैं।

वलभी में मैत्रकों के सेनापति भट्टारक ने स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। उसके तीसरे पुत्र ध्रुवसेन प्रथम के एक लेख में २०६ तिथि का उल्लेख मिलता है[3]। यदि वलभी राज्य स्थापन के अवसर पर वलभी-संवत् का आरंभ हुआ, तो यह कभी भी माना नहीं जा सकता कि वलभी वंश के संस्थापक (भट्टारक) के २०६ वर्ष पश्चात् उसका पुत्र (ध्रुवसेन प्रथम) शासक हुआ। अतएव इस तिथि का वलभी-संवत् से कुछ भी संबंध प्रकट नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में वलभी राज्य में किसी अन्य संवत् का प्रचार मानना आवश्यक है जिसमें उस वंश की तिथियाँ मिलती हैं। ऐतिहासिक पण्डितों ने वलभी लेखों की तिथियों का संबंध गुप्त-संवत् से बतलाया है।

---

as the epoch of an Era. It seems that Valabha was the last of them, because the epoch of the era of the Guptas falls, like that of the Valabha era, 241 years later than the Saka Kala.

—अलबेरूनी इंडिया, भा० २, पृ० ७

१ अलबेरूनी इंडिया, भा० २, पृ०, ६

२ पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चसतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्।—अइहोल का लेख—शक संवत् ५५६
(ए० इ०, भा० ६, पृ० १)

३ इ० हि० का०, भा० ४, पृ० ४६०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस विवाद के परिणाम-स्वरूप यह कहा जा सकता है कि गुप्तों के अधीनस्थ मैत्रकों ने स्वतंत्र होने के समय से वलभी में प्रचलित गुप्त-संवत् को वलभी-संवत् का नाम दे दिया। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि वलभी-संवत् नाम की कोई स्वतंत्र गणना नहीं थी; परंतु यह गुप्त-संवत् का दूसरा नाम है। इस आधार पर अलबेरूनी का वर्णन अग्राह्य हो जाता है, केवल तिथि का उल्लेख प्रमाणयुक्त है। उसके कथनानुसार गुप्त-संवत् भी शककाल से २४१ वर्ष बाद प्रारंभ हुआ जो अन्य प्रमाणों से भी सिद्ध है। कुछ जैन ग्रंथों से भी इसकी पुष्टि होती है कि गुप्त-संवत् शककाल से २४१ वर्ष के पश्चात् आरंभ हुआ।

जैनग्रंथों के आधार पर गु० स० तथा श० का० में २४१ वर्ष का अंतर

अलबेरूनी से पूर्व शताब्दियों में कुछ जैन ग्रंथकारों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि गुप्त तथा शककाल में २४१ वर्ष का अंतर है। प्रथम लेखक जीनसेन, जो आठवीं शताब्दी में वर्त्तमान थे उन्होंने वर्णन किया है कि भगवान् महावीर के निर्माण के ६०५ वर्ष ५ माह के पश्चात् शक राजा का जन्म हुआ तथा शोंक के अनंतर गुप्तों के २३१ वर्ष शासन के बाद कल्किराज का जन्म हुआ।[1] द्वितीय ग्रंथकार गुणभद्र ने उत्तरपुराण (८९८ ई०) में लिखा है कि महावीर के निर्माण के १००० वर्ष बाद कल्किराज पैदा हुआ।[2] जीनसेन तथा गुणभद्र के कथन का समर्थन तीसरे जैन लेखक नेमिचंद्र करते हैं।[3]

---

१ गुप्तानां च शतद्वयम्
एक त्रिंशच्च वर्षाणि कालविद्भिरुदाहृतम्।
द्विचत्वारिंशदेवातः कल्किराजस्य राजता।
ततोऽजितंजयो राजा स्यादिन्द्रपुरसंस्थितः।
वर्षाणि षट्शती त्यक्त्वा पञ्चाग्रां मासपञ्चकम्।
मुक्तिं गते महावीरे शकराज ततोऽभवत्।—जीनसेन कृत हरिवंश, अध्याय ६०

२ इ० ए०, भा० १५, पृ० १४३।

३ नेमिचंद्र की तिथि दशवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मानी जाती है। एक लेख के आधार पर नेमिचंद्र चामुण्डराय का राजकवि ज्ञात होता है—

त्रिलोकसारप्रमुखप्रबन्धान्।
(विरच्य सर्वान्) भुवि नेमिचंद्रः
विभाति सैद्धांतिकसार्वभौम।
चामुण्डरायार्चितपादपद्मः—(नागर लेख, इ० का० भा० ८)

यह (चामुण्डराय) गंग राजा रासमल्ल चतुर्थ का ई० सन् ९७७ के लगभग मंत्री था जो श्रवण-देवगोला की प्रशस्ति से पता चलता है (राइस—वेलगोला का लेख, भूमिका पृ० ३४)। इसी आधार पर नेमिचंद्र की तिथि निश्चित की गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विक्रम तथा शक काल का संबंध

नेमिचंद्र त्रिलोकसार में लिखते हैं कि शकराज महावीर के निर्वाण के ६०५ वर्ष ५ माह के बाद तथा शककाल के ३९४ वर्ष ७ माह के पश्चात् कल्किराज पैदा हुआ।[1]

इनके योग से—वर्ष	माह
६०५	५
३९४	७
१०००	

वर्ष होते हैं। इन तीनों जैन ग्रंथकारों के कथनानुसार शक काल तथा कल्किराज का जन्म निश्चित हो जाता है। इस शक काल की तिथि को विक्रम संवत् में परिवर्तन करने से शक, विक्रम तथा ई० स० में समता विदित है जिसकी वजह से गुप्त काल को निश्चित करने में सरलता हो जाती है। ज्योतिषसार के आधार पर यह ज्ञात है कि शक काल में १३५ जोड़ने से वह तिथि विक्रम संवत् में परिवर्तित हो जाती है।[2] शक काल के ३९४ वर्ष पश्चात् कल्किराज पैदा हुआ जो ५२९ विक्रम (३९४ + १३५) होता है।[3] गुप्त सम्राट् प्रथम कुमार गुप्त के मंदसोर के लेख में दूसरी तिथि ५२९ मालव-संवत् का उल्लेख है।[4] मंदसोर लेख की पहली तिथि ४२९ वि० दूसरी तिथि से ३६ वर्ष पूर्व है। अतएव प्रथम कुमारगुप्त शक ३५८ (४९३-१३५) में बंधु-वर्मा के साथ शासन करता था।[5]

शक तथा गुप्त काल का संबंध

गुणभद्र के कथनानुसार कल्किराज का शक ३९४ के पश्चात् माघ संवत्सर प्रारंभ होता है।[6] वराहमिहिर ने भी कुछ निम्नलिखित व्यतीत शक संवत्सरों का वर्णन किया है[7] :—

---

१ पण छसय वसं पणमास जुदं गमिय वीरणि बुइदो सगराजो सो कल्किचदुक वतिय महिय ससमासं (त्रिलोकसार पृ० ३२)।

२ स एक पञ्जाग्निकुभियुक्तः स्याद्विक्रमस्य हि रेवाया उत्तरे तीरे संवन्नाम्नातिविश्रुतः (ज्योतिषसार)।

३ साधारणतया यह सर्व प्रसिद्ध है कि शक काल में ७८ जोड़ने से ई० स० तथा ई० सन् में ५७ जोड़ने पर विक्रम संवत् बनता है ३९४+७८+५७=५२९

४ वत्सरशतेषु पंचसु विशंत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु यातेष्वाभिरम्य तपस्यमासशुक्ल-द्वितीयायाम् (गु० ले०, न० १८)।
इस आधार पर मालवा तथा विक्रम संवत् में समानता स्थापित होती हैं। (इसा पूर्व ५७)

५ मालवानां गणस्थितत्या याते शतचतुष्टये।
त्रिनवत्यधिकेब्दानां रितौ सेव्य घनस्वने।
सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्तेह्नित्रयोदशे।—(गु० ले०, न० १८)।

६ चतर्मुखाह्वयः कल्कीराजोद्वेजित भूतले।
ऊत्पत्स्येहं मघा संवत्सरयोगसमागमे।—(उत्तरपुराण ७६।३९६)।

७ फ्लीट—का० इ० इ०, भा० ३, पृ० १६१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शक	३९४	व्यतीत	माघ	संवत्सर
,,	३९५	,,	फाल्गुन	,,
,,	३९६	,,	चैत	,,
,,	३९७	,,	वैशाख	,,

शक ३९७ के वैशाख संवत्सर का उल्लेख परिव्राजक महाराज हस्तिन् के खोह लेख गु० स० १५६ में भी मिलता है।[1] इस आधार पर शक तथा गुप्तकाल में निम्नलिखित समता तैयार की जा सकती है :—

शक ३९४ = माघ	संवत्सर = गुप्त-संवत्	१५३	व्यतीत		
,, ३९५ = फाल्गुन	,, = ,,	,,	१५४	,,	
,, ३९६ = चैत	,, = ,,	,,	१५५	,,	
,, ३९७ = वैशाख	,, = ,,	,,	१५६	,,	

इस समता से यह ज्ञात होता है कि गुप्त संवत् की तिथि में २४१ जोड़नेसे शककाल में परिवर्तन हो जाता है। इस विस्तृत विवेचन के कारण अलबेरूनी के कथन की सार्थकता ज्ञात हो जाती है। यह निश्चत हो गया है कि शक काल के २४१ वर्ष पश्चात् गुप्त संवत् का आरंभ हुआ।

फ्लीट का मत

गुप्त-संवत् तथा शक काल में २४१ वर्ष का अंतर स्थिर हो जाने पर, यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या शक काल के २४१ वें वर्ष या २४१ वर्ष व्यतीत होने पर गुप्त काल (संवत्) आरंभ हुआ ? फ्लीट महोदय का मत है कि गुप्त-संवत् शक काल के २४१ वें वर्ष में आरंभ हुआ। उनके कथनानुसार दोनों संवतों में २४२ वर्ष का अंतर पड़ता है।[2] उदाहरणार्थ उसने बुधगुप्त के एरण स्तंभ लेख[3] की तिथि गु० स० १६५ शक काल ४०७ (१६५ + २४२) से समता बतलाई है। यदि वैज्ञानिक रूप से विचार किया जाय तो फ्लीट महोदय की धारणा सर्वथा निराधार प्रकट होती है।

मत का खंडन

जैन ग्रंथकार नेमिचन्द्र के कथनानुसार यह ज्ञात होता है कि शक-काल के ३९४ वर्ष ७ माह व्यतीत होने पर कल्किराज का जन्म हुआ। इसलिए यह कहा जा सकता है कि

---

१ शतपञ्चशतोत्तरेब्दे शते गुप्तनृपराज्यभुक्तौ महावैशाखसंवत्सरे कार्तिकमासशुक्लपक्षतृतीयाम्। (गु० ले०, नं० २१)।

२ फ्लीट—गु० ले०, भूमिका ८४

३ का० इ० इ०, भा० ३, नं० १९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३९५ वें वर्ष में ७ माह बीतने पर कल्किराज का जन्म हुआ। ऊपर तुलनात्मक प्रसंग में यह दिखलाया गया है कि—

शक ३९४ = माघ संवत्सर = गु० स० १५३ व्यतीत
,, ३९७ = ,, ,, १५६ ,,

अतएव शक काल तथा गु० स० में २४१ वर्ष का अंतर ज्ञात होता है, २४२ वर्ष का नहीं।

गु० स० = शक २४१
१ ,, ,, प्रचलित = ,, २४२ प्रचलित

लेखों का प्रमाण

इस उपरिर्युक्त कथन की पुष्टि लेखों से होती है। गुप्त लेखों में भी इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। गुप्त राजा द्वितीय कुमारगुप्त के सारनाथ लेख की तिथि गु० स० १५४ मिलती है[1]; जो शक काल ३९५ व्यतीत (१५४ + २४१) में परिवर्तन हो सकती है। इसके अतिरिक्त बुधगुप्त के सरनाथ की प्रशस्ति में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि गु० स० १५७ वर्ष व्यतीत होने पर राजा शासन करता था।[2] इस स्थान पर पूर्व समता को ध्यान में रखते तथा ज्योतिषसार के आधार पर एक नवीन तुलनात्मक वृत्त तैयार हो सकता है। यह निम्न प्रकार है :—

मालव संवत्	शक काल	गुप्त संवत्
५२९ व्यतीत	३९४ व्यतीत	१५३
५३० ,,	३९५ ,,	१५४
५३१ ,,	३९६ ,,	१५५
५३२ ,,	३९७ ,,	१५६
५३३ ,,	३९८ ,,	१५७ व्यतीत[3]

इस तुलना से यही परिणाम निकलता है कि शक काल तथा गुप्त संवत् में २४१ का ही अंतर है। इन प्रमाणों के आधार पर यह प्रकट होता है कि व्यतीत गुप्त-वर्ष संवत् में २४१ जोड़ने से व्यतीत शक काल तथा प्रचलित गु० स० में २४१ जोड़ने से प्रचलित शक काल में परिवर्तन

---

१ वर्ष शते गुप्तानां सचतुः पञ्चाशदुत्तरे भूमिम्। शासति कुमारगुप्ते मासे ज्येष्ठे द्वितीयायाम्

२ गुप्तानां समतिक्रान्ते सप्त पचाशदुत्तरे।
शते समानां पृथिवीं बुधगुप्ते प्रशासति।

३ बुधगुप्त के सारनाथ के लेख से स्पष्ट हो जाता है कि गुप्तों के १५७ वर्ष व्यतीत होने पर सप्तमी वैसाख में शासन करता था, या उस समय को प्रचलित १५८ वर्ष कह सकते हैं। इसी नरेश का दूसरा लेख (एरण) आठ वर्ष के बाद गु० स० १६५ का है (गु० ले०, नं० १९)। इसके वर्णन से ज्ञात होता है कि वह राजा गु० स० १६५ अषाढ़ १२ राज्य में राज करता था। इससे भी अषाढ़ मास में व्यतीत गु० स० १६५ यानी प्रचलित १६६ ज्ञात होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता है।[1] अलबेरूनी ने दोनों संवतों का अंतर बतलाते हुए विक्रम, शक काल तथा वलभी (गुप्त) सवत् में तीन तीथियों का उल्लेख किया है।[2]

मालव स०	श० का०	वलभी (गु०) स०
१०८८	९५३	७१२

यदि उपरिर्युक्त तुलना पर ध्यान दिया जाय तो प्रकट होता है कि लेखों तथा अलबेरूनी कथित संख्या (२४१) का ही अंतर गु० स० तथा श० का० में पाया जाता है।

मालव-संवत्	शक काल	गुप्त संवत्
५२९	३९४	१५३
१०८८	९५३	७१२

वेरावल का लेख तथा वलभी व गुप्त संवत् की एकता

गुप्त लेख के अतिरिक्त बेरावल लेख के अध्ययन से भी गु० स० तथा श० का० के अंतर (२४१ वर्ष) पर प्रकाश पड़ता है। कर्नल टाड ने गुजरात के चालुक्य नरेश अर्जुनदेव के समय के लेख का वेरावल नामक स्थान से पता लगाया था।[3] इस लेख की विशेषता यह है कि इसमें चार संवतों की तिथि उल्लिखित है। प्रशस्तिकार ने विक्रम १३२०; वलभ ९४५; हिजरी ६६२ तथा सिंह संवत् १५१ तिथियों का उल्लेख किया है।[4] दीवान बहादुर पिलाई के गणनानुसार आषाढ़ बदी १२ रवि शककाल ११८६ तथा विक्रम १३२१ में पड़ता है।[5] लेखों में वर्ष तथा इस गणना में भिन्नता इसलिए होती है कि वेरावल के लेख में दक्षिण भारत की प्रणाली के अनुसार विक्रम १३२० तथा वलभी ९४५ कीर्तिकादि में उल्लिखित है। अतएव—

विक्रम	शक	वलभी
१३२१ =	११८६ =	९४५

इसमें से ७९२ घटाने पर

वि०	शक	वलभी
५२९ =	३९४ =	१५३

---

१ कलेक्टेड वर्क्स आफ सर भण्डारकर, भा० ३, पृ० ३८७

२ अलबेरूनी इंडिया, भा० २, पृ० ७

३ एनल्स आफ राजस्थान, भा० १, पृ० ७०५

४ श्रीनृपविक्रम १३२० तथा श्रीमद्वलभी सं० ९४५ तथा श्रीसिंह सं० १५१ वर्ष आषाढ़ बदी १२ रवि (इ० ए० भा० ११, पृ० २४२)।

५ इंडियन क्रानोलोजी टेबुल १० पृ० ९२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा इसमें से ३६ घटाने पर

वि०	श०	वलभी
४८३	३५८	११७

आता है। इस गणना में वलभी ११७ तथा गुप्त नरेश प्रथम कुमारगुप्त की करमदण्डा की प्रशस्ति की तिथि (गु० स० ११७) में समता है[1]। अतः ज्ञात होता है कि वलभी तथा गुप्त-संवत् में कोई विभिन्नता नहीं है। इस बेरावल लेख की समता में २४१ वर्ष का ही अन्तर है।

वि०	श०	वलभी
१३२१	११८६	९४५

तथा उपरियुक्त तुलना में

श०	मा० स०	वलभी (गु० स०)
३९४	५२९	१५३

जो ऊपर बतलाया गया है।

खैरा का ताम्रपत्र

खैरा ताम्रपत्र ऐसा अंतिम लेख है जिससे शक काल तथा गुप्त संवत् के अंतर (२४१) पर प्रकाश पड़ता है। इस लेख की तिथि वलभी संवत् ३३० मिलती है[2] जिसका उल्लेख निम्न-प्रकार है—

सं० ३०० ३० द्वि० मार्ग शर्ष शु० २

इस वलभी संवत् में २४१ जोड़ने से शक काल में परिवर्तन हो जाता है।

वलभी	शक
३३०	५७१

ज्योतिष-गणना के आधार पर शक ५७१ अधिक मार्गशीर्ष में पड़ेगा।[3] अतएव

वलभी	शक
३३० प्रचलित =	५७१ प्रचलित

के समान है। पूर्व तुलना से इस तिथि का स्थान निश्चित हो जाता है।

श०	मा० स०	गु० (वलभी) स०
३९४[4]	५२९[4]	१५३[4]
५७१[5]	७०६	३३०[5]
११८६[6]	१३२१[6]	९४५[6]

---

१ ए० इ०, भा० १०, पृ० ७०

२ गु० ले०, भूमिका, पृ० ९३

३ भंडारकर कामेमोरेशन भाल्युम, पृ० २०९

४ देखिए ऊपर की तिथि।

५ खैरा ताम्रपत्र की तिथि।

६ वेरावल लेख की तिथि।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतएव इन समस्त लेखों तथा अलबेरूनी के कथन के आधार पर यही निश्चित होता है कि गु० स० में २४१ जोड़ने पर श० का० बनता है। व्यतीत तथा प्रचलित में जोड़ने से क्रमशः व्यतीत तथा प्रचलित श० का० में परिवर्तन होता है।

चैत्रादि वर्ष का प्रचार

फ्लीट का मत था कि गु० स० श० का० के २४१ वर्ष बाद नहीं परंतु २४२ वर्ष पश्चात् प्रारंभ हुआ।[1] परंतु ऊपर कथित विस्तृत विवेचन के सम्मुख फ्लीट महोदय का मत स्वीकार नहीं किया जा सकता। फ्लीट ने डा० कीलहार्न के कथन का समर्थन करते हुए यह भूल की कि दक्षिण भारत की तरह उत्तरी भारत में भी मालव संवत् का प्रारंभ कार्तिक से हुआ[2] चैत्र से नहीं, इसको मान लिया। परंतु यदि गुप्त लेखों का अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि मालव संवत् चैत्र से प्रारंभ होता है।[3] द्वितीय कुमारगुप्त के सारनाथ के लेख से पता चलता है कि गु० स० १५४ व्यतीत यानी गु० स० १५५ के ज्येष्ठ द्वितीया को वह मूर्ति स्थापित की गई थी।[4] इसी प्रकार बुधगुप्त के सारनाथ तथा एरण के लेखों से भी यही बातें प्रकट होती हैं। इन लेखों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि राजा व्यतीत गु० स० १५७ तथा १६५ या प्रचलित १५८ वैशाख तथा प्रचलित १६६ आषाढ़ में शासन करता था। इतना ही नहीं, यशोधर्मन् के मंदसोर के लेख (मा० स० ५८९) में यह वर्णन मिलता है कि संवत् वसंत (चैत्र तथा वैशाख) से प्रारंभ होता है।[5] इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि गुप्तों के शासनकाल में मालव-संवत् चैत्र से प्रारंभ होता था, कार्तिक से नहीं। वेरावल लेख के आधार पं० गौरीशंकर ओझा ने दिखलाया है कि विक्रम संवत् चैत्रादि है। वेरावल लेख के अनुसार वि० स० तथा गु० स० का अंतर ३७५ (१३२०-९४५) आता है; परन्तु यह लेख काठियावाड़ में स्थित होने के कारण वि० स० कार्त्तिकादि है जो चैत्रादि १३२१ होता है। इस कारण वि० स० तथा गु० स० का अंतर ३७६ होगा।[6] गु० स० में ३७६ जोड़ने से चैत्रादि वि० स०, २४१ मिलाने से श० का० तथा ३१९-२० मिलाने से ई० स० होता है।

---

१ गु० ले०, भूमिका, पृ० ८४

२ इ० ए०, भा० २०, पृ० ३२; गु० ले०, भूमिका, पृ० ६६

३ भंडारकर कामेमोरेशन भाल्युम, पृ० २०७-८

४ आ० स० रि०, १९१३-४

५ पञ्चसु शतेषु शरदां यातेष्वेकान्नवति सहितेषु। मालवगणस्थितिवशात् कालज्ञानायलिखितेषु॥
यस्मिन् काले कलमृदुगिरां कोकिलानां प्रलापा, भिन्दन्तीव स्मरशरनिभाः प्रोषितानां मनांसि।
भृङ्गालीनां ध्वनिरनुरतं भारमन्द्रश्च यस्मिन्, नाधूतज्यं धनुरिव नदच्छ्रूयते पुष्पकेतोः॥
प्रियतमकुपितानां रामयन्वद्धरागं किसलयमिव मुग्धं मानसं मानिनीनां।
उपनयति नभस्वान्मानभङ्गाय यस्मिन्, कुसुमसमयमासे तत्र निर्मापितोयम्॥
—(का० इ० इ०, भा० ३, नं० ३५)

६ प्राचीन भारतीय लिपिमाला, पृ० १७५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंतिम परिणाम

गुप्त-संवत् पर इस विस्तृत विवरण से निम्न परिणाम निकलते हैं—

(१) मालव तथा शक संवत् चैत्र से प्रारंभ होता है।

(२) गुप्त तथा वलभी संवत् एक ही है। दोनों के भिन्न-भिन्न नाम होने के कारण समय में तनिक भी भिन्नता नहीं है।

(३) वलभी या गु० स० शक काल के २४१ वर्ष के पश्चात् आरंभ होता है। शक काल के व्यतीत तथा प्रचलित होने का निर्णय गु० स० पर अवलंबित है।

(४) गुप्त-संवत् भी चैत्र से प्रारंभ होता है। चैत्रादि होने के कारण गुप्त संवत् का ई० स० ३१८-१९ से गणनारंभ हुआ। इसका प्रारंभिक वर्ष ई० सन् ३१९-२० (७८+२४१) से लिया जायगा।

गु० स० ० व्यतीत = शक २४१ व्यतीत
,, ,, १ प्रचलित = ,, २४२ प्रचलित

गुप्त-संवत् के संस्थापक

यदि समस्त संवतों के इतिहास पर ध्यान दिया जाय तो यह पता चलता है कि अमुक संवत् का प्रारंभ किसी काल विशेष से होता या उस वंश के किसी घटना के स्मारक में संवत्सर चलाया गया था। गुप्त-वंश में भी ऐसी ही घटना उपस्थित हुई जिस कारण से वंश नाम के साथ (गुप्त) संवत् का प्रयोग प्रारंभ हुआ। गुप्त-वंश के आदि दो नरेश—गुप्त तथा घटोत्कच का नाम इतिहास में प्रसिद्ध नहीं है। वे साधारण सामंत के रूप में शासन करते थे। गुप्तों के तीसरे राजा प्रथम चंद्रगुप्त ने अपने बाहुबल से राज्य का विस्तार किया तथा इसी ने सर्वप्रथम 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण की। बहुत संभव है कि सिंहासनारूढ़ होने पर इसने यह पदवी धारण की तथा उसी के उपलक्ष में अपने वंश के नाम के साथ गुप्त-संवत् की स्थापना की। इसकी पुष्टि गुप्त लेखों में उल्लिखित तिथियों से भी होती है। प्रथम चंद्रगुप्त के पौत्र चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के लेखों में ८२,९३ की तिथियाँ मिलती हैं। इस आधार पर विद्वानों का अनुमान ठीक ज्ञात होता है कि प्रथम चंद्रगुप्त ही प्रतापी शासक था और उसी के राज्यारोहन पर संवत् चला। पितामह तथा पौत्र के बीच तीन पीढ़ियों में ९३ वर्ष का अंतर युक्ति-संगत मालूम पड़ता है। इस संवत् का प्रारंभ ई० स० ३१९-२० से होता है। फ्लीट व एलन के मतानुसार गुप्त संवत् अन्य संवतों की भाँति (राज्यवर्षों में गणना की परिपाटी से) बराबर प्रयोग होते रहने पर क्रम से प्रचलित हो गया; इससे अनुमान होता है कि प्रथम चंद्रगुप्त के प्रचलित किए हुए राज्य संवत् का प्रयोग उसके उत्तराधिकारी वंशधर करने लगे, जो आगे चलकर गुप्त संवत् के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जो हो, परंतु यह निःसंदेह है कि गुप्त संवत् या गुप्त-काल नामक संवत्सर का प्रारंभ ई० स० ३१९-२० से हुआ। इसी में समस्त गुप्त लेखों तथा समकालीन प्रशस्तियों की तिथियाँ दी गई हैं। यह संवत् लगभग ६०० वर्ष तक प्रचलित रहा और गुप्तवंश के नष्ट हो जाने पर काठियावाड़ में वलभी संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १०

गुप्तकालीन लघु अभिलेख

मिट्टी की मुहरें

प्राचीन भारत के इतिहास में अभिलेखों के महत्व का मूल्यांकन करना कठिन है। इतिहास के प्रधान साधनों में लेखों की गणना प्रमुख रूप में की जाती है जिसका संक्षिप्त विवरण उपस्थित किया गया है। गुप्त अभिलेखों का अध्ययन उसकी महत्ता की अभिवृद्धि करता है। लेखों के अंकन करने के अनेक आधारों के अंतर्गत मिट्टी की मुहर (Terracotta Seals) अपना स्थान रखता है। कच्ची मिट्टी को लेकर उसे एक विशिष्ट आकार का बनाकर गहराई में लेख अंकित किए जाते थे। उसके साथ किसी प्रतीक को भी स्थान दिया जाता था। अक्षर चाकू के नोक से बनाए जाते थे। प्रतीक के लिए भी चाकू का प्रयोग होता रहा। इस प्रक्रिया के पश्चात् उसे आग में पका दिया जाता ताकि वह मुहर स्थायी रह सके। उसी से सदा कार्य लिया जाता और आवश्यकतानुसार स्थान विशेष पर निशान लगाया जाता। वही छाप मुहर बन जाता। ऐसे पकायी गई मुहरें पुरातत्व खनन से प्रकाश में आई हैं। गुप्तकालीन मुहरें अधिकतर वैशाली तथा नालंदा से उपलब्ध हुई हैं। वैशाली की मुहरों की विशिष्ठता है। यों तो मौर्य, शुंग तथा कुषाण कालीन मुहरें उपलब्ध हुई हैं किंतु गुप्त मुहरें अधिक संख्या में हैं तथा ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। एक ही खुदाई में गुप्तकालीन सतह से सत्तर की संख्या में निकली हैं। मुहरों की तिथि निश्चित करने के लिए तीन प्रकार के साक्ष्य हैं—

(१) खुदाई की सतह (Strata)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२) अन्य पुरातत्व सामग्रियों (Antiquities=लघु मूर्ति एवं सिक्कों) से तुलनात्मक विश्लेषण।

(३) पुरालिपि का साक्ष्य (Palaeography)।

यद्यपि पुरातत्व संबंधी खनन से जमीन के परत का विशिष्ट अध्ययन किया जाता है और उस आधार पर कई निर्णय प्रस्तुत किए जाते हैं तौभी उसकी प्रमाणिकता संदेहरहित नहीं है। दूसरे साक्ष्य पर अधिक विश्वास किया जाता है। यदि मुहर के साथ मिट्टी की लघुमूर्ति (Figurine) प्राप्त होती है तो उसकी विशेषता के अनुशीलन से किसी निश्चित तिथि पर पहुँचते हैं। चूँकि एक ही परत में मुहर तथा लघुमूर्ति उपलब्ध हुई अतः मुहर की वही तिथि समझी जाती है जो लघुमूर्ति की होगी। मिट्टी परत (Strata) में गुप्तकालीन लघुमूर्तियाँ मुहर का तिथि काल निश्चित करती हैं। प्राचीन भारत में अमुक युग में विशेष प्रकार की लघुमूर्तियाँ बनती रहीं। अतएव मुहरों की तिथि निश्चित करना सरल हो जाता है। इसके अतिरिक्त सिक्कों की उपलब्धि भी (एक ही परत में) मुहरों की तिथि निर्णय करने में सहायक सिद्ध हुई हैं। तीसरा साक्ष्य पुरालिपि का है जिसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। प्रत्येक युग की पृथक-पृथक लिपि ज्ञात है। अतएव मुहरों पर खुदे लेख अक्षरों के सहारे विशिष्ट काल से संबंधित किए जाते हैं। गुप्तकालीन मुहरें गुप्तलिपि में खुदे हैं अतएव लिपि के अध्ययन से मुहरों का पढ़ना सुगम है। तिथियाँ भी स्वतः ज्ञात हो जाती है। इन विषयों के विश्लेषणात्मक अध्ययन से वैशाली तथा नालंदा की मुहरें गुप्तकालीन बतलाई गई हैं।

वैशाली की मुहरें

पुरालिपि के आधार पर यह कहा जाता है कि चौथी तथा पाँचवी शताब्दियों में गुप्त सम्राट्‌ों ने मुहरें तैयार कराई। वैशाली की मुहरों में गुप्त लिपि के पूर्वी प्रकार का (Eastern Variety of Gupta Script) प्रयोग किया गया है। ल, ष तथा ह विशिष्ट रूप से अंकित हैं। आ, ओ तथा औ मात्राओं के चिह्न वक्र रेखा के रूप में प्रदर्शित हैं। कुछ मुहरों में म अक्षर ग के सदृश प्रकट होता है।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है गुप्त मुहरें संस्कृत भाषा में अंकित हैं। कहीं प्राकृत मिश्रित संस्कृत का प्रयोग दीख पड़ता है। अधिक मुहरों पर सम्पूर्ण लेख पढ़ा नहीं गया। केवल राजा का पदवी सहित नाम उपलब्ध है जिसके सहारे गुप्तकालीन इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। वैशाली मुहरों पर **'कुमारामात्याधिकरण'** पदवी अधिकतर अंकित है। इसके साथ **'युवराजपदीय'** अथवा **'युवराज भट्टारक पदीय'** की पदवियाँ मिलती हैं।

इन पदवियों में युवराज शब्द साधारण अर्थ में राजकुमार के लिए प्रयुक्त है। इससे सिंहासन के उत्तराधिकारी का तात्पर्य नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त राज दरबार के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेक कर्मचारीगण तथा पदाधिकारियों की मुहरें प्राप्त हुई हैं। सेना अध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, पुलिस का सर्वोच्य पदाधिकारी, राजप्रबंधक आदि अधिकारियों की मुहरें वैशाली की खदाई से मिली हैं। मंत्री तथा उपरिक कर्मचारी की मुहरें भी उपलब्ध हुई हैं।

सबसे अधिक संख्या में व्यापारी संस्थाओं—श्रेणी (निगम) की मुहरें यह प्रकट करती हैं कि व्यापार की वृद्धि में व्यापारियों के कार्य निर्विघ्न रूप से चलते रहे। वर्त्तमान चैम्बर आफ कामर्स के सदृश पाटलिपुत्र में संस्थाएँ कार्य कर रही थीं। निगम, श्रेष्ठिन (बैंक के अधिकारी) सार्थवाह (व्यवसायी) तथा कुलिक (सौदागर) के नाम से मुहरें प्रकाश में आई हैं।

मुहरों के अध्ययन से भौगोलिक बातों का परिज्ञान हो जाता है। उत्तरी बिहार के तिरहुत भूभाग का नाम 'तिरभुक्ति' के रूप में सामने आता है। वैशाली के नाम सहित मुहरें मिली हैं। विष्णुपद के स्वामी नारायन के लेख से गया के विष्णुपद मंदिर का अनुमान लगाया जाता है। इस प्रकार बिहार प्रदेश के बाहर भी भौगोलिक स्थानों के नाम मुहरों पर अंकित हैं।

जहाँ तक मुहरों पर प्रतीकों का प्रश्न है, उनपर बौद्धमत के प्रतीक का अभाव है। मानव के पाद-चिह्न को विष्णुपद मानना उचित होगा। उसे बुद्ध-पद नहीं माना जा सकता। प्रायः मुहरों पर अंकित प्रतीक किसी धर्म से संबंधित नहीं हैं। अधिक संख्या में ब्राह्मण मत के चिह्न दीख पड़ते हैं। कलस, त्रिशूल, चक्र, शंख एवं वेदि आदि ब्राह्मणधर्म के प्रतीक हैं। श्रेणियों की मुहरों पर अंकित चिह्न का अर्थ अज्ञात सा है। वामन की आकृति को कुबेर का नाम दिया जा सकता है। वैष्णवमत के प्रसिद्ध प्रतीक गजलक्ष्मी की आकृतियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं।

इस विवरण का सारांश यह है कि वैशाली की मुहरें गुप्त इतिहास निर्माण में सहायता करती है। उनके अध्ययन से राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक विषयों पर प्रकाश पड़ता है। सबसे प्रधान राजकीय मुहर गोविंदगुप्त की माता ध्रुवदेवी का है जो अभिलेखों में प्रथम कुमारगुप्त की माता कही गई हैं। अतएव द्वितीय चंद्रगुप्त के दो पुत्रों के नाम पृथक-पृथक मिलते हैं। मुहर तथा लेख का अध्ययन यह प्रकट करता है कि गोविंदगुप्त वैशाली का राज्यपाल रहा होगा। उसी प्रकार घटोत्कच का नाम यह बतलाया है कि घटोत्कच नाम के दो गुप्तनरेश थे। इस वंश का दूसरा महाराजा (श्रीगुप्त का पुत्र) घटोत्कच नाम से विख्यात था तथा प्रथम कुमार-गुप्त के समय में भी इसी नाम का राजकुमार शासन करता रहा। वैशाली मुहरों का विश्लेषण यह प्रकट करता है कि वह स्थान राजनैतिक तथा महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र था।

नालंदा की मुहरें

पटना जिले में नालंदा बौद्धों का प्रसिद्ध महाविहार था, जहाँ खुदाई से स्तूप, बिहार एवं हजारों मिट्टी की मुहरें प्रकाश में आई हैं। बौद्धमत से संबंधित होने के कारण मुहरों पर धर्मचक्र का प्रतीक स्वाभाविक है। कई मुहरें संघ के भिक्षुओं की हैं। इनकी बनावट साधारण रीति से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुई थी। किंतु मिट्टी के दो टप्पे भी खुदाई से निकले हैं। उनके ऊपरी भाग में धर्मचक्र के अतिरिक्त बौद्ध मंत्र (ओं धम्मा हेतु प्रभवा) भी खुदा है। उस समय संस्कृत भाषा का बोलबाला था अतः मुहरों के लेख भी संस्कृत ही में है। मध्यकालीन नागरी अक्षरों का प्रयोग हुआ है। मिट्टी के मुहरों पर अक्षरों का सुंदर अंकन देखते बनता है जैसे किसी सुलेखक ने कागज पर लिखा हो। नालंदा वज्रयान का प्रसिद्ध केंद्र था, अतएव वज्रयान संबंधी देव आकृतियाँ तथा चिह्न मिलते हैं।

नालंदा से प्राप्त गुप्तकालीन लघुलेख वैशाली की मुहरों से आकार में बड़े हैं। गुप्तकालीन छब्बीस मुहरें नालंदा से प्राप्त हुई हैं जिनमें अधिकतर क्षतिग्रस्त हैं। ऊपरी भाग में लेख अंडाकार खुदे हैं। चारों तरफ एक पतली लकीर बनी है जिसकी सीमा में लघुलेख तथा प्रतीक घिरे हैं। लेख के ऊपरी भाग में गरुड़ की आकृति अंकित है जो ऊँचा सतह बनाता है। इससे प्रकट होता है कि वैष्णव मतावलंबी नरेश ने उस मुहर को तैयार किया था। गुप्तसम्राट् वैष्णव थे अतएव गरुड़ आकृति की सार्थकता है। नालंदा की मुहर ही यह घोषित करता है कि प्रथम कुमारगुप्त का पुत्र पुरुगुप्त था। उसका पुत्र नरसिंह तथा उसीका भाई बुधगुप्त था। बुधगुप्त के संबंध में अन्य कोई साक्ष्य नहीं है। द्वितीय कुमारगुप्त की नालंदा मिट्टी की मुहर तथा भितरी (वाराणसी के समीप) रजत मुद्रा में एक ही भिन्नता है। वह है द्वितीय कुमारगुप्त की माता का नाम। नालंदा मुहर में नरसिंह की स्त्री (यानी द्वितीय कुमार की माता) का नाम मित्रदेवी लिखा है। किंतु भितरी रजत मुद्रा में उसी राजा की पत्नी का नाम महालक्ष्मी अंकित है। इस प्रकार के विश्लेषण से सामाजिक बातें प्रकाश में आती हैं।

गुप्तकालीन नरेश वैन्यगुप्त की एक मुहर नालंदा से प्राप्त हुई है जिसके अंतिम पंक्ति में **'परम भागवतो महाराजाधिराज श्री वैन्यगुप्त'** अंकित है। इसी शासक का एक ताम्रपत्र लेख तिपेरा (बंगाल) जिले के गुणैघर स्थान से प्रकाश में आया है (इ० हि० क्वा०, भा० ६, पृ० ५३)। जिसमें राजा के लिए केवल महाराज की पदवी उल्लिखित है। दोनों के अनुशीलन से प्रकट होता है कि वैन्यगुप्त शक्तिशाली राजा था। उसका राज्य बगाल से बिहार (नालंदा) तक विस्तृत था। वह वैष्णव मतावलंबी भी था। उस नरेश की महान पदवी लघुलेख (मुहर) से ज्ञात होती है अन्यथा नहीं। सभी लेख संस्कृत भाषा तथा उत्तरी भारत की ब्राह्मी (लिपि) में खुदे हैं।

सिक्कों पर अंकित लेख (Coin Legend)

भारतीय मुद्राशास्त्र में गुप्तकालीन सिक्के महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनसे पूर्व भारतीय शासक—यूनानी तथा कुषाण नरेशों ने कलात्मक दृष्टि से सुंदर सिक्कों का प्रचलन किया था किंतु उनमें विदेशीपन के भाव निहित थे। ऊपर लघुलेख (Legend) भी अभारतीय लिपि में अंकित किए गए थे, अर्थात् यूनानी तथा खरोष्ठी लिपियों में। अन्य भारतीय नरेशों ने भी (सातवाहन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि) लेखयुक्त सिक्कों का प्रचलन किया था पर वह सभी कलारहित थे। उन पर शासक का अर्द्धचित्र खुदा नहीं मिलता जैसे यूनानी या कुषाण सिक्कों पर दृष्टिगत होते हैं। गुप्तकालीन मुद्राएँ ही ऐसी हैं जिन पर राजा की आकृति तथा नाम खुदे हैं। सभी समान तौल के नहीं हैं। सर्वप्रथम १२१ ग्रेन के बराबर थे किंतु भारतीय सुवर्ण तौल १४४·६ ग्रेन को अपना लिया गया। प्रारंभिक दशा में उन पर जो विदेशी प्रभाव था वह भी शनैः शनैः जाता रहा। अतएव उत्कृष्टता तथा कलापूर्ण होने के कारण गुप्त सिक्कों को राष्ट्रीय कहना सर्वथा उचित होगा।

मौलिकता तथा कलात्मक दृष्टि से गुप्त सिक्के प्राचीन भारतीय मुद्राओं में अपनी सानी नहीं रखते। इस प्रकार की सुंदरता तथा कलात्मक विशेषता अन्य सिक्कों में दीख नहीं पड़ती। गुप्तयुग की कला में निर्माण शक्ति (Creative Power) थी जो सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। गुप्त सिक्कों पर भी वह छटा स्पष्ट रूप से प्रकट हो रही है। गुप्त राजाओं ने अनेक प्रकार के सिक्के प्रचलित किए। गुप्त सम्राट् एक प्रकार की मुद्रा से संतुष्ट न हुए। उनमें विविधता दर्शनीय है। गुप्तकालीन मुद्राओं की कला सर्वथा भारतीय है।

मुद्रालेखों का अध्ययन सिक्कों के प्रकार (Types) का परिज्ञान कराता है। लघुलेखों की सार्थकता से राजा का नाम तथा सिक्कों की विशेषता प्रकट हो जाती है। गुप्त सिक्कों पर लेख अंकित करने का दो विभिन्न दिशाएँ थीं। नाम तो सदा बाँह के नीचे लंबवत् अंकित है किंतु वृत्त में भी लेखों को स्थान दिया गया। उनके अनुशीलन से कई विषयों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। राजा के जीवन घटनाओं की जानकारी सरल हो जाती है। इस प्रकार सिक्कों पर अंकित लघुलेख गुप्त इतिहास के एक साधन हैं।

गुप्त नरेशों ने तीनों धातुओं—सोना, रजत तथा तांबा का प्रयोग अपने सिक्कों के लिए किया था। सभी सिक्कों पर एक प्रकार का लघुलेख नहीं मिलता। उनको विशिष्ट अवसर तथा अर्थ निमित्त अंकित किया गया था। गुप्त मुद्रा-लेखों (legends) का अनुशीलन से निम्न बातों पर प्रकाश पड़ता है—

(१) भाषा एवं लिपि।
(२) राजा का नाम तथा पदवी।
(३) धातु तथा तौल का ज्ञान।
(४) विभिन्न घटनाओं का प्रदर्शन।
(५) शासक के जीवन घटना का उल्लेख।
(६) धार्मिक इतिहास पर प्रकाश।
(७) सामाजिक चर्चा—वस्त्राभूषण।
(८) नवीनता का समावेश।
(९) देश काल की अभिव्यक्ति।
(१०) मुद्रालेख की सार्थकता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय सिक्कों के अध्ययन से ही लिपि तथा वर्णमाला का ज्ञान हो सका। यूनानी सिक्कों पर अग्रभाग में युनानी नाम खुदे थे तथा पृष्ठ भाग पर (वही) खरोष्ठी में अंकित था।

दोनों लेखों में समानता थी, इस प्रकार खरोष्ठी का परिज्ञान हुआ। कुछ द्विभाषी सिक्कों पर खरोष्ठी तथा ब्राह्मी का प्रयोग मिलता है। जो नाम या शासक की पदवी खरोष्ठी में खुदी थी वही नाम तथा संस्कृत पदवी ब्राह्मी में भी होगा, यह अनुमान किया गया। उदाहरण ने लिए यूनानी राजा मिनेंडर के सिक्के द्विभाषी है। खरोष्ठी में महरजस मिनद्रस है तो ब्राह्मी में भी रजरजस मिंद्रस खुदा है। इसी तरह खरोष्ठी के सहारे ब्राह्मी के अक्षर ज्ञात हो गए। अतएव इसी मार्ग से अक्षरों का ज्ञान होता गया। विद्वानों ने वर्णमाला तैयार कर अभिलेखों का पढ़ना प्रारंभ किया। ब्राह्मी की जानकारी हो जाने पर उस लिपि के विकसित रूप को भी पढ़ा गया। उत्तरी भारत की ब्राह्मी को गुप्त काल में "**गुप्तलिपि**" कहने लगे। अतः गुप्त सिक्कों पर सर्वत्र गुप्तलिपि का प्रयोग दीख पड़ता है। तत्कालीन अभिलेखों की भाषा संस्कृत है। इसीलिए कलाकारों ने सिक्कों पर संस्कृत भाषा में ही लेख खोदा था। गुप्त युग में साहित्यिक पुनरुत्थान हुआ जो सिक्के में भी प्रतिबिंबित होता है। आश्चर्य तो यह है कि गुप्त मुद्रालेख (legends) भी छंदबद्ध हैं। पृथ्वी, उपगीति तथा वंशस्थविल गद्यात्मक नहीं हैं। यों तो संस्कृत भाषा के इतिहास में महाक्षत्रप रूद्रदामन का गिरनार लेख (१५० ई०) काव्यमय संस्कृत का पहला उदाहरण है किंतु तीसरी शताब्दी के पश्चात् अधिकांश गुप्त शासकों के अभिलेख तथा मुद्रालेख संस्कृत भाषा में ही अंकित हैं। जनसाधारण तक संस्कृत को पहुँचाने में गुप्त सिक्कों ने अद्वितीय काम किया। काव्य की दृष्टि से उनका ऊँचा स्थान है। अन्य किसी राजवंश ने मुद्रालेखों को छंदबद्ध करने की प्रथा का अनुसरण नहीं किया।

यह कहा गया है कि गुप्त सिक्के पिछले कुषाण सिक्कों के अनुकरण पर तैयार किए गए थे। उनपर ब्राह्मी में राजा का नाम लंबवत् लिखा है। यही कारण था कि गुप्त मुद्राशास्त्र में उस प्रणाली को अपनाया गया। गुप्त नरेशों के नाम बांह के नीचे लिखा जाने लगा। प्रथम चंद्रगुप्त के स्वर्ण मुद्राओं पर चंद्रगुप्त तो बांह के नीचे पढ़ा जाता है किंतु उसकी रानी कुमार देवी का नाम आकृति के बाहर अंकित है। कभी समुद्रगुप्त के व्याघ्रनिहंता प्रकार में पृष्ठ भाग पर भी समुद्रगुप्त उत्कीर्ण है। राजा-रानी तथा खड्गधारी प्रकार में प्रथम कुमार गुप्त के नाम भी पृष्ठ भाग पर लिखा है। द्वितीय चंद्रगुप्त तथा प्रथम कुमार गुप्त के रजत सिक्कों के पृष्ठ भाग पर पदवीसहित नामोल्लेख है। सिक्कों के पृष्ठ भाग पर अधिकतर गुप्त शासकों की पदवी अंकित हैं, जैसे पराक्रमः या अश्वमेध पराक्रमः (समुद्रगुप्त के लिए) विक्रमः अथवा विक्रमादित्य (द्वितीय चंद्रगुप्त के लिए) तथा महेंद्र की पदवी (प्रथम कुमारगुप्त के लिए) खुदी है। द्वितीय चंद्रगुप्त के रजत सिक्कों राजा के लिए तीन पदवियों का उल्लेख किया गया है। परमभागवत, महाराजाधिराज तथा विक्रमांक अंकित हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त सिक्कों पर अंकित लघुलेखों (legends) के अनुशीलन से सिक्कों की धातु तथा तौल का परिज्ञान हो जाता है। गुप्त नरेशों की स्वर्ण मुद्राओं तथा रजत सिक्कों पर विभिन्न प्रकार के लघुलेख मिलते हैं। एक-दूसरे के स्थान को नहीं ले सकता। अतः निश्चित है कि स्वर्ण मुद्राओं पर एक विशिष्ट प्रकार का लेख है। उदाहरण के लिए

'समर शतवितत विजयी जितरिपु रजितो दिवं जयति' समुद्र के दण्डधारी प्रकार के सोने के सिक्कों पर खुदा है।

देवश्री महाराजा या नरेन्द्रचन्द्रः प्रथितरणो रणे जयत्यजेयो भुवि सिंहविक्रमः लेख द्वितीय चंद्रगुप्त की स्वर्ण मुद्राओं पर अंकित है। किंतु रजत सिक्कों पर

परमभागवत महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त विक्रमादित्य अथवा

"श्री गुप्तकुलस्य महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त विक्रमांकस्य" लेख सदा मिलते हैं। अतः सोने तथा चांदी धातुओं के प्रयोग का परिज्ञान मुद्रालेखों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। यदि कोई व्यक्ति लेखों को गंभीर रूप से पढ़े तो शीघ्र व्यक्त कर देगा कि यह लेख अमुक धातु के सिक्कों पर खोदा जाता था। प्रथम कुमारगुप्त के विषय में भी यही चरितार्थ होता है। उसके स्वर्ण सिक्कों पर मुद्रालेखों की विविधता है। किंतु निम्न लेख के पढ़ने से ही प्रकट होता है कि सिक्के चांदी के हैं। जैसे

"परम भागवत महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त महेंद्रादित्य"

पश्चिमी भारत से प्राप्त रजत सिक्कों पर अंकित लेख। इस राजा के चांदी के सिक्कों में भी विशेषता है कि पश्चिमी तथा मध्यदेशीय मुद्रालेख एक समान नहीं हैं। पश्चिम भारत के रजत सिक्कों पर **'परमभागवत'** शब्द से लेख आरंभ होता है, परंतु मध्यदेशीय सिक्के नए प्रकार के लेख सहित है। वह मुद्रालेख मध्यदेशीय रजत सिक्कों पर सदा अंकित होते रहे।

"विजिता वनिरवनपति कुमारगुप्तों दिवं जयति"

गुप्त शासन के पश्चात् भी मध्यदेशीय सिक्कों पर उस लेख का अनुकरण होता रहा, केवल मुद्रा लेख में शासन का नाम परिवर्तित है। हूण नरेश तोरमाण के चाँदी के सिक्के पर भी यही लेख है। कहने का तात्पर्य यह है कि गुप्त मुद्रालेख तथा उनका प्रचलन शासक के कार्य पद्धति तथा अवस्था को व्यक्त करते हैं।

मुद्राओं का प्रचलन यह प्रकट करता है कि गुप्त सम्राट् आर्थिक दशा को दृष्टि में रखकर सिक्कों को तैयार कराते थे ताकि जन जीवन सुखी रह सके। प्राचीन काल से कुषाण नरेशों ने भारतीय मुद्रा में स्वर्ण का प्रयोग किया जो अन्तर्राष्ट्रीय बाजार का मापदन्ड था। (International Standard) पिछले कुषाण नरेश उस प्रतिष्ठां तथा संमान के पात्र न थे किंतु मिश्रित सोने का सिक्का प्रचलित करते रहे। गुप्त शासन के आरंभ से भारतीय व्यापार अंतर्राष्ट्रीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाजार तक पहुँचा और इस कार्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। समुद्रगुप्त ने समतट विजय कर एसिया के दक्षिणपूर्वी भाग से व्यापारिक संबंध बढ़ाया। ताम्रलिपि के बंदरगाह से भारतीय व्यापारी सुवर्णद्वीप को जाने लगे। पश्चिमी भाग को चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने क्षत्रपों को पराजित कर गुप्त साम्राज्य में मिला लिया जिसके कारण पश्चिमी एसिया तथा पूर्वी योरोप में भारतीय व्यवसायी आने जाने लगे। इस प्रकार गुप्तयुग में स्वर्ण मुद्राएँ अधिक संख्या में प्रचलित की गई। स्वर्ण मुद्राओं की शुद्धता से अंतर्राष्ट्रीय जगत में प्रतिष्ठा की बात स्वतः सिद्ध होती है। संस्कृत में अंकित मुद्रालेख एसिया के दक्षिण पूर्वी भूभाग में संस्कृत भाषा के प्रचार में सहायक हुए। गुप्त सम्राट् स्कंदगुप्त के प्रारंभिक शासन में हूणों का आक्रमण हुआ था तथा राजकीय कोष पर धक्का लगा। स्यात् कालांतर में धन की आवश्यकता तथा शुद्ध धातु (सोने) की कमी के कारण मिश्रित सोने के सिक्के प्रचलित किए गए। आर्थिक कठिनाई को दूर करने के लिए ताँबे के सिक्कों पर चाँदी का पानी चढ़ाकर रजत सिक्के घोषित किए गए। तात्पर्य यह है कि गुप्त कालीन सिक्के ऐतिहासिक घटनाओं को भी व्यक्त करते हैं।

गुप्त शासकों ने सिक्कों में नवीनता लाने का प्रयत्न किया था। पूर्व प्रचलित सिक्को में विदेशीपन की झलक थी। विदेशी चिह्न भी थे। उन्हें हटाकर भारतीयता में ढ़ालने की कोशिश की गई। राजकीय जीवन घटनाओं तथा आमोद-प्रमोद की भी अभिव्यक्ति सिक्कों द्वारा की गई है। समुद्रगुप्त ने दिग्विजय के पश्चात् अश्वमेध किया। उसी का प्रदर्शन 'अश्वमेध' सिक्कों से हो जाता है। अग्रभाग पर अश्व तथा पृष्ठ भाग पर महिषी यज्ञ-सूची लिए खड़ी है। ऊपरी भाग में **"राजाधिराज पृथिवी मवित्वादिवं जयत्या हृतवाजिमेधः"** लेख अंकित है। यानी राजाधिराज (समुद्र) ने जितने यज्ञ किया उससे पृथिवी का रक्षण कर स्वर्ग की प्राप्ति करता है। पृष्ठ भाग पर **'अश्वमेध पराक्रमः'** खुदा है (शक्तिशाली राजा अश्वमेध करता है) दंडधारी प्रकार सिक्के पर खुदे लेख से प्रकट होता है कि समुद्रगुप्त ने सैकड़ों युद्ध किया था, तत्पश्चात् अश्वमेध संपन्न किया। अतएव **"समर शतवितत विजयी जितरिपु"** लेख युद्धों की ओर संकेत करता है। समुद्रगुप्त द्वारा प्रचलित व्याघ्रनिहंता प्रकार सिक्का उसके आखेट प्रेम का प्रदर्शन करता है। राजा व्याघ्र को पैर से दबा कर धनुष से निशान लगा रहा है। कलात्मक दृष्टि से यह सिक्का अत्यंत सुंदर है: प्रभावोत्पादक है। राजा की आकृति आवेशपूर्ण है। इसमें विदेशीपन को त्यागकर भारतीय पोषाक का प्रयोग किया गया है। वीणाधारी प्रकार का सिक्का राजा समुद्र-गुप्त के संगीत प्रेम का साक्षी है। इस सिक्के के अग्रभाग पर राजा का शरीर वस्त्र रहित है। पर्यङ्क पर बैठा वीणा बजा रहा है। समुद्रगुप्त के संगीत निपुणता का वर्णन प्रयाग प्रशस्ति में भी मिलता है। अग्रभाग पर मुद्रालेख अधूरा है पर "महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्त" पढ़ा गया है। द्वितीय चंद्रगुप्त की भी कई मुद्राएँ उनके आखेट प्रेम को बतलाती है! सिंह निहंता प्रकार में सिंह से डट कर युद्ध कर रहा हैं। अश्वारोही प्रकार से उस राजा के चतुर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अश्वारोही होने की बातें चरितार्थ होती हैं। उस पर खुदालेख भी द्वितीय चंद्रगुप्त की रण में कुशलता की बातें वर्णित करता है—नरेंद्र चंद्र प्रथित रणे अथवा सिंह विक्रम राजा की वीरता की याद दिलाते हैं।

प्रथम कुमारगुप्त के सिक्कों का अध्ययन भी उसी परिणाम पर ले जाता है कि सिक्कों पर अंकित लेख राजा के जीवन घटनाओं का वर्णन करते हैं। अश्वारोही प्रकार कुमारगुप्त का सर्वप्रिय सिक्का माना जाता है। यों तो चौदह प्रकार की स्वर्ण मुद्राओं का उसने प्रचलन किया परंतु कतिपय मुद्रालेख काव्यमय हैं तथा राजा के विशेष जीवन घटनाओं का परिज्ञान कराते हैं।

अश्वारोही प्रकार में—'पृथिवी तलांवर शशि कुमारगुप्तो जयत्यजित:' लेख अंकित है। यानी राजा अजेय है, पृथ्वी रूपी आकाश में चंद्रमा के सदृश है, ऐसा कुमारगुप्त विजयी हो। पृष्ठ भाग पर भी, **'अजितमहेंद्र:'** खुदा है। 'खड्गनिहंता प्रकार' वाले सिक्के का विशेष रूप से उल्लेख करना आवश्यक है। प्रथम कुमारगुप्त आखेट के प्रसंग में गैंड़ा को मार रहा है। यह सिक्का अत्यंत कलापूर्ण है। लेख छंदोवृद्ध होने पर भी श्लेषात्मक है। इसमें खड्ग शब्द दो अर्थ में प्रयुक्त है—तलवार तथा गैंड़ा। मुद्रालेख—

'भर्त्ताखड्गत्राता कुमारगुप्तो जयत्यनिशम्'

वाक्य में कुमारगुप्त को दो प्रकार से शक्तिशाली माना है। प्रथम कुमारगुप्त सदा विजयी हो जो गैंड़ा के (खड्ग) भय से लोगों को मुक्त करें। दूसरा भाव यह है कि राजा कुमारगुप्त तलवार से जनता की रक्षा करता है। ऐसा श्लेषात्मक प्रयोग काव्य की सुदंरता का बोधक है। इसी के अश्वमेघ सिक्का पर अंकित लेख राजा के विजय का उल्लेख करता है। कुमारगुप्त ने शत्रुओं को जीता है—'देवो जितशत्रु कुमारगुप्तोधिराजा' यद्यपि किसी प्रशस्ति में कुमारगुप्त के अश्वमेघ का वर्णन नहीं मिलता परंतु सिक्के ज्वलंत उदाहरण है तथा **'अश्वमहेन्द्र:'** पदवी से यह प्रमाणित होता है कि महेन्द्र (कुमारगुप्त की पदवी) ने अश्वमेघ संपन्न किया। संक्षेप में यह कहना यथार्थ होगा कि गुप्त सिक्कों पर खुदे मुद्रालेख तथा प्रदर्शन शासकों के जीवन घटनाओं की ओर भी संकेत करते हैं।

गुप्त सम्राटों द्वारा प्रचलित सिक्कों पर अंकित मुद्रालेखो का अध्ययन तत्कालीन धार्मिक अवस्था पर प्रकाश डालता है। गुप्त सम्राटों ने पिछले कुषाण के सिक्कों पर प्रदर्शित दंड को गरुड़ध्वज से प्रतिस्थापन किया। गरुड़ पक्षी के संबंध में विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह भगवान् विष्णु का वाहन है। अतएव यह वैष्णव धर्म का प्रतीक माना गया है। दूसरी नवीनता यह है कि यूनानी देवी आरदोक्षो के स्थान पर लक्ष्मी को अपनाया गया। विष्णु भार्या लक्ष्मी की आकृति यह घोषित करती है कि वह राजवंश वैष्णव मत का अनुयायी था जिनके सिक्कों पर लक्ष्मी की आकृति दीख पड़ती हैं। अतएव विष्णु के वाहन गरुड़ तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भार्या लक्ष्मी की स्थिति में गुप्त सम्राटों को वैष्णव मानना सर्वथा उचित होगा। प्रतीक के अतिरिक्त मुद्रालेखों का साक्ष्य स्पष्ट प्रकट करता है कि गुप्त सम्राटों की पदवियां राजा के वैष्णव होने की बातों की पुष्ट करती है—

(१) **परमभागवत महाराजाधिराज श्रीचंद्रगुप्त विक्रमादित्यः।**

(२) **परम भागवत महाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्त महेन्द्रादित्यः।**

(३) **परमभागवत महाराजाधिराज श्रीस्कंदगुप्त क्रमादित्यः।**

उपरियुक्त पदवी—**'परमभागवत'** से तनिक भी संदेह नहीं रह जाता कि गुप्तवंशी नरेश वैष्णव मतानुयायी थे। वैष्णव मत को पुराने काल में भागवत मत भी कहा गया है। अतएव परम भागवत का पदवीधारी वैष्णव होगा, यह निर्विवाद है। सम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त द्वारा प्रचलित सोने का एक अद्वितीय सिका **'चक्रविक्रम'** नाम से प्रसिद्ध हुआ है। वह वयाना निधि से प्रकाश में आया है और अपने तरह का एक ही सिक्का है। उसके अग्रभाग पर भगवान् विष्णु की आकृति है जो राजा को प्रसाद भेंट कर रही है। इसके पृष्ठभाग पर 'चक्रविक्रमः' की विरुद है जिसके कारण इस स्वर्णमुद्रा को द्वितीय चंद्रगुप्त का मानते हैं। उसका वैष्णव मतानुयायी होना संदेह रहित एवं निर्विवाद है।

गुप्तकालीन सिक्कों का अध्ययन अनेक विषयों पर प्रकाश डालते हैं। पुरानी बातों क त्याग पर भारतीयता को अपनाना गुप्त सम्राटों की विशेषता थी। अतएव प्रारंभिक अवस्था में जिन ईरानी वेशभूषा को सिक्कों पर स्थान दिया गया था, उन्हें कालांन्तर में हटा दिया तथा भारतीय वस्त्र एवं आभूषण अपनाए गए। इतना ही नहीं उनके अध्ययन से देश तथा काल का भी ज्ञान हो जाता है। गुप्तकालीन मुद्रालेख में दो प्रकार के अक्षरों का प्रयोग होने लगा। गुप्तलिपि को पूर्वी तथा पश्चिमी उपविभागों में विभक्त करते हैं। अधिकतर सिक्कों पर पूर्वी प्रकार की लिपि अंकित मिलती है। अतएव प म य ह अक्षरों को पूर्वी उपविभाग में रख देने पर उस सिक्कों का प्रचलन पाटलिपुत्र के समीप हुआ होगा, ऐसी कल्पना होने लगती हैं। यह कहना कठिन है कि स्वर्ण सिक्के किस टकसाल में तैयार हुए थे पर अक्षरों के आधार पर देश काल का अनुमान लग जाता है।

गुप्त मुद्रालेख की सार्थकता के संबंध में दो चार शब्द कहना आवश्यक प्रतीत होता है। सिक्कों पर अंकित लेख से गुप्तकालीन साहित्यिक पुनरुत्थान का आभास मिलता है। काव्य की दृष्टि से उनका स्थान ऊँचा है तथा छंदवद्ध मुद्रालेख गुप्त शासकों की देन है। जितने लेख खुदे हैं वह सार्थक है तथा शासक के जीवन घटना की ओर संकेत करते हैं। उदाहरण के लिए समुद्रगुप्त के दंडधारी सिक्के पर अंकित लेख को ध्यान से देखें—

समर शत वितत विजयोजित रिपुरजितो दिवं जयति—समुद्रगुप्त सर्वत्र विजयी है, सैकड़ों लड़ाइयों में सफलता प्राप्त की तथा शत्रु को पराजित किया। वह स्वर्ग की प्राप्ति करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार की सूचना प्रयाग प्रशस्ति से भी उपलब्ध होती है। उस स्थान पर अनेक अस्त्र शस्त्रों का उल्लेख है जिनका प्रयोग समुद्रगुप्त ने अनेक युद्धों में किया था और जिनके चोट से राजा का शरीर सुशोभित हो रहा था—

विविध समर शतावरण दक्षस्य स्वभुज बल पराक्रमैकबंधोः पराक्रमांकस्य परशु शर शंकु शक्ति प्रासासि तोमर भिन्दपाल नाराच वैतास्तिकाद्येनक प्रहरण विरुढ़ाकुल व्रण शताङ्क शोभा समुद्रयोपचित कांततर वर्ष्मणः। (प्रयाग प्रशस्ति)

इस प्रकार अनेक उदाहरण उपस्थित किए जा सकते हैं। मुद्रालेखों की सार्थकता से ही देश काल एवं पात्र की बातें व्यक्त हो जाती है। वह पंक्ति किस काल में अंकित हुई तथा कौन शासक राज्य कर रहा था। लिपि का प्रयोग भी चतुरता से किया गया। स्वर्ण तथा रजत सिक्कों के मुद्रालेखों में स्पष्ट अंतर है। जिस लेख का प्रयोग गुप्त शासकों ने किया था उसे कालांतर में किसी राजा ने मुद्राओं पर स्थान नहीं दिया। केवल रजत सिक्कों खुदे लेख—

विजितावनिरवनिपतिः श्रीदिवं जयति

हूण तथा मौखरि सिक्कों पर मिलते हैं जो गुप्तमुद्रालेख का अनुकरण मात्र हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त प्रशस्तियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्रगुप्त के लेख

प्रयाग प्रशस्ति

१. [यः] कुल्यैः स्वै·····तस·····

२. [यस्य ?]·····
·····[॥*] [१]

३. पुं (?) व·····त्र·····

४. [स्फु]रद्ध(?)·····क्ष स्फुटो-
[द्ध्वं]सित·····प्रवितत·····[॥*] [२*]

५. यस्य प्र[ज्ञानु]षङ्गोचित-सुख-मानसः शास्त्रत[त्वा]र्थ-भर्त्तुः
[– –] स्तब्धो ⌣ – – ⌣)नि(⌣⌣⌣⌣ –]नोच्छृ-
[– – ⌣ – –]

६. [स]त्काव्य-श्री-विरोधान्बुध-गुणित-गुणाज्ञाहतानेव कृत्वा
[वि]द्वल्लोके [ऽ*]वि[नाशि ?] स्फुट-बहु-कविता-कीर्त्ति-राज्यं
भुनक्ति[॥*] [३]

७. [आ]र्य्यो हीत्युपगुह्य भाव-पिशुनैरुत्कर्ण्णितै रोमभिः सभ्येषूच्छ्व-
सितेषु तुल्य-कुलज-म्लानाननोद्वीक्षि[तः] [।*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

८. [स्ने]ह-व्यालुलितेन बाष्प-गुरुणा तत्त्वेक्षिणा चक्षुषा यः पित्रा [ऽ*]भिहितो नि[रीक्ष्य] निखि[लां पाह्येवमुर्व्वीं]मिति[॥*][४]

९. [दृ]ष्ट्वा कर्म्माण्यनेकान्यमनुज-सदृशान्यद्भुतोद्भिन्न-हर्षा भ[ा]वैरास्वादय[न्त⏑⏑⏑⏑⏑⏑⏑–⏑–⏑] [के]-चित् [।*]

१०. वीर्य्योत्तप्ताश्च केचिच्छरणमुपगता यस्य वृत्ते [ऽ*]प्रणामे [ऽ*]प्य[र्त्ति ?]-[ग्रस्तेषु ?–⏑⏑⏑⏑⏑⏑–⏑–⏑⏑–⏑–] [॥*] [५]

११. संग्रामेषु स्व-भुज-विजिता नित्यमुच्चापकाराः श्वः-श्वो मान-प्र[⏑⏑⏑⏑–⏑–⏑–⏑–] [।*]

१२. तोषोत्तुङ्गैः स्फुट-बहु-रस-स्नेह-फुल्लैर्म्मनोभिः पश्चात्तापं व-[⏑⏑⏑⏑–⏑–⏑] [मं ?] स्य[ा]द्वसन्त[म् ?] [॥*] [६]

१३. उद्वेलोदित-बाहु-वीर्य्य-रभसादेकेन येन क्षणादुन्मूल्याच्युत-नागसेन-ग[णपत्यादीन्नृपान्संगरे ? ।*]

१४. दण्डैर्ग्राहयतैव कोत-कुलजं पुष्पाह्वये क्रीडता सूर्य्येने(णे)त्य(?) [⏑–⏑–] तट[⏑–⏑–⏑–⏑–⏑–[॥*] [७]

१५. धर्म्म-प्राचीर-बन्धः शशि-कर-शुचयः कीर्त्तयः स-प्रताना वैदुष्यं तत्त्व-भेदि प्रशम[⏑⏑⏑⏑] कु[–च⏑]मु (सु ?) [–⏑]-तार्त्थम् (?) [।*]

१६. [अद्धचेयः]सूक्तमार्ग्गः कवि-मति-विभवोत्सारणं चापि काव्यं को नु स्याद्यो [ऽ*]स्य न स्याद्गुण इति [वि]दुषां ध्यान-पात्रं य एकः [॥*] [८]

१७. तस्य विविध-समर-शतावतरण-दक्षस्य स्व-भुज-बल-पराक्क्रमैक-बन्धोः पराक्क्रमाङ्कस्य परशु-शर-शङ्कु-शक्ति-प्रासासि-तोमर-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१८. भिन्दिपाल - न[ा]राच - वैतस्तिकाद्यनेक-प्रहरण - विरूढाकुल - व्रण - [शताङ्क-शोभा-समुदयोपचित-कान्ततर-वर्ष्मणः]

१९. कौसलकमहेन्द्र-माह[ा*]कान्तारकव्याघ्रराज- कौरालकमण्टाराज-पैष्टपुरकमहेन्द्रगिरि - कौट्टूरकस्वामिदत्तैरण्डपल्लकदमन - काञ्चेयकविष्णुगोपावमुक्तक-

२०. नीलराज-वैङ्गेयकहस्तिवर्म्म - पालक्ककोग्रसेन - दैवराष्ट्रककुबेर-कौस्थलपुरकधनञ्जय-प्रभृति - सर्व्वदक्षिणापथराज - ग्रहण - मोक्षानुग्रह-जनित-प्रतापोन्मिश्र-माहाभाग्यस्य

२१. रुद्रदेव-मतिल-नागदत्त-चन्द्रवर्म्म - गणपतिनाग - नागसेनाच्युतनन्दि-बलवर्म्माद्यनेकार्य्यावर्त्तराज-प्रसभोद्धरणोद्धृत-प्रभाव-महतः परिचारकीकृत-सर्व्वाटविक-राजस्य

२२. समतट-डवाक - कामरूप-नेपाल-कर्त्तृपुरादि-प्रत्यन्त-नृपतिभिर्म्मालवार्जुनायन-यौधेय-माद्रकाभीर-प्रार्जुन-सनकानीक- काक - खरपरिकादिभिश्च सर्व्व-कर-दानाज्ञाकरण-प्रणामागमन-

२३. परितोषित-प्रचण्ड-शासनस्य अनेक-भ्रष्ट-राज्योत्सन्न-राजवंश-प्रतिष्ठापनोद्भूत-निखिल-भु[व]न-[विचरण]-शान्त-यशसः दैवपुत्र-षाहि-षाहानुषाहि-शकमुरुण्डैः सैंहलकादिभिश्च

२४. सर्व्व-द्वीप - वासिभिरात्म-निवेदन - कन्योपायन-दान-गरुत्मदङ्क-स्वविषयभुक्ति-शासन-[य]ाचनाद्युपाय-सेवा-कृत - बाहु - वीर्य्य - प्रसर-धरणि-बन्धस्य प्रि (पृ) थिव्यामप्रतिरथस्य

२५. सुचरित - शतालङ्कृतानेक - गुण - गणोत्सिक्तिभिश्चरण - तल-प्रमृष्टान्य-नरपति-कीर्त्तेः साद्ध्वसाध्वुदय-प्रलय-हेतु-पुरुषस्याचिन्त्यस्य भक्त्यवनति-मात्र-ग्राह्य-मृदुहृदयस्यानुकम्पावतो (ऽ*) नेक-गो-शतसहस्र-प्रदायिन[ः]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२६. कृपण-दीनानाथातुर-जनोद्धरण-सत्त्रदीक्षाद्युपगत-मनसः समिद्धस्य विग्रहवतो लोकानुग्रहस्य धनद-वरुणेन्द्रान्तक-समस्य स्व-भुज-बल-विजितानेक-नरपति-विभव-प्रत्यर्प्पणा - नित्य - व्यापृतायुक्त-पुरुषस्य

२७. निशित-विदग्ध-मति-गान्धर्व्व-ललितैर्व्रीडित - त्रिदशपतिगुरु - तुम्बुरु-नारदादेर्व्विद्वज्जनोपजीव्यानेक-काव्य-क्रिक्रयाभिः प्रतिष्ठित-कवि-राज-शब्दस्य सुचिर-स्तोतव्यानेकाद्भुतोदार-चरितस्य

२८. लोकसमय-क्रिक्रयानुविधान-मात्र-मानुषस्य लोक-धाम्नो देवस्य महाराज-श्री-गुप्त-प्रपौत्रस्य महाराज-श्री-घटोत्कच-पौत्रस्य महा-राजाधिराज-श्री-चन्द्रगुप्त-पुत्रस्य

२९. लिच्छवि-दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्फ(त्प)न्नस्य महा-राजाधिराज-श्री-समुद्रगुप्तस्य सर्व्व-पृथिवी-विजय-जनितोदय-व्याप्त-निखिलावनि-तलां कीर्त्तिमितस्त्रिदशपति-

३०. भवन-गमनावाप्त-ललित-सुख-विचरणामाचक्षाण इव भुवो बाहु-रयमुच्छ्रितः स्तम्भः [।*] यस्य । प्रदान-भुज-विक्क्रम-प्रशम-शास्त्र-वाक्योदयैरुपर्य्युपरि-सञ्चयोच्छ्रितमनेक-मार्ग्गं यशः [।*]

३१. पुनाति भुवन-त्रयं पशुपतेर्ज्जटान्तर्गुहा-निरोध-परिमोक्ष-शीघ्र-मिव पाण्डु गाङ्गं [पयः] [।।] [९] एतच्च काव्यमेषामेव भट्टा-रक-पादानां दासस्य समीप-परिसर्प्पणानुग्रहोन्मीलित-मतेः

३२. खाद्यटपाकिकस्य महादण्ड नायक-ध्रुवभूति पुत्रस्य सान्धिविग्र-हिक-कुमारामात्य·म[हादण्ड नाय]क-हरिषेणस्य सर्व्व-भत-हित-सुखायास्तु । (।।)

३३. अनुष्ठितं च परमभट्टारक-पादानुध्यातेन महादण्डनायक-तिल-भट्टकेन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एरण प्रशस्ति

७. [– – ◡ – ◡ ◡ ◡ – ◡] सुवर्ण्ण-दाने
८. [न्यक्का]रिता नृपतयः पृथु-राघवाद्याः [॥*]२
९. [राजा] बभूव धनदान्तक-तुष्टि-कोप-तुल्यः
१०. [◡ – ◡]म-नयेन समुद्रगुप्तः [।*]
११. [– –]प्य पार्त्थिव-गणस्सकलः पृथिव्याम्
१२. [– –]स्त(स्व ?)-राज्य-विभव-दध्रुतमास्थितो [ऽ*]भूत् [*]३
१३. [– –]न भक्ति-नय-विक्क्रम-तोषितेन
१४ [यो] राज-शब्द-विभवैरभिषेचनाद्यैः [।*]
१५. [– –]नितः परम-तुष्टि-पुरस्कृतेन
१६. [– – ◡]वो नृपैरप्रतिवार्य्य-वीर्य्यः [॥*]४
१७. [श्रीर]स्य पुरु-पराक्क्रम-दत्त-शुल्का
१८ [हस्त्य]श्व-रत्न-धन-धान्य समृद्धि-युक्ता [।*]
१९. [नित्य]ङ्गृहेषु मुदिता बहु-पुत्र-पौत्र-
२०. [स]ङ्क्रामिणी कुल-वधु[धूः]व्रतिनी निविष्टा [॥*]५
२१. [यस्य] र्ज्जितं समर-कर्म्म पराक्क्रमेद्धं
२२. [दीप्तं] यशः सु-विपुलम्परिबम्भ्रमीति [।*]
२३. [कर्म्मा]णि यस्य रिपवश्च रणोर्ज्जितानि
२४. [स्व]प्नान्तरेष्वपि विचिन्त्य परित्रसन्ति [॥*]६
२५. [– – ◡ – ◡ ◡ ◡ – ◡ ◡ – ◡ – –] [–]प्तः (?)स्व
भोग-नगरैरिकिण-प्रदेशे [।*]
२६. [– – ◡ – ◡ ◡ ◡ – ◡ ◡ – ◡ – –] [सं]स्थापितस्स्व-
यशसः परिबृङ्हन(ण)ार्त्थम् [॥*]७
२७. [– – ◡ – ◡ ◡ ◡ – ◡ ◡ – ◡ – –] [– – ◡]वो नृपति
राह यदा [◡ – –] [।*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नालंदा अभिलेख

१. १ॐ स्वस्ति [।*] महानौ-हस्त्यश्व-जयस्कन्धावारा**नन्दपुर**-वासका[त्स]-
र्व्वरा[जोच्छे]त्तु(:*) पृथिव्यामप्रतिरथस्य चतुरुदधि-सलि[लास्वा]-

२. दिन-यशसो धनद-वरुणे[न्द्रा]न्त(क*)-समस्य कृतान्त-परशोर्न्यायाग-
तानेक-गो-हिरण्य-कोटि-प्रदस्य चिरोत्स[न्ना]-

३. श्वमेधाहर्त्तुर्म्महाराज-श्री-**गु**(**प्त***)-प्रपौत्रस्य महाराज श्री-**घटोत्कच**-
पौत्रस्य महारा[जाधि]राज-[श्री-**चन्द्रगुप्त**]-पुत्र-

४. स्य **लिच्छवि**-दौ[हि]त्रस्य महादेव्याङ्**कुमारदेव्या**मुत्पन्न≍परमभा-
[गवतो महाराजाधिराज-**श्रीसमुद्रगु**]**प्तः तावि**[**र्गुण्य**](?)-

५. वै[षयिक]**भद्रपुष्करक**ग्राम-**क्रिमिलबा**वैषयिक**पू**[**र्ण्णना**?]**ग**ग्रा[म(योः*)]
[ब्राह्मण-पुरोग*]-ग्राम-व[ल]त्कौशभ्या(?)माह [।*]

६. एव[*] चाह विदितम्बो भवत्वेषौ ग्रा[मौ] [मया] [मा]तापित्रोरा-
[त्मनश्च] पु[ण्याभिवृद्ध]ये जयभट्टिस्वामिने

७. * * * * [सोपरि]करो[द्देशेनाग्र]हा[रत्वे]नातिसृष्टः [।*]
तद्युष्मा-भिर[स्य]

८. त्रैविद्यस्य श्रोत्तव्यमाज्ञा च कर्त्त[व्या] [स]र्व्वे [च] [स]मुचिता
ग्रा(म*)-प्रत्या-(या*) मेय-हिरण्यादयो देया न चेत≍ प्र-

९. [भृ]त्यनेन त्रै[वि]द्ये नान्य-ग्रामादि-करद- कुटुम्बि-[कारुक]ादय≍प्रवेश
[यित]व्या-[म]न्यथ[ा] नियतमाग्रहाराक्षेपः

१०. [स्य]ादिति ॥ **सम्बत् ५** माघ-दि० २ निबद्धः [।*]

११. अनुग्रामाक्षपटलाधि[कृत]-महापीलूपति- महाबलाधि[कृ]त - गोपखाम
(**च***)ादेश-लिखितः [।*]

१२. [कुमा*]र-श्री-**चन्द्रगुप्तः** [॥*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया अभिलेख

१. १ॅ स्वस्ति [।।*] महानौ-हस्त्यश्व जयस्कन्धावाराज।**योद्धचा-**
वासकात्सर्व्व-राजोच्छेत्तु पृ-

२. थिव्यामप्रतिरथस्य चतुरुदधि-सलिलास्वादित-यश(सो*) धनद-वरुणेन्द्रा-

३. न्तक-समस्य कृतान्त परशोर्न्यायागतानेक-गो-हिरण्य-कोटि-प्रदस्य
चिरोच्छ-

४. न्नाश्वमेधाहर्त्तु महाराज-श्री-**गुप्त**-प्रपौत्रस्य महाराज-श्री-**घटोत्कच**-
पौत्रस्य

५. महाराजाधिराज-श्री-**चन्द्रगुप्त**-पुत्रस्य **लिच्छवि**-दौहित्रस्य महादेव्या
(ॅ*) कु-

६. **मारदेव्या**मुत्पन्न(ः*) परमभागवतो महाराजाधिराज-श्री-**समुद्र**-

७. **गुप्तः गया**वैषयिक-**रेवतिका**ग्रामे ब्राह्मण-पुरोग-ग्राम-वल-

८. त्कौषभ्या(?)माह । एव(ॅ*) चार्थं विदितम्बो भवत्वेश ग्रामो मया
मातापित्त्रोरा-

९. त्मनश्च पुण्याभिवृद्धये भारद्वाज-सगोत्राय वह्वृचाय स[व्र]ह्मचा-

१०. रिणे ब्राह्मण-गोपदेवस्वामिने सोपरिकरोद्देशेनाग्रहारत्वेनाति-

११. सृष्टः [।*] तद्युष्माभिरस्य श्रोतव्यमाज्ञा च कर्त्तव्या सर्व्वे [च]
[स]मुचिता ग्राम-प्र-

१२. त्यया मेय-हिरण्यादयो देयाः [।*] न चेतत्प्रभृत्येतदाग्रहारिकेणन्यद्ग्र-

१३. मादि-करद-कुटुम्बि-कारुकादयः प्रवेशयितव्यामन्यथा नियतमाग्र-

१४. हाराक्षेप(ः*) स्यादिति [।।*] **सम्बत्** ९ वैशाख-दि १० [।।*]

१५. अन्यग्रामाक्षपटलाधिकृत-**द्यूत-गोपस्वाम्या**देश-लिखितः [।।*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रामगुप्त का लेख

दूसरी मालवा प्रतिमा-लेख

(अ) प्रतिमा की चरण चौकी पर

१. भगवतोऽर्हत । चंद्रप्रभस्य प्रतिमेयं कारिता

२. महाराजाधिराज श्री रामगुप्तेन उपदेशात् पाणिपा

३. त्रिक चंद्रक्षमाचार्य्य क्षमण-श्रमण पशिष्याचार्य

४. सर्म सेन क्षमण शिष्यस्य गोलक्यान्त्यास त्पुत्रस्य चेलु क्षमण स्येति

(ब) द्वितीय प्रतिमा लेख

१. भगवतोऽर्हत । पुष्पदंतस्य प्रतिमेयं करिता

२. महाराजाधिराज श्री रामगुप्तेन उपदेशात् पाणिपात्रिक

३. चंद्रक्षम (मा) चार्य्य (क्षमण) श्रमण प्रशिष्यस्य

४. × × ×

(स) तृतीय प्रतिमा (चरण चौकी) अभिलेख

१. भगवताऽर्हतः (चंद्रप्रभ) स्म प्रतिमेयकारिता महाराजाधिराज

२. श्री (रामगुप्तेन) उपदेशात् पाणिपात्रि

३. × × ×

. × × ×

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय चन्द्रगुप्त के लेख

मेहरोली लौह-स्तंभ अभिलेख

१. यस्योद्वर्त्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून्समेत्यागतान्वङ्गेष्वाहव-वर्त्तिनो
[ऽ*]भिलिखिता खड्गेन कीर्त्तिर्भुजे

२. तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्ज्जिता वह्लिका यस्या-
द्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्व्वीर्य्यानिलैर्द्दक्षिणः [।।*]

३. खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपतेर्ग्गामाश्रितस्येतरां मूर्त्या (र्त्या) कर्म्म
जितावनिं गतवतः कीर्त्या (र्त्या) स्थितस्य क्षितौ

४. शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रतापो महान्नाद्याप्युत्सृजति
प्रणाशित-रिपोर्य्यत्नस्य शेषः क्षितिम् [।।*]

५. प्राप्तेन स्व-भुजार्ज्जितं च सुचिरञ्चैकाधिराज्यं क्षितौ चन्द्राह्वेन
समग्र-चन्द्र-सदृशीं वक्त्र-श्रियं बिभ्रता

६. तेनायं प्रणिधाय भूमि-पतिना भावेन विष्णो(ष्णौ) मतिं
प्रान्शुर्व्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः [।।*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उदयगिरि गुहा अभिलेख

१. सिद्धम् [॥*] य[दं]तज्ज्योतिरक्कभिसुव्व्यामि[– – ⌣ – ⌣ – –
– – – ⌣ –]व्यापि चन्द्रगुप्ताख्यमद्भुतम् [॥*] १

२. विक्रमावक्रय-क्रीता दास्य-न्यग्भूत-पार्त्थिव[ा] [– – –] मान-
संरक्त-धर्म्म[– – ⌣ – ⌣ –] [॥*] २

३. तस्य राजाधिराजर्षैरचिन्त्यो [– ⌣ –]र्म्मणः
अन्वय-प्राप्त साचिव्यो व्या[पृत-सन्धि]-विग्रहः [॥*] ३

४. कौत्सश्शाब इति ख्यातो **वीरसेनः** कुलाख्यया
शब्दार्त्थ-न्यायलोकज्ञ ⌣ कवि ⌣ **पाटलिपुत्रकः** [॥*] ४

५. कृत्स्न-पृथ्वी-जयार्त्थेन राज्ञैवेह सहागतः
भक्त्या भगवतश्शम्भोर्गुहामेतामकारयत् [॥*] ५

मथुरा स्तंभ (गु० स० ६१)

१. सिद्धम् [।*] भट्टारक-महाराज-[राजाधि]राज-श्री-**समुद्रगुप्त**-स-

२. [त्पु]त्रस्य भट्टारक-म[हाराज-[रा*जाधि]राज-श्री-**चन्द्रगुप्त**-

३. स्य विज(य*)-राज्य-संवत्स[रे*] [पं]**चमे** [५] **कालानुवर्त्तमान-सं-**

४. **वत्सरे एकषष्ठे** ६०(+ *)१·····[प्र]थमे शुक्लदिवसे पं-

५. चम्यां [।*] अस्यां पूर्व्वा[यां] [भ]**गव[त्कु]शिकाद्दशमेन भगव-**

३. **त्पराशराच्चतुर्थेन** [**भगवत्क***]पि[ल]विमल-शि-

७. ष्य-शिष्येण भगव[दुपमित*]विमल-शिष्येण

८. **आर्य्योदि[ता*]चार्य्ये[ण*]** [**स्व***]-पु[**ण्या***]**प्यायन-निमित्तं**

९. **गुरूणां च कीर्त्य[र्थमुपमितेश्व]र-कपिलेश्वरौ**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१०. गुर्व्वायतने गुरु·····प्रतिष्ठापितो [।*] नै-

११. तत्ख्यात्यर्थमभिलि[ख्यते] [।*] [अथ*] माहेश्वराणां वि-

१२. ज्ञप्ति × क्रियते सम्बोधनं च [!*] यथाका[ले]नाचार्या-

१३. णां परिग्रहमिति मत्वा विशङ्क[ं] [पू]जा-पुर-

१४. स्कार[ं] परिग्रह-पारिपाल्यं [कुर्य्या]दिति विज्ञप्तिरिति [।*]

१५. यश्च कीर्त्यभिद्रोहं कुर्य्या[ा]द्य[श्चा]भिलिखित[मुप]र्य्यधो

१६. वा [स] पंचभिर्महा[ा*]पातकैरुपपातकैश्च संयुक्तस्स्यात् [।*]

१७. जयति च भगवा[ण्डण्डः] रुद्रदण्डो(ऽ*)ग्र[ना]यको नित्य[ं] [।।*]

उदयगिरि गुप्त लेख (गु० स० ८२)

१. सिद्धम् ।। **संवत्सरे** ८०(+ *) २ आषाढ़-मास-शुक्लेकादश्याम् परम-भट्टारक-महाराजाधि(राज*)-श्री-**चन्द्र[गु]प्त**-पादानुद्ध्यातस्य ।

२. महाराज-**छगलग** पौत्रस्य महाराज-**विष्णुदास**-पुत्रस्य **सनकानिकस्य** महा[राज*] * * लस्यायं दे[यधर्म्मः] ।

गढ़वा लेख (गु० स० ८८)

परम भागवत महाराजाधिराज श्री

चंद्रगुप्त राज्य संवत्सरे ... ...

... ...

दिवस पूर्वायां ... ...

मातृदास प्रमुख पुण्याप्यानार्थ्थम्

... ...

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दा सत्र सामान्य ब्राह्मण ... ...

दीनौरर्द्ध समिः १० ... ...

यश्चैनरम् धर्म्मं स्कंधं ... ...

... ... युक्तः स्यादिति

(दूसरी ओर)

परम भागवत महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त राज्य संवत्सरे ८०८

अस्यां दिवस पूर्वायां पाटलिपुत्र ... ...

हस्तस्य भार्या.....

आत्म पुण्योपचयार्थ्यम् ... ...

... ...

दीनाराः १० दस ... ...

धर्म्मं स्कंदधं व्युच्छिन्द्या पंच महापातकैः संयुक्तः स्यादिति

सांची वेदिका लेख (गु० स० ९३)

[सिद्धम् ॥*]

१. **का[कना*]दबोट**-श्रीमहाविहारे शील-समाधि-प्रज्ञा-गुण भावितेन्द्रियाय परम-पुण्य-

२. क्षे[त्र][ग*]ताय चतुर्द्दिगभ्यागताय श्रमण-पुङ्गवावसथायार्य्य-सङ्घाय महाराजाधि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३. रा[ज-श्री]**चन्द्रगुप्त**-पाद-प्रसादाप्यायित-जीवित-साधनः अनुजीवि-
सत्पुरुष-सद्भाव-
४. वृ[त्त्यर्थं *] जगति प्रख्यापयन् अनेक-समरावाप्त-विजय-यशस्पताकः
सुकुलिदेश-न
५. **ष्टो** * * * वास्तव्य उन्दान-पुत्रा**म्रर्काद्दवो** मज-शरभङ्गाम्ररात-
राजकुल-मूल्य-क्री-
६. त[म] * * * * **ईश्वरवासकं** पञ्च-मण्डल्या[*] प्रणिपत्य ददाति
पञ्चविंशतिश्च दीना-
७. रान् [॥*] * * * * * * यादर्द्धेन महाराजाधिराज-श्री**चन्द्रगुप्तस्य**
देवराज इति प्रि-
८. य-ना[म्नः*] * * * * * रितस्य सर्व्व-गुण-संपत्तये यावच्चन्द्रादित्यौ
तावत्पञ्च भिक्षवो भुंज-
९. तां र[त्न*]-गृ[हे*] [च*] [दी*][प]को ज्वलतु [।*] मम चापरा-
र्द्धात्पञ्चैव भिक्षवो भुंजतां रत्न-गृहे च
१०. दीपक इ[ति] [॥*] [त]देतत्प्रवृत्तं य उच्छिन्द्यात्स गो-ब्रह्म-हत्यया
संयुक्तो भवेवेत्पञ्चभिश्चान-
११. न्तय्यैरिति [॥*] **सं** ९० (+*) ३ भाद्रपद-दि ४ [॥*]

मथुरा शिला लेख

सर्वं राजोच्छेत्ता पृथिव्यां अप्रतिरथस्य चतुरुदधि सलिल स्वादित यशसो धनद वरुढ़ इंद्रान्तक समस्य कृतांतपरक्षोः न्यायागतानेक गो हिरण्य कोटि प्रदस्य चिरोत्सन्ता अश्वमेधाहर्तुः महाराज

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्री गुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्री घटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छवि दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यां उत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्री समुद्र गुप्त पुत्रेण तत्परिग्रहितन महादेव्यां दत्तदेव्यां उत्पन्नेन परमभागवतेन महाराजाधिराज श्री (चंद्रगुप्तेन)

(शेष नष्ट हो गया है ।)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम कुमारगुप्त के लेख

भिलसद शिला-स्तंभ लेख (गु० स० ९६)

१. [सिद्धम् ॥*] [सर्व्व-राजोच्छेत्तुः पृथिव्यामप्रतिथरस्य चतुरुदधि-स*] [लिला]-स्वादित-यशसो

२. [धनद-वरुणेन्द्रान्तक-समस्य कृतान्त-परशोः न्यायागतानेकगो-हि*]-रण्यकोटिप्रदस्य चिरोत्सन्नाश्वमेधाहर्त्तुः

३. [महाराज-श्रीगुप्त-प्रपौत्रस्य महाराज-श्रीघटोत्कच-पौत्रस्य० म*] [हा]राजाधिराज-श्रीचन्द्रगुप्त पुत्रस्य

४. लिच्छ[वि-दौहित्रस्य*] महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजा*] धिराज-श्रीसमुद्रगुप्त-पुत्रस्य

५. महादेव्यां दत्त[देव्यामुत्पन्नस्य] [स्वयमप्रतिरथस्य*] [परम*]-भागवतस्य महाराजाधिराज-श्रीचन्द्रगुप्त-पुत्रस्य

६. महादेव्यां ध्रुवदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज-श्रीकुमारगुप्तस्याभि-[व]र्द्धमानविजय-राज्य-संवत्सरे षण्णवते

७. [अस्यान्दि]वस-पूर्व्वायां भगवतस्त्रैलोक्य-तेजस्संभार-संतताद्भुत-मूर्त्तेब्रह्मण्यदेवस्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

८. * * * * निवासिनः स्वामि-**महासेन**स्यायतने-
[ऽ*]स्मिन्कार्त्तयुगाचार-सद्धर्म्म-वर्त्मानुयायिना [।।*]

९. [माता] * * * * * * [प]र्षदा [।*]
मानितेन **ध्रुवशर्म्मणा** कर्म्म महत्कृतेदम् । [।*]

१०. कृ[त्व]ा [नेत्र*]ाभिरामां मु[नि-वसति][मिह*] [स्व]र्ग्ग-सोपान-[रू]पां ।
कौबेरच्छन्दबिम्बां स्फटिकमणिदलाभास-गौरां प्रतोलीम् ।

११. **प्रासादाग्राभिरूपं गुणवर-भवनं [धर्म-स*]त्रं यथावत् ।**
पुण्येष्वेवाभिरामं व्रजति शुभमतिस्तात-**शर्म्मा** ध्रुवो(ऽ*)स्तु ।[।*]

१२. — ा — ी स ‿ —शुभामृतवर-प्रख्यात-ल[ब्धा भुवि] ।
— — भक्तिरहीन-सत्व-समता कस्तं न संपूजयेत् ।

१३. [येनापूर्व्व*]-विभूति-सञ्चय-चयैः शैली— ‿ — — ‿ — : ।
तेनायं ध्रुवशर्म्मण स्थिर-वरस्तभो[च्छ्र]यः कारितः ।[।*]

गढ़वा लेख (गु० स० ९८)

जितंभगवता । परमभागवत महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त राज्य-संम्वतसरे ९० + ८ अस्यां दिवस पूर्व्वायां ···

··· ··· ··· ··· ···

आत्मपुण्योपचयार्थम्

··· ··· ··· ··· ··· कल्याण सदसत्र

··· ··· ··· ··· ··· कस्य तलक निवसे

··· ··· ··· ··· ··· दिनाराः द्वादश

··· ··· ··· ··· स्यांकुरोद्धस्त संयुक्तः स्यादिति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उदयगिरि गुहा लेख (गु० स० १०६)

१. नमः सिद्धेभ्यः [॥*] श्री-संयुतानां गुण-तोयधीनां गुप्तान्वयानां नृप-सत्तमानां

२. राज्ये कुलस्याभिविवर्द्धमाने षड्भिर्य्युते वर्ष-शते [ऽ*]थ मासे [॥१॥] सु-कार्त्तिके बहुल-दिने [ऽ*]थ पंचमे

३. गुहा-मुखे स्फट-विकटोत्कटामिमां [।*] जित-द्विषो जिन-वर-पार्श्व-संज्ञिकं जिनाकृतिं शम-दमवान-

४. चीकरत् [॥२*॥] आचार्य्य-भद्रान्वय-भूषणस्य शिष्यो ह्यसावार्य्य-कुलोद्गतस्य [।*] आचार्य्य-गोश-

५. र्म्म-मुनेस्सुतस्तु पद्मावतावश्वपतेर्भटस्य [॥३*॥] परैरजेयस्य रिपुघ्न-मानिनस्स सङ्घि-

६. लस्येत्यभिविश्रुतो भुवि [।*] स्व-संज्ञया शङ्कर-नाम-शब्दितो विधान युक्तं यति-मा-

७. र्ग्गमास्थितः (४) स उत्तराणां सदृशे कुरुणां उदग्दिशा बेश वरे प्रस्तूतः। क्षयाय कर्म्मारिमणस्य धीमान् यदत्र पुण्यं तदपाससज्जं (५)

धानाइदह ताम्रपत्र लेख (गु० स० ११३)

१. ·····[स*]म्वत्सर-श[ते] त्रयोदशोत्त[रे*]

२. १०० + १० + ३*]···[अस्या*][न्दि]वस-पूर्व्वायां परमदैवत-पर-

३. म-भट्टारक-महाराजाधिराज-श्रीकुमारगुप्तः*]···कुटु[म्बि]···ब्राह्मण-शिवशर्म्म-नागशर्म्म-मह-

४. ·····वकीर्त्ति-क्षेमदत्त-गोष्ठक-वर्ग्गपाल-पिङ्गल-शुङ्कक-काल-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५. ·····विष्णु-[देव]शर्म्म-विष्णुभद्र-रवासक-रामक-गोपाल-

६. ·····श्रीभद्र-सोमपाल-रामाद्यक(?)-ग्रामाष्टकुलाधिकरणञ्च

७. ·····विष्णुना(?णा) विज्ञापिता इह **खादा(टा?)पार-**
विषये(ऽ*)नुवृत्त-मर्य्यादास्थि[ति]-

८. ···नीवीधर्म्म-क्ष(क्क्र?)येण लभ्य[ते] [।*] [त]दर्हथ ममाद्यानेनैव
क्क्रमेन(?ण) दा[तुं]

९. ·····समेत्या(?)भिहितै(:*) सर्व्वमेव * * कर-प्रतिवेशि(?)-कुटुम्बि-
भिरवस्थाप्य क-

१०. ····· * रि * कन * यदितो * * [त]दवधृतमिति यतस्तथेति
प्रतिपाद्य

११. ·····[अष्टक-न*]वक-नला[भ्या]मपविञ्छ्य क्षेत्र-कुल्यवापभेकं
दत्तं [।*] ततः आयुक्तक-

१२. ····· * **भ्रा(?)तृकटक**-वास्तव्य-छन्दोग-ब्राह्मण-वराहस्वामिनो दत्तं
[।*] त[द्भव]-

१३. ·····भूम्या दा[नाक्षे]पे च गुणागुणमनुचिन्त्य शरीर-क[।*]
ञ्चनकस्य चि-

१४. [र-चञ्चलत्वं*]····· [।।*] [उ]क्तञ्च भगवता द्वैपायनेन [।*]
स्वदत्ताम्परदत्ताम्वा

१५. [यो हरेत वसुन्धरां ।*]
[स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृ*]भिः सह पच्यते [।।*]
षष्टिं वर्ष-सहस्रानि स्वर्गे मोदति [भू]मिदः [।*]

१६. [आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ।।*]
[पू*]र्व्वदत्तां द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर [।*]
महीं [मही][मताञ्छ्रेष्ठ*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१७. [दानाच्छ्रेयोऽनुपालनं ॥*]
.....यं...भद्रेन उत्कीर्णा स्थम्भेश्वरदासे[न] [॥*]

मथुरा लेख (गु० स० ११३)

सिद्धं । परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्तस्य विजय
राज्य सं० १०० + १० + ३—तमदिवस २०
अस्यां पूर्व्वायां कोट्टिणा गणा द्विधा

तुमैन शिलालेख (गु० स० ११६)

१. रिर्य्यस्य लोक त्रयान्ते । चरणकमलं मत्स्यं वन्द्यते सिद्ध सिद्धैः
राजा श्रीचंद्रगुप्तस्तदनु जयतियो मेदिनी सागरान्ताम् ।

२. श्रीचंद्रगुप्तस्य महेन्द्र कल्पः कुमारगुप्तः तनयः समग्रां (–) ररक्ष
साध्वीमिव धर्म्मपत्नीम् वीर्य्याग्रहैः तैरुपगुह्य भूमिम् ।

३. (– –) गौरः क्षित्यम्बरे गुणसमूह मयूखजालो नाम्नोदिततस्स तु
घटोत्कचगुप्तचंद्रः (–) स पूर्व्वजानां स्थिर सत्व कीर्त्तिभुर्जार्ज्जितां
कीर्त्तिमभिप्रपद्य

४. गुप्तान्वयानां वसुधरेश्वराणाम् समाशते षोड़शवर्ष युक्तं । कुमारगुप्ते
नृपतौ पृथिव्याम् विराजमाने शरदीव सूर्य्यं । वटोदके साधु
जनाधिवासे

५. ते श्रीदेव इत्यर्ज्जितनामधेयः ॥ तदग्रजोभूद्धरि देव संज्ञस्ततोनुजो
यस्तु सधन्य देवः । यततोवरो श्च स भद्रदेवः तत≍कनीयानपि
सङ्घदेवः

६. नरुक्तचित्ताः समानवृत्ता कृति भावधीराः कृतालयाः तुम्बवने
वभूवुः । अकार यं यस्ते गिरि शृङ्ग तुङ्ग शशिप्रभं देवनिकेतनं—।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करमदांडा शिला लिंग लेख (गु० स० ११७)

१. नमो **महादेवाय** । म[हाराजाधिराज-श्री][**चन्द्रगुप्त**पादा-*]-

२. नुध्यातस्य चतुधुदधि-सलिलास्वादित-य[शसो] [महाराजा*]-

३. धिराज-श्री**कुमारगुप्तस्य** विजयराज्य-**संवत्स**[र]-**शते सप्तदशोत्त**[रे*]

४. कार्त्तिक-मास-दशम-दिवसे(ऽ*)स्यान्दिवस-पूर्व्वायां [च्छान्दोग्या-चार्य्याश्व]वाजि-

५. सगोत्र-कुरम[ा]र[व्या?]भट्टस्य पुत्रो विष्णुपालितभट्टस्तस्य पूत्रो मह[ा]र[ा]-

६. जधिराजा-श्री**चंद्रगुप्तस्य** मन्त्री कुमारामात्यश्शिखरस्वाम्यभूत्तस्य पुत्रः

७. पृथिवीषेणो महाराजाधिराज-श्री**कुमारगुप्तस्य** मन्त्री कुमारामात्यो-(ऽ*)न

८. न्तरं च महाबलाधिकृतः भगवतो महादेवस्य **पृथिवीश्वर** इत्येवं समाख्यातस्या-

९. स्यैव भगवतो यथा-कर्त्तव्य-धार्म्मिक-कर्म्मणा पाद-शुश्रूषणाय भगवच्छै-

१०. **लेश्वरस्वामि**-महादेव-पादमूले **आयोध्यक**-नानागोत्रचरण-तपः-

१२. स्वाध्याय-मन्त्र-सूत्र-भाष्य-प्रवचन-पारग-भारडिदसमद-देवद्रोण्यां

११. ... ...

कलैकुरि ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १२०)

१. स्वस्ति । **शृंगवेरवैथेयपूर्ण्णं** कौशिकायाः आयुक्त (काच्युतदासोधिक) रणञ्च हस्ति शीर्षं विभीतक्यां गुल्म गांधि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२. (कायां) धान्यपाटलिकायां संगो हालिषु ब्राह्मणादीन्ग्राम कुटुंबिनः कुशल मनु वर्ण्य बोधयति । बिदितं

३. भविष्यति यथा इहवीथी कुलकभीम कायस्थ प्रभुचंद्र रुद्रदासदेवदत्त लक्ष्मण क × × × (विनयद)त्त कृष्ण

४. दास पुस्तपाल सिंहनंदि यशोदामभिः वीथी महत्तर कुमारदेवगंड प्रजापति उभयशो रामशर्म ज्येष्ठ

५. दामस्वामिचंद्र हरिसिंह कुटुम्बि यशो विष्णु कुमार विष्णु भवकुमार-भूतिकुमार यशः + स्तवै (खि) लिनक

६. शिवकुंडवसुशिनायर शिवदामरुद्र प्रभमित्र कृष्णमित्र मधशर्म ईश्वरचंद्र रुद्रभव

७. श्रीनाथ हरिशर्म गुप्तशर्म सुशर्महरि अलातस्वामी ब्रह्मस्वामि महासेन भट्ट स्वाम्य .....

८. म्र्म रुष्टशर्म कृष्णदत्त नंद्रदाम भवदत्त अहिशर्म सोमविष्णु लक्ष्मण-शर्म कीर्ति विष्णु कुमशर्म शु

९. शुक्क्र शर्म सर्प्पपालित कंकुटि विश्व शंकर जयस्वामि कैवर्तशर्म्म हिमशर्म्म पुरंदर जयविष्णु.....

१०. सिंहत्त बोदनारायनदास वीरनागराज्य नाग गुहमहिभवनाथ गुहविष्णु-शर्व्वविष्णु वि.....कुलदास

११. श्रीगुहविष्णु रामस्वामि कामन कुंड रतिभद्र अच्युतभद्र लीढ़क प्रभकीर्ति जय दत्त कालक (?) अच्युतनरदेवभव

१२. भवरक्षित पिंचकुंड प्रवरकुंड शर्व्वदास गोपाल पुरोगाः वयं च विज्ञापिताः इह वीथ्यामप्रतिकर खिलक्षेत्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१३. स्य शश्वत कालोपयोगाया क्षयनीव्या द्वि दीनारिक्य खिलक्षेत्र कुल्यावाप विक्रय मर्य्यादया इच्छेमहि प्रति

१४. प्रति मातापित्रोः पुण्याभि वृद्धये पौंड्रवर्द्धनक चातुर्व्विद्य वाजिसनेय चरणाभ्यन्तर ब्राह्मणदेव

१५. भट्ट अमरदत्त महासेनदत्तानां पंचमहायज्ञ प्रवर्तनाय नवकुल्या-बापन्क्रीत्वा दातुं एभिरेवोप

१६. रिर्निर्दिष्टक ग्रामेषु खिलक्षेत्राणि विद्यन्ते तदर्हथा स्मतः अष्टादश दीनारान्गृहीत्वा एतान्नवकुल्यवापा—

दूसरी ओर

१७. न्यनुपादयितुं यतः एषां कुलिकभीमादीनां विज्ञाप्यमुपलभ्य पुस्तपाल सिंह नन्दियशोदा (·· ·····)

१८. वधारणयावधृत्वा स्त्ययमिहवीथ्या मप्रतिकार खिलक्षेत्र शश्वत कालोपभोगाया क्षयनीव्या द्वि दीनारि

१९. क्य कुल्याबाप विक्रयोनुवृत्तः तद्दीयतां नास्ति विरोधः कश्चिदित्य-वस्थाप्य कुलिक भीमादिभ्यो अष्टादश

२०. दीनारानुपसंहरित कानायीकृत्य हस्ति शीर्ष विभीतक्यां धान्य-पाटलिकायां (संगो) हालिक ग्रामेषु

२१. द्यां दक्षिणोद्देशेषु अष्टौ कुल्यवापा धान्यपाटलिक ग्रामस्य पश्चि-मोत्तरोद्देशे (सद्यः खात) परिखा वेष्टित

२२. मुत्तरेण वाटानदीपश्चिमेन गुल्मगन्धिका ग्राम सीमानमिति + कुल्यवाप एको गुल्मगन्धिकायां पूर्व्वं

२३. णाद्यपथः पश्चिमप्रदेशे द्रोणवापद्वयंः हस्तिशीर्ष प्रावेश्य तापसपोत्तके दयिता पोत्तकेच वि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२४. भीतक प्रावेश्यचित्रवातंगरे (च) कुल्यवापाः सप्तद्रोणवापाः षट ऐषु
यथोपरिनिर्द्दिष्टीक ग्रामप्रदेशे

२५. शेष्वेषां कुलिक भीमकायस्थ प्रभुचंद्र रुद्रदासादीनां मातापित्रौः
पुण्याभिवृद्धचे ब्राह्मण

२६. देवभट्टस्य कुल्यवापा पंच (कुल ५) अमरदत्तस्य कुल्यवापद्वयं महासेन-
दत्तस्य कुल्यवापद्वयं

२७. कु एषां त्रयाणां पंचमहायज्ञप्रवर्तनाय नवकुल्यावापानि प्रदत्तानि ।
तद्यु ष्माकं

२८. ति लिख्यते च समुपस्थितकालयेप्यत्ते विषयपतयः आमुक्तकाः
कुटुम्बिनोधिकरणिका वा समन्वय

२९. हारिणो भविष्यन्ति तैरपि भूमिदान फलमवेश्य अक्षयनीव्यानु-
पार्लनीया । उक्तं च महाभारते भगव

३०. ता व्यासेन
स्वदत्ता परदत्तांबा यो हरेत वसुंधरां
स विष्टायां क्रिमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते
षष्टिवर्ष सहस्राणि स्वर्गे वसति भूमिदः

३१. आक्षेप्ता चानुमत्ता च तान्येव नरके वसेत् कृशाय कृशवत्तये वृप्ति

३२. (भूमिः) वृत्तिकरीन्दत्वा सुखी भवतिकायदः
बहुमिर्वसुधाभुक्ताभुज्यते च पुनःपुनः यस्ययस्ययदाभूमिः तस्य तस्य

दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १२४)

१. **सम्व** १०० (+ *) २० (+ *) ४ फाल्गुण-दि ७ परमदैवत
परमभट्टारक-महाराज[ा*]-

२. धिराज-श्री**कुमारगुप्ते** पृथिवी-पतौ तत्पाद-परिगृहीते **पुण्ड्रवर्द्ध** [न*]-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३. भुक्तादुपरिक-**चिरातदतेना**नुवलवानक-**कोटिवर्ष**-विषये च त-
४ न्नियुक्तक-कुमारामात्य-वेत्रवर्मन्यधिष्ठाणाधिकरणञ्च नगरश्रे ष्ठि-
५. धृतिपाल-सार्त्थवाहवन्धुमित्र-प्रथमकुलिकधृतिमित्र-प्रथमका[य*]-
६. स्थशाम्बपाल-पुरोगे संव्यवहरति यतः ब्राह्मण-कर्प्पटिकेण
७. विज्ञापित(*) अरर्हथ ममाग्निहोत्रोपयोगाय अप्रदाप्रहत-खि-
८. ल-क्षेत्र[*] त्रदीनारिक्य-कुल्यवापेण शश्वताचंद्रार्क्क-तारक-भोज्ये[त*]-
९ या नीवी-धर्म्मेण दातुमिति एवं दीयतामित्युत्पन्ने त्रिनी दीना[राण्यु*]-
१०. पसंगृह्य यतः पुस्तपाल-रिशिदत्त-जयनन्दि-विभुदत्तानामवधा-
११. रणया **डोङ्गाया** उत्तर-पश्चिमद्देशे कुल्यवापमेकम् दत्तम् [।।*]
१२. स्व-दत्तां पर-दत्ताम्बा यो हरेत वसुन्धरां [।*]
भूमि-[दान]-संबद्धा[:*] श्लोका भवन्ति [।*]
१३. स विष्ठायां क्रिमिर्भूत्वा पित्रिभि सह पच्यतेति [।।*]

दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १२८)

१. **स**[ ] १०० (+*) २० (+*)८ वैशाख-दि १०(+*) ३ पर[मदैव]त-परमभट्टारक-महाराजाधिराज-[श्री][**कुमा***]-
२. **रगुप्ते** पृथिवी-पतौ [तत्पाद]-परिगृहीतस्य **पु[ण्ड्र]वर्द्धन**-भुक्तावुप [रिक-**चि**]**रात-दत्त**[**स्य**]
३. भोगेना[नुव]ह[मानक]-**कोटिव**[**र्ष**]-विषये तन्नियुक्तक-कु[मा]रामात्य-वे[त्र]-
४. वर्म्मणि अधिष्ठाना[धिक]र[णञ्च] नगर[श्रे]ष्ठिधृतिपाल-सार्थवा [हवन्धुमि]त्र-प्र[थ]-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५. मकुलिकधृतिमित्र-[प्रथ]मकायस्थ[शाम्ब]पाल-पुरो[गे] सम्व्यव[हर]
ति [यतः*] स···

६. विज्ञापितं अ[र्ह]थ मम प[ञ्च]-महायज्ञ-प्रवर्त्तनायानुवृत्ताप्रदाक्षयनि
[वी*]-

७. मर्य्यादया दातुमिति एतद्विज्ञाप्यमुपलभ्य पुस्तपा[ल]-रिसिदत्त-जयन
[न्दि-वि]-[भुदत्तानामव*]-

८. धारणया दीयतामित्यु[त्प]न्ने एतस्माद्य[था]नुवृत्त-त्रैदीनारि[क्य-कु]
ल्यवापे[न]

दूसरी ओर

९. [द्व]यमुप[संगृ]ह्य **ऐरा]वता[गो]राज्ये** पश्चिम-दिशि पञ्चद्रो[णा]-

१०. [म]काः ह[ट्ट]-पानकैश्च सहितेति दत्ताः [।*] तदुत्तर-कालं सम्व्य्-
वहारिभिः [धर्म्ममवेक्ष्या]नु[म]-

११. न्तव्याः [।*] अपि च भूमि-दान-सम्वद्धामिमौ श्लोकौ भवतः [।*]
पूर्व-दत्तां द्विजाति[भ्यो]

१२. यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर [।*]
महीं महीवतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयो(ऽ*)नुपा(ल*)नं [।।*]
वहुभिर्व्वसुधा दत्ता दी[य]ते च

१३. पुनः पुनः [।*]
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलमिति [।।*]

मनकुवार प्रस्तर बौद्ध प्रतिमा लेख (गु० सं० १२९)

१. १ॅ नमो बुधान [।*] भगवतो सम्यक्सम्बुद्धस्य स्व-मताविरुद्धस्य इयं
प्रतिमा प्रतिष्ठापिता भिक्षु-**बुद्धमित्रेण**

२. **सम्बत्** १०० (+*)२० (+*) ९ महाराज-श्रीकु**मारगुप्तस्य** राज्ये
ज्येष्ठमास-दि १० (+*)८ सर्व-दुःक्ख-प्रहानार्त्थम् [।।*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गढ़वा शिला लेख

जितं भगवता। परमभागवत महाराजाधिराज
श्री कुमारगुप्त राज्य संम्वतसरे ... ...
दिवसे १० अस्मां दिवस पूर्व्वायां ... ...
... ...
सद सत्र सामान्य ... ...
दत्त दिनारः १० ... ...
सत्रे च दिनार ... ...
... स पंचमहापातकैः संयुक्तैः
स्यादिति ... ...
गोविन्द लक्ष्मा ... ...

मन्दसोर शिला लेख (मालव संवत् ४९३ एवं ५२९)

१. [सिद्धम् ॥]
[यो] [वृत्यर्त्थ]मुपास्यते सुर-गणै[स्सिद्धैश्च] सिद्धर्चर्त्थिभि-
र्द्धचानैकाग्र-परैर्व्विधेय-विषचैर्म्मोक्षार्त्थिभिर्य्योगिभिः ।
भक्तचा तीव्र-तपोधनैश्च मुनिभिश्शाप-प्रसाद-क्षमै-
र्हेतुर्य्यो जगत × क्षयाभ्युदययो≍पायात्सवो **भास्करः** ।[।*]
तत्व-ज्ञान-विदो(ऽ*)पि यस्य न विदुर्ब्रह्मर्ष-

२. यो(ऽ*)भ्युद्यता
× कृत्स्नं यश्च गभस्तिभिः प्रवृसृतै≍पु[ष्ण]ाति लोक-त्रयम् ।
ग[न्ध]र्व्वामर-सिद्ध-किन्नर-नरैस्संस्तूयते(ऽ*)भ्युत्थितो
भक्तेभ्यश्च ददाति यो(ऽ*)भिलषितं तस्मै **सवित्रे** नमः ।[।*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

य≍[प्र]त्यहं प्रतिविभात्युदयाचलेन्द्र-
विस्तीर्ण्ण-तुङ्ग-शिखर-स्खलितांशुजालः [।*]
क्षीबाङ्गना-

३. जन-कपोल-तलाभिताम्र-
≍पायात्स वस्सु[कि]रणाभ[रणो] विवस्वान् ।[।*]
कुसुमभरानततरुवर-देवकुल-सभा-विहार-रमणियात् ।
लाट-विषयान्नागावृत-शैलाज्जगति प्रथित-शिल्पाः ।[।*]
ते देश-पार्थिव-गुणापहृताः प्रकाश-
मद्ध्वादिजान्यविरलान्यसुखा-

४. न्यपास्य ।
जातादरा **दशपुरं** प्रथमं मनोभि-
रन्वागतास्ससुत-बन्धु-जनास्समेत्य ।।
मत्तेभ-गण्ड-तट-विच्युत-दान-बिन्दु-
सिक्तोपलाचल सहस्र-विभूषाणायाः [।*]
पुष्पावनम्र-तरु-मण्ड-वतंसकाया
भूभे≍परन्तिलक-भूतमिदं क्रमेण ।।
तटोत्थ-वृक्ष-च्युत-

५. नैक-पुष्प-
विचित्र-तीरान्त-जलानि भान्ति ।
प्रफुल्ल-पद्माभरणानि यत्र
सरांसि कारण्डव-संकुलानि ।
विलोल-वीची-चलितारविन्द-
पतद्रजः-पिञ्जरितैश्च हंसैः ।
स्व-क्रेसरोदार-भरावभुग्नैः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्वचित्सरांस्यम्बुरुहैश्च भान्ति ।[।*]
स्व-पुष्पभारावनतैर्न्नगेन्द्रै-
र्मद-

६. प्रगल्भालि कुल-स्वनैश्च ।
अजस्रगाभिश्च पुराङ्गनाभि-
र्व्वनानि यस्मिन्समलंकृतानि ।।*
चलत्पताकान्यबला-सनाथा-
न्यत्यर्त्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि ।
तडिल्लता-चित्र-सिताब्भ्र-कूट-
तुल्योपमानानि गृहाणि यत्र ।।
कैलास-तुङ्ग-शिखर-प्रतिमानि चान्या-
न्याभान्ति दीर्घ्घ-बलभी-

७. नि सवेदिकानि ।
गान्धर्व्व-शब्द-मुखरानि निविष्ट-चित्र-
कर्म्माणि लोल-कदली-वन-शोभितानि ।
प्रासाद-मालाभिरलंकृतानि
धरां विदार्य्यैव समुत्थितानि ।
विमान-माला-सदृशानि यत्र
गृहाणि पूर्ण्णेन्दु-करामलानि ।।*
यद्भ्रात्यभिरम्य-सरिद्वयेन चपलोर्म्मिणा समुपगूढं [।]

८. रहसि कुच-शालिनीभ्यां प्रीति रतिभ्यां स्मराङ्गमिव ।
सत्य-[क्षमा]-दम-शम-व्रत-शौच-धैर्य्य-
[स्वाद्ध्या]य-वृत्त-विनय-स्थिति-बुद्ध्युपेतैः ।
विद्या-तपो-निधिभिरस्मयितैश्च विप्रै-
र्य्यद्भ्राजते ग्रहगणै × खमिव प्रदीप्तैः ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथ समेत्य निरन्तर-सङ्गतै-
रहरहः-प्रविजृम्भित-

९. सौहृदाः [।*]
नृपतिभिस्सुतवत्प्रतिम[ा]निताः
प्रमुदिता न्यवसन्त सुखं पुरे ॥
श्रवण-[सु]भग[ं] ध[ा]नुर्व्वै[द्य ं] दृढ़ं परिनिष्ठिताः
सुचरित-शतासङ्गा × केचिद्विचित्र-कथाविदः ।
विनय-निभृतास्सम्यग्धर्म्म-प्रसङ्ग-परायणा-
≍प्रियमपरुषं पत्थ्यं चान्ये क्षमा बहु भाषितुं ॥

१०. केचित्स्व-कर्म्मण्यधिकास्तथान्यै-
र्व्विज्ञायते ज्योतिममात्मवद्भिः ।
[अद्यापि] चान्ये समर-प्रगल्भा-
[× कु]र्व्वन्त्यरीणामहितं प्रसह्य ।[*]
प्राज्ञा मनोज्ञ-वधवः प्रथितोरुवंशा
वंशानुरूप-चरिताभरणास्तथान्ये ।
सत्यव्रताः प्रणयिनामुपकार दक्षा
विस्रम्भ-

११. [पूर्व्व]मपरे दृढ-सौहृदाश्च ॥
विजित-विषय-सङ्गैर्द्धर्म्म-शीलैस्तथान्यै-
[मृ ं]दुभि[रधि]क-स[त्वैर्लोकयात्रा]मरैश्च ।
स्व-कुल-तिलक-भूतैर्मुक्तरागैरुदारै-
रधिकमभि[वि]भाति श्रेणिरेवंप्रकारैः ॥
तारुण्य-कान्त्युपचितो(ऽ*)पि सुवर्ण्ण-हार-
तांबूल-पुष्प-विधिना सम-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१२. [लंकृ]तो(ऽ*)पि ।

नारी-जनः प्रियमुपैति न तावदग्र्यां
यावन्न पट्टमय-वस्त्र-[यु] गानि धत्ते ॥
स्पर्श[वता वर्ण्णा]न्तर-विभाग-चित्रेण नेत्र-सुभगेन [।]
यैस्सकलमिदं क्षितितलमलंकृतं पट्टवस्त्रेण ॥
विद्याधरी-रुचिर-पल्लव-कर्ण्णपूर-
वातेरिता[स्थि]रतरं प्रविचिन्त्य

१३. [लो]कं ।

मानुष्यमर्त्थ-निचयांश्च तथा विशालां-
[स्ते]षां शुभा [म]ति[रभूद]चला ततस्तु[॥]
चतु[स्समुद्रान्त]-विलोल-मेखलां
सुमेरु-कैलास-बृहत्पयोधराम् ।
वनान्त-वान्त-स्फुट-पुष्प-हासिनीं
कुमारगुप्ते प्रिथिवीं प्रशासति ॥
समान-धीश्शुक्र-बृहस्पतिभ्यां
ललामभूतो भुवि

१४. पार्त्थिवानां ।

रणेषु यः पार्त्थ-समानकर्म्मा
बभूव गोप्ता नृप-**विश्ववर्म्मा** ॥
दीनानुकंपन-परः कृपणार्त्त-वर्ग्ग-
सन्ध[ा]प्रदो(ऽ*)धिकदयालुरनाथ-नाथः ।
[क]ल्पद्रुमः प्रणयिनामभयं प्रदश्च
भीतस्य यो जनपदस्य च बन्धुरासीत् ॥
तस्यात्मजः स्थैर्य्य-नयोपपन्नो
ब[न्धु]-प्रियो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१५. बन्धुरिव प्रजानां ।
बंध्वर्त्ति-हर्त्ता नृप-**बन्धुवर्म्मा**
द्विड्दृप्त-पक्ष-क्षपणैक[द]क्षः ॥
कान्तो युवा रण-पटुर्व्विनयान्वितश्च
राजापि सन्नुपसृतो न मदैः स्मयाद्यैः ।
शृङ्गार-मूर्त्तिरभिभात्यनलंकृतो(ऽ*)पि)
रूपेण य⌒कुसुम-चाप इव द्वितीयः ॥
वैधव्य-तीव्र-व्यसन-क्षतानां

१६. स्मित्वा यमद्याप्यरि-सुन्दरीणां ।
भयाद्भवत्यायत-लोचनानां
घन-स्तनायस करः प्रकम्पः
तस्मिन्नेव क्षितिपति-व्रिषे **बंधुवर्म्म**ण्युदारे
सम्यक्स्फीतं **दशपुर**मिदं पालयत्युन्नतांसे
[शि]ल्पावाप्तैर्द्धन-समुदयैः पट्टवा[यैरु]दारं
श्रे[णीभूतै]र्भवनमतुलं कारितं

१७. दीप्त-रश्मेः ॥
विस्तीर्ण्ण-तुङ्ग-शिखरं शिखरि-प्रकाश-
मभ्युद्गतेन्द्रमल-रश्मि-कलाप-[गौ]रं ।
यद्भाति पश्चिम-पुरस्य निविष्ट-कान्त-
चूडामणि-प्रतिसमन्नयनाभिरामं ॥
रामा-सनाथ-[र*]चने दर-भास्करांशु-
वह्नि-प्रताप-सुभगे जल-लीन-मीने ।
चन्द्रांशु-हर्म्यतल-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१८. चन्दन-तालवृन्त-
हारोपभोध-रहिते हिम-दग्ध-पद्मे ॥
रोद्ध्र प्रियंगुतरु कुन्दलता-विकोश-
पुष्पा[सव] प्रमु[दि]तालि-कलाभिरामे ।
काले तुषार कण-कर्क्कश-शीत-वात-
वेग-प्रनृत्त-लवली-नगणैकशाखे ॥
स्मर-वशग-तरुणजन-वल्लभाङ्गना-विपुल-कान्त-पीनोरु-

१९. स्तन-जघन-घनालिङ्गन निर्भर्त्सित-तुहिन-हिम-पाते ॥
[मा]लवानां गण-स्थित्या या[ते] शत-चतुष्टये ।
त्रिनवत्यधिके[ऽ*]ब्दानाम्रितौ सेव्य-घनस्तने ॥
सहस्यमास-शुक्लस्य प्रशस्ते(ऽ*)ह्नि त्रयोदशे ।
मङ्गलाचार-विधिना प्रासादो (ऽ*)यं निवेशितः ॥
बहुना समतीतेन

२०. कालेनान्यैश्च पर्त्थिवैः ।
व्यशीर्य्यतैकदेशो(ऽ*)स्य भवनस्य ततो(ऽ*)धुना ॥
स्वयशो-[व्रिद्धये सर्व्वमत्युदा]रमुदारया ।
संस्कारितमिदं भूयः **[श्रेण्या)** भानुमतो गृहं ॥
अत्युन्नतमवदातं नभः(:*)स्पृशन्निव मनोहरैश्शिखरैः ।
शशि-भान्वोरभ्युदयेष्वमल-मयूखायतन-

२१. भूतं ॥
वत्सर-शतेषु पंचसु विशंत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु ।
यातेष्वभिरम्य-[तप]स्यमास-शुक्ल-द्वितीयायां ॥
स्पष्टैरशोकतरु-केतक-सिंदुवार-
लोलातिमुक्तकलता-मदयंतिकानां ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुष्पोद्गमैरभिनवैरधिगम्य नून-
मैक्यं विजृंभित-शरे हर-पूत-देहे ॥

२२. मधुपान-मुदित-मधुकर-कुलोपगीत-नगनैक-पृथु-शाखे ।
काले नव-कुसुमोद्गम-दंतुर-कांत-प्रचुर-रोद्धे ॥
शशिनेव नभो विमलं कौ[स्तु]भ-मणिनेव शार्ङ्गिणो वक्षः ।
भवन-वरेण तथेदं पुरमखिलमलंकृतमुदारं ॥
अमलिन-शशि-

२३. लेखा-दंतुरं पिङ्गलालां ।
परिवहति समूहं यावदीशो जटानां ।
वि[कच-क]मल-मालामंस-सक्तां च शार्ङ्गी
भवनमिदमुदारं शाश्वतन्तावदस्तु ॥
श्रेण्यादेशेन भक्त्या च कारितं भवनं रवेः ।
पूर्व्वा चेयं प्रयत्नेन रचिता **वत्सभट्टिना** ॥

२४. स्वस्ति कर्तृ-लेखक-वाचक-श्रोतृभ्यः ॥ सिद्धिरस्तु ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्कंदगुप्त के अभिलेख

जूनागढ़ शिला लेख (गु० स० १३६, १३७, व १३८)

खण्ड १

१. सिद्धम् [।।*] श्रियमभिमत-भोग्यां नैक-कालापनीतां त्रिदश-
पति-सुखार्त्थं यो बलेराजहार। कमल-निलयनायाः शाश्वतं धाम
लक्ष्म्याः

२. स जयति विजितार्त्तिर्व्विष्णुरत्यन्त-जिष्णुः ।।[१*] तदनु जयति
शश्वत् श्री-परिक्षिप्त-वक्षाःस्व-भुज-जनित-वीर्यो राजराजाधि-
राजः। नरपति-

३. भुजगानां मान-दर्प्पोत्फणानां प्रतिकृति-गरुडा [ज्ञां] निर्व्विषी (षीं)
चावकर्त्ता ।।[२*] नृपति-गुण-निकेतः **स्कन्दगुप्तः** पृथु-श्री चतुरु-
[दधि-जला]न्तां स्फीत-पर्यन्त-देशाम्।

४. अवनिमवनतारिर्यः चकारात्म-संस्थां पितरि सुर-सखित्वं प्राप्त-
वत्यात्म-शक्त्या ।।[३*] अपि च जित[मे]व तेन प्रथयन्ति यशांसि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यस्य रिपवो [ऽ*]पि [।*] आमूल-भग्न-दर्प्पा नि[र्वंचना ? म्लेच्छ-देशेषु] ॥[४*]

५. क्रमेण बुद्धया निपुणं प्रधार्य ध्यात्वा च कृत्स्नान्गुण-दोष-हेतून् । व्यपेत्य सर्वान्मनुजेन्द्र-पुत्रांल्लक्ष्मीः स्वयं यं वरयांचकार ॥[५*] तस्मिन्नृपे शासति नैव कश्चिद्धर्म्मादपेतो मनुजः प्रजासु ।

६. आर्त्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो दण्डो(ण्डचो) न वा यो भृश-पीडितः स्यात् ॥[६*] एवं स जित्वा पृथिवीं समग्रां भग्नाग्र-दर्पा[न्] द्विषतश्च कृत्वा । सर्व्वेषु देशेषु विधाय **गोप्तृ(प्तृ)न्** संचिन्तया[मा]स बहु-प्रकारम् ॥[७*]स्यात्को [ऽ*]नुरूपो

७. मतिमान्विनि(नी)तो मेधा-स्मृतिभ्यामनपेत-भावः । सत्यार्ज-वौदार्य-नयोपपन्नो माधुर्य-दाक्षिण्य-यशो-[ऽ*]न्वितश्च ॥[८*] भक्तो [ऽ*]नुरक्तो नृ-[विशे]ष-युक्तः सर्व्वोपधाभिश्च विशुद्ध-बुद्धिः । आनृण्य-भावोपगतान्तरात्माः(त्मा) सर्व्वस्य लोकस्य हिते प्रवृत्तः ॥[९*]

८. न्यायार्जने [ऽ*]र्थस्य च कः समर्थः स्यादर्जितस्याप्यथ रक्षणे च । गोपायितस्यापि [च] वृद्धि-हेतौ वृद्धस्य पात्र-प्रतिपादनाय ॥[१०*] सर्व्वेषु भृत्येष्वपि संहतेषु यो मे प्रशिष्यान्निखिलान्सुराष्ट्रान् । आं ज्ञातमेकः खलु **पर्णदत्तो** भारस्य तस्योद्वहने समर्थः ॥[११*.]

९. एवं विनिश्चित्य नृपाधिपेन नैकानहो-रात्र-गणान्स्व-मत्या । यः संनियुक्तो [ऽ*]र्थनया कथंचित् सम्यक्सुराष्ट्रावनिपाल-नाय ॥[१२*] नियुज्य देवा वरुणं प्रतीच्यां स्वस्था यथा नोन्म-नसो बभूवु[ः] [।*] पूर्व्वेतरस्यां दिशि **पर्णदत्तं** नियुज्य राजा धृतिमांस्तथा [ऽ*]भूत् ॥[१३*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१०. तस्यात्मजो ह्यात्मज-भाव-युक्तो द्विधेव चात्मात्म-वशेन नीतः। सर्व्वात्मना [ऽऽ*]त्मेव च रक्षणीयो नित्यात्मवानात्मज-कान्त-रूपः। (॥) [१४*] रूपानुरूपैर्ललितैर्विचित्रैः नित्य-प्रमोदान्वित-सर्व-भावः। प्रबुद्ध-पद्माकर-पद्म-वक्त्रो नृणां शरण्यः शरणागता-नाम्। ॥[१५*]

११. अभवद्भुवि **चक्रपालितो** [ऽ*]साविति नाम्ना प्रथितः प्रियो जनस्य। स्व-गुणैरनुपस्कृतैरुदा[त्तै]ः पितरं यश्च विशेषयांच-कार। (॥) [१६*] क्षमा प्रभुत्वं विनयो नयश्च शौर्यं विना शौर्य-मह[ा ?]र्च्चनं च। दाक्ष्यं (?) दमो दानमदीनता च दाक्षिण्यमानृण्यम[शू]न्यता च। (॥) [१७*] सौंदर्यमार्येतर-निग्रहश्च अ-विस्मयो धैर्यमुदीर्णता च।

१२. इत्येवमेते [ऽ*]तिशयेन यस्मिन्नविप्रवासेन गुणा वसन्ति। (॥) [१८*] न विद्यते [ऽ*]सौ सकले [ऽ*]पि लोके यत्रोपमा तस्य गुणैः क्रियेत। स एव कात्स्न्र्येन गुणान्वितानां बभूव नृ(नृ)णा-मुपमान-भूतः। (॥) [१९*] इत्येवमेतानधिकानतो [ऽ*]न्या-न्गुणान्प[री]क्ष्य स्वयमेव पित्रा। यः संनियुक्तो नगरस्य रक्षां विशिष्य पूर्वान्प्रचकार सम्यक्। (॥) [२०*]

१३. आश्रित्य वि (वी)र्यं [स्वभु]ज-द्वयस्य स्वस्यैव नान्यस्य नरस्य दर्पं। नोद्वेजयामास च कंचिदेवमस्मिन्पुरे चैव शशास दुष्टाः(न्)। (॥) [२१*] विस्रंभमल्पे न शशाम यो [ऽ*]स्मि-न्काले न लोकेषु स-नागरेषु। यो लालयामास च पौर-वर्गान् [पितेव ?]-पुत्रान्सुपरीक्ष्य दोषान्। (॥) [२२*] संरंज्यां च प्रकृतीर्बभूव पूर्व्व-स्मिताभाषण-मान-दानैः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१४. निर्यन्त्रणान्योन्य-गृह-प्रवेशै[:] संवर्द्धित-प्रीति-गृहोपचारैः । (॥) [२३*] ब्रह्मण्य-भावेन परेण युक्तः शुक्लः शुचिर्दान-परो यथावत् । प्राप्यान्स काले विषयान्निषेवे धर्मार्थयोश्चा[प्य*]विरोधनेन । (॥) [२४*] यो [ऽ*जायतास्मात्खलु?] पर्णदत्तात्स न्यायवानत्र किमस्ति चित्रं । मुक्ता-कलापाम्बुज-पद्म-शीताच्चन्द्रात्किमुष्णं भविता कदाचित् । (॥) [२५*]

१५. अथ क्रमेणाम्बुद-काल आग[ते नि]दाघ-कालं प्रविदार्य तोयदैः । ववर्ष तोयं बहु संततं चिरं सुदर्शनं येन बिभेद चात्वरात् । (॥) [२६] संवत्सराणामधिके शते तु त्रिंशद्भिरन्यैरपि षड्भिरेव । रात्रौ दिने प्रौष्ठपदस्य षष्ठे **गुप्त-प्रकाले गणनां विधाय ।** (॥) [२७*]

१६. इमाश्च या रैवतकाद्विनिर्गता[:*] पलाशिनीयं सिकता-विलासिनी । समुद्रकान्ताः चिर-बन्धनोषिताः पुनः पतिं शास्त्र-यथोचितं ययुः । (॥) [२८] अवेक्ष्य वर्षागम-जं महोद्भ्रमं महोदधेरूर्जयता प्रियेप्सुना । अनेक-तीरान्तज-पुष्प-शोभितो ।

१७. नदीमयो हस्त इव प्रसारितः । (॥)[२९*] विषाद्य[मानाः खलु सर्वतो ज]नाः कथं-कथं कार्यमिति प्रवादिनः । मिथो हि पूर्वापररात्रमुत्थिता विचिन्तयां चापि बभूवुरुत्सुकाः । (॥) [३०] अपीह लोके सकले सुदर्शनं पुमां (मान्) हि दुर्दर्शनतां गतं (तः) क्षणात् ।

१८. भवेन्नु सो [ऽ*]म्भोनिधि-तुल्य-दर्शनं सुदर्शनं [– ⏑ ⏑ – ⏑ – ⏑ –] [॥३१*] [⏑ – ⏑ – – ⏑]वणे स भूत्वा पितुः परां भक्तिमपि प्रदर्श्य । धर्मं पुरोधाय शुभानुबन्धं राज्ञो हितार्थं नगरस्य चैव । (॥) [३२*] संवत्सराणामधिके शते तु]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१९. त्रिंशद्भिरन्यैरपि सप्तभिश्च। [गुप्त-प्रकाले नय]-शास्त्रवेत्ता विश्वो [ऽ*]प्यनुज्ञात-महाप्रभावः। (॥) [३३*] आज्य-प्रणामैः विबुधानथेष्ट्वा धनैर्द्विजातीनपि तर्पयित्वा। पौरांस्तथा [ऽ*]भ्यर्च्य यथार्ह-मानैःभृत्यांश्च पूज्यान्सुहृदश्च दानैः। (॥)[३४*]

२०. ग्रैष्मस्य मासस्य तु पूर्व-प[क्षे] [⏑ – ⏑ – – प्र]थमे [ऽ*]ह्नि सम्यक्। मासद्वयेनादरवान्स भूत्वा धनस्य कृत्वा व्ययमप्रमेयम्। (॥)[३५*] आयामतो हस्त-शतं समग्रं विस्तारतः षष्ठिरथापि चाष्टौ।

२१. उत्सेधतो [ऽ*]न्यत् पुरुषाणि [सप्त ?⏑ – ⏑ – ह]स्त-शत-द्वयस्य। (॥)[३६*] बबन्ध यत्नान्महता नृदेवान[भ्यर्च्य ?] सम्यग्घटितोपलेन। अ-जाति-दुष्टम्प्रथितं तटाकं **सुदर्शनं** शश्वत-कल्प-कालम्। (॥)[३७*]

२२. अपि च सुदृढ-सेतु-प्रान्त (?-)विन्यस्त-शोभ-रथचरण-समाह्व-क्रौंच-हंसास-धूतम्। विमल-सलिल[– – – ⏑ – – ⏑ – –] भुवि त[⏑ ⏑ ⏑ – – –]द[ने] (ऽ*)र्कः शशी च। (॥)[३८]*

२३. नगरमपि च भूयाद्वृद्धिमत्पौर-जुष्टं द्विज-बहु-शत-गीत-ब्रह्म-निर्नष्ट-पापं। शतमपि च समानामीति-दुर्भिक्ष[मुक्तं ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ – – – ⏑ – – ⏑ – –] [॥३९*] [इति सुद]र्शन-तटाक-संस्कार-ग्रन्थ-रचना [स]माप्ता॥

खण्ड २

२४. दृप्तारि-दर्प प्रणुदः पृथु-श्रियः स्व-वङ्श-केतोः सकलवनी-पतेः। राजाधिराज्याद्भुत-पुण्य[कर्मणः] [⏑ – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – ⏑] [॥४०*] [– – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – – – – ⏑ – –

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

⏑ ⏑ – ⏑ – –] [।] द्वीपस्य गोप्ता महतां च नेता दण्ड-
स्थि[ता]नां

२५. द्विषतां दमाय । (॥) [४१*] तस्यात्मजेनात्म-गुणान्वितेन गोविन्द
पादार्पित-जीवितेन । [– – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – – – – ⏑ –
– ⏑ ⏑ – ⏑ – –] [॥४२*] [– – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑
– ⏑ –]ग्धं विष्णोश्च पाद-कमले समवाप्य तत्र । अर्थ-व्ययेन

२६. महता महता च कालेनात्म-प्रभाव-नत-पौर-जनेन तेन । (॥)
[४३*] चक्रं बिभर्ति रिपु [– – ⏑ – ⏑ – – – – ⏑ – ⏑
⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ – –][।] [– – ⏑ – ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑
– ⏑ – –] तस्य स्व-तंत्र-विधि-कारण-मानुषस्य । (॥)[४४*]

२७. कारितमवक्र-मतिना **चक्रभृतः** चक्रपालितेन गृहं । वर्ष-शते
[ऽ*]ष्टात्रिंशे गुप्तानां काल-[क्रम-गणिते] [॥४५*] [– – ⏑ –
⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ – – – – ⏑ – ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ –
⏑ – –[।*] [सा]र्थमुत्थितमिवोर्जयतो [ऽ*]चलस्य

२८. कुर्वत्प्रभुत्वमिव भाति पुरस्य मूर्ध्नि ॥[४६*] अन्यच्च मूर्द्धनि
सु[– ⏑ ⏑ – ⏑ – – – – ⏑ – ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑
– – [।*] – – ⏑ – ⏑ ⏑ ⏑]

२९. रुद्ध-विहंग-मार्गं विभ्राजते ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ – –
[॥४७*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहौम स्तंभलेख (गु० स० १४१)

१. सिद्धम् [।।*] यस्योपस्थान-भूमिनृ॑पति-शत-शिरः-पात-वाता-वधूता

२. गुप्तानां वन्शजस्य प्रविसृत-यशसस्तस्य सर्व्वोत्तमर्द्धेः [।*]

३. राज्ये शक्रोपमस्य क्षितिप-शत-पतेः **स्कन्दगुतस्य** शान्ते

४. वर्षे त्रिन्शद्दशैकोत्तरक-शततमे ज्येष्ठ-मासि प्रपन्ने । (।।) [१*]

५. ख्याते [ऽ*]स्मिन्ग्राम-रत्ने कुकुभ इति जनैस्साधु-संसर्ग-पूते ।

६. पुत्त्रो यस्सोमिलस्य प्रचुर-गुण-निधेर्भट्टिसोमो महा[त्म]ा [।*]

७. तत्सूनू रुद्रसोम[:*] पृथुल-मति-यशा व्याघ्र इत्यन्य-संज्ञो ।

८. मद्रस्तस्यात्मजो [ऽ*]भूद्द्विज-गुरु-यतिषु प्रायशः प्रीतिमान्यः । (।।) [२*]

९. पुण्य-स्कन्धं स चक्क्रे जगदिदमखिलं संसरद्वीक्ष्य भीतो

१०. श्रेयोर्त्थं भूत-भूत्यै पथि वि (नि) यमवता**मर्हतामादिकतृन्** [।*]

११. पञ्चेन्द्रां (न्)]स्थापयित्वा धरणि-धरमयान्सन्निखातस्ततो[ऽ*]यम्

१२. शैल-स्तम्भः सुचारुर्गिरिवर-शिखराग्रोपमः कीर्त्ति-कर्त्ता[।।*][३*]

इंदोर ताम्रपत्रलेख (गु० स० १४६)

१. सिद्धम् [।।*] यं विप्रा विधिवत्प्रबुद्ध-मनसो ध्यानैक-ताना (न)-स्तुवः (स्तवाः) यस्यान्तं त्रिदशासुरा न विविदुर्न्नोर्ध्वं न तिर्य-

२. ग्गति[म्] [।*]यं लोको बहु-रोग-वेग-विवशः संश्रित्य चेतो-लभः पायाद्वः स जगत्पिधान-पुटभिद्रश्म्या-

३. करो भास्करः ।।[१।।*) परमभट्टारक-महाराजाधिराज-श्री-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्कन्धगुप्तस्याभिवर्द्धमान-विजय-राज्य-संव्वसर-शते षच्च (ट्च)-
त्वा-

४. [रि]ङ्शदुत्तरतमे फाल्गुन मासे तप्त [।*]द-परिगृहीतस्य विषय-
पति-शर्व्वनागस्यान्तर्व्वेद्यां भोगाभिवृद्धये वर्त्त-

५. माने [।*] चन्द्रापुरक-पद्मा-चातुर्व्विद्य-सामान्य-ब्राह्मण-देवविष्णु-
र्द्देवपुत्रो हरित्रात-पौत्रः डुडिक-प्रपौत्रः सतताग्नि-हो-

६. त्र-छ (च्च) न्दोगो राणायणी (नी)यो वर्षगण-सगोत्र इन्द्रापुरक-
वणिग्भ्यां क्षत्रियाचलवर्म-भृ(भ्रु)कुण्ठसिङ्हाभ्यामधिष्टा (ष्ठा)-

७. नस्य प्रच्यां दिशीन्द्रपुराधिष्ठान-माडास्यात-लग्नमेव प्रतिष्ठा-
पितक-भगवते सवित्रे दीपोपयोज्यमात्म-यशो-

८. (ऽ*)भिवृद्धये मूल्यं प्रयच्छतिः (ति) [।।*] इन्द्रपुर-निवासिन्य-
स्तैलिक-श्रेण्या जीवन्त-प्रवराया इतो (ऽ*)धिष्ठानादपवक्रम-

९. ण-संप्रवेश-यथास्थिरायाः आजस्त्रिकं ग्रहपतेर्द्विज-मूल्य-दत्तमनया
तु श्रेण्या यदभग्न-योग्यम्(गं)

१०. प्रत्थ(थ)मार्हव्यि[व*]च्छिन्न-संस्थं देयं तैलस्य तुल्येन **पल-द्वयं**
तु २ चन्द्रार्क्क-सम-कालीनं [।।*]

११. यो व्यक्क्रमेद्दायमिमं निबद्धम्(द्धं) गो-घ्नो गुरु-घ्नो द्विज-धातकः
सः [।*] तैः पातकै (*)

१२. पञ्चभिरन्वितो [ऽ*]धर्ग (धो ग)च्छेन्नरः सोपनिपातकैश्चेति ।।[२*]

भित्तरी स्तंभलेख

१. [सिद्धम्] [।।] सर्व्व]-राज[ोच्छे]त्तुः पृथिव्यामप्रतिरथस्य चतु-
रुदधि-सलिलास्वादित-यशसो धनद वरुणेन्द्र (ा]न्तक-स[मस्य]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२. कृतान्त-परशोः न्यायागत[ा]नेक-मो-हिरण्य-क[ो]टि-प्रदस्य चिरो[त्स]न्नाश्वमेधाहर्त्तुर्महाराज-श्री-गुप्त-प्रपौत्र[स्य]

३. महाराज - श्री - घटोत्कच-पौत्रस्य महाराजाधिराज-श्री-चन्द्रगुप्त-पुत्रस्य लिच्छवि-दौहित्रस्य महादेव्यां कुम[ा]र[दे]व्या-

४. मुत्पन्नस्य महाराजाधिराज - श्री - समुद्रगुप्तस्य पुत्रस्तत्परिगृहीतो महादेव्यान्दत्तदेव्यामुत्पन्नः स्वयं चाप्रतिरथः

५. परम-भागवतो महाराजाधिर[ा]ज-श्री-चन्द्रगुप्तस्तस्य पुत्रस्तत्पा-दानुद्ध्यातो महादेव्यां ध्रुवदेव्यामुत्पन्नः परम-

६. भागवतो महाराजाधिर[ा]ज-श्री - कुमारगुप्तस्तस्य—प्रथित-पृथु-मति-स्वभाव-शक्तेः पृथु-यशसः पृथिवी-पतेः पृथु-श्रीः [।]

७. पि[तृ]-प[रि]गत-पाद-पद्म-वर्त्ती प्रथित-यशाः पृथिवी-पतिः सुतो [ऽ*]यम् [॥१॥*] जगति भु[ज]-बलाड्यो[ढ्यो] गुप्त-वङ्शैक-वीरः प्रथित-विपुल-

८. धामा नामतः स्कन्दगुप्तः [ ] सुचरित-चरितानां येन वृत्तेन वृत्तं न विहतममलात्मा तान-धीदा (?)-विनीतः [॥२॥*] विनय-

९. बल-सुनीतैर्व्विक्क्रमेण क्रमेण प्रतिदिनमभियोगादीप्सितं येन ल[ब्ध्व]ा [।*]स्वभिमत-विजीगीषा-प्रोद्यतानां परेषां प्रणि-

१०. हित इव ले[भे सं] विधानोपदेशः [॥३॥*] विचलित-कुल-लक्ष्मी-स्तम्भनायोद्यतेन क्षिति-तल-शयनीये येन नीता त्रियामा [।*] समु-

११. दित-बल-कोषान्पुष्यमित्रांश्च [जि]त्वा क्षितिप-चरण-पीठे स्था-पितो वाम-पादः [॥४॥*] प्रसभमनुप [मै]र्व्विध्वस्त-शस्त्र-प्रतापै-र्विन[य-स]मु-

१२. [चितैश्च] क्षान्ति-शौ[र्य]न्निरूढम् [।*] चरितममल-कीर्त्तेर्गी-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यते यस्य शुभ्रं दिशि-दिशि परितुष्टैराकुमारं मनुष्यैः [॥५॥*] पितरि दिवमुपे[ते]

१३. विप्लुतां वङ्श-लक्ष्मीं भुज-बल-विजितारिर्य्यः प्रतिष्ठाप्य भूयः [।*] जितमिति परितोषान्मातरं सास्र-नेत्रां हत-रिपुरिव कृष्णो देव-कीमभ्युपे-

१४. [तः] [॥६॥*] [स्वै] र्द्द[ण्डैः ‿‿]र(?)त्यु[–]त्प्रचलितं वङ्शं प्रतिष्ठाप्य यो बाहुभ्यामवनिं विजित्य हि जितेष्वार्त्तेषु कृत्वा दयाम् [।*]नोसिक्तो [न] च विस्मितः प्रतिदिनं

१५. संवर्द्धमान-द्युतिः गीतैश्च स्तुतिभिश्च वन्दक-ज[नो ?] यं प्राप-यत्यार्य्यताम् [॥७॥*] **हूणैर्य्यस्य** समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कंपिता भीमावर्त्त-करस्य

१६. शत्रुषु शरा[– – ‿ – पातिताः ? ।*] – – –‿‿ –‿– विरचितं (?) प्रख्यापितो [दीप्ति-दा ?]न द्यो(?)ति[‿] नभी(?) षूलक्ष्यत इव श्रोत्रेषु गाङ्ग-ध्वनिः [॥८॥*]

१७. [स्व]-पितुः कीर्ति – * * * * * * ‿ – ‿ * [।*] * * * * ‿ – * * * * * ‿ – ‿ * [॥९॥*] [कर्त्तव्या] प्रतिमा काचित्प्रतिमां तस्य शार्ङ्गिणः [।*]

१८. [सु] प्रतीतश्चकारेमां [यावदाचन्द्र-तारकम् [॥१०॥*] इह चैनां प्रतिष्ठाप्य सुप्रतिष्ठित-शासनः [।*] ग्राममेनं स विदधे पितुः पु[ण्य]ाभिवृद्धये [॥११॥*]

१९. अतो भगवतो मूर्त्तिरियं यश्चात्र संस्थितः (?) (।*] उभयं निर्द्दिदेशासौ पितुः पुण्याय पुण्य-धीरिति (॥१२॥*)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बिहार स्तंभ लेख

खण्ड १

१. ⏑ – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –

⏑ – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –:[।*]

नृ-चन्द्र इन्द्रानुज-तुल्य-वीर्य्यो

गुणैरतुल्यः ⏑ ⏑ – ⏑ – –[।।*]

२. – – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –

– – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –[।*]

तस्यापि सूनुर्भुवि स्वामि-नेयः

ख्यातः स्व-कीर्त्या ⏑ ⏑ – ⏑ – –[।।*]

३. ⏑ – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –

⏑ – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –[।*]

[स्व]सैव यस्यातुल-विक्रमेण

कुमारगु[प्तेन] ⏑ – ⏑ – –[।।*]

४. – – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –

– – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – –[।*]

[पि]त्रिश्च देवांश्च हि हव्य-कव्यैः

सदा नृशंस्यादि ⏑ – ⏑ – –[।।*]

५. ⏑ – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – ⏑ – ⏑

⏑ – ⏑ – – ⏑ ⏑ – ⏑ – ⏑ –[।*]

[अ]चीकरद्देव-निकेत-मण्डलं

क्षितावनौपम्य ⏑ – ⏑ – ⏑ –[।।*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३. ....[स्कन्दगुप्त*][बटे ?] किल [।*]

स्तम्भ-वरोच्छ्रय-प्रभासे तु मण्ड.....[।।*]

७. .....भिर्वृक्षाणां [।*]

कुसुम-भरानताग्र-[शुंग?]-व्यालम्ब-स्तवक.....[।।*]

८. – – ◡ – – ◡ ◡ – ◡ – –

– – ◡ – – ◡ ◡ – ◡ – – [।*]

भद्रार्य्यया भाति गृहं नवाभ्र-

निर्म्मोक-निर्मुं[क्त] ◡ – ◡ – – [।।*]

९. – – ◡ – – ◡ ◡ – ◡ – –

– – ◡ – – ◡ ◡ – ◡ – – [।*]

स्कन्द-प्रधानैर्भुवि मातृभिश्च

लोकान्स सुष्य(?) ◡ ◡ – ◡ – – [।।*]

१०. – – ◡ – – ◡ ◡ – ◡ – –

– – ◡ – – ◡ ◡ – ◡ – –

– – ◡ – – ◡ ◡ – ◡ – –

– – ◡ यूपोच्छ्रयमेव चक्रे [।।*]

भद्रार्य्यादी.....

११. ..... [स्क*] न्दगुप्त-वटे अन्शानि ३० (+*) ५ ता(?)म्रकटा-

कु(?): कल.....

१२. .....पितुः स्वमातुर्य्यद्यस्ति हि दुष्कृतं भजतु तने.....

११. .....काग्रहारे अन्शानि ३ अनन्तसेनेनोप.....

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खण्ड २

१४. ·····[सर्व्व-राजोच्छे*]त्तुः प्रिथिव्यामप्रतिरथस्य

१५. [चतुरुदधि - सलिलास्वादित - यशसो धनद-वरुणे*]न्द्रान्तकसमस्य कृतान्त-

१६. [परशोः न्यायागतानेक-गो-हिरण्य-कोटि-प्रदस्य चिरो*]त्सन्नाश्व-मेधाहर्त्तुः

१७. [महाराज-श्री**गुप्त**-प्रपौत्रस्य महाराज-श्री**घटो***]**त्कच**-पौत्रस्य महाराजा-

१८. [धिराज श्री**चन्द्रगुप्त**-पुत्रस्य लिच्छवि-दौहित्रस्य म*]हादेव्यां कुमार-देव्यामुत्पन्नस्य

१९. [महाराजाधिराज-श्री-**समुद्रगुप्तस्य** पुत्र*]स्तत्परिगृहीतो महादेव्यां

२०. [दत्तदेव्यामुत्पन्नः स्वयं चाप्रतिरथः पर*]मभागवतो महाराजा-

२१. [धिराज श्री**चन्द्रगुप्त**स्तस्य पुत्रस्तत्पादानुद्ध्या*]तो महादेव्यां ध्रुवदेव्या-

२२. [मुत्पन्नः परम-भागवतो **महाराजाधिराज-श्रीकुमारगुप्तस्तस्य***] **पुत्रस्तत्पादानुद्ध्यातः**

२३. [**परम-भागवतो महाराजाधिराज-श्रीस्क***]**न्दगुप्तः** [॥*]

२४. ··· ··· ··· ··· परमभागवतो

२५. [महाराजाधिराज-श्री-**स्कन्दगुप्तः***] ··· ··· [वै*]षयि**काजपुरक-**सामै[ग्रा] [म*]-

२६. ··· ··· ··· ग्रा···क···[अ*]क्षय-नीवी ग्रामक्षेत्रं

२७. ··· ··· ··· कृ···उपरिक-कुमारामात्य-

२८. ··· ··· ··· ङ्गि कुलः(?) वणि(ज*)क-पादितारिक-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२९. ... ... [आ*]ग्रहारिक-शौल्किक-गौल्मिकासन्यां श्र(?)-

३०. ... ... वा[सि]कादीनस्मत्प्रसादोपजीविनः

३१. [समाज्ञापयामि*] ... ...वर्म्मणा विज्ञापितो(ऽ*)स्मि मम पितामहेन

३२. ... ... नमे भट्ट-गुहिलस्वामिना भद्रा[र्य्य]का

३३. ... ... [प्र]ति ...आग्रोकय...नाकय... ... ...

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय कुमारगुप्त का अभिलेख

सारनाथ बौद्ध प्रतिमा लेख (गु० सं० १५४)

१. **वर्षशते गुप्तानां सचतुःपञ्चाशदुत्तरे** [।*]
भूमिं रक्षति **कुमारगुप्ते** मासि ज्येष्ठे द्वितीयायाम् ॥

२. भक्त्यावर्ज्जित-मनसा यतिना पूजार्त्थमभयमित्रेण [।*]
प्रतिमा-प्रतिमस्य गुणै[र]प[रे]यं [का]रिता **शास्तुः** ॥

३. माता-पितृ-गुरु-पू[र्व्वैं]: पुण्येनानेन सत्व-कायो(ऽ*)यं [।*]
लभतामभिमतमुपशम-ि * * * * म् ॥

भितरी मुहर लेख

१. [सर्व्व]-राजोच्छेत्तु〈पृथिव्यामप्रतिरथस्य महाराज-श्री [**गुप्त**]-प्रपौ
[त्र]स्य महाराज-श्री**घटोत्कच**-पौत्रस्य म[हा]-

२. [राजा]धिर[ा]ज-श्री**चन्द्रगुप्त**-पुत्रस्य **लिच्छ**[**वि**-दौहित्रसच]
म[हादे]व्य[ां] [कुमा]रदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३. [श्री]समुद्रगुप्तस्य पुत्रस्तत्परि[गृही]तो म[हादेव्या] [न्दत्तदेव्या] मुत्पन्नस्स्वयं च[ा]प्रतिरथ≍परम्भाग-

४. [वतो] [महाराजा] धिराज-श्रीचन्द्रगुप्तस्तस्य [पुत्र]स्तत्पाद[ा]नु [द्ध्या] तो महादेव्य[ां] [ध्रु]वदेव्यामुत्न्नो म[हारा]-

५. [जाधि]राज-श्रीकुमार[गुप्त]स्तस्य पुत्रस्तत्पादानुद्ध्य[ातो] महादेव्या-मनन्त-देव्य[ा]मुत्पन्नो महा[रा]-

६. [जाधिरा]ज-श्री[पुरुगुप्त]स्तस्य पुत्रस्तत्पादानुद्ध्य[ातो] महादे[व्यां] श्रीचन्द्र-देव्यामुत्प[न्नो] म[हा]-

७. [राजाधिरा]ज-श्रीनरसिंहगुप्तस्तस्य [पु]त्रस्त[त्प]ादा[नुद्ध्यातो] मह[ादेव्यां] श्रीम[न्मित्र]-

८. [देव्या]मु[त्प][न्न≍परमभ[ा]गवतो मह[ाराजाधिरा]ज-श्रीकुम[ा]र[गुप्तः ॥]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुधगुप्त का लेख

सारनाथ बौद्ध प्रतिमा लेख (गं० सं० १५७)

१. **गुप्तानां** समतिक्रान्ते **सप्तपंचाशदुत्तरे** [।*)

शते समानां पृथिवीं **बुधगुप्ते** प्रशासति ।।

[वैशाख-मास-सप्तम्यां मूले श्याम-गते*]

२. मया [।*]

कारिताभयमित्रेण प्रतिमा शाक्य-भिक्षुणा ।।

इमामुद्दण्ड-सच्छत्र-पद्मास[न-विभूषितां ।*]

[देवपुत्रवतो दिव्यां*]

३. चित्रवि[द्या]-सचित्रितां ।।

यदत्र पुण्यं प्रतिमां कारयित्वा मया भृतम् [।*]

माता-[पित्रोर्गु][रूणां च लोकस्य च समाप्तये ।।*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनारस स्तंभ लेख (गु० सं० १५९)

स(म्व)१००(+)५०+९ मार्ग्गदि० २०+८ महाराजाधिराज बुधगुप्त राज्ये पार्वरिक वास्तव्य मार (विष १) दुहिता भाटि दुहि च दाम स्वामिन्या शिला स्तम्भ स्थापितः ।

दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १६३)

(पहली ओर)

१. [सं १००*) (+*) [६०] (+*) ३ आषाढ़-दि १० (+*) ३ परमदैवत-परम-भट्टा[र]क-महाराजाधिराज-श्रीबुधगुप्ते [पृथि]वी-पतौ तत्पाद-[परि]गृहीते पुण्ड्र[व]-

२. [र्द्धन]भुक्तावुपरिक-महाराज-द्रह्मदत्ते संव्यवहरति [।*] स्व[स्ति] [।*] पलाश-वृन्दाकत्सविश्वासं महत्तराद्यष्टकुलाधि[क]-

३. [र]ण-ग्रामिक-कुटुम्बिनश्च चण्डग्रामके ब्राह्मणाद्यान्नक्षुद्र-प्रकृति-कुटुम्बिनः कुशल-मुक्तानुदर्शयन्ति [यथैवं ?]

४. [वि]ज्ञापयती नो ग्रामिक-नाभको[ऽ*]हमिच्छे मातापित्रोस्स्व-पुण्याप्यायनाय कदिचिद्ब्राह्मणार्य्यान्प्रतिवासयितुं

५. [तद]र्हथ ग्रामानुक्रम-विक्रय-मर्य्यादया मत्तो हिरण्यमुपसंगृह्य समुदयवाह्याप्रद-[खिल-क्षेत्राणा] [ ]

६. [प्र]सादं कर्त्तुमति [।*] यतः पुस्तपाल-पत्रदासेनावधारितं युक्तमनेन विज्ञापित-मस्त्ययं विक्रय-

७. मर्य्यादा-प्रसङ्गस्तद्दीयतामस्य परमभट्टारक-महाराज-पा[दे]न पुण्यो-पचयायेति [।*] पुनरस्यैव

८. [पत्रदा] सस्यावधारणयावधृत्य नाभक-हस्ताद्दीनार-[द्वय]मुपसंगृह्य स्थायपाल-कपिल-श्रीभद्राभ्यायायक्र[त्य] च समदय-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(दूसरी ओर)

९. [बाह्याप्रद*]-[खि]ल-क्षेत्रस्य कुल्यवापमेकमस्य **वायिग्रामकोत्तर-**
पार्श्वस्यैव च सत्य-मर्य्यादाया दक्षिण-पश्चिम-पूर्व्वेण

१०. मह[त्त]राद्यधिकरण - कुटुम्बिभिः प्रत्यवेक्ष्याष्टक - नवक-नवक -

नलाभ्यामपविञ्छ्य चतुस्सीमोल्लिङ्ग्य च नागदेवस्य

११. [दत्तं] [।*] [तदु]त्तर-कालं संव्यवहारिभिर्द्धर्म्ममवेक्ष्य प्रतिपाल-
नीयमुक्तञ्च महर्षिभः [।*]
स्वदत्ताम्परतत्तां वा यो हरेत वसुन्धरा ।

१२. [स विष्ठ]यां कृमिर्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते [।।]
वहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभिस्सगरादिभिः [।*]
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य

१३. तदा फलं [।।*]
षष्टिं वर्ष-सहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः [।*]
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेदिति ।।

एरण स्तंभ लेख (गु० सं० १६५)

१. जयति विभुश्चतुर्भुजश्चतुरर्ण्णव-विपुल-सलिल-पर्य्यङ्कः [।]
जगतः स्थित्युत्पत्ति-न्य[यादि*]-

२. हेतुर्ग्गरुड-केतुः (।।*)
शते पञ्चषण्टयधिके वर्षाणां भूपतौ च **बुधगुप्ते ।**
आंषाढ-मास-[शुक्ल]-

३. [द्वा]दश्यां सुर**गुरोर्द्दिवसे** । [।*]
सं १००(+*) ६० (+*) ५ [।।*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालिन्दी-नर्म्मदयोर्म्मध्यं पालयति लोकपाल-गुणै-
र्ज्जगति महा[राज]-

४. श्रियमनुभवति **सुरश्मिचन्द्रे** च। [।*]-
अस्यां संवत्सर-मास-दिवस-पूर्व्वायां स्वकर्म्माभिरतस्य क्रतु-याजि[नः]

५. अधीत-स्वाध्यायस्य विप्रर्षेर्म्मैत्रायणीय-वृषभस्येन्द्रविष्णोः प्रपौत्रेण पितुर्गुणानुकारिणो वरुण[विष्णोः]

६. पौत्रेण पितरमनुजातस्य स्व वंश-वृद्धि-हेतोर्हरिविष्णोः पुत्रेणात्यन्त-भगवद्भक्तेन विधातुरिच्छया स्वयंवरयेव र[ा]ज-

७. लक्ष्म्याधिगतेन चतुःसमुद्र-पर्य्यन्त-प्रथित-यशसा अक्षीण-मानधने-नानेक-शत्रु-समर-जिष्णुना महाराज-**मातृविष्णुन**[ा]

८. तस्यैवानुजेन तदनुविधायिन[ा] तत्प्रसाद-परिगृ[ही]तेन **धन्यविष्णुना** च। मातृ-पित्रोः पुण्याप्यायनार्थमेष भगवतः।

९. पुण्यजनार्द्दनस्य **जनार्द्दनस्य** ध्वजस्तम्भो(ऽ*)भ्युच्छ्रितः [।।*] स्वत्यस्तु गो-ब्राह्मण-[पु]रोगाभ्यः सर्व्व-प्रजाभ्थ इति।[।*]

दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख

(पहली ओर)

१. ... ... फाल्गुन-दि १० (+*) [५] परमदैवत-परमभट्टारक-महाराजाधिराज-श्रीवुधगु[प्ते] [पृथिवी*]-

२. [पतौ*] [त*]त्पाद-परिगृहीतस्य **पुण्ड्रवर्द्धन**-भुक्तावुपरिक-महाराज-**जयदत्तस्य** भोगेनानु[वहमा]-

३. नके [**को**]टि[**वर्ष**]-विषये च तन्नियुक्तकेहायुक्तक-**शण्डके** अधिष्ठानाधि-करण[*] नगरश्रेष्टिरिभु-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४. पा[ल] -सार्त्थवाहवसुमित्र-प्रथमकुलिकवरदत्त-प्रथमकायस्थविप्रपाल-पुरोगे च स[म्व्य]-वहरति

५. अनेन श्रेष्ठि-रिभुपालेन विज्ञापितं **हिमवच्छिखरे कोकामुखस्वामिनः** चत्वारः कुल्यवापाः [**श्वे**]**तव-**

६. **राहस्वामिनो**[ऽ*]पि सप्त कुल्यवापाः अस्मत्फलाशन्सिनो पुन्याभिवृद्धये **डोङ्गाग्रा**पे पूर्व्वं मया

७. अप्रदा अतिसृष्टकास्तदहन्तत्क्षेत्त्र-समीप्य-भूमौ तयोराद्य-**कोकामुख-स्वामि-श्वेतवराह-**

८. **स्वामिनोर्ना**[**म**]**ल्लिङ्ग**मेकं देवकुल-द्वयमेतत्कोष्ठिका-द्वयञ्च कारयितु-मिच्छाम्यहंथ वास्तूना

९. सह [कुल्य]वापान्यथाक्रय-मर्य्यादया दातुमिति (।*) यतः पुस्तपाल-विष्णुदत्त-विजय-[नन्दि]-स्थानु-

१०. नन्दिनामवधारणयावधृतमस्त्यनेन **हिमवत्छिखरे** तयोः कोकामुख-स्वामि-श्वेतवरा[ह]-स्वामि[नोः]

११. अप्रदा-क्षेत्र-कुल्यवापा एकादश दत्तकास्तदर्थञ्चेह देवकुल-कोष्ठिका-करणे युक्त[मे]त-[द्विज्ञा]-

१२. [पितं] [क्र]मेण तत्क्षेत्र-सामीप्य-भूमौ वास्तु दातुमित्यनुवृत्त-त्रिदीनारि-क्यकु[ल्यवा]प-विक्रय[मर्य्या]द-

(दूसरी ओर)

१३. [या*]··· ··· ··· ··· ···

१४. ··· ··· ··· पु[ष्करि] णी पू [र्व्वेण] रिभु[पा]ल-पु ष्करिणी ? [दक्षिणेन]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१५. ... ... दत्ताः [।*] [त]दुत्तरकालं [सं]व्यवहारिभिर्द्देवभ
[क्त्या]नु-मन्तव्या [उक्तं] व्यासेन [।*]
स्व-दत्तां परदत्ता-

१६. (म्वा यो हरेत) वसुन्धराम् (।*)
स विष्टा[यां] क्रिमिर्भूत्वा पि[तृ] भिस्स[ह पच्यते] (।।*)
पूर्व्व-दत्तां द्विजातिभ्यो

१७. [यत्नाद्रक्ष यु]धिष्ठिर [।*]
महीं [महीमतां] श्रेष्ठ दा[नाच्छ्रेयो(ऽ*)नुपालनं] [।।*]
[बहु]भिर्व्वसु[धा द]त्ता

१८. [राजभिश्च] पुनः पुनः [।*]
[य]स्य [य]स्य यदा भूमि[स्तस्य तस्य] त[दा] फलम् ।। इति ।। [।।*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैन्यगुप्त का लेख

गुणैधर ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १८८)

पहली ओर

१. स्वस्ति [।।*] महानौ-हस्त्यश्व-जयस्कन्धावारात्क्रीपुराद्भगवन्महादेव-
पादानुद्ध्यातो महाराज-श्रीवैन्यगुप्तः

२. कुशली * * * * * * * स्वपादोपजीविनश्च कुशलमाशंस्य
समाज्ञापयति [।*] विदितं भवतामस्तु यथा

३. मया मातापित्रोरात्मनश्च पु[ण्या]भिवृ[द्ध]ये(ऽ*)स्मत्पाददास
महाराज रुद्रदत्त-विज्ञाप्यादनेनैव माहायानिक-शाक्यभिक्ष्वा-

४. चार्य्य-शान्तिदेवमुद्दिश्य गोप (?) ··· ··· ··· (दिग्भागे?) कार्य्यमाण-
काय्याव-लोकितेश्वराश्रम-विहारे अनेनै-

५. वाचार्य्येण प्रतिपादित[क?]-माहायानिक-वैवर्त्तिक-भिक्षुसंघनाम्परिग्रहे
भगवतो बुद्धस्य सततं त्रिष्कालं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

६. गन्ध-पुष्प-दीप-धूपादि-प्र[वर्त्तवाय*] [त*]स्य भिक्षुसंघस्य च चीवर-
पिण्डपात-शयनासन-ग्लानप्रत्ययभैषज्यादि-

७. परिभोगाय विहारे [च] खण्ड-फुट्ट-प्रतिसंस्कार-करणाय उत्तर-
माण्डलिक-कान्ते-उदकग्रामे सर्वतो भो-

८. गेनाग्रहारत्वेनैकादश-खिल-पाटकाः पञ्चभिः खण्डैस्ताम्र-पट्टे नातिसृष्टाः
[।*] अपि च खलु श्रुति-स्मृती-

९. [ति*] हा [स]-विहितां पुण्यभूमिदान-श्रुतिमैहिकामुष्मिक-फल-विशेषे
स्मृतो भावतः समुपगम्य स्वतस्तु पी-

१०. डामप्यूरीकृत्य पात्रेभ्यो भूमि * * * * * * * * * *
[।*] द्विष (?)द्भिरस्म-द्वचन-गौरवात्स्व-यशो-धर्म्मावाप्तये चैते

११. पाटका अस्मिन्वि(?)हारे शश्वत्कालमभ्य[नुपालयितव्याः ।।*]
अनुपालनम्प्रति च भगवता पराशरात्मजेन वेदव्या-

१२. सेन व्यासेन गीताः श्लोका भवन्ति [।*]
षष्टिं वर्ष-स[हस्रा]णि स्वर्गे मोदति भूमिदः [।*]
आक्षेप्ता चानुमन्ता च ता-

१३. न्येव न(र*)के वसेत् [।।*]
स्व-दत्तां पर-दत्ताम्वा यो हरेत [वसु]न्धरां [।*]
[स] विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते [।।*]

१४. पूर्व-दत्तां द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर [।*]
महीं महिमतां श्रेष्ठ दानात्श्रयो(ऽ*)नुपालनं [।।*]
वर्त्तमानाष्टाशीत्यु-

१५. त्तर-शत-संवत्सरे पौष-मासस्य चतुर्विंशतितम-दिवसे दूतकेन
महाप्रतीहार-महापीलुपति-पञ्चाधि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१६. करणोपरिक-पाट्यु परिक-[पुर?]पुरपालोपरिक-महाराज-श्रीमहासामन्त-**विजयसेने**-नैतदेकादश-पाटक-दा-

१७. नायाज्ञामनुभाविताः कुमारामात्य-रेवज्जस्वामी भामह-वत्स-भोगिकाः [।।*] लिखितं सन्धिविग्रहारिकरण-काय-

१८. स्थ-नरदत्तेन [।।* यत्रैक-क्षेत्रखण्डे नव-द्रोणवापाधिक-सप्त पाटक-परिमाणे सीमा-लिङ्गानि [।*] पूर्व्वेण **गुणेका-**

१९. **ग्रहार**ग्राम-सीमा विष्णुवर्धकि-क्षेत्रश्च [।*] दक्षिणेन मिदुविलाल(?)-क्षेत्रं राज-विहार-क्षेत्रञ्च [।*] पश्चिमेन सूरी-नाशी-रम्पूर्णेक-

२०. क्षेत्रं [।*] उत्तरेण दोषी-भोग-पुष्करिण[ी] ··· ··· ··· ··· ··· [ए*]वम्पियाकादित्य-वन्धु-क्षेत्राणाञ्च सीमा [।।*]

२१. द्वितीय-खण्डस्याष्टाविन्शति-द्रोणवाप-परिमाणस्य सीमा [।*] पूर्व्वेण **गुणिका-ग्रहार**ग्राम-सीमा [।*] दक्षिणेन पक्क-

२२. विलाल(?)-क्षेत्रं [।*]पश्चिमेन राजविहार-क्षेत्रं [।*] उत्तरेण वैद्य (?)-क्षेत्रं [।।*] तृतीय-खण्डस्य त्रयोविन्शति-द्रोणवाप-

२३. परिमाणस्य सीमा [*] पूर्व्वेण ··· ··· ··· ··· क्षेत्रं [।*] दक्षिणेन नखद्दा-च्चंरिक(?)-क्षेत्र-सीमा [।*] पश्चिमेन

दूसरी ओर

२४. ज(जो?)लारी-क्षेत्रं [।*] उत्तरेण नागी-जोडाक-क्षेत्रं [।।*] चतुर्थस्य त्रिंशद्द्रोणवाप-परिमाण-क्षेत्र-खण्डस्य सीमा [।*] पूर्व्वेण

२५. बुद्धाक-क्षेत्र-सीमा [।*] दक्षिणेन कालाक-क्षेत्रं [।*] पश्चिमेन [सू] र्य्य-क्षेत्र-सीमा [।*] उत्तरेण महीपाल-क्षेत्रं [।।*] [प]ञ्चमस्य

२६. पादोन-पाटक-द्वय-परिमाण-क्षेत्र-खण्डस्य सीमा [।*] पूर्व्वेण खण्ड-वि [डु]ग्गुरिक-क्षेत्रं [।*] दक्षिणेंन मणिभद्र-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२७. क्षेत्र [।*] पश्चिमे यज्ञरात-क्षेत्र-सीमा [।*] उत्तरेण **नादडदक**ग्राम-
सीमेति [।।*] विहार-तलभूमेरपि सीमा-लिङ्गानि [।*]

२८. पूर्व्वेण **चूडामणिनगरश्रीनौयोग**योर्म्मद्ध्ये जोला [।*] दक्षिणेन
गणेश्वर-विलाल-पुष्करिण्या नौ-खातः [।*]

२९. पश्चिमेन प्रद्यु म्नेश्वर देवकुल-क्षेत्र-प्रान्तः [।*] उत्तरेण **प्रडामार-**
नौयोग-खातः [।।*] एतद्विहारप्रावेश्य-शून्यप्रतिकर-

३०. हज्जिक-खिल-भूमेरपि सीमा लिङ्गानि [।*] पूर्व्वेण प्रद्यु म्नेश्वर-
देवकुल-क्षेत्र-सीमा [।*] दक्षिणेन शाक्यभिक्षवाचार्य्य-जित-

३१. सेन-वैहारिक-क्षेत्रावसा(?)नः [।*] पश्चिमेन ह(?)चात-गंग उत्तरेण
दण्ड-पुष्किणी चेति ।। **सं १०० (+*) ८० (+*) ८** पोष्ष-दि
२० (+*) ४ [।।*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भानुगुप्त का लेख

एरण स्तंभ लेख (गु० सं० १९१)

१. १ [।।*] **संवत्सर-शते एकनवत्युत्तरे** श्रावण-वहुलपंक्ष-स[प्त]
म्य[ां] [।*]

२. **संवत् १००** (+*) ९० (+*) १ श्रावण-ब-दि ७ ।।
* * क्ल-वङ्शादुत्पन्न * *-

३. **राजे**ति विश्रुतः [।*]
तस्य पुत्रो(ऽ*)तिविक्क्रान्तो नाम्ना राजाथ **माधवः** ।।
गोपराज[:]

४. सुतस्तस्य श्रीमान्विख्यात-पौरुषः [।*]
शरभराज-दौहित्रः स्ववंश-तिलको(ऽ*)धुना(?) [।।*]

५. श्री **भानुगुप्तो** जगति प्रवीरो
राजा महान्पार्थ-समो(ऽ*)ति-शूरः [।*]
तेनाथ सार्द्धन्त्विह **गोपर[ाजो]**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

६. मिश्रानु[गत्येन] किलानुयातः ॥
कृत्वा (च*) [यु]द्धं सुमहत्प्रक[ा]शं
स्वर्ग्गं गतो दिव्य-न[रे?][न्द्र-कल्पः*] [।*]

७. भक्तानुरक्ता च प्रिया च कान्ता
भ[ार्य्यावि]ल[ग्न]ानुगता[ग्नि]र[ा]शिम् ॥

दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख (गु० सं० २२४)

कोटिवर्ष्षाधिष्ठानाधि[करणस्य) ।

पहली ओर

१. स[म्व] २००(+*) २० (+*) ४ भाद्र-दि ५ परमदैवत-परम-भट्टारक-म[हा]-राजाधिराज-श्री···

२. **गुप्ते** पृथिवीपतौ तत्पाद-परिगृहीते **पुण्ड्रवर्द्धन**-भुक्तावुपरि[क-महाराज]स्य [महा*]-

३. राजपुत्र-**देवभट्टारकस्य** हस्त्यश्व-जन-भोगेनानुवहमा[न]के **को[टिव]र्ष्ष**-विष[ये] च त-

४. न्निगुक्तकेहविषयपति-**स्वयम्भुदेवे** अधिष्ठानाधिकरण(म्*) आर्य्य[न]गर-[श्रेष्ठिरिभु]पाल-

५. सार्त्थवाहस्थाणुदत्त-प्रथमकुलिकमतिदत्त-प्रथमकायस्थस्कन्दपाल-पुरोगे [स]व्य[वह]रति

६. **आयोध्यक**-कुलपुत्रक-अमृतदेवेन विज्ञापितमिह-विषये समुदयबाह्या-प्रहता-खिल-[क्षे]त्रा-

७. णां त्रिदीनारिक्यकुल्यवाप-विक्रयो(ऽ*)नुवृत्तः तदर्हथ मत्तो दीनारानु-पसंगृह्य मन्मातुः [पु]ण्या-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

८. भिवृद्धये अत्रारण्ये भगवतः **श्वेतवराहस्वामिनो देवकुले खण्ड-फुट्ट-प्रति-[सं]स्का[र]-[क]-**

९. **रणाय बलिचरुसत्रप्रवर्त्तन-गव्यधूपपुष्पप्रापण-मधुपर्क्क दीपाद्युप [यो]गा[य] च**

१०. अप्रदा-धर्म्मेण ताम्रपट्टीकृत्य क्षेत्र-स्तोकन्दातुमिति [।*] यतः प्रथम-पुस्तपाल-नर[न]न्दि-

११. गोपदत्त-भट(?)नन्दिनामवधारणाया युक्त[त]या ध[र्म्माधि]कार-[बु] द्धया विज्ञापित(*) ना[त्र*] [वि*]-

१२. षय-पतिना(*) कश्चिद्विरोधः केवलं श्री-परमभट्टारकपादेन धर्म्मप [र]-

१३. [तावाप्ति] [:*]

दूसरी ओर

१४. इत्यनेनावधारणाक्रमेण एतस्मादमृतदेवात्पञ्चदश-दीनारानुपसंगृह्य एतन्मातु[:*]

१५. अनुग्रहेण **स्वच्छन्दपाटके**(ऽ*) [र्द्ध] टी-प्रावेश्य-**लवङ्गसिकायाञ्च** वास्तुभिस्सह कुल्यवाप-द्वयं

१६. **साटुवनाश्रमके**(ऽ*)पि वास्तुना सह कुल्यवाप एकः **परस्पतिकायां** पञ्च-कुल्य-वापकस्योत्त[रे]ण

१७. **जम्बून[द्या]**: पूर्व्वेण कुल्यवाप एकः **पूरणवृन्दिकहरौ** पाटक-पूर्व्वेण कुल्यवाप एकः इत्येवं खिल-क्षेत्र-

१८. स्य वास्तुना सह पञ्च कुल्यवापाः अप्रदा-धर्म्मेण भग(व*)ते **श्वेतवराहस्वामिने** शश्वत्कालभोग्या दत्ताः [।*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१९. तदुत्तरकालं संव्यवहारिभिः देवभक्तचानुमन्तव्याः [।*] अपि च
भूमि[दा]न-सम्वद्धाः श्लोका भवन्ति [।*]

२०. स्व-दत्तां पर-दत्ताम्वा यो हरेत वसुन्धरां [।*]
स विष्ठायां क्रिमिभ्भुर्त्वा पितृभिस्सह पच्यते [।।*]
वहुभिर्व्वसुधा दत्ता

२१. राजभिस्सगरादिभिः [।*]
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं [।।*]
षष्टिं वर्ष्ष-सहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिद

२२. आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेदिति [।।*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर-गुप्त वंशी अभिलेख

आदित्य सेन का अफसद लेख

१. ॐ [॥ॐ] आसीद्दन्ति-सहस्र-गाढ-कटको विद्याधराध्यासितः सद्वंशः स्थिर उन्नतो गिरिरिव श्रीकृष्णगुप्तो नृपः। दृप्ताराति-मदान्ध-वारण-घटा-कुम्भ-स्थलीः क्षुन्दता यस्यासंख्य-रिपु-प्रताप-जयिना दोष्णा मृगेन्द्रायितं ॥[१*] सकलः कलङ्क-रहितः

२. क्षत-तिमिरस्तोयधेः शशाङ्क इव। तस्मादुदपादि सुतो देवः श्री-हर्षगुप्त इति ॥[२*] यो योग्याकाल-हेलावनत-दृढ-घनुर्भीम-वा-(बा)णौघ-पाती मूर्तै (र्त्तैः) स्व-स्वामि-लक्ष्मी-वसति-विमुखितै-रीक्षितः सास्रु (श्रु)-पातं। घोराणामा-

३. हवानां लिखितमिव जयं श्लाघ्यमाविर्द्दधानो वक्षस्पुद्दाम-शस्त्र-व्रण-कठिन-किण-ग्रन्थि-लेखाच्छलेन ॥[३*] श्री-जीवितगुप्तो [ऽ*]भूत्क्षितीश-चूडामणिः सुतस्तस्य। यो दृप्त-वैरि-नारी-मुख-नलिन-वनैक-शेसे (शिशि) रकरः ॥[४*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४. मुक्तामुक्त-पयः - प्रवाह - शिशिरासूत्तुङ्ग - ताली-वन-भ्राम्यद्दन्ति-करा-वलून-कदली-काण्डेषु वेलास्वापि । श्च्योतत्स्फार-तुषार-निर्झर-पयःशीते [ऽ*]पि शैले स्थितान्यस्योच्चैर्द्विषतो मुमोच

५. न महाघोरः प्रताप-ज्वरः ।।[५*] यस्यातिमानुषं कर्म्म दृश्यते वि-स्मयाज्जनौघेन । अद्यापि कोशवर्द्धनतटात्प्लुतं पवनजस्येव ।।[६*] प्रख्यात-शक्तिमाजिषु **पुरः-सरं श्री-कुमा-**

६. **रगुप्तमिति** । अजनयदेकं स नृपो हर इव शिखि-वाहनं तनयं ।।[७*] उत्सर्प्पद्वात - हेला - चलित - कदलिका-वीचि-माला-वितानः प्रोद्यद्धूली-जलौघ-भ्रमित-गुरु-महामत्त-

७. मातङ्ग-शैलः । भीमः **श्रीशानवर्म्म**-क्षितिपति-शशिनः सैन्य-दुग्धोद-सिन्धुर्लक्ष्मी-संप्राप्ति-हेतुः सपदि विमथितो मन्दरीभूय येन ।।[८*] शौर्य-सत्य-व्रत-धरो यः प्रयाग-गतो ध-

८. ने । अम्भसीव करीषाग्नौ मग्नः स पुष्प-पूजितः ।।[९*] श्री-दामोदरगुप्तो [ऽ*]भूत्तनयस्तस्य भूपतेः । येन दामोदरेणेव दैत्या इव हता द्विषः ।।[१०*] **यो मौखरेः समितिषद्ध-**

९. त-हूण-सैन्या वलगद्धटा-विघटयन्नुरु-वारणानां । संमूर्च्छितः सुर-वधु(धू)र्वरयं(यन्) ममेति तत्पाण(णि)-पङ्कज-सुख-स्पर्शाद्विबु-(बु) द्धः ।।[११*] गुणव[द्*]-द्विज-कन्याना (नां) नानालंकार-यौवन-

१०. वतीनां । परिणायितवान्स नृपः शतं नि (वि) सृष्टाग्रहाराणां ।।[१२*] [श्री]महासेनगुप्तो [ऽ*]भूत्तस्माद्वीराग्र-णी[ः*] सुतः । सर्व्व-वीर-समाजेषु लेभे यो धुरि वीरत[i] [।।१३*] [श्री]-मत्सुस्थितवर्म्म-युद्ध-विजय-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

११. श्लाघा-पदाङ्कं मुहुर्यस्याद्यापि विवु (बु) द्ध-कुन्द-कुमुद-क्षुण्णा(?)-च्छहार[ायि?]त (तं)। लौहित्यस्य त[टे]षु [शी]तल-त[ले]-षू [त्फु] ल (ल्ल)नाग-[द्रु] म-च्छाया-सुप्त-विवु (बु) द्ध-[सि]द्ध-[मि]थुनैः [स्फी]तं यशो गीयते ॥[१४*] वसुदेवा-

१२. दिव तस्माच्छी - [से]वन - [शो?भो]दित - चरण - युगः। श्री-माधवगुप्तो [ऽ*]भून्माधव इव विक्रमैक-रस[ः॥] [१५*] [– – – ⏑ ⏑]नुस्मृतो धुरि र[णे] श्लघवतामग्र[णी]ः सो(सौ)जन्य-स्यनिधानमर्थं-निध (च)-

१३. य-त्यागो[द्*]धुराणां ध(व)र[:]। ल[क्ष्मी]-स[त्य-स]रस्वती-कुल-गृ[हं] धर्मस्य सेतुर्दृढः पू(?)ज्यो(?)ना[स्ति] स [भू]-तले [⏑ ⏑ ⏑ – – – ⏑]ल[ः ?] सद्गु[णैः] ॥[१६*] च[क्र '] पाणि-तलेन सो [ऽ*]प्युदवहत्तस्यापि शा[ङ्गं] धनु-

१४. र्नाशायासुहृद[ां] सुखाय सुहृदां तस्याप्यसिर्नन्दकः। प्राप्ते विद्विष-तां वधे प्रतिह[तं ?] तेनाप [– – ⏑ – – – – ⏑ ⏑ – ⏑ –] ठ(?) रि (?) म(?) [– –]न्याः प्रणेमुर्ज्जनाः ॥[१७*] आजौ मया विनिहिता व(ब)-

१५. लिनो द्विष[न्तः] कृ[त्यं] न म(मे) [ऽ*]]त्यपरमित्यवधार्य वीरः [।] **श्री-हर्षदेव-निज**-[सं]गम-वाञ्छया च(?) [– – ⏑ – ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ – – ॥] [१८*] श्रीमन्व(न्ब)भूव दलितारि-करीन्द्र-कुम्भ-मुक्ता-रज -

१६. पटल-पांसुल-मण्डलाग्रः। **आदित्यसेन** इति तत्तनयः क्षितीश-चूडाम[णि]र्द्दृ[⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ – – ॥] [१९*] [– – – ⏑ ⏑ – ⏑] मागतमरिध्वंसोत्थमाप्तं यशः श्लाघ्यं

१७. सर्व्वं धनुष्मतां पुर इति श्लाघां परां बिभ्रति। आशीर्व्वाद-परं-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परा चि(?)र-सकृ(?)द् [– – ⏑ – – ⏑ – – – – – ⏑ ⏑ – ⏑ – ⏑ ⏑ ⏑ – – – ⏑] यामासम(?) ॥[२०*] आजौ स्वेद-च्छलेन ध्व-

१८. ज-पट-शिखया मार्ज्जतो दान-पङ्कं खड्गं क्षुण्णेन मुक्ता-शकल-सिकत[ली]कृ(?)त्य(?) [– – ⏑ – – – – – – ⏑ – – ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ ⏑] मत(त्त)-मा[तं]ग-घातं तद्गन्धाकृष्ट-सर्प्पद्व(द्ब)-

१९. हल-परिमल-भ्रात्त (न्त) -मत्तालि-जालं ॥[२१*] आव (ब) द्ध-भीम-विकट-भ्रुकुटी-कठोर-[सं]गा(ग्रा)म [– ⏑ ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ – – । – – ⏑ – ⏑ ⏑]व-वल्लभ - वर्ग्ग - भृत्य-गोष्ठीषु पेश-

२०. लतया परिहास-शीलः ॥[२२*] सत्य-भर्त्तृ-व्रता यस्य मुखोप-ध[ा]न-तापसी । प[रि]हास [– ⏑ – – – – – – – – ⏑ – ⏑ — ॥] [२३*] [– – – — ⏑ –]ज्ञः सकल-रिपु-व(ब)ल-ध्वंस-हेतुर्ग्गरी-

२१. यान्निस्त्रिंशोत्खात-धात-श्रम-जनित-जडो [ऽ*]प्यूर्ज्जित-स्व-प्रतापः । युद्धे मत्तेभ-कुम्भ-स्थ[ल ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ – – ⏑ – – ⏑ – – – –] [श्वे]तातपत्त्र-स्थगित-वसुमती-मण्डलो लो-

२२. क-पालः ॥[२४*] आजौ मत्त-गजेन्द्र-कुम्भ-दलन-स्फीत स्फुरद्दो-र्युगो ध्वस्ताने(?)क(?) रिपु-प्रभाव-[व ⏑ – – —] यशो-मण्डलः । न्यस्ताशेष-नरेन्द्र-मौलि-चरण-स्फार-प्रतापान-

२३. लो लक्ष्मीवान्समराभिमान-विमल-प्रख्यात-कीर्त्तिर्नृपः ॥[२५*] येनेयं शरदिन्दु - विम्व(बिम्ब)-धवला प्रख्यात - भूमण्डला लक्ष्मी-संगम-कांक्षया सुमहती कीर्त्तिश्चिरं कोपिता । याता सा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२४. गर-पारमद्भुततमा सापत्न्य-वैरादहो तेनेदं भवनोत्तमं क्षिति-
भुजा विष्णोः कृते कारितं ।।[२६*] तज्जनन्या महादेव्या श्रीमत्या
कारितो मठः । धार्मिकेभ्य[:] स्वयं दत्तः सुरलो-

२५. क-गृहोपमः ।।[२७*] शंखन्दु-स्फटिक-प्रभा-प्रतिसम-स्फार-स्फुर-
च्छीकरं नक्र-क्रान्ति-चलत्तरङ्ग-विलसत्पक्षि-प्रनृत्यत्तिमि । राज्ञा
खानितमद्भुतं सुतपसा पेपीयमानं

२६. जनैस्तस्यैव प्रिय-भार्यया नरपतेः **श्रीकोणदेव्या** सरः ।।[२८*] या-
वच्चन्द्र-कला हरस्य शिरसि श्रीः शार्ङ्गिणो वक्षसि व्र (ब्र) ह्मास्ये
च सरस्वती कृत-

२७. [⏑ – – – ⏑ – – ⏑ –] । [भोगे] भूर्भुजगाधिपस्य च तडि-
द्यावद्घनस्योदरे तावत्कीर्त्तिमिहातनोति धवलामा**दित्यसेनो नृपः**
।।[२९*] सूक्ष्मशिवेन गौडेन प्रशस्तिर्व्विकटाक्षरा ।।(।)

१८. [– – –]मा(?) मिता सम्यग्धार्म्मिकेन सुधीमता ।।[३०*]

मंदारगिरि (मंदार) शिला लेख

(एक अंश)

ओ० परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री **आदित्यसेनदेव** दयिता
परम भट्टारिका राज्ञी महादेवी श्री **कोणदेवी** पुष्करिणी कृतं
इयां कारित वति ।

(दूसरा अंश)

ओ० परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री आदित्यसेनदेव दयिता
परमभट्टारिका राज्ञी महादेवी कोणदेवी पुष्करिणी कृतं इयं
कारितवति ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शाहपुर अभिलेख

चंद्रक्षितिकालं यावत्प्रतिपादितं ओ० सम्वत् ६०६ मार्ग सुदि ७ अस्यां दिवस मास संवत्सर अनुपूर्व्यां श्री **आदित्यसेन** देव राज्ये नालंदा महाग्रहारे साधुना वलाधिकृत शालपत्तेण देय धम्मो यं प्रतिष्ठितं

माता पित्रो आत्मनश्च पुण्या—भिवृद्धये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णुगुप्त का अभिलेख

मंगरांव लेख

ओं महाराजाधिराज परमेश्वर श्री विष्णुगुप्त देव प्रवर्द्धमान विजय राज्य सम्वत्सरे सप्तदेश सम्व (त) १ (या १००), १०, ७ श्रावण शुदि चुन्दस्कीला तपोवन प्रतिष्ठित श्री मित्र केशवदेव प्रतिवद्ध पुष्पपट्टे स्वसिद्धान्त भिरत अनेक शिव सिद्धायतन तीर्थावगाहन पवित्रीकृत तनुः कुट्टुकदेशीय अविमुक्तज्जः अंगार ग्राम के सकल कुटुम्बिनां सकासादा चन्द्रार्क क्षिति समकालीन तैलस्य पलमेकमुपक्रीय भगवतः श्री सुभद्रेश्वर देवस्य प्रदीपार्थं प्रतिपादितवान्। एवं योन्यथा करोति यदत्रापायं स्तनदवा नोतीति। लिखिता देवदत्तेन संक्षिप्ता क्रय चीरिका। उत्कीर्णा सूत्र धारेण कुलादित्येन धीमता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय जीवितगुप्त का अभिलेख

देव वरनार्क लेख

१. स्वस्ति। शक्ति त्रयोपात्त जयशब्दान् महान्नौह हस्त्यअश्वपति संभार दुर्निवाराज्य स्कन्धावारात् गोमतिकोट्टक समीप वास

२. श्री माधवगुप्तस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः परमभट्टारिकायां राज्ञां महादेब्यां श्री श्रीमत्यां उत्पन्नः परमभागवतः श्री **आदित्य**

३. **सेन** देवस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः परमभट्टारिकायां राज्ञां महादेव्यां श्री कोणदेव्यामुत्पन्नः परममाहेश्वर परमभट्टारक महाराजा

४. धिराज परमेश्वर श्री देवगुप्तदेवस्तस्य पुत्र तत्पादानुध्यातः परम-भट्टारिकायां राज्ञां महादेव्यां श्री कमलदेव्यांमुत्पन्नः परम

५. माहेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज परममाहेश्वर श्री विष्णुगुप्त-देवस्तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातः परमभट्टारिकायां राज्यां महादेव्यां श्री इज्जादेव्यां

६. उत्पन्नः परम ··· परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री जिवित गुप्तदेवा कुशली नगर भुक्तौ वालवि वैशयिक श्री वावो ··· ··· ··· ···

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७. ... ... पद्रलिक क्षान्तशपाति वारुणिका ग्राम गोष्ठनकुल तलावाटक दूत सिमकर्मंकर मद्य ... ...

८. ... ... राजपुत्र राजामात्र महाक्ष(पट लिक महादण्ड नायमक महाप्रतिहार महासां(धि) ... ...

९. ... ... कुमारामात्य राजस्थानीय उपरिक ... ... चौरोद्धरणिक दण्डिक, दण्डपाशिक ... ...

१०. ... ... बलत्यावत किशोर वाटक ग्रामः ... ... यनिक ... ...

११. ... ... अस्मतपाद प्रसादो पजिविनः च प्रतिवासिन च ब्राह्मणोत्तरान् महत्तर ककुक्षिपुर

१२. ... ... विज्ञापित श्री **वरुणवासी** भट्टारक प्रतिवद्ध भोजक सूर्यमित्रेण उपरिलिखित

१३. ... ... ग्रामादि संयुक्तं परमेश्वर श्री **वलादित्यवेन** स्वशासनेन भगव श्री वरुणवासी भट्टारक

१४. ... ... परिवाहक भोजक हंसमित्रस्य समापत्या यथाकालाध्यासिभिश्च इवं परमेश्वर

१५. **श्री सर्व्ववर्म्मा** ... ... भोजक ऋषिमित्र यतकां एवं परमेश्वर श्रीमद् अवन्तिवर्म्म पूर्वदत्तकं

१६. ... ... एवं महाराजाधिराज परमेश्वर ... ... शासनदानेन भोजक दुर्घमित्रस्य अनुमो (दित)

१७. ... ... तेन भुज्यते तदहं किमपि एवं मतिमान अनुमोदितं इति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामंतों के अभिलेख

वैग्राम ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १२९)

पहली ओर

१. स्वस्ति[।।*] **पञ्चनगर्य्या** भट्टारक-पादानुध्यातः कुमारामात्य-
कुलवृद्धिरेत-द्विषयाधिकरणञ्च

२. **वायि**ग्रामिक-**त्रिवृत**(।*)-**श्रीगोहाल्योः** ब्राह्मणोत्तरान्सम्व्यवहारि-
प्रमुखान्ग्राम-कुटुम्बिनः कुशलमनु-

३. वर्ण्य बोधयन्ति [।*] विज्ञापयतोरत्रैव वास्तव्य-कुटुम्बि-भोयिल-
भास्करावावयोः पित्रा शिवनन्दि-

४. ना कारि[त]क(' *) भगवतो **गोविन्दस्वामिनः** देवकुलस्तदसावल्प-
वृत्तिकः [।*] इह-विषये समुदय-

५. बाह्याद्यस्तम्ब-खिल-क्षेत्राणामकिञ्चित्प्रतिकराणां शश्वदाचन्द्रार्क्कतारक-
भोज्याना-मक्षय-नीव्या

६. **द्विदीनारिक्क्यकुल्यवाप**-विक्क्रयो(ऽ*)नुवृत्तस्तदर्हथावयोस्सकाशात्षड्दी-
नारानष्ट च रूप-कानायी-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७. [कृ]त्य भगवतो **गोविन्दस्वामिनो देवकुले [ख]ण्ड-फुट्ट-प्रतिसंस्क(।*)र करणाय गन्ध-धूप-दीप-**

८. **सुमनसा(ं*) प्रवर्त्तनाय च त्रिवृतायां भोगिलस्य** खिलक्षेत्र-कुल्यवाप-त्रयं **श्रीगोहाल्या**श्चापि

९. तल-वाटकार्थं(ं*) स्थल-वास्तुनो द्रोणवापमेकं भास्करस्यापि स्थलवास्तुनो द्रोण-वापञ्च दातु-

१०. मि[ति] [।*] यतो युष्मान्बोधयाम(:*) पुस्तपाल-दुर्ग्गदत्तार्क्कदास-योरवधारणया अवधृत-

११. मस्तीह-विषये समुदय-ब्याह्याद्यस्तम्ब-खिल-क्षेत्राणा(ं*) शश्वदा-चन्द्रार्क्क-तारक-भोज्यानां द्विदी-

१२. नारिक्यकुल्यवाप-विक्रयो(ऽ*)नुवृत्तः [।*] एवंविधाप्रतिकर-खिलक्षेत्र-विक्क्रये च न कश्चिद्राजार्त्थ-

१३. विरोध उपचय एव भट्टारक-पादानां धर्म्मफल-षड्भागावाप्तिश्च तद्दीयतामिति [।*] एतयोः

१४. भोयिल-भास्करयोस्सका(शा*)त्षड्दीनारानष्ट च रूपकानायीकृत्य भगवतो **गोविन्द-स्वामिनो**

१५. देवकुलस्यार्त्थे भोयिलस्य **त्रिवृतायां** खिलक्षेत्र-कुल्यवाप-त्रयं तलवाट-काद्यर्त्थम्

दूसरी ओर

१६. **श्रीगोहाल्या**(ं*) स्थल-वास्तुनो द्रोणवापं भास्करास्याप्यत्रैव स्थले-वस्तुनो द्रोणवाप-

१७. मेव(ं*) कुल्यवाप-त्रयं स्थल-द्रोणवाप-द्वयञ्च अक्षयनीव्यास्ताम्र-पट्टेन दत्तम् [।*] निन्न-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१८. कु ३ स्थल-द्रो २ [।*] ते यूयं स्वकर्षणाविरोधि-स्थाने दर्व्वी-कर्म्म-
हस्तेनाष्टक-नवक-नलाभ्या-

१९. मपविञ्च्छ्य चिरकाल-स्थ(।*)यि-तुषाङ्गारादिना चिह्नैश्चातुर्द्दिशो
नियम्य दास्यथाक्षय-

२०. नीवी-धर्म्मेन च शश्वत्कालमनुपालयिष्यथ [।*] वर्त्तमान-भविष्यैश्च
संव्यवहार्य्यादि-भिरेत-

२१. द्धर्म्मापेक्षयानुपालयितव्यमिति [।।*] **उक्तञ्च भगव(ता*) वेदव्यास-
महात्मना** [।*] स्व-दत्तां पर-दत्तां

२२. व्वा यो हरेत वसुन्धरां ।
स विष्ठायां क्रिमिर्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते [।।*]
षष्टि वर्ष-सह-

२३. स्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः [।*]
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत्- [।।*]
पूर्व्व-

२४. दत्तां द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युद्धिष्ठिर [।*]
मही(*) महिमतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयो(ऽ*)नुपाल-

२५. नमिति [।।*]
सं १००(+*)२०(+*)८ माघ-दि १०(+*)९ [।।*]

पहाड़पुर ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १५९)

पहली ओर

१. स्वस्ति [।।*] **पुण्ड्र[वर्द्ध]नानायुक्तका** आर्य्यनगरश्रेष्ठि-पुरोगञ्चाधिष्ठा-
नाधिकरणम् **दशिणांशक**वीथेय-**नागरिट्ट-**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२. माण्डलिक-**पलाशाट्ट**पार्श्विक-**वटगोहाली**-जम्बुदेवप्रावेश्य**पृष्ठिमपोत्तक-गोषाट-पुञ्जक**-मूलनागिरट्टप्रावेश्य-

३. **वित्वगोहालीषु** ब्राह्मणोत्तरान्महत्तरादि-कुटुम्बिनः कुशलमनुवर्ण्यानु-बोधयन्ति [।*] विज्ञापयत्यस्मान्ब्राह्मण-नाथ-

४. शर्म्मा एतद्भार्य्या रामी च [।*] युष्माकमिहाधिष्ठानाधिकरणे द्वि-दीनारिक्क्य-कुल्यवापेन शश्वत्कालोपभोग्याक्षयनीवी-समुदय-वाह्या-

५. प्रतिकर-खिलक्षेत्रवास्तु-विक्क्रयो(ऽ*)नुवृत्तस्तदर्हथानेनैव क्रमेणावयो-स्सकाशाद्दीनार-त्रयमुपसङ्गृह्यावयो(: *) स्व-पुण्याप्या-

६. यनाय **वटगोहाल्या**मवास्याङ्काशिक-पञ्चस्तूपनिकायिक-निग्रन्थश्रमणा-चार्य्य-गुह-नन्दि-शिष्यप्रशिष्या**धिष्ठित-विहारे**

७. **भगवतामर्हतां गन्ध-धूप-सुमनो-दीपाद्यर्थन्तलवाटक-निमित्तञ्च** अ(तः*) एव **वट-गोहली**तो वास्तु-द्रोणवापमध्यर्द्धञ्च-

८. म्बुदेवप्रावेश्य-**पृष्ठिमपोत्तके** त्क्षेत्रं द्रोणवाप-चतुष्टयं **गोषाटपुञ्जा**-द्द्रोणवाप-चतुष्टयम् मूलनागिरट्ट-

९. प्रावेश्य-**नित्वगोहालीतः** अर्द्धत्रिक-द्रोणवापानित्येवमध्यर्द्धं क्षेत्र-कुल्यवापमक्षय-नीव्या दातुमि[ति] [। *] यतः प्रथम-

१०. पुस्तपालदिवाकरनन्दि-पुस्तपालधृतिविष्णु-विरोचन-रामदास-हरिदास-शशिनन्दि-[सु]प्रभ-मनुद[त्ताना]मवधारण-

११. यावधृतम् अस्त्यस्मदधिष्ठानाधिकरणे द्वि-दीनारिक्क्य-कुल्यवापेन शश्वत्कालोपभोग्या-क्षयनीवी-समु[दय]वाह्याप्रतिकर-

१२. [खिल*]क्षेत्रवास्तु-विक्क्रयो(ऽ *)नुवृत्तस्तद्यद्यु ष्माम्ब्राह्मण-नाथशर्म्मा एतद्भार्य्या रामी च **पलाशाट्ट**पार्श्विक-**वटगोहाली**-स्थ[ायि]-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरी ओर

१३. [**काशि***]क-पञ्चस्तूपकुलनिकायिक-आचार्य्य-निग्रन्थ-गुहनन्दि-शिष्य-
प्रशिष्याधिष्ठित-सद्विहारे अरहतां गन्ध-[धूप]ाद्युपयोगाय

१४. [तल-वा*]टक-निमित्तञ्च तत्रैव **वटगोहाल्यां** वास्तु-द्रोणवापमध्यर्द्धं
क्षेत्रञ्चम्बुदेव-प्रावेश्य-**पृष्ठिमपोत्तके** द्रोणवाप-चतुष्टयं

१५. **गोषाटपुञ्जा**द्द्रोणवाप-चतुष्टयं मूलनागिरट्ट-प्रावेश्य-**नित्वगोहाली**तो
द्रोणवाप-द्वय-माढवा[प-द्व]याधिकमित्येवम-

१६. ध्यर्द्धं क्षेत्र-कुल्यवापम्प्रार्थयते(ऽ*)त्र न कश्चिद्विरोधः गुणस्तु
यत्परमभट्टारक-पादानामर्त्थोपचयो **धर्म्म-षड्भागाप्याय-**

१७. नञ्च भवति [।*] तदेवङ्क्रियतामित्यनेनावधारणा-क्रमेणा-
स्माद्ब्राह्मणनाथशर्म्मत एतद्भार्य्यारामियाश्च दीनार-त्र-

१८. यमायीकृत्यैताभ्यां विज्ञापितक - क्रमोपयोगायोपरि - निर्द्दिष्ट - ग्राम-
गोहालिकेषु तल-वाटक-वास्तुना सह क्षेत्रं

१९. कुल्यवाप(:*) अध्यर्द्धो(ऽ*)क्षय-नीवी-धर्म्मेण दत्तः [।*] कु १ द्रो ४
[।*] तद्युष्माभिः स्व-कर्षणाविरोधि-स्थाने षट्क-नडैरप-

२०. विञ्च्छ्य दातव्यो(ऽ*)क्षय-नीवी-धर्म्मेण च शश्वदाचन्द्रार्क्क-तारक-
कालमनुपाल-यितव्य इति [।।*] **सम् १००(+*)५०(+*)९**

२१. माघ-दि ७ [।*] उक्तञ्च भगवता व्यासेन [।*]
स्व-दत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् [।*]

२२. स विष्ठायां क्रिमिर्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते [।।*]
षष्टि-वर्षसहस्राणि स्वर्गे वसति भूमिदः [।*]

२३. आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् [।।*]
राजभिर्व्वहुभिर्द्दत्ता दीयते च पुनः पुनः [।*]
यस्य यस्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२४. यदा भूमि तस्य तस्य तदा फलम् [॥*]
पूर्व्व-दत्तां द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर [।*]
महीम्महीमतां श्रेष्ठ

२५. दानाच्छ्रेयो(ऽ*)नुपालनं [॥*]
विन्ध्याटवीष्वनम्भस्सु शुष्क-कोटर-वासिन(:*) [।*]
कृष्णाहिनो हि जायन्ते देव-दायं हरन्ति ये [॥*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिव्राजक महाराजा हस्तिन का अभिलेख

खोह ताम्रपत्र लेख

पहली ओर

१. नमो महादेवाय——स्वस्ति त्रि-षष्टयुत्तरे [ऽ*]ब्द-शते **गुप्त-नृप-राज्य-भुक्तौ**

२. महाश्वयुज-संवत्य (त्स)रे चैत्र-मास-शुक्ल-पक्ष-द्वितीय[ा *]या-मस्य[ा*]न्दिवस-

३. पूर्व्व[ा*]या(यां) नृपति-परिव्राजक-कुलोत्पन्नेन महाराज-देवाढ्य-प्रनप्त(प्त्र)ा

४. महाराज-श्री-प्रभञ्जन-नप्त्रा महाराज-दामोदर-सुतेन गो-सहस्र-

५. हस्त्यश्व-हिरण्यानेक-भूमि-प्रदेन गुरु-पितृ-मातृ-पूज[ा*]-तनत्प-(तत्प)रेणा-

६. त्यन्त-देव-ब्राह्मण-भक्तेन नैक-समर-शत-विजयिना स्व-वन्शा-मोद-क-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७. रेण-महाराज-श्री-**हस्तिना** स्व-पुण्याप्यायनार्थमग्निस्व[ा*]मि-पुत्र-भरद्वाज-

८. सगोत्रस्वाजि(ज)सनेय-सब्रह्मचारि (रि)णे देवस्वामिने शर्व्वस्वामिने च

९. गोरि(गौरी)स्वामिने वाजि(ज)सनेय - सब्रह्मचारिणे कौत्स-सगोत्राय दि-

१०. वाकर-स्वामिने च स्व[ा*]तिस्वामिने वाजसनेय-सब्रा (ब्र)ह्मचारिणे भार्ग्ग-

११. व-सगोत्राय वरुणशर्म्मणः(णे) बप्पस्वामिने वासुल-सगोत्र[ा*]य

१२. कठ-सब्रह्मचारिणे कुमारदेवरेव(देवाय) वाजि(ज) सनेय-सब्रह्म-च[ा*]रि-

१३. न (णे) मात(तृ) शर्म्मः (र्म्म)-रुखरदेवः (व) -कौद्रवदेवः (व)-विष्ण(ष्णु)देवः (व)-

दूसरी ओर

१४. देवनाग-कुमारसेन-रुद्रशर्म्म- । देवदाङ्ग(ङ्गि)र[ो*]-लम्वो(म्बो) ष्ठदेदमित (देवमित्र)-

१५. महादेव-गुण्ठक-इत्येवमादिभ्यो ब्रह्मणेभ्यो (भ्य) [उ*]त्तरे पट्टे कोर्प्परि-

१६. काग्रहारः **सोद्रङ्गः सोपरिकरः अ-चाट-भट-प्रावेश्यो** [ऽ*]तिसृष्टः

१७. स्त(त)स्याघाटाः पूर्व्वेण कोर्प्पर-गर्त्ता । उत्तरेणानिमुक्तक-कोणकः

१८. वङ्गर-ग्रामकस्य दक्षिण-प[ा*]श्वे वलक-मद्धचेम(द्धचमे) वृकः अम्त्र(भ्र)ातसंता (भा ?) र-

१९. कः [।*] पश्चिमेन नागसरी । दक्षिणेन बलवर्म्म-परिच्छेदः [।।*] तदस्म-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२०. कु (त्कु)लोत्थैर्म्मत्पादमि(पि)ण्डोपजीविभिर्व्वा कालान्तरेष्वपि न व्याघातः कार्य्यं[:*] [।*]

२१. एवमाज्ञाप्त(ज्ञप्ते) यो [ऽ*]न्यथा कुर्य्यान्ति(त्त) महं देहान्तर-गतो [ऽ*] पि महतावध्याने-

२२. न निर्दहे[यम् ।*] दु(उ) क्तञ्च भगवता परमर्षिणा वेद-व्यासेन [।*] पूर्व्व-दत्ता (त्तां)

२३. द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष्य (क्ष) युधिष्ठिरः (र) [।*] मही (हीं) मह-(हि)मतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रे-

२४. यो [ऽ*]नुपालनं ।[।१*] बहुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरा-दिभिः [।*] स(य)स्य य

२५. यस्य यदा भूमिस्तस्य [तस्य*] तदा फलन्(म्) [।।२*] स्व-दत्ता-(त्तां) पर-दत्तां वा यो हरे-

२६. त वसुन्धराः(राम्) [। *] स विष्ठया(विष्ठायां) कृमिर्भूत्वा पित्रभि(पितृभिः) सह पच्यते [।।३*]

तीसरी ओर

२७. षष्टः(ष्टिं) व्व (व) [र्ष*]-सहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भु (भू) मिदः [।*] आच्छेता (त्ता)

२८. चानुमन्ता[*] म(च) त[ा*]न्येव नरके वसे[त्*] [।।४*] लिखि-तञ्च वक्क्राम[ा*]त्य-प्रन-

२९. प्त्रनत्रा(प्त्रा) भोगिक-नरदत्त-नप्ता(प्त्रा) भोगिक-रविदत्त-पुत्रेन(ण) महा-

३०. सान्धिविग्रहिक-सूर्यदतेनः(दत्तेन) [।*] भग्रहो दूतक[:।।*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उच्छकल्प महाराजा जयनाथ का अभिलेख

कारितलाई ताम्रपत्र लेख (तिथि १७४)

१. ओं स्वस्ति । उच्चकल्पान् महाराजा ओझदेवस् तस्य पुत्रस्तत्पा-
दानुध्यातो

२. महादेव्यां कुमार देव्यामुत्पन्नो महाराज कुमार देवस्तस्य पुत्रस्तत्पा-
दानुध्यातो

३. महादेव्यां जयस्वामिन्यामुत्पन्नो महाराज जयस्वामि तस्य
पुत्रस्तत्पादानुध्यातो

४. महादेव्यां रामदेव्यामुत्पन्नो महाराज व्याघ्रस्तस्य पुत्रस्तत्पादानु-
ध्यातो महा-

५. देव्यां अज्झितदेव्यामुत्पन्नो महाराज जयनाथः कुशली । नागदीय
सेतक

६. छँदापालिकायां ब्राह्मणादीन् कुटुम्बिना कारुकांश्च समाज्ञापयति ।
वदतं (विदितं)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७. स्तुयथैस ग्रामो मया स्वपुण्याभिवृद्धये काण्व सगोत्र वाजसनेय माध्यन्दिन

८. ब्राह्मण मित्रस्वामिन । सोद्रंग सोपरिकर अचाट भट प्रवेश्यः

९. चोर वर्ज्जितोतिसृष्ठ युयं अस्य समुचित भागभोग कर प्रत्यायोपनयं

१०. ककरिस्थथ आज्ञा श्रवण विधेयश्च भविष्यत चास्मद् वंशोत्पद्य मानक

११. राजानस्तैरियं दत्तिर्न्न विलोप्यानुमोदनिया । समुचित राजा । यश्च

१२. भाव्य कर प्रत्याया न ग्राह्याः
इमां दत्तं लोपयेत स पंचभिः

१३. महापातकैः उपपातकैश्च संयुक्तः स्याद् उक्तं च महाभारते भगवता व्यासेन ।

१४. स्वदत्ता परदत्तां वा यत्नाद रक्ष युधिष्ठिर महिं महिमतां श्रेष्ठ

१५. दानो च छ्रेयोनुपालनां । बहुभि बसुधा भुक्ता राजाभिः सागरादिभिः

१६. यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम्
प्रायेण हि नरेन्द्राणां विद्यते ना

१७. शुभा गतिः, पूयान्ते तेस्तु सततं प्रायच्छन्तो बसुन्धराम् ॥

१८. षष्टि वर्ष सहस्राणि स्वर्गमोदतिभूमिदः आच्छता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत्

१९. आस्फोट लयन्ति पितरः प्रवल्गंति पितामहाः भूमि दोस्म कुले जातः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२०. नो त्राता भविष्यन्ति। सर्व्व सस्य समृद्धान्तु यो हरेत वसुन्धराम्
स्व विष्ठायां कृमिर्भूत्वा
२१. पितृभिः सह मज्जति संवत्सर गते चतुः सप्तते आषाढ़-
मास-
२२. स्य चतुर्दशमे दिवसे अस्यां दिवस पूर्व्वायां लिखितं मया
भोगिक राज्ञी
२३. आमात्य नप्तृ भोगिक ध्रुवदत्त पुत्र भोगिक गुञ्जकीर्तिना
दूतक उपरिक
२४. दीक्षित गृहपति स्थपति सम्राट् सर्व्वदत्त इति। संवत् १०० ७० ४
आषाढ़ दिवस १०

खोह ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १७७)

प्रथम भाग

१. स्वस्त्य। उच्छकल्पान् महाराज औघदेवस तस्य पुत्रस्तत्पादानु-
ध्यातो महा-
२. देव्यां कुमारदेव्यां उत्पन्नो महाराज कुमार देवस तस्य पुत्रस्तत्पादानु-
ध्यातो
३. महादेव्यां जयस्वामिन्यां उत्पन्नो महाराज जयस्वामि तस्य
पुत्रस्तत्पादानुध्यातो
४. महादेव्यां रामदेव्यां उत्पन्नो महाराज व्याघ्रस तस्य पुत्रस्तत्पादानु-
ध्यातो महा-
५. देव्यां अम्झित देव्यां उत्पन्नो महाराज जयनाथः कुशली
घवशंडिकायां
६. ब्राह्मणादीन कुटुम्बिनां कारुकांश्च समाज्ञापयति। विदितं वोस्तु
यथा एश ग्रामो मया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७. चंद्रार्क समकालीनः शाशातनेय सर्व्ववाढ़ दिविर तत्पुत्र भागवत गंग पुत्र

८. रंकवोट अजगर दासानां स्वपुण्याबभिवृद्धये भगवत पादेभ्यः देवग्राहारो त्रिषिष्ठः

९. एभिः च आत्र प्रतिष्ठापितक भगवत पादानां पुत्र प्रपौत्र तत्पुत्रादि क्रमेण खंड

१०. फुट प्रतिसंस्कारेण वलि चारु सत्र प्रवर्तनाद्यनुष्ठानेन च स्वपुण्यामिवृद्धः

११. कर्त्तव्या । ते यूयं एषां समुचित शुल्क भाग भोग कर हिरण्यादि प्रत्यायोपनयं

१२. करिष्यत आज्ञा श्रवण विधेयाश्च भविष्यत । ये चास्मद वंशोत्पद्य मानक राज्ञानस्तैर्यं

१३. दत्तिन्न विलोप्या अनुमोदनिया समुचित राजाभाव्य कर प्रत्याया न ग्राह्याः ।

द्वितीय भाग

१४. चोर दंड वर्ज्यं । कालानुकालां च प्रतिपालनिय । यश्च इमां दत्तं लोपयेत्स पंचभिः

१५. महापातकैः उपपातकैश्च संयुक्तः स्यात् । उक्तं च महाभारते भगवता वेदव्यासेन

१६. व्यासेन । स्वदत्तां परदत्तां वा यत्नात्रक्ष युधिष्ठिर ।
महीं महीमतां श्रेष्ठ दाना च श्रेयोनुपालनं

१७. प्रायेणहि नरेन्द्रानां विद्यते ना शुभा गतिः
पूयत्ते तेतु सततं प्रयच्छन्तो बसुन्धराम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१८. स षष्टि वर्ष सहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः ।
आच्छेत्ता चानुमंता च तान्येव नरके वसेत् ।।

१९. वहुभिर्व्वसुधा भक्ता राजभिः सगरादिभिः ।
यस्य यस्य यदा भूमिः तस्य तस्य तदा फलम् ।।

२०. सर्व्वं सस्य समृद्धान् यो हरेत बसुन्धराम् ।
स विष्ठायां कृमि भूत्वा पितृभिः सह मज्जते ।।

२१. संवत्सर शते सप्त सप्तत्युत्तरे चैत्रमास दिवसे द्वाविंशतिमे लिखितं भोगिक फाल्गुदत्त आमात्य

२२. आमात्य नपत्रा भोगिक वराहदिन पुत्र सांधिविग्रहिक गल्लुना । दूतको परिक दीक्षित गृह

२३. पति स्थपति सम्राट् छर्वदत्तः ।।
यात्राधाटः धान्यवाहिक प्रत्युद्देशे गर्त्ता पाली च ।

२४. दुर्ग्गमंडल प्रदेशे पाली ।
सुवर्णकक्षक प्रदेशे गोपथ सरः अर्द्धेन च पाली ।

२५. आमुक प्रदेशे गर्त्ता दारमंडल प्रदेशे पाली । वक्रवन प्रावेश्य मंडल प्रदेशे पाली ।

२६. ग्रामे यावत्कूपं प्रविष्ठः इति ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उच्छकल्प महाराज सर्वनाथ का अभिलेख

खोह ताम्रपत्र लेख (तिथि १९३)

प्रथम भाग

१. ओं स्वस्त्य। उच्छकल्पान महाराज औघदेवः तस्य पुत्रः
तत्पादानुध्यातो महादेव्यां
२. कुमारदेव्यामुत्पन्नो महाराज कुमारदेवस्तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो
३. महादेव्यां जयस्वामिन्यामुत्पन्नो महाराज जयस्वामि
४. तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महादेव्यां रामदेव्यां उत्पन्नो महाराज
व्याघ्रस तस्य
५. पुत्रो तत्पादानुध्यातो महादेव्यां अझितदेव्यां उत्पन्नो महाराज जय-
६. नाथस तस्य पुत्रस् तत्पादानुध्यातो महादेव्यां मुरुण्डादेव्यां उत्पनो
महाराज
७. **सर्वनाथः** कुशली। तमसा नद्या उत्तरपारे आश्रमके ब्राह्मणादिन
८. कुटुम्बिन सर्व्वं कारुणश्च समाज्ञापयति। विदितं वास्तु यथा ऐश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

९. ग्रामो मया चंद्रार्क समकालीनः सोद्रंगः सोपरिकरः अचाट

१०. भट प्रावेश्यस्चोर दंड वर्जितः चातुर्भि अंशैः प्रतिपादितः

११. अथोंश द्वयं विष्णु नंदिनः अपरोप्यंशः स्वामिनाग पुत्र वणिज

१२. शक्तिनागस्य अपरोप्यंशः कुमारनाग स्कंद नागयोः एतत्

१३. पुत्र प्रपौत्र तत्पुत्रादि अनुक्रमेण ताम्रशासनेन आतिश्रिष्ठः एभिः अपि मया

१४. नुमोदितकं यथोपरिलिखितक क्रमेणैव स्वपुण्याभिवृद्धये स्वप्रति-

१५. ष्ठापितक भगवत पदानां आदित्य भट्टारक पादानांञ्च खंड फुट प्रतिसं-

१६. स्कार करणाय **वलिचारुसत्र** गंधधूप माल्यादिप प्रवर्तनाय चातिश्रेष्ठः

द्वितीय भाप

१७. तै यूयं एषां समुचित भाग भोगकर हिरण्यादि प्रत्यायोपनयं

१८. करिष्यतैज्ञा श्रवण विधेयाश्च भविष्यत येचास्मद वंशोत्पद्य

१९. मानक राजानः तै इयं दत्तैः न विलोप्यानुमोदनिया यथा कालञ्च

२०. प्रतिपालनीया समुचित राजा भाव्य कर प्रत्यायाश्च न ग्राह्यः यः

२१. इमान् दत्तिन् लोपयेत् सः पंचभिर्महापातकैः उपपातकैश्च संयुक्तः

२२. स्माद् उक्तं च महाभारते भगवता वेदव्यासेन व्यासेन स्वदत्तं पर दत्तां

२३. वा यत्नारक्ष युधिष्ठिर। महीम् महीमतां श्रेष्ठः दाना च श्रेयोनुपालम्।

२४. प्रायेण हि नरेन्द्रां विद्यते ना शुभा गतिः पूयन्ते तु सततं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२५. प्रयच्छन्तो बसुन्धरां ।। वहुभिः बसुधा भूक्ता राजाभिः सगरादिभिः, यस्य

२६. यस्य यदा भूमिः तस्य तस्य तदा फलम् ।। षष्टि वर्ष सहस्राणि स्वर्गे मोदति

२७. भूमिदः, आच्छेत्ता चानुमंता च तान्येव नरके वसेत् । सर्व्व सस्य समृद्धौ

२८. यो हरेत बसुन्धरां, स्व विष्ठायां कृमिः भूत्वा पितृभिः सह मज्जते ।।

२९. लिखितं संवत्सरे शते त्रिनवत्युत्तरे चैत्रमास दिवसे दशमे

३०. भोगिक फाल्गुदत्तामात्य नपत्रा भोगिक वराहदिन्न पुत्रेण महा

३१. सांधिबिग्रहिक मनोरथेन दूतक महादेव बलाधिकृत क्षत्रिय

३२. शिवगुप्तः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाराजा सर्वनाथ

खोह ताम्रपत्र लेख (गु० सं० १९७)

(प्रथम भाग अप्राप्य)

द्वितीय भाग

१. यथा कालां च प्रतिपालनीया। समुचित राजाभाव्य कर प्रत्यायाः

२. ग्राह्याः। य इमान् दत्ति लोपयेत सः पंचभिर्महापातकैः उपपातकैः

३. च संयुक्तस्याद् उक्तं च महाभारते भगवता वेद व्यासेन व्यासेन

४. स्वदत्तां परदत्तं वा यत्नात् रक्ष युधिष्ठिर महीं महीमतां श्रेष्ठः दाना

५. च श्रेयोनुपालनं। प्रायेणहि नरेन्द्रानां विद्यते न शुभा गतिः

६. पुयन्ते तेतु शततं प्रायच्छन्तो बसुन्धरां। बहुभिः वसुधा भुक्ता राजाभिः सगरादि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७. भिः यस्य यस्य यदा भूमिः
तस्य तस्य तदा फलम् ।
षष्टि वर्ष सहस्राणि

८. स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः आच्छेत्ता चानुमत्ता च तान्येव नरके वसेत

९. सर्व्वं सस्य समृद्धान्तु यो हरेत वसुन्धरां स्व विष्ठायां कृमिभूत्वा

१०. पितृभिः सह मज्जते । लिखितं संवत्सर शते सप्त नवत्युत्तरे
अश्व

११. युज मास दिवसे विंशतिमे भोगिक फाल्गुदत्त आमात्य नयत्रा

१२. भोगिक वराह दिन पुत्रेण महासांधिविग्ग्रहिक **मनोरथेन** ।

१३. दूतकः महावलाधिकृत शिवगुप्तः । हलिराकर खंभ दंड

१४. प्रतिमो मोचनातिलेखिने पि दूतकः उपरिक मातृशिवः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाराजा संक्षोभ का अभिलेख

खोह ताम्रपत्र लेख (गु० सं० २०९)

पहली ओर

१. ओम् नमो भगवते वासुदेवाय ।। स्वस्ति नवोत्तरेव्द(ब्द)-शत-
द्वये गुप्त-नृप-र[।*]ज्य-भुक्तौ

२. श्रीमति प्रवर्द्धमान-विजय-राज्ये महाश्वयुज-स (सं) वत्सरे चैत्र-
मास-शुक्ल-

३. पक्ष-त्त्रयोदश्य[।*]मस्यां संब(व)त्सर-मास-दिवस-पूर्व्वाया(यां)
[तिथौ ।*] चतुर्दश-विद्या-स्थान-विदि-

४. त-परमार्थस्य-कपिलस्य(स्यै)व महर्षेः सर्व-तत्व(त्त्व)ज्ञस्य भर-
द्वाज-सगोत्रस्य नृप-

५. पि(ति)-परिव्राजक-सुशर्म्मणः कुलोत्पन्नेन महाराज-श्री-देवाढ्य-
पुत्र-प्रनप्त्रा महारा-

६. ज-श्री-प्रभञ्जन-प्रनप्त्रा महाराज-श्री-दामोदर-नप्त्रा गो-सहस्र-
हस्त्यश्व-हिरण्यानेक-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७. भूमि-प्रदस्य गुरु-पितृ-मातृ-पूजा-तत्परस्यात्यन्त-देव-व्रा(ब्रा)ह्मण-भक्तस्यानेक-समर-

८. शत-विजयिनः साष्टादशाटवीराज्याभ्यन्तरं **डभा(? हा)ला-** राज्यमन्वयागतं समदि(? सम्यक्, सम्पदि और सपदि ?)

९. पालयिष्णो(ष्णो)रनेक-गुण-विख्यात-यशसो महाराज-ग्री(श्री)-**हस्तिनः** सुतेन

१०. वर्णाश्रम-धर्म्म-स्थापना-निरतेन परम-भागवतेनात्यन्त-पितृ-भक्तेन स्व-वं-

११. शामोद-करेण महाराज-श्री-**संक्षोभेन**(ण) मातापित्रोरात्मनश्च-पुण्याभि-

१२. व्रिर्द्ध(वृद्ध)ये छोड्डगोमि-विंज्ञा (ज्ञ)प्त्या तमेव च स्वग्ग(र्ग्ग)-सो-पान-पंक्तिमारोपय-

दूसरी ओर

१३. ता भगवत्याः पिष्टपुर्याः कारितक-देवकुले व(ब)लि-चरु-सत्रो-(त्त्रो)पयो-

१४. गार्थः(र्थं) खण्ड-स्फुटित-संस्कारार्थञ्च मणिनाग-पेठे ओपाणि-ग्राम-

१५. स्यार्द्धं चोर-द्रोहक-वर्ज्जः(वर्ज्जं) ताम्रशासनेनातिसृष्टं(टम्) [।*] तदस्मत्कुलोत्थौः(त्थैः) म-

१६. त्पाद-पिण्डोपजीविभिर्व्वा कालान्तरेष्वपि न व्याघातः कार्य्यः[।*] एवमाज्ञा (ज्ञ)-

१७. प्त(प्ते) यो [ऽ*]न्यथा कुर्यात्तमहं देहान्तर-गतो [ऽ*]पि महता [ऽ*]वध्यानेन निर्द्दहेयं(यम्) [।।*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१८. उक्तं च भगवता परमर्षिणा वेदव्यासेन व्यासेनः(न) [।*] पूर्व्व-
दत्तां द्विजातिभ्यो

१९. यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिरः(र) [।*] महीम्महिमता(तां)श्रेष्ठ दानाच्छ्रे-
यो [ऽ*]नुपालनः (नम्) [।।१*] व(ब)हुभिः

२०. वसुधा भुक्ता राजभिस्सगरादिभिः [।*] यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य
तस्य तदा

२१. फलं(लम्) [।।२*] षष्ठि वर्ष-सहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिद.
[।*] आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्ये-

२२. व नरके वसेत् [।।३*] भूमि-प्रदानान्ना(न्न) परं प्रदानं दानाद्वि-
शिष्टं परिपालनञ्छ(च्च) [।*]

२३. सर्व्वे [ऽ*]तिसृष्टा(ष्टां) परिपाल्य भूमि(मिं) नृपा नृगाद्यास्त्रिदिवं
प्रपन्नाः ।। लिखितं च (च)

२४. जीवित-नप्त्रा भुजंगदास-पुत्रेश्वरीदासेनेति [।*] स्व-मुखाज्ञा [।*]
चैत्र-दि २० ८ [।।*]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाराज सर्वनाथ अभिलेख

खोह ताम्रपत्र लेख तिथि (गु० स० २१४)

(प्रथम भाग)

१. ओं स्वस्त्य। उच्छकल्पान् महाराजा औद्यदेवस तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महादेव्यां

२. कुमारदेव्यां उत्पन्नो महाराज कुमारदेवस तस्य पुत्रः तत्पादानु-ध्यातो

३. महादेव्यां जयस्वामिन्यां उत्पनो महाराज जयस्वामि तस्य पुत्रः तत्पादा

४. नुध्यातो महादेव्यां रामदेव्यां उत्पन्नो महाराज व्याघ्रस तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो

५. महादेव्यां अम्झितदेव्यां उत्पन्नो महाराज जयनाथस तस्य पुत्रः तत्पादानु

६. ध्यातो महादेव्यां मुरुण्डस्वामिन्यां उत्पन्नो महाराज सर्व्वनाथः कुशली मनि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७. नागापट्टे व्याघ्रपालिक काचरपाल्लिक ग्रामयोः ब्राह्मणादि प्रतिवासिनः

८. समाज्ञापयति। विदितं वो स्तु यथैशग्रामो मया सोद्रंगौ सोपरिकरौ

९. अचाट भट प्रावेश्यो राजाभाव्य सर्व्वकर प्रत्यायोत्पन्न कोटपद्ममानक समेतौ

१०. आचंद्रार्क समकालीकौ चोरदंड वर्ज्जितौ पुलिंद भटस्य प्रसादीकृतौ

११. तेनापि कानपुरे कारितक देवकुले भगवत्याः पुष्ठपुरिका देव्याः पूजा

१२. निमित्तेन खंड स्फुट प्रति संस्कारणाय च कुमारस्वामिने पुत्र पौत्रान्वयोप

१३. भोज्यो प्रतिपादितौ। मयापि भूमिच्छिद्र न्यायेन ताम्रशासने अनुमोदितौ।

१४. ते यूमं एवं उपलभ्याज्ञा श्रवण विधेया भूत्वा समुचित भागभोग कर हिरण्या

१५. वातायादि प्रत्यायन् उपनेश्यक।

(द्वितीय भाग)

१६. ये चास्मद् वंशोत्पद्य मानक राजा न स्तैरियं दत्तिर्न विलोप्या यथा कालं संवर्द्धनिया

१७. अनुमोदनिया परियालनिया च राजाभाव्य कर प्रत्यायाः सर्व्वै न ग्राह्या।

१८. यश्चैतां दत्ति लोपयेत सः पंचभिः महापातकैः उपपातकैश्च

१९. संयुक्तो भूयात्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२०. उक्तं च महाभारते शतसाहस्रां संहितायां परमर्शिना पराशर सुतेन

२१. वेद व्यासेन व्यासेन। पूर्व्वदत्तं द्विजातिभ्यो यत्नात्रक्ष युधिष्ठिर महीं मही-

२२. वता श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयोनुपालनम् ॥ प्रायेण हि नरेन्द्रानां विद्यते नाशुभा

२३. गतिः पूयत्तेन ते तौ सततं प्रयच्छन्तो वसुन्धराम् ॥ बहुभिर्व्वसुधा भुक्ता **राजभिः** सगरादिभिः

२४. यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥ षष्ठि वर्ष सहस्रांणि

२५. स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः आक्षेप्ता चानुमंता च तान्येव नरके वसेत्।

२६. स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धरां, स्वविष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह

२७. मज्जति। अपानयेश्वरण्येशु शुष्क कोटर वासिनः, कृष्णाहयो हि जायन्ते

२८. पूर्व्वं दायं हरन्तिये। लिखितं संवत्सरे शत द्वये चतुर्द्दशोत्तरे

२९. पौष मास दिवसे षष्ठे फलगुदत्तामात्य प्रनप्ता वराह दिन **नप्रा**

३०. मनोरथ सुत्तेन सांधिविग्रहिक नाथेन दूत्तको धृतिस्वामिकः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७. नागापट्टे व्याघ्रपालिक काचरपाल्लिक ग्रामयोः ब्राह्मणादि प्रतिवासिनः

८. समाज्ञापयति। विदितं वो स्तु यथैशग्रामो मया सोद्रंगौ सोपरिकरौ

९. अचाट भट प्रावेश्यो राजाभाव्य सर्व्वकर प्रत्यायोत्पन्न कोटपद्ममानक समेतौ

१०. आचंद्रार्क समकालीकौ चोरदंड वर्ज्जितौ पुलिंद भटस्य प्रसादीकृतौ

११. तेनापि कानपुरे कारितक देवकुले भगवत्याः पुष्ठपुरिका देव्याः पूजा

१२. निमित्तेन खंड स्फुट प्रति संस्कारणाय च कुमारस्वामिने पुत्र पौत्रान्वयोप

१३. भोज्यो प्रतिपादितौ। मयापि भूमिच्छिद्र न्यायेन ताम्रशासने अनुमोदितौ।

१४. ते यूमं एवं उपलभ्याज्ञा श्रवण विधेया भूत्वा समुचित भागभोग कर हिरण्या

१५. वातायादि प्रत्यायन् उपनेश्यक।

(द्वितीय भाग)

१६. ये चास्मद् वंशोत्पद्य मानक राजा न स्तैरियं दत्तिर्न्न विलोप्या यथा कालं संवर्द्धनिया

१७. अनुमोदनिया परियालनिया च राजाभाव्य कर प्रत्यायाः सर्व्वै न ग्राह्या।

१८. यश्चैतां दत्ति लोपयेत सः पंचभिः महापातकैः उपपातकैश्च

१९. संयुक्तो भूयात्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२०. उक्तं च महाभारते शतसाहस्रां संहितायां परमर्शिना पराशर सुतेन

२१. वेद व्यासेन व्यासेन। पूर्व्वदत्तं द्विजातिभ्यो यत्नात्रक्ष युधिष्ठिर महीं मही-

२२. वता श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयोनुपालनम् ॥ प्रायेण हि नरेन्द्रानां विद्यते नाशुभा

२३. गतिः पूयत्तेन ते तौ सततं प्रयच्छन्तो वसुन्धराम् ॥ बहुभिर्व्वसुधा भुक्ता **राजभिः** सगरादिभिः

२४. यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥ षष्ठि वर्षं सहस्रांणि

२५. स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः आचेप्ता चानुमंता च तान्येव नरके वसेत्।

२६. स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धरां, स्वविष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह

२७. मज्जति। अपानयेश्वरण्येशु शुष्क कोटर वासिनः, कृष्णाहयो हि जायन्ते

२८. पूर्व्वं दायं हरन्तिये। लिखितं संवत्सरे शत द्वये चतुर्द्दशोत्तरे

२९. पौष मास दिवसे षष्ठे फलगुदत्तामात्य प्रनप्ता वराह दिन **नप्रा**

३०. मनोरथ सुत्तेन सांधिविग्रहिक नाथेन दूत्तको धृतिस्वामिकः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमरा शिलास्तंभ अभिलेख

महाराज हस्तिन एवं महाराज सर्वनाथ

१. स्वस्ति महादेव पादानुध्यातो

२. महाराज हस्तिन

३. राज्ये आम्लोदे महाराज

४. सर्वनाथ भागे इदन

५. न पूत्रा वासुग्रामिक पुत्र

६. शिवदासेन वल

७. यष्टि उच्छ्रितः । महा माघे

८. संतत्सरे कार्तिक मास

९. दिवस १० ९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समसामयिक नरेशों के अभिलेख

यशोधर्मन का मंदसोर लेख (मा० स० ५८९)

१. स जयति जयतां पतिः **पिनाकी**
स्मित-रव-गीतिषु यस्य दन्त-कान्तिः ।
द्युतिरिव तडितां निशि स्फुरन्ती
तिरयति च स्फुटयत्यदश्च विश्वम् ॥१
स्वयम्भू भूतानां स्थिति लय सभु
२. त्पत्ति-विधिषु
प्रयुक्तो येनाज्ञां वहति भुवनानां विधृतये ।
पितृत्वं चानीतो जगति गरिमाणं गमयता
स **शम्भूर्भूयान्सि** प्रतिदशतु भद्राणि भव[ताम्*] ॥२
फण-मणि-गुरुभार[ाक्रा]-
३. न्ति-दूरावनम्रं
स्थगयति रुचमिन्दोर्म्मण्डलं यस्य मूर्ध्नाम् [।*]
स शिरसि विनिबध्नन्नध्रनीमस्थिमालां

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सृजतु भव-सृजो वः क्लेश-भङ्गं भुजङ्गः ॥३
पष्ट्या सहस्रैः सगरात्मजानां
खात[:*]

४. ख-तुल्यां रुचमादधानः ।
अस्योदपानाधिपतेश्चिराय
यशान्सि पायात्पयसां विधाता ॥४
अथ जयति जनेन्द्रः श्री-**यशोधर्म्म**-नामा ।
प्रमद-वनमिवान्तः शत्रु-सैन्यं विगाह्य [।*]
व्रण-

५. किसलय-भङ्गैर्य्यो[ऽ*] ङ्ग भूषां विधत्ते
तरुण-तरु-लटावद्वीर-कीर्त्तीर्व्विनाम्य ॥५
आजो जिती विजयते जगतीम्पुनश्च
श्री**विष्णुवर्द्धन**-नराधिपतिः स एव ।
प्रख्यात औलिकर-लाञ्छन आत्म-

६. वङ्शो
येनोदितोदित-पदं गमितो गरीयः ॥६
प्राचो नृपान्सुबृहतश्च बहूनु**दीचः**
साम्रा युधा च वशगान्प्रविधाय येन [।*]
नामापरं जगति कान्तमदो दुरापं
राजाधिराज-परमे-

७. **श्वर** इत्युदूढम् ॥७
स्निग्ध-श्यामाम्बुदाभैः स्थगित-दिनकृतो यज्वनामाज्य-धूम्रै-
रम्भोमेघ्यं मघोनावधिषु विदधता गाढ-सम्पन्न-सस्याः ।
संहर्षाद्वाणिनीनां कर-रभस-हृतो-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

८. द्यानचूताङ्कुराग्रा
राजन्वन्तो रमन्ते भुज-विजित-भुवा भूरयो येन- देशाः ॥८
यस्योत्केतुभिरुन्मद-द्विप-कर-व्याविद्ध-लोध्र-द्रुमै-
रुद्धूतेन वनाध्वनि ध्वनि-नदद्विन्ध्याद्रि-रन्ध्रैर्बलैः [।*]
बाले

९. य-च्छवि-धूमरेण रजसा मन्दाङ्शु संलक्ष्यते
पर्यावृत्त-शिखण्डि-चन्द्रक इव ध्यामं रवेर्मण्डलम् ॥९
तस्य प्रभोर्व्वङ्शकृतां नृपाणां
पादाश्रयाद्विश्रुत-पुण्य-कीर्त्तिः ।
भृत्यः ख-नैभृत्य-जिता-

१०. रि-षट्क
आसीद्वसीयान्किल षष्ठिदत्तः ॥१०
हिमवत इव गाङ्गस्तुङ्ग-नम्रः प्रवाहः
शशभृत इव रेवा-वारि-राशिः प्रथीयान् [।*]
परमभिगमनीयः शुद्धिमानन्ववायो
यत उदित-गरि-

११. म्णस्तायते नैगमानाम् ॥११
तस्यानुकूलः कुलजात्कलत्रा-
त्सुतः प्रसूतो यशसां प्रसूतिः ।
हरेरिवाङ्शं वशिनं वराहं
वराहदासं यमुदाहरन्ति ॥१२
सुकृति-विषयि-तुङ्गं रुढमूलं

१२. धरायां
स्थितिमपगतभङ्गां स्थेयसीमादधानम् [।*]
गुरु-शिखरमिवाद्रेस्तत्कुलं स्वात्म-भूत्या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रविरिव रविकीर्त्तिःसुप्रकाशं व्यधत्त ।।१३
बिभ्रता शुभ्रमभ्रङि्श स्मार्त्तं वर्त्मोचितं सताम् [।*]
न विसंब्बा-

१३. दिता येन कलावपि कुलीनता ।।१४
धुत-धीदीधिति-ध्वान्तान्हविर्भुज इवाध्वरान् [।*]
भानुगुप्ता ततः साध्वी तनयांस्त्रीनजीजनत् ।।१५
भगवद्दोष इत्यासीत्प्रथमः कार्य्यवर्त्मसु ।
आल-

१४. म्बनं बान्धवानामन्धकानामिवोद्धवः ।।१६
बहु-नय-विधि-वेधा गह्वरे(ऽ*)प्यर्थ-मार्ग्गे
विदुर इव विदूरं प्रेक्षमाणाः ।
वचन-रचन-बन्धे संस्कृत-प्राकृते यः
कविभिरुदि-

१५. त-रागं गीयते गीरभिज्ञः ।।१७
प्रणिधि-दृगनुगन्त्रा यस्य बौद्धेन चाक्षणा
न निशि तनु दवीयो वास्त्यदृष्टं धरित्र्याम् [।*]
पदमुदयि दधानो(ऽ*)नन्तरं तस्य चाभू-
त्स भयम**भयदत्तो** नाम

१६. वि[घ्न]न्प्रजानाम् ।।१८
विन्ध्यस्यावन्ध्य-कर्म्मा शिखर-तट-पतत्पाण्डु-**रेवा**म्बुराशे-
र्ग्गो-लाङ्गूलैःसहेल-प्लुति-नमित-तरोः**पारियात्र**स्य चाद्रेः ।
आ **सिन्धो**रन्तरालं निज-शुचि-सचिवाद्धचा-

१७. सितानेक-देशं/
राजस्थानीय-वृत्या सुरगुरुरिव यो वर्णिनां भूतये(ऽ*) पात् ।।१९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विहित-सकल-वर्ण्णासङ्करं शान्त-डिम्बं
कृत इव कृतमेतद्येन राज्यं निराधि ।
स धुरमयमिदानीं

१८. दोषकुम्भस्य सूनु-
गुरु वहति तदूढां धर्म्मतो **धर्म्मदोषः** ॥२०
स्व-सुखमनभिवाच्छन्दुर्ग्गमे(ऽ*)द्ध्वन्यसङ्गां
धुरमतिगुरुभारां यो दधद्भर्त्तुरर्थे ।
वहति नृपति-वेषं केवलं लक्ष्म-मात्रं

१९. वलिनमिव विलम्बं कम्बलं बाहुलेयः ॥२१
उपहित-हित-रक्षमण्डनो जाति-रत्नै-
र्भुज इव पृथुलांसस्तस्य **दक्षः** कनीयान् [।*]
महदिदमुदपानं खानयामास बिभ्र-

२०. च्छ्रुति-हृदय-नितान्तानन्दि **निर्द्दोष**-नामा ॥२२
सुखाश्रेय-च्छायं परिणति-हित-स्वादु-फलदं
गजेन्द्रेणारुग्णं द्रुममिव कृतान्तेन बलिना ।
पितृव्यं प्रोद्दिश्य प्रियम**भयदत्तं** पृ-

२१. थु-धिया
प्रथीयस्तेनेदं कुशलमिह कर्म्मोपरचितं ॥२३
पञ्चसु शतेषु शरदां यातेष्वेकान्नवति-सहितेषु ।
मालव-गण-स्थिति-वशात्काल-ज्ञानाय लिखितेषु ॥२४
य-

२२. स्मिन्काले कल-मृदु-गिरां कोकिलानां प्रलापा
भिन्दन्तोव स्मर-शर-निभाः प्रोषितानां मनांसि ।
भृङ्गालीनां ध्वनिरनुवनं भार-मन्द्रश्च यस्मि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न्नाधूत-ज्यं धनुरिव नदच्छ्रूयते पुष्प-

२३. केतोः ॥२५

प्रियतम-कुपितानां कम्पयन्वद्धराग

किसलयमिव मुग्धं मानसं मानिनीनां [।*]

उपनयति नभस्वान्मान-भङ्गाय यस्मि-

न्कुसुम-समय-मासे तत्र निर्म्मापितो(ऽ*)यम् ॥२६

२४. यावत्तुङ्गैरुदन्वान्किरण-समुदयं सङ्ग-कान्तं तरङ्गै-

रालिङ्गन्निन्दु-बिम्बं गुरुभिरिव भुजैः संविधत्ते सुहृत्ताम् [।*]

बिभ्रत्सौधान्त-लेखा-वलय-परिगतिं मण्डमालामिवायं

सत्कूपस्तावदा-

२५. स्तामृत-सम-रस-स्वच्छ-विष्यन्दिताम्बुः ॥२७

धीमां **दक्षो** दक्षिणः सत्यसन्धो

ह्रीमांच्छूरो वृद्ध-सेवी कृतज्ञः ।

बद्धोत्साहः स्वामि-कार्य्येष्वखेदी

निर्द्दोषो(ऽ*)यं पातु धर्म्मं चिराय ॥२८

उत्कीर्ण्णा गोविन्देन ॥

यशोधर्मन का मंदसोर स्तंभ लेख

१. वेपन्ते यस्य भीम-स्तनित-भय-समुद्भ्रान्त-दैत्या दिगन्ताः

शृङ्गाघातैः सुमेरोर्व्विघटित-दृषदः कन्दरा यः करोति ।

उक्षाणं तं दधानः क्षितिधर-तनया-दत्त-[पञ्चाङ्गुला]ङ्कं

द्राधिष्ठः **शूलपाणेः** क्षपयतु भवतां शत्रु-तेजाङ्सि केतुः ॥

२. आविर्भूतावलेपैरविनय-पटुभिर्ल्लङ्घिताचार-[मा]र्ग्गै-

र्म्मोहादैदं-युगीनैरपशुभ-रतिभिः पीड्यमाना नरेन्द्रैः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यस्य क्ष्मा शार्ङ्गपाणेरिव कठिन-धनुर्ज्या-किणा[ङ्क]-प्रकोष्ठ[ं]
बाहुं लोकोपकार-व्रत-सफल-परिस्पन्द-धीरं प्रपन्ना ॥२

३. निन्द्याचारेषु यो(ऽ*)स्मिन्विनय-मुषि युगे कल्पना-मात्त्र-वृत्या
राजस्वन्येषु पाङ्सुष्विव कुसुम-बलिर्न्नाविभासे प्रयुक्तः ।
स श्रेयो-धाम्नि सम्राडिति मनु-भरतालर्क्क-[मान्धा]तृ-कल्पे
कल्याणें हेम्नि भास्वान्मणिरिव सुतरां भ्राजते यत्र शब्दः ॥३

४. ये भुक्ता गुप्त-नाथैर्न्न सकल-वसुधाक्रान्ति-दृष्ट-प्रतापै-
र्न्नाज्ञा हूणाधिपाना[ं] क्षितिपति-मुकुटाद्धचासिनी यान्प्रविष्टा ॥
देशांस्तान्धन्व-शैल-द्रुम-शहन-सरिद्वीरबाहूपगूढा-
न्वीर्य्यावस्कन्न-राज्ञः स्व-गृह-परिसरावज्ञया यो भुनक्ति ॥४

५. आ लौहित्यौपकण्ठात्तलवन-गह[नो]पत्यकादा महेन्द्रा-
दा गङ्गाश्लिष्ट-सानोस्तुहिनशिखरिण≍पश्चिमादा पयोधेः ।
सामन्तैर्यस्य बाहु-द्रविण-हृत-म[दै]ः पादयोरानमद्भि-
श्चूडा-रत्नाङ्शु-राजि-व्यतिकर-शबला भूमि-भागाः क्रियन्ते ॥५

६. स्थाणोरन्यत्र येन प्रणति-कृपणतां प्रापितं नोत्तमाङ्गं
यस्याश्लिष्टो भुजाभ्यां वहति हिमगिरिर्दुर्ग्ग-शब्दाभिमान[म्] ।
नोचैस्तेनापि यस्य प्रणति-भुजबलावर्ज्जन-क्लिष्ट-मूर्द्ध्नां
[चू]डा-पुष्पोपहारैर्म्मिहिरकुल-नृपेणार्चित[ं] पाद-युग्मं ॥६

७. [गा*]मेवोन्मातुमूर्द्ध्वं विगणायितुमिव ज्योतिषां चक्रवालं
निर्द्देष्टुं मार्ग्गमुच्चैर्द्दिव इव [स]कृतोपार्ज्जितायाः स्व-कीर्त्तेः ।
तेनाकल्पान्त-कालावधिरवनिभुजा श्री-यशोधर्म्मणायं
स्तम्भः स्तम्भाभिराम-स्थिर-भुज-परिघेणोच्छ्रितिं नायितो(ऽ*)त्र ॥७

८. [श्ला]घ्ये जन्मास्य वङ्शे चरितमघहरं दृश्यते कान्तमस्मि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न्धर्म्मस्यायं निकेतश्चलति नियमितं नामुना लोकवृत्तम् [।*]
इत्युकर्षं गुणानां लिखितुमिव **यशोधर्म्मण**श्चन्द्र-बिम्बे
रागादुत्क्षिप्त उच्चैर्भुज इव रुचिमान्यः पृथिव्या विभाति ॥८

९. इति तुष्टूषया तस्य नृपतेः पुण्यकर्म्मणः ।
वासुलेनोपरचिताः श्लोकाः कक्कस्य सूनुना ॥९
उत्कीर्णा गोविन्देन ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हूण नरेशों के अभिलेख

तोरमाण का एरण वराहमूर्त्ति लेख

१. १° [॥*]

जयति धरण्युद्धरणे घन-घोणाघात-घूर्ण्णित-महीद्धः [।*]१

देवो **वराहमूर्त्ति**स्त्रैलोक्य-महागृह-स्तम्भः [॥*]

वर्षे प्रथमे पृथिवी[म्]

२. पृथु-कीर्त्तौ पृथु-द्युतौ [।*]

महाराजाधिराज-श्री**तोरमाणे** प्रशासति। [।*]२

फाल्गुन-दिवसे दशमे। इत्येवं राज्य-वर्ष-मास-दिनैः [।*]

एतस्यां

३. पूर्व्वायाम्। स्व-लक्षणैर्युक्त-पूर्व्वायाम्। [*]३

स्वकर्म्माभिरतस्य क्रतुयाजिनो(ऽ*)धीत-स्वाध्यायस्य विप्रर्षेर्म्मैत्राय-णीय-वृषभस्येन्द्र-विष्णोः प्रपौत्रस्य।

४. पितुर्गुणानुकारिणो वरुणविष्णोः पौत्रस्य पितरमनुजातस्य स्ववंश-वृद्धि-हेतोर्हरिविष्णोः पुत्रस्यात्यन्त-भगवद्भक्तस्य विधातुरिच्छया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५. स्वयंवरयेव राजलक्ष्म्याधिगतस्य चतुःसमुद्र-पर्यन्त-प्रथितयशसः अक्षीण - मान[ध]न-स्यानेक - शत्रु-समर - जिष्णोः महार(।*)ज-**मातृविष्णोः**

६. स्वर्ग्गतस्य भ्रात्रानुजेन । तदनुविधायिना तत्प्रसाद-परिगृहीतेन **धन्यविष्णुना** तेनैव [स] हाविभक्त-पुण्यक्रियेण मातापित्त्रोः

७. पुण्याप्यायनार्थमेष भगवतो **वराहमूर्त्तेर्ज्जगत्परायणस्य नारायणस्य** शिला-प्रा [सादः] स्व-विष[ये](ऽ*) स्मिन्**नैरिकिणे** कारितः । [।*]

८. स्वस्त्यस्तु गो-ब्राह्मण-पुरोगाभ्यः सर्व्व-प्रजा [भ्य इ] ति ॥

तोरमाण का कुरा शिलालेख

१. [१*] [राजाधि*]राज-महाराज-**तोरमाण-षा[हि]**-जऊ[ल्लस्याभि-वर्धं*] [मान-राज्ये] * * [संवत्सरे*]

२. * * * * मे मार्गशिर-मासःशुक्ल-द्वितीयायाम् चन्द्र [मग्र ?] * * * * * * गग[न*]-

३. [चरे च] वर*शुचि-शात-ध्यानाध्ययन-मोक्ष-चित्तानुकूले प्र [दिष्ट] * * * * * * * * [न*]-

४. क्षत्रे भगवतो **बुद्ध**स्य देवातिदेवस्य सर्वपापपरिक्षीण-सर्वपुण्यसमुद्गत [स्य]

५. तीर्ण-स(*)सारार्णव(स्य*) सत्वानां तारयिता दशबल-बलिन(: *) चतुर्वैशारद्य-चतस्रप्रतिसं [भिदा]-

६. अष्टादशावेणीकाद्भुत-धर्म-समन्वागतस्य सर्वसत्ववत्सल-महाकारुणिकस्य बु-

७. द्धप्रमुख-चातुर्दिशे भिक्षु-संघे देयधर्मो(ऽ*)य(*) विहार(:*) प्रतिष्ठापन **नश्चीर-पति-प्रशस्ता-**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

८. दारित-नामधेय-विशेषवृद्धिः रोट्ट-जयवृद्धि अनेक-विहार-स्वामिनो सत्पुत्रेण [।*] यदत्र पुण्यं तद्भवतु

९. [मा]तापित्रो(:*) आपायक-पोषक(योः*) चित्रस्य **जंबुद्वीपस्य** दर्शयितारो अग्रे-भावप्रत्यंशतायास्तु तथा विहार-स्वामिनो

१०. रोट-सिद्धवृद्धि सर्वेषां भ्रातराणां भगिनीनां पत्नीनां पुत्राणां दुहितृणां महाराज-**तोरमाण षाह-जऊव्लः** स-

११. र्वेषा देवानां राजपुत्राणां राजदुहितानां च सर्व-सत्वानां अनुत्तर-ज्ञानावाप्तये [।*] अयं पुन(:*) विहारस्यो-

१२. पकरण चातुर्दिशे भिक्षुसंघे परिग्रहे आचय(णिां*) [म]हीश[ासकानां [।*] [साद्धक-पु]- * * त्रेण* [आचार्य]-

१३. ... ...

मिहिर कुल की ग्वालियर प्रशस्ति

१. [१ ॥ स्वस्ति ॥*]
[ज*] [य] ति जलद-वल-ध्वान्तमुत्सारयन्स्वैः
किरण-निवह-जालैर्व्योम विद्योतयद्भिः [।*]
उ[दय*]-[गिरि]-तटाग्र[*] मण्डयन् यस्तुर(*)गेः
चकित-गमन-खेद-भ्रान्त-चंचत्सटान्तैः । [।*]१
उदय-[गिरि]-

२. ⌣ — — ग्रस्त-चक्रो(ऽ*)र्त्ति-हर्त्ता
भुवन-भवन-दीपः शर्व्वरी-नाश-हेतुः [।*]
तपित-कनक-वर्ण्णैरंशुभि≍पङ्कजाना(।*)-
मभिनव-रमणीयं यो विधत्ते स वो(ऽ*)व्यात् । [।*]२
श्री-**तोर[माण** इ*]ति यः प्रथितो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३. [भूचक*]पः प्रभूत-गुणः [।*]
सत्यप्रदान-शौर्य्याद्ये न मही न्यायत[ः] शास्ता [।।*]३
तस्योदित-कुल-कीर्त्तेः पुत्रो(ऽ*)तुल-विक्रमः पतिः पृथ्व्याः [।*]
मिहिरकुलेतिख्यातो(ऽ*)भङ्गो यः **पशुपतिम** * * * [।।*]४

४. [तस्मिन्ना*]जनि शासति पृथ्वीं पृथु-विमल-लोचने(ऽ*)त्तिहरे [।*]
अभिवर्द्धमान-राज्ये **पंचदशाब्दे** नृप-वृषस्य । [।*]५
शशिरश्मिहास-विकसित-कुमुदोत्पल-गण्ध-शीतलामोदे [।*]
कार्त्तिक-मासे प्राप्त गगन-

५. [पतौ*] [नि*]र्म्मले भाति । [।*]६
द्विज-गण-मुख्यैरभिसंस्तुते **च** पुण्याह-नाद-घोषेण [।*]
तिथि-नक्षत्र-मुहूर्त्ते संप्राप्ते सुप्रशस्त-[दिने] । [।*]७
मातुतुलस्य तु पौत्रः पुत्रश्च तथैव मातृदासस्य [।*]
नाम्ना च **मातृचेटः** पर्व्व-

६. [त-दुर्ग*][।नु]वास्तव्यः [।।*]८
नानाधातु-विचित्रे **गोपाह्वय**-नाम्नि भूधरे रम्ये [।*]
कारितवान्शैलमयं भानोः प्रासाद-वर-मुख्यम् । [।*]९
पुण्याभिवृद्धिहेतोर्म्मातापित्रोस्तथात्मनश्चैव [।*]
वसता(ं*) च गिरिवरे(ऽ*)स्मि(न्*) राज्ञः

७. * * * [पा?]देन [।।*]१०
ये कारयन्ति भानोश्चन्द्रांशु-सम-प्रभं गृह-प्रवरं [।*]
तेषां वासः स्वर्ग्गे यावत्कल्प-क्षयो भवति ।।११
भक्त्या रवेर्व्विरचितं सद्धर्म्म-ख्यापनं सुकीर्त्तिमयं [।*]
नाम्ना च **केशवे**तिप्रथितेन च ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

८. * * * [दि?]त्येन ॥*१२

यावच्छर्व्व-जटा-कलाप-गहने विद्योतते चन्द्रमा
दिव्यस्त्री-चरणैर्व्विभूषित-तटो यावच्च मेरुर्नगः [।*]
यावच्चोरसि नील-नीरद-निभे विष्णुर्व्विभर्त्युज्वलां
श्रीस्तावद्गिरि-मूर्ध्नि तिष्ठति
[शिला-प्रा*]साद-मुख्यो रमे [॥*]१३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नालंदा की गुप्त वंशी मुहरें

नरसिंह गुप्त की मुहर

··· ··· व्याम अप्रतिरथस्य महाराजा श्री गुप्त प्रपौत्रस्य महाराजा श्री घटोत्कच पौत्र ··· ··· ··· श्री चंद्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छवि दौहित्रस्य महादेव्यां कुमार देव्यां उत्पन्नः श्री समुद्र गुप्तस्य पुत्र तत् परिग्रहितो महादेव्यां दत्तदेव्यां उत्पन्नः परम भागवतो महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्तस्तस्य पुत्रः तत्पादानु ··· ··· ध्रुवदेवव्यामुत्पन्नो महाराजाधिराज श्री कुमार गुप्तः तस्य पुत्रः ··· ··· ··· देव्यां अनंतदेव्यां उत्पन्नः महाराजाधिराज श्री पुरुगुप्तः तस्य पु ··· ··· ··· महादेव्यां श्री वैन्यदेव्यां उत्पन्नः परमभागवत ··· ··· श्री नरसिंह गुप्तः

द्वितीय कुमार गुप्त की नालदा मुहर

सर्वराजोच्छेतुः पृथिव्यां अप्रतिरथस्य महाराज श्री गुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्री घटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज श्री चंद्र गुप्त पुत्रस्य लिच्छवि दौहित्रस्य महादेव्यां कुमार देव्यां उत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्री समुद्र गुप्तस्य पुत्रः तत्परिगृहितो महादेव्यां दत्तदेव्यां उत्पन्नः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वयं चाप्रतिरथः परमभागवतो महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्तः तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महादेव्यां ध्रुवदेव्यां उत्पन्नो महाराजाधिराज श्री कुमार गुप्त तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महादेव्यां अनंतदेव्यां उत्पन्नो महाराजाधिराज श्री पुरुगुप्तः तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो महादेव्यां वत्सदेव्यां उत्पन्नो महाराजाधिराज श्री नरसिंह गुप्तः तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महादेव्यां श्री मित्रदेव्यां उत्पन्नः परम भागवतो महाराजाधिराज श्री कुमार गुप्तः

बुधगुप्त की मुहर

१. ... ... श्री गुप्त प्रपौत्रस्य महाराजा
२. श्री घटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छवि दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यां उत्पन्नस्य
३. महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्तस्य पुत्र। तत्परिगृहितो महादेव्यां दत्तदेव्यां उत्पन्नः
४. अप्रतिरथः परमभागवतो महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्तः तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातः
५. महादेव्यां ध्रुवदेव्यां उत्पन्नः परमभागवतो महाराजाधिराज श्री कुमार गुप्तः तस्य पुत्रः तत्पाद
६. वुध्यातो महादेव्यां अनंतदेव्यां उत्पन्नो महाराजाधिराज श्री पुरुगुप्तः
७. तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महादेव्यां चंद्रदेव्यां उत्पन्नो
८. परमभागवतो महाराजाधिराज श्री बुधगुप्तः

वैन्य गुप्त की मुहर

... ...

गुप्तः तस्य पुत्रः ... ...

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातः श्री गुप्तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महादेव्यां ··· श्री परमभागवतो महाराजाधिराजः ··· ··· ···

श्री वैन्यगुप्तः

(उपलब्ध शब्दावली)

विष्णुगुप्त की नालंदा मुहर

सर्व राजोच्छेतुः पृथिव्यां अप्रतिरथस्य महाराज श्री गुप्त प्रपौत्रस्य महाराज घटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छवि दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यां उत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्रीसमुद्रगुप्तस्य पुत्रः तत्परिगृहितो महादेव्यां दत्तदेव्यां उत्पन्न स्वयं—अप्रतिरथः परम-भागवतो महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त तस्य पुत्रः तत्पदानुध्यातो महादेव्यां ध्रुवदेव्यां उत्पन्नो महाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्तः तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महादेव्यां अनंतदेव्यां उत्पन्नो महाराजाधिराज श्री पुरुगुप्तः तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महाराजाधिराज श्रीनरसिंह गुप्तः तस्य पुत्रः तत्पादाधुध्यातो-राजाधिराज श्री कुमारगुप्तः तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो परम भागवतो महाराजाधिराज श्री विष्णुगुप्तः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैशाली की गुप्तकालीन मुहरें

(अ) राजकीय

१. महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त पत्नी महाराजा श्री गोविंदगुप्त माता महादेवी श्री ध्रुव स्वामिनि

२. श्री घटोत्कच गुप्तस्य

(ब) पदाधिकारी गण की मुहरें

३. कुमारामात्याधिकरणस्य

४. युवराजपादीय कुमारामात्याधिकरण

५. श्री युवराज भट्टारकपादीय कुमारामात्याधिकरणस्य (२)

६. श्री परम भट्टारक पादीय कुमारामात्याधिकरण

७. युवराज भट्टारक पादीय बलाधिकरणस्य

८. श्री रणभाण्डागाराधिकरणस्य

९. दण्डपाशाधिकरणस्य

१०. महाप्रतिहार तरवर विनयसूरस्य

११. महादण्ड नायक अग्निगुप्तस्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१२. भटास्वपति यक्षवटस्य

१३. तिराभुक्ति उपरिकाधिकरणस्य

१४. तिराभुक्तौ विनय स्थिति स्थापकाधिकरणस्य

१५. तिरा कुमारामात्याधिकरणस्य

१६. उदनकूप परिषदः

१७. वैशाल्यधिष्ठान अधिकरण

१८. वैशाल्याभरप्रकृति

(स) श्रेणी एवं निगम की मुहरें

१९. श्रेष्ठि कुलिक निगम

२०. श्रष्ठि सार्थवाह कुलिक निगम (२७४)

२१. युवराजपादीय कुमारामात्याधिकरण से युक्त

जितं भगवतः,	नमः पाशुपतेः
(५)	(५)
अजपाल (१६)	आर्यनन्दि (६)
भवसेन (५)	धर्मोरक्षित रक्षित (४)
घोषाध्यक्ष (५)	गोस्वामि (३७)
हरिगुप्त तथा वराहस्य (७)	
ईशान दासस्य (७५)	मातृदास (३८)
प्रकाश नंदि (३)	

(द) मंदिर तथा धार्मिक लेख युक्त मुहरें

२२. श्री विष्णुपद स्वामिनारायन

२३. जयत्य अनंतो भगवान सामवः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२४. जितं भगवता

२५. जितं भगवतोनत्तस्य नंदेस्वरि वर स्वामिनः

२६. नमः पाशुपतेः

(य) व्यक्तिगत मुहरें

अजपाल, आर्यभट्ट, आर्यनंदि, भवसेन, आर्य ऋषिदेव, भवदेव, भवदास, चक्रदास, ब्रह्मपालितस्य, ब्रह्मरक्षितस्य, धर्मो रक्षतिरक्षित, धोषाध्यस्य, गोस्वामि, गोमुण्डक, हरिदास, हरिगुप्त

(र) व्यक्तिगत व्यवसायी की अनेक मुहरें

कुलिक भगदत्तस्य
" धनस्य
" गौरीदासस्य
" गोंडस्य
" हरिस्य
" कृष्णदत्तस्य
" नाग दत्तस्य
" नंदस्य
" शालिभद्रस्य
" सुखितः
" उमापति
" वर्गस्य
" अग्रसेनस्य
" ओमभट्ट (ऐसे २८ मुहरें)

श्रेष्ठि सार्थवाह सहित व्यक्तिगत नाम (५०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुलिक सार्थवाह सहित नाम (२७)

या

वैशाल्यधिष्ठानाधिकरण सहित नाम (१५)

(ल) कुमारामात्य के दानपत्र की मुहर

कुमारामात्य अधिकरणश्च सर्व्वंग विषय ब्राह्मणाघ पुरसरान व्रतमानां भाविनश्च श्री सामंत विषय या तीन साधिकरनां व्यवहारि जनपदान् बोधयत्यस्तु वो विदितम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त मुद्रा-लेख (Legends)

अ—स्वर्ण मुद्राएँ

चंद्रगुप्तः श्री कुमार देवी
समरशतवितत विजयो जितुरिपु रजितो दिवं जयति
राजाधिराजः पृथिवीमवित्वा दिवं जयत्याहृय **वाजिमेधः**
महाराजाधिराजः श्री **समुद्रगुप्तः**
कृतांतपरशुर्ज्जयत्यजित राजजेताऽजितः ।
व्याघ्र पराक्क्रमः
अप्रतिरथो विजित्यक्षितिं सुचरितैर्दिवं जयति ।
अप्रतिरथो विजित्यक्षितं अवनीशो दिवं जयति
काचोगामवजित्य दिवं कर्मभिरुत्तमैर्ज्जयति ।
देव श्री महाराजाधिराज श्री **चंद्रगुप्तः**
महाराजधिराज श्री **चंद्रगुप्तः**
क्षितिमवजित्य सुचरितैर्दिवं जयति **विक्रमादित्यः**
परम भागवतो महाराजाधिराज श्री **चंद्रगुप्तः**
देव श्री महाराजाधिराज श्री **चंद्रगुप्तस्य**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नरेन्द्रचंद्रः प्रथित रणो रणे जयत्यजय्यो **भुविसिंहविक्रमः**
नरेन्द्रसिंह चंद्रगुप्तो पृथिवीजित्वा दिवं जयति
वषुधां विजित्य जयति त्रिदिवं पृथिवी (श्वर पुण्यैः) रूपाकृती
देव श्री महाराजाधिराज श्री **चंद्रगुप्तः** ।
महाराजाधिराज श्री **कुमारगुप्तः** ।
विजिता वनिवनिपतिः **कुमार**गुप्तो दिवं जयति ।
जयतिमहितलमेकः श्री **कुमारगुप्तः** सुधन्वी ।
परम राजाधिराज श्री **कुमारगुप्तः**
पृथिवी तलाम्बर शशी **कुमारगुप्तो** जयत्यजितः ।
जयति नृपपारिभिरजितः ।
क्षितिपति रजितो विजयी **कुमारगुप्तो** दिवं जयति ।
गुप्तकुल व्योम शशी जयत्य जेयोजित **महेन्द्रः**
क्षितिपति रजितो विजयी **कुमारगुप्तो** जयत्यजितः
गुप्तकुलामल चंद्रो **महेन्द्र** कर्माजितो जयति
पृथिवी तलेश्वरेन्द्रः कुमारगुो जयत्यजितः
साक्षादिव नरसिहः **सिंहमहेन्द्रो** जयत्यनिशं ।
कुमारगुप्तो युधि **सिंहविक्रमः**
क्षितिपति रजित महेन्द्रः **कुमारगुप्तो** दिवं जयति ।
जयति स्वगुणै गुणारविन्दः श्री **महेन्द्रकुमारः**
गामवजित्य सुचरितैः **कुमारगुप्तो** दिवं जयति
श्रीमान् व्याघ्रबल पराक्रमः
भर्त्ता खड्ग त्राता कुमारगुप्तो जयतत्य निशं ।
जयति महीतलं
महाराजाधिराज श्री **कुमारगुप्तः**
देवोजितशत्रु **कुमारगुप्तो**धिराजाः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षतरिपु **कुमारगुप्तो** राजत्राता जयति रिपून ।
विजितावनिरवनिः श्री **स्कंदगुप्तो** दिवं जयति ।
गुणेशो महीतल ... ...

लिच्छवयः	पराक्रमः
अश्वमेध पराक्रमः	समुद्रगुप्तः
कृतांतपरशुः	राजासमुद्रगुप्तः
अप्रतिरथः	सर्वराजोच्छेता
श्रीविक्रमः	विक्रमादित्यः
अजित विक्क्रमः	सिंहविक्रमः
चक्रविक्रम्ः	श्री महेन्द्रः
अजित महेन्द्रः	श्री महेन्द्र सिंहः
श्री सिंह महेन्द्रः	श्री महेन्द्र कुमारः
श्री कुमार गुप्तः	कुमारगुप्तोधिराजा
श्री महेन्द्र खड्ग	श्री महेन्द्रादित्यः
कुमार गुप्तः	श्री अश्वमेध महेन्द्रः
श्रीमहेन्द्रगजः	सिंहनिहंता महेन्द्रगजः
अप्रतिधः	क्रमादित्यः
काच	कृ०

ब-रजत मुद्राएँ

परमभागवत महाराजाधिराज श्री**चंद्रगुप्त** विक्रमादित्यः
श्री गुप्तकुलस्य महाराजाधिराज श्री**चंद्रगुप्त** विक्रमादित्यस्य
गुणेशो महीतलं जयति कुमारः
परमभागवत महाराजाधिराज **श्री कुमारगुप्त** महेन्द्रादित्यः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परमभागवत राजाधिराज **श्रीकुमारगुप्त** महेन्द्रादित्यः
विजितावनिरवनि पतिः **कुमारगुप्तो** दिवंजयति
जयति महीतल सुधन्वि
परहितकारी राजा जयतिदिवं श्रीक्रमादित्यः
परमभागवत महाराजाधिराज श्रीस्कंदगुप्त क्रमादित्यः
परमभागवत श्रीविक्रमादित्य स्कंदगुप्तः
परमभागवत श्रीस्कंदगुप्तः
परमभागवत श्रीस्कंदगुप्त क्रमादित्यः
विजितावनिरवनिपतिः श्रीस्कंदगुप्तो दिवं जयति ।
विजितावनिरवनिपतिः जयति दिवं स्कंदगुप्तोयं ।
महाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्त क्रमादित्यः
विजितावनिरवनिपतिः श्रीबुधगुप्तो दिवं जयति
विजित्य बसुधां दिवं जयति
पर..... श्रीद्वादशादित्यः
बालादित्यः श्री स्कंदगुप्तः
श्री प्रकाशादित्यः श्री चंद्रादित्यः
श्री द्वादशादित्यः रामगुप्तः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट

स्कंदगुप्त का गढ़वा शिलालेख (गु० सं० १४८)

१. ·····स्य प्रवर्द्धमान विजय राज्य संवत्सरे सते अष्ठ चत्वारिसंद् उत्तरे माघ मासे दिवसे इक विंशतिमे

२. ·· ·····पुण्यामिवृद्धयार्थं वडमिं कारयियित्वा अनंत स्वामि पादं प्रतिष्ठाप्य गंध धूप सुग ·····

३. ··· ···स्फुट प्रतिसंस्कार करणार्थं भगवच्छ चित्रकूट स्वामि पादाय कोष्ठे प्रावेश्य यति·····

४. ·· ·····दत्ता द्वादस यैनं व्यूच्छिन्यात् सः पंचमिः महापातकैः संयुक्तः स्यादिति ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐतिहासिक टिप्पणी

एवं

हिंदी रूपांतर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम चंद्रगुप्त

गुप्तवंश के इस प्रथम महाराजाधिराज से संबंधित कोई अभिलेख उपलब्ध नहीं हो सका है। किन्तु इस के मुद्रालेख (Coin legend) से राजा तथा रानी के नाम प्रकाश में आए हैं।

श्री कुमारदेवी चंद्रगुप्त प्रथम चंद्रगुप्त के पुत्र समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में वंशावली के क्रम में राजा रानी के नाम उल्लिखित है। समुद्रगुप्त अपने को लिच्छवि वंश की राजकुमारी कुमारदेवी का पुत्र घोषित करता है अतएव गुप्त वंशी अभिलेख में कुमारदेवी एवं प्रथम चंद्रगुप्त के नाम इसके प्रमाण है कि समुद्रगुप्त के पिता का विवाह वैशाली के लिच्छवि राजकुमारी कुमार देवी से संपन्न हुआ था। मुद्रालेख भी यही प्रमाणित करते हैं। अन्य साक्ष्य का अभाव है।

समुद्रगुप्त

प्राप्ति स्थान

इस शासक के कई अभिलेख प्रकाश में आए हैं। गुप्तवंशी अभिलेखों में समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति का महत्व पूर्ण स्थान है। ऐतिहासिक दृष्टि से समुद्रगुप्त के जीवन वृतांत की संपूर्ण झांकी इसमें मिलती है। इसके अध्ययन से प्रकट होता है कि गुप्त सम्राट् ने भारत दिग्विजय कर इस लेख को खुदवाया था। यह लेख कौशाम्बी (प्रयाग से ३६ मील दूर) में स्थित मौर्य सम्राट् अशोक के शिलास्तंभ के निचले भाग में खुदा है। अशोक के धर्मलेख ब्राहमी में किन्तु समुद्रगुप्त का लेख गुप्तलिपि में अंकित है। अतः लिपि की भिन्नता से दोनों लेख पृथक हो जाते हैं। वर्तमान समय में वह स्तंभ इलाहावाद के किले में स्थित है। इस लेख के संबंध की वार्ता अगली पंक्तियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में की जायेगी। इस प्रशस्ति के लेखक हरिषेण ने इसे संस्कृत के चम्पू काव्य शैली (गद्य पद्य मिश्रित) में लिखा था[1] और अपने आश्रयदाता समुद्रगुप्त के जीवन की घटनाओं का उल्लेख किया है।

तिथि

इस अभिलेख की तिथि ज्ञात नहीं है परन्तु यह अनुमान लगाया जा सकता है कि समुद्र गुप्त ने चौथी शताब्दी के मध्य में अंकित किया होगा। प्रथम चंद्रगुप्त (समुद्र के पिता) ने ई० सं० ३२० में गुप्त-संवत् की स्थापना की थी। उसके पश्चात् ही समुद्रगुप्त सिंहासन पर बैठा। उत्तर एवं दक्षिण भारत के दिग्विजय के उपरांत ही अभिलेख अंकित करना संभव था। अतएव चोथी सदी के मध्य में प्रयाग लेख की तिथि निश्चित करना उचित होगा।

अन्य तीन अभिलेखों का संबंध समुद्रगुप्त से जोड़ा जाता हैं।

(१) एरण का लेख
(२) गया " ताम्रपत्र लेख
(३) नालंदा " "

एरण सागर जिला मध्य प्रदेश का ऐतिहासिक नगर है जिसका प्राचीन नाम-ऐरिकिण अभिलेख से ज्ञात होता है। संभवत यह लेख प्रयाग प्रशस्ति से पूर्व अंकित किया गया था। जिससे समुद्र गुप्त के परिवार के संबंध में जानकारी होती है। दसवी पंक्ति में समुद्र का नाम है तो सत्तरहवी पंक्ति में उनकी पत्नी दत्तादेवी का उल्लेख है। वह स्त्री परायण तथा संमार्ग का अवलम्बन करने वाली थी। धनधान्य से पूर्ण प्रासाद पुत्र पौधों से सुशोभित था। भाषा संस्कृत है किन्तु लिपि दक्षिण भारतीय वाक्सनुमा अक्षरों से मिलती है।

नालंदा एवं गया ताम्रपत्रों (क्रमश : तिथि ५ व ९) के संबंध में अधिक विवाद है। यह दानपत्र गुप्त लेखों का अनुकरण कर छठी-सातवीं सदी में खोदे गए होंगे, अतएव उनकी प्रमाणिकता सदेहास्पद है। विचारणीय बातों को संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है।

(१) प्रयाग प्रशस्ति में अश्वमेघ का उल्लेख नहीं है जिसका विवरण ताम्रपत्रों में मिलता है।

(२) तिथियों (५ एवं ९) पर विचार करने से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त गुप्त संवत् प्रवर्तक था। किन्तु यह बात सही नहीं है। इसका पिता प्रथम चंद्रगुप्त गु० सं० का जन्मदाता था।

(३) समुद्र गुप्त के लिए 'परमभागत' की उपाधी इन दान पत्रों में मिलती है। अन्य गुप्त लेखों में ऐसा साक्ष्य नहीं मिलता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(४) इनकी अप्रमाणिकता का एक सबल कारण यह भी है कि अभिलेखों में "जयस्कन्धावार" का प्रयोग छठी सदी के पूर्व नहीं मिलता। सबसे पहले इस वाक्य का प्रयोग हर्षवर्धन के लेखों (मधुवन तथा वांसखेड़ा) में मिला है।

(५) इन अभिलेखों में भाषा संबंधी अनेक अशुद्धियाँ है। व या ब का अशुद्ध प्रयोग सर्वत्र दीख पड़ता है। दोनों में एक सी त्रुटियाँ हैं।

(६) यद्यपि उपरियुक्त साक्ष्यों के आधार पर गया तथा नालंदा ताम्रपत्रों को जाली माना जाता है किन्तु इसमें उल्लिखित दानग्राही तथा ग्रामों की वास्तविकता असंदिग्ध है। दोनों दानपत्रों का लेखक गोपस्वामि ग्रामोसे संबंधित था।

अक्षपटलिक—अभिलेख पाल (keeper of Records).

अक्षपटल—लेखों का संग्रहालय

महापीलुपति—सेना में हस्ति शाखा का प्रधान

महाबलाधिकृत—सेनापति (रणभूमि का प्रधान अधिकारी)

उपरिकर—अस्थायी कृषकों से कर

प्रत्याय—भूमिकर

आर्यावर्त्त का विजय

प्राचीन समय में विन्ध्य तथा हिमालय के बीच की पुण्यभूमि का नाम आर्यावर्त था। समुद्रगुप्त ने समस्त उत्तरी भारत के राजाओं को परास्त कर उनके राज्य को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार वह गुप्त नरेश एकछत्र राज्य स्थापित करने में सफल हुआ[1]। राजनीति में ऐसे विजेता को 'असूरविजयी' के नाम से पुकारते हैं। प्रयाग की प्रशस्ति में आर्यावर्त्त के राजाओं की निम्नलिखित नामावली दी है :—

(१) रुद्रदेव
(२) मतिल
(३) नागदत्त
(४) चन्द्रवर्म
(५) गणपति नाग
(६) नागसेन
(७) अच्युत
(८) नन्दि
(९) बलवर्मा

इन्हीं नव राजाओं को समुद्रगुप्त ने परास्त किया। प्रशस्ति में 'आदि अनेक आर्यावर्त्तराज' के प्रयोग से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त के द्वारा कुछ अन्य राजा पराजित किये गये जिनके नाम का हरिषेण ने उल्लेख नहीं किया है। ये नरेश कौन थे, इस विषय में कुछ मतभेद है। रैपसन का अनुमान है कि ये नव राजा विष्णुपुराण में उल्लिखित नव नाग नरेश हैं। इन नाग-

१. अनेकाआर्यावर्त्तराजप्रभोद्धरणोद्धृतप्रसभावमहतः। —फ्लीट—गु० ले० नं० १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वंशी नरेशों ने एक सम्मिलित राज्य स्थापित किया था जिसे समुद्रगुप्त ने हरा कर अपने राज्य में मिला लिया[1]। परन्तु इस मत के पोषक प्रमाण नहीं मिलते। सच तो यह है कि ये नव राजा भिन्न भिन्न स्थानों के शासक थे। इन राजाओं के व्यक्तित्व के विषय में जितने ऐतिहासिक तथ्यों का पता लगा है, उनका यहाँ पर सप्रमाण क्रमशः विवेचन किया जायगा।

(१) **रुद्रदेव** :—आर्यावर्त्त के पराजित नरेशों में रुद्रदेव का नाम सर्वप्रथम उल्लिखित है। इसके समीकरण में बहुत मतभेद है। जायसवाल तथा दीक्षित इसका सम्बन्ध वाकाटक वंश से बतलाते हैं। उनके कथनानुसार रुद्रदेव तथा वाकाटक राजा रुद्रसेन प्रथम एक ही व्यक्ति थे[2]। इनके मत को स्वीकार करने में बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। प्रशस्ति के राजा रुद्रदेव की गणना आर्यावर्त के राजाओं में की गई है परन्तु वाकाटक राजा रुद्रसेन प्रथम दक्षिणापथ का शासक था[3]। समुद्रगुप्त ने समस्त उत्तरी भारत के राजाओं को परास्त कर उनके राज्य को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। यदि वाकाटक वंश का पराजित होना सत्य होता तो वाकाटक राज्य को गुप्त-साम्राज्य के अंतर्गत होना चाहिए। समुद्रगुप्त के समय में गुप्त राज्य एरण (मध्य प्रदेश) के दक्षिण में विस्तृत नहीं था। ऐसी अवस्था में तथा अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में रुद्रदेव का समीकरण वाकाटक राजा रुद्रसेन प्रथम से नहीं किया जा सकता। रुद्रदेव के विषय में अधिक बातें ज्ञात नहीं हैं। आर्यावर्त्त के एक शासक होने की बात स्वयं-सिद्ध है।[4]

(२) **मतिल** :—इस राजा के विषय में अभी तक कोई निश्चित मत स्थिर नहीं है। विद्वान इसे संयुक्त प्रांत में बुलंदशहर के समीप का शासनकर्त्ता मानते हैं जहाँ पर इसकी नामांकित एक मुहर मिली है[5]। जान एलन इस विचार से सहमत नहीं हैं। इस मुहर पर नाम के साथ राजा की उपाधि नहीं मिलती है। अतएव उनका (एलन का) अनुमान है कि प्रशस्ति में उल्लिखित मतिल तथा मुहर के मतिल दो भिन्न भिन्न व्यक्ति थे[6]। जायसवाल महोदय का कथन है कि मतिल अंतरवेदी में शासन करनेवाला नागवंशी नरेश था[7]।

(३) **नागदत्त** :—प्रयाग की प्रशस्ति में तीसरा नाम इसी का मिलता है। मथुरा के समीप बहुत से सिक्के मिले हैं जिनके नाम के अंत में 'दत्त' आता है। नागदत्त के नामांत में दत्त होने के कारण बहुत संभव है कि यह राजा भी मथुरा के आसपास राज्य करता हो, परन्तु अभी

१. जे० आर० ए० एस० १८९७, पृ० ४२१।
२. जायसवाल—हिस्ट्री आफ इंडिया (१५०-३५० ई०), पृ० ७७।
३. इ० हि० क्वा०, भाग १ पृ० २५४।
४. प्रयाग की प्रशस्ति—गु० ले० नं० १।
५. इ० ए०, भाग १८, पृ० ९८९।
६. एलन–गुप्त कायन, भूमिका, पृ० ३३।
७. जायसवाल—वहीं (१५०-३५०), पृ० ३६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक दत्त कुल के साथ इसका निश्चित सम्बन्ध ज्ञात नहीं है। जायसवाल इसे ई० स० ३२८-३४८ के लगभग नागवंश का शासक मानते हैं[1]।

(४) **चन्द्रवर्म** :—हरिषेण के समुद्रगुप्त से पराजित नरेशों में चन्द्रवर्म को चौथा स्थान दिया है। इसके समीकरण में बहुत मतभेद है। पूर्वी बंगाल के बाँकुड़ा जिले मे सूसूनियाँ पर्वत पर एक शिलालेख मिला है जिसमें चन्द्रवर्म का नाम उल्लिखित है। उससे ज्ञात होता है कि वह पुष्षकरण नामक स्थान का शासक था[2]। डा० हर प्रसाद शास्त्री पुष्षकरण की समता मारवाड़ में स्थित पोकरण स्थान से बतलाते हैं। इसी आधार पर उनका अनुमान है कि चन्द्रवर्म मारवाड़ का शासक था[3]। डा० भण्डारकर इस अनुमान से सहमत नहीं हैं। डा० चैटर्जी के कथनानुसार पुष्करण नामक स्थान बाँकुड़ा जिले में स्थित है[4]। अतएव भण्डारकर प्रयाग की प्रशस्ति में उल्लिखित चन्द्रवर्म तथा सूसुनियाँ में उल्लिखित बाँकुड़ा के शासक को एक ही व्यक्ति मानते हैं[5]। परन्तु जायसवाल इसे पूर्वी पंजाब का शासक बतलाते हैं[6]। इस प्रकार इस राजा के विषय में कुछ साक्ष्य नहीं मिलता।

(५) **गणपति नाग** :—इसके विषय में निश्चित बातें ज्ञात हैं। यह नागवंशी राजा था। यह नागों की राजधानी पद्मावती में ई० स० ३१०—३४४ तक शासन करता था[7]। इस राजा के सिक्के भी मारवार तथा वेसनगर के समीप मिले हैं[8]। डा० भण्डारकर का मत हैं कि सम्भवतः यह राजा नागों की विदिशा शाखा पर शासन करता था जिसका वर्णन विष्णुपुराण में मिलता है[9]।

(६) **नागसेन** :—यह भी नागवंशी राजा था। नागसेन का नाम प्रयाग की प्रशस्ति में आर्यावर्त्त के राजाओं की नामावली से पूर्व भी उल्लिखित है। यह राजा गणपति नाग के समकालीन नागों की दूसरी शाखा पर शासन करता था। रैपसन का कथन है कि यह राजा तथा हर्षचरित में वर्णित नागसेन एक ही व्यक्ति थे[10]। बाण के वर्णन से ज्ञात होता है कि हर्षचरित में उल्लिखित नागसेन पद्मावती का शासक था जो

---

१. वहीं पृ० ३६।
२. ए० इ०, भा० १२, नं० ९।
३. इ० ए०, १९१३।
४. ओरिजन एंड डेभलपमेंट आफ़ बंगाली लैंगुएज, पृ० १०६१।
५. इ० हि० का० १, पृ० २५५।
६. जायसवाल—हिस्ट्री आफ़ इंडिया (१५०-३५०), पृ० १४२।
७. वहीं पृ० ३५ तथा ३८।
८. क्वायन आफ़ एंशेंट इंडिया, पृ० १८।
९. इ० हि० क्वा०, भाग १, पृ० २५५।
१०. नागकुलजन्मनः सारिकाश्रावितमन्त्रस्य आसीत् नाशो नागसेनस्य पद्मावत्याम्। —हर्षचरित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्भवतः गुप्तों के अधीन था। परंतु यह नागसेन मथुरा का शासक प्रतीत होता है[1]। अतएव हर्षचरित में वर्णित नागसेन को समुद्रगुप्त का समीकालीन मानना युक्ति-सङ्गत नहीं है।

(७) **अच्युत** :—समुद्रगुप्त द्वारा पराजित राजाओं में अच्युत का सातवाँ नाम है। इसके समीकरण में बहुत मतभेद है। जायसवाल अच्युत तथा नन्दि को एक ही शब्द मानते हैं[2]। संयुक्त प्रांत के बरेली जिले के अन्तर्गत अहिक्षतर (आधुनिक रामनगर) में कुछ सिक्के मिले हैं जिस पर एलन ने 'अच्यु' शब्द पढ़ा है[3]। परन्तु काशी के श्रीनाथ साह के संग्रह में लेखक ने 'अच्युत' शब्द पढ़ा है। सम्भवतः ये सिक्के इसी राजा (अच्युत) द्वारा चलाये गए हों। डा० भण्डारकर पद्मावती के नागसिक्कों से इसकी बनावट की समता बतलाते हैं। अतएव बहुत सम्भव है कि अच्युत नागवंशी राजा हो जो मथुरा के समीप शासन करता होगा[4]। जायसवाल अच्युत को अहिक्षतर का राजा मानते हैं[5]।

(८) **नन्दि** :—इस राजा के विषय में बहुत विवाद है। पुराणों में नागवंशी राजाओं की नामावली में शिशुनन्दि या शिवनविद का संबंध मध्य भारत से बतलाया गया है। डुब्यूरिल साहब नन्दि तथा शिवनन्दि की एकता सिद्ध करते हैं[6]। अनुमान किया जाता है कि नन्दि भी नागवंशी राजा था।

(९) **बलवर्मा** :—प्रयाग की प्रशस्ति में उल्लिखित राजाओं की नामावली में बलवर्मा का अंतिम नाम है। अभी तक कोई निश्चित साक्ष्य नहीं मिला है। कुछ विद्वान् अनुमान करते हैं कि स्यात् यह हर्ष के समकालीन असम के राजा भास्करवर्मन् का पूर्वज हो[7]। इसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि असम आर्यावर्त में सम्मिलित नहीं था। अतएव आर्यावर्त के राजा बलवर्मा को असम का शासक नहीं माना जा सकता।

आटविक-नरेश

आर्यावर्त के शासकों को जीतकर तथा उत्तरी भारत में अपने राज्य का विस्तार कर समुद्रगुप्त ने दक्षिण भारत के विजय की ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई। दक्षिण भारत के विजय निमित्त मध्य भारत के विस्तीर्ण जंगलों को पारकर उत्तरी भारत के विजेता को जाना

---

१. जायसवाल—हिस्ट्री आफ़ इंडिया (१५०–३५०) पृ० ३५।
२. वही (१५०–३५०) पृ० १३३।
३. एलन—गुप्त कायन पृ० २२; इ० म्यू० कै० प्लेट २२ नं० ९।
४. इ० हि० क्वा भाग १ पृ० २५६।
५. हिस्ट्री आफ़ इंडिया (१५०–३५०) पृ० १३३।
६. एंशेंट हिस्ट्री आफ़ डेकेन पृ० ३१।
७. ए० इ० भाग १२ पृ० ६९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होगा। समुद्रगुप्त के विषय में भी ऐसी ही बातें हुईं। आर्यावर्त के नरेशों पर अपने प्रताप का सिक्का जमाकर जब समुद्रगुप्त ने दक्षिण भारत के राजाओं को जीतने का मनसूबा बाँधा तो आटविक नरेशों को जीतना उसके लिए नितांत आवश्यक हो गया। अतएव उसने जंगल के राजाओं को जीता तथा अपना सेवक बनाया[1]। एरण की प्रशस्ति से भी यही प्रमाणित होता है कि समुद्रगुप्त ने मध्य भारत के जंगल के राजाओं को जीतकर अपने अधिकार में किया। डा० फ्लीट के कथनानुसार आटविक नरेश संयुक्त प्रांत के गाजीपुर से लेकर मध्य प्रदेश के जबलपुर तक फैले हुए थे[2]।

दक्षिण भारत का विजय

मध्य भारत के जंगलों को पार कर समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ पर आक्रमण किया तथा शासकों को जीतकर अपने अधीन कर लिया। प्रयाग की प्रशस्ति में दक्षिण के राजाओं का नाम वर्णित है। अनेक विद्वान् इन राजाओं को स्वतंत्र शासक मानते हैं। दक्षिणापथ के विजय में इन राजाओं से समुद्रगुप्त की मुठभेड़ हुई। अधिक सम्भव है कि भिन्न-भिन्न स्थानों पर इनसे लड़ाइयाँ हुई हों; परन्तु जायसवाल का मत है कि दक्षिण के नरेशों ने मिलकर कोलेरू तालाब के किनारे उत्तर के इस प्रतापी विजेता की प्रगति को अवरुद्ध निमित्त तुमुल युद्ध किया। इस युद्ध में कैरल के मण्टराज तथा कांची के राजा विष्णुगोप इन राजाओं के मुखिया थे, जिनके सेनापतित्व में सब ने लड़ाई में भाग लिया। उनमें कोसल तथा महाकांतार के शासकों के अतिरिक्त अन्य राजा सेनानायक तथा जिले के पदाधिकारी थे। यह युद्ध आर्यावर्त्त की पहली लड़ाई (कौशाम्बी का युद्ध) के पश्चात् ई० स० ३४५-४६ के लगभग हुआ[3]।

यह निश्चित है कि समुद्रगुप्त ने समस्त दक्षिण के राजाओं को परास्त किया और उसका प्रबल प्रताप सर्वत्र छा गया। इस पराक्रमी विजेता ने समस्त पराजित नरेशों को सिंहासन से च्युत किया, परंतु उसने उनके राज्य को गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया। समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ के विजित प्रदेश स्थानीय शासको को लौटा दिये तथा अपनी छत्रच्छाया के अंतर्गत राज्य करने की आज्ञा दी[4]। ऐसे यशस्वी राजा को 'धर्मविजयी' के नाम से

---

१. परिचारकीकृतसर्वाटविकराजस्य (प्रयाग की प्रशस्ति गु० ले० नं० १)।

२. फ्लीट गु० ले० पृ० १४४; ए० इ० भाग ८ पृ० २८४-८७।

३. जायसवाल—हिस्ट्री आफ इंडिया (१५०—३५०) पृ० १३८-३९।

४. सर्वदक्षिणापथराजग्रहणमोक्षानुग्रह जनितप्रतापोन्मिश्रितमहाभाग्यस्य—प्रयाग का लेख—गु० ले० नं० १।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुकारते हैं। कालिदास ने दिग्विजयी रघु को 'धर्मविजयी' राजा कहा है[1]।

दक्षिणापथ के पराजित राजाओं की नामावली हरिषेण ने प्रयाग लेख में निम्नलिखित प्रकार से दी है—

(१) कौसलक महेन्द्र।
(२) महाकान्तारक व्याघ्रराज।
(६) कैरलक मण्टराज।
(४) पैष्ठपुरक-महेन्द्रगिरि-कौट्टूरक स्वामिदत्त[2]।
(५) ऐरण्ड पल्लक दमन।
(६) काञ्चेयक विष्णुगोप।
(७) अवमुक्तक नीलराज।
(८) वैङ्गेयक हस्तिवर्म।
(९) पालक्कोग्रसेन।
(१०) देवराष्ट्रक कुबेर।
(११) कौस्थलपुरक धनञ्जय।

प्रत्येक स्थान तथा राजा के विषय में ऐतिहासिक विवेचन क्रमशः किया जायगा।

---

१. ग्रहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः।
श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार, न तु मेदिनीम्॥ —रघुवंश सर्ग ४।

२. प्रशस्ति में उल्लित इस नाम के पद-विच्छेद में विद्वानों में गहरा मतभेद हैं। डा० स्मिथ तथा डी० आर० भण्डारकर इसमें पदविच्छेद करके दो राजाओं के उल्लिखित होने के सिद्धान्त को मानते हैं। उनके सिद्धान्त के अनुसार पैष्ठपुर का राजा महेन्द्रगिरि तथा कौट्टूर का राजा स्वामिदत्त था। गिरि शब्द गोसाइयों के नाम के अन्त में आया करता है, 'अतएव वह महेन्द्र गिरि को महेन्द्रनामक गोसाईं राजा मानते हैं (इं० हि० क्वा०, भाग १, पृ० २५२)। परन्तु इस मत के मानने में सबसे बड़ी आपत्ति यही प्रतीत होती है कि गिरि शब्द का प्रयोग दशनामी सम्प्रदाय के अन्तर्मुक्त गोसाइयों के लिए उत्तरी भारत में ही 'हुआ करता है। गोसाईं शासक मध्यप्रदेश में किसी समय में बड़े प्रभावशाली थे; परन्तु चौथी शताब्दी में गोसाईं के लिए गिरि शब्द का प्रयोग तथा सुदूर दक्षिण में गोसाईं शासक का अस्तित्व दोनों ही सन्देहजनक है। अतएव महेन्द्रगिरि को शासक का नाम न मानकर स्थान-विशेष का ही नाम मानना उचित है। इसलिए इस शब्द के द्वारा स्वामिदत्त नामक शासक का ही उल्लेख लेखक को युक्तियुक्त प्रतीत होता है। बहुमत भी इसी पक्ष में है (जायसवाल—हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० १३७; फ्लीट—गुप्त लेख, पृ० ७; रायचौधरी—हिस्ट्री, पृ० ३६६; रामदास—इं० हि० क्वा०, भा० १, पृ० ६८१; बड़ुआ—प्राचीन ब्राह्मी प्रशस्ति. पृ० २२४)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१. कोसल महेन्द्र

दक्षिणापथ का पहला नरेश महेन्द्र कोसल का राजा था। यहाँ पर कोसल से अभिप्राय दक्षिण कोसल का समझना चाहिए। यह तो सुप्रसिद्ध बात है कि भारत में दो कोसल थे—उत्तर कोसल तथा दक्षिण कोसल। उत्तर कोसल की राजधानी अयोध्या थी, अतः यह प्रदेश आर्यावर्त के ही अंतर्गत था। दक्षिणापथ में उल्लिखित होने के कारण यहाँ कोसल शब्द दक्षिण-कोसल के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। इसमें वर्त्तमान मध्यप्रदेश के विलासपुर, रायपुर तथा सम्भलपुर के जिले सम्मिलित हैं। इसकी राजधानी श्रीपुर थी जो आजकल रायपुर जिले का सिरपुर नामक नगर है[1]। राजा महेन्द्र के विषय में अन्य कोई साक्ष्य प्राप्य नहीं है।

२. महाकान्तारक व्याघ्रराज

राजा व्याघ्रराज महाकान्तार का शासक था। महाकान्तार मध्यप्रदेश के विस्तीर्ण जंगलों के लिए प्रयुक्त हुआ है। अतः इस राजा की स्थिति गोंडवाना के पूर्व वनमय प्रदेश में थी। कुछ लोग इसे गंजाम तथा विजगापट्टम जिले के झारखण्ड बतलाते हैं[2]। यह व्याघ्रराज कौन था? इसके विषय में अभी तक कोई निश्चित मत स्थिर नहीं है। यह व्याघ्रराज गंज शिलालेख के वाकाटक पृथ्वीषेण प्रथम का पादानुध्यात व्याघ्रदेव हो सकता है[3]। डा० भण्डारकर व्याघ्रराज की समानता दूसरे ही व्याघ्रराज से बतलाते हैं जो उच्चकल्प के राजा जयन्त (ई० स० ४२३) का पिता था और वाकाटकों के अधीनस्थ शासन करता था[4]।

३. कैरलक मण्टराज

मण्टराज कैरल देश का राजा था। कैरल केरल का दूसरा रूप है। इसे दक्षिण का मालावार नहीं समझना चाहिए। दक्षिण कोसल तथा मद्रास के मध्य इसकी स्थिति होनी चाहिए। डा० कीलहार्न इसकी समता गोदावरी तथा कृष्णा के बीच कोलेरु कासार से बतलाते हैं[5]। डा० रायचौधरी इसे मध्यप्रदेश में स्थित मानते हैं। महाकवि घोयी के पवनदूत में केरल लोगों का संबंध ययाती नगरी से उल्लिखित है[6]। यह नगरी सोनपुर के समीप महानदी के किनारे केरल देश की राजधानी थी। कैरल का नाम महाकांतार के बाद उल्लिखित है, अतएव यह स्थान उड़ीसा तथा मद्रास प्रदेश के मध्य में होना चाहिए।

---

१. इ० हि० क्वा० भा०, १० (१९३४), पृ० ६५।
२. वहीं, पृ० ६८४।
३. वाकाटकानां महाराज श्री पृथ्वीषेणपादानुध्यातो व्याघ्रदेव मातापित्रोः पुण्यार्थम्—गु० ले० नं० ५४।
४. इं०, हि० क्वा०, भा० १, पृ० २५१।
५. ए० इ०, भा० ११, पृ० १८९।
६. लीलां नेतुं नयनपदवीं केरलीनां रतेश्चेत्, गच्छेः ख्यातां जगति नगरीं अख्ययातां ययातेः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४. पैष्ठपुरक-महेन्द्रगिरि-कौट्टूरक-स्वामिदत्त

स्वामिदत्त इन तीन स्थानों—पैष्ठपुर, महेन्द्रगिरि तथा कौट्टूर—का शासक था। मद्रास प्रांत के गोदावरी जिले का पीठापुर पैष्ठपुर है। सम्भवतः यही स्थान कलिङ्ग देश का प्रधान नगर था। महेन्द्रगिरि तथा कौट्टूर आजकल गंजाम जिले में हैं। महेन्द्रगिरि पूर्वीघाट की पहाड़ियों का मूलस्थान है। कौट्टूर महेन्द्रगिरि से बारह मील दक्षिण-पूर्व में आज भी कोटूर के नाम से विख्यात है। अतः यह स्वामिदत्त कलिङ्ग देश का राजा विदित होता है।

५. एरण्डपल्लक दमन

राजा दमन एरण्डपल्ल नामक स्थान का शासक था जो समुद्रगुप्त के द्वारा पराजित हुआ। इस शासक के विषय में कुछ निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है, परन्तु एरण्डपल्ल को फ्लीट खानदेश मानते हैं। प्रयाग की प्रशस्ति में यह स्थान गिरि कौट्टूर के पश्चात् उल्लिखित है। अतएव इसे खानदेश में स्थित नहीं मान सकते। कलिङ्ग के राजा देवेन्द्र वर्मा के सिद्धान्त ताम्रपत्र में एरण्डपल्ल नामोल्लेख आया है; इसलिए कलिङ्ग के समीप गञ्जाम जिले में स्थित चिकाकोल के समीप एरण्डपल्ली से इसकी समता की जा सकती है। नामों के क्रमशः उल्लेख से एरण्डपल्ली से समीकरण युक्ति-युक्त प्रतीत होता है।

६. काञ्चेयक विष्णुगोप

विष्णुगोप नामक राजा काञ्ची का शासक था जो प्राचीन काल में पल्लवों की राजधानी थी। समुद्रगुप्त से मुठभेड़ करनेवाले राजा विष्णुगोप के व्यक्तित्व के विषय में मतभेद है। डा० कृष्णस्वामी का कथन है कि इस विष्णुगोप का समीकरण पल्लवों के प्राकृत तथा संस्कृत लेखवाले विष्णुगोप से नहीं कर सकते[1]। यह तो निर्विवाद है कि पल्लवों का संबंध सर्वदा काञ्ची से था; अतएव वहाँ का शासक विष्णुगोप अवश्य ही पल्लव राजा होगा।

७. अवमुक्तक नीलराज

नीलराज अवमुक्त नामक स्थान का राजा था। इसके विषय में कोई साक्ष्य ज्ञात नहीं है। कुछ लोगों का कथन है कि नीलराज गोदावरी के समीप देश का शासक था[2]।

८. वैङ्गेयक हस्तिवर्म

यह स्थान मद्रास प्रांत के कृष्णा जिले में स्थित है। इस स्थान का आधुनिक नाम वेङ्गी या पेडवेङ्गी है जिसका शासक हस्तिवर्म था। कुछ विद्वानों का मत है कि हस्तिवर्मन् वेंगी का एक शालंकायनवंशीय राजा था जिसका नाम नन्दिवर्मन् द्वितीय के पेडवेंगी ताम्रपत्र में उल्लिखित है।

---

१. कनट्रीब्यूशन आफ़ साउथ इंडिया, पृ० १६५।

२. हिस्ट्री आफ़ इंडिया (१५०–३५०), पृ० १३८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। यह ताम्रपत्र भी शालंकायन वंश का ही है[1]। इस राजा को हुल्स पल्लववंशी नरेश मानते हैं[2]। बहुत सम्भव है कि पल्लवों का अधिकार वेङ्गी पर भी हो तथा उसी के वंशज वहाँ का शासन करते हों।

(९) पालक्कोग्रसेन

राजा उग्रसेन पालक्क का शासक था। इस दक्षिणापथ के नरेश के विषय में कुछ भी निश्चित बातें मालूम नहीं हैं। कुछ विद्वान् सुदूर दक्षिण में मालाबार के पालघाट से पालक्क की समता मानते हैं[3]। परन्तु यह मत मान्य नहीं है। पल्लवों के ताम्रपत्र में पालक्क का नाम आया है।[4] अतएव सम्भवतः यह स्थान पल्लवों के अधिकार में होगा, जहाँ उनके प्रतिनिधि शासक थे। इससे प्रकट होता है कि पालक कृष्णा जिले में कोई स्थान था।

(१०) देवराष्ट्रक कुवेर

देवराष्ट्र स्थान का राजा कुवेर था। इसे कतिपय विद्वान् महाराष्ट्र देश मानते हैं[5]। किन्तु यह मत सर्वथा अमान्य है। देवराष्ट्र एलमंचि कलिङ्ग (जिसका आधुनिक नाम येलमंचिली है) देश का एक जिला (विषय) था जिसका नाम पूर्वी चालुक्य राजा भीम के दानपत्र में उल्लिखित है[6]। देवराष्ट्र कृष्णा ज़िले के समीप आंध्र-देश का कोई स्थान था जिसके शासक कुवेर के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है।

(११) कौस्थलपुरक धनञ्जय

राजा धनञ्जय कौस्थलपुर का शासक था। इस स्थान तथा इसके शासक धनञ्जय के विषय में प्रामाणिक बातें ज्ञात नहीं हैं। डा० वारनेट का मत उचित ज्ञात होता है कि कौस्थलपुर आरकाट में स्थित कुट्टलुर नामक स्थान था[7]।

समुद्रगुप्त का आक्रमण-मार्ग

यह विचारणीय प्रश्न है कि समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ के विजय में किस मार्ग का अवलम्बन किया तथा वह पुनः उत्तरीय भारत में किस दिशा से लौटा। प्रशस्ति में उल्लिखित राजाओं की नामावली से प्रकट होता है कि समुद्रगुप्त जगल के राजाओं को जीतकर मध्यप्रदेश पहुँचा।

---

१. जरनल आफ़ आंध्र हि० रि० सेक्शन, १, पृ० ९२।
२. इं० एन०, भा० ९, पृ० १४२।
३. जे० आर० ए० एस० १९१७, पृ० ८७३।
४. वेकय्या की वार्षिक रिपोर्ट, १९०४-५।
५. इं० हि० क्वा०, भा० १, पृ० ६४८।
६. मद्रास रिपोर्ट आन एपिग्राफी १९०९, पृ० १०८-९।
७. कलकत्ता रिव्यू, १९२४, पृ० २५३ नोट।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वहाँ से महाकोसल तथा महाकान्तार के मार्ग से होता हुआ कलिंग के समीप उसने समस्त नरेशों को परास्त किया। दक्षिण-पूरब के प्रदेशों को अपने अधीन कर समुद्रगुप्त ने काञ्ची पर आक्रमण किया। परंतु यह संदिग्ध है कि इस प्रतापी गुप्तनरेश ने पल्लवों की राजधानी काञ्ची नगरी पर धावा किया हो, क्योंकि पल्लव राज्य कृष्णा तक विस्तृत था। प्रायः युद्ध में सीमा पर ही राजाओं में मुठभेड़ होती है। इस कारण विष्णुगोप ने कृष्णा के समीप राज्य सीमा पर समुद्रगुप्त को आगे बढ़ने से अवश्य ही रोका होगा। बनर्जी महोदय का मत है कि सम्भवतः स्वामिदत्त, दमन तथा कुबेर ने विष्णुगोप के साथ संघ बनाकर समुद्रगुप्त का सामना किया था[1]। उपरियुक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त का आक्रमण-मार्ग महाकोसल से दक्षिण-पूरब भाग होकर कृष्णा तक पहुँचा था।

समुद्रगुप्त ने इस मार्ग से दक्षिण में आक्रमण किया; परन्तु उसके प्रत्यागमन-मार्ग के विषय में गहरा मतभेद है। यदि एरण्डपल्ल की समता खानदेश में स्थित एरण्डोल, पालक्क की पालघाठ तथा देवराष्ट्र की महाराष्ट्र से मानी जाय तो यह सम्भव है कि समुद्रगुप्त कोसल के पूर्वी भाग में होता हुआ पश्चिम से लौटा। परन्तु विद्वानों का यह मत युक्तिसंगत नहीं है। प्रथम तो इन स्थानों का समीकरण संदिग्ध है और हमारे मत में ये स्थान (एरण्डपल्ल, पालक्क व देवराष्ट्र) इन स्थानों से सर्वथा भिन्न हैं। अतः समुद्रगुप्त का पश्चिम के मार्ग से लौटना प्रमाणित नहीं होता। इससे भी प्रवल पोषक प्रमाण यह है कि वाकाटकों के पराजय का वर्णन कहीं नहीं है। गुप्तों का समकालीन वाकाटक वंश एक प्रतापी राज-वंश था। इसका मूलस्थान, जैसा कि पहले बतलाया गया है, मध्यभारत में था। परन्तु उस समय इसका प्रताप बुन्देलखण्ड से लेकर कुन्तल (करनाटक) तक फैला था। इस वंश का प्रथम पृथ्वीषेण समुद्रगुप्त का समकालीन शासक था; इसी के लड़के द्वितीय रुद्रसेन के साथ समुद्रगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपनी कन्या का विवाह किया था। यदि समुद्रगुप्त पश्चिम के मार्ग से लौटता तो प्रथम पृथ्वीषेण के साथ उसकी मुठभेड़ अवश्य होती और उस विजय-वार्ता को समुचित शब्दों में हरिषेण अवश्यमेव वर्णित करता। परन्तु प्रयाग की प्रशस्ति में ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख न होने से यही प्रतीत होता है कि समुद्रगुप्त पश्चिम के मार्ग से लौटा ही नहीं। अपितु वह जिस पूर्वी भाग से गया था उसी मार्ग से लौटा।

सीमांत राज्यों का विजय

समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ के राजाओं को परास्त कर सीमांत नरेशों (प्रत्यंत नृपतियों) को विजय करने की ठानी। इस विजय-यात्रा में दो प्रकार के शासकों को उस गुप्त नरेश ने परास्त किया जिनका नामोल्लेख हरिषेण ने किया है। इन पराजित नरेशों में पाँच भिन्न-भिन्न प्रदेशों

१. राखालदास बैनर्जी कृत हिस्ट्री आफ ओरिसा, भाग १, पृ० ११६-१७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के शासक थे जो नृपति शब्द से सम्बोधित किये गये हैं। इन राजाओं के अतिरिक्त नव राज्यों का नाम मिलता है जो गण राज्य के नाम से पुकारे जाते हैं। इन गणराज्यों की शासन-प्रणाली उन पाँच राज्यों से भिन्न थी, इसीलिए इसके नाम के साथ नृपति शब्द का उल्लेख नहीं मिलता। अतएव इस यात्रा में समुद्रगुप्त ने उत्तर तथा पूरब के राजाओं तथा पश्चिम के नव गण-राज्यों को अपने अधीन किया।

समुद्रगुप्त की नीति इन राजाओं के प्रति भिन्न थी। उसने अपने प्रबल शासन से उनको सब प्रकार का कर देने, आज्ञा मानने तथा प्रणाम करने के लिए बाधित किया[1]। समुद्रगुप्त द्वारा पराजित समस्त सीमांत-राजाओं के नाम नहीं मिलते, परंतु इनके राज्यों की निम्न नामावली का उल्लेख प्रयाग की प्रशस्ति में मिलता है :—

(१) समतट

सर्वप्रथम समुद्रगुप्त ने पूरब के राज्यों पर आक्रमण किया जिसमें समतट का पहला नाम है। यह पूर्वी बंगाल के समुद्रतट का प्रदेश है। यह गंगा तथा ब्रह्मपुत्र की धाराओं के मध्यभाग में स्थित है। कोमिल्ला के समीप कर्मान्त इसकी राजधानी थी[2]।

(२) उवाक

समतट के पश्चात् उवाक का नाम आता है जिसपर समुद्रगुप्त ने आक्रमण किया। इस राज्य की सीमा में उत्तरी बंगाल के बोगरा, दीनाजपुर तथा राजशाही के जिले सम्मिलित थे। इनका नाम समतट तथा कामरूप के बीच होने के कारण प्रतीत होता है कि ढाका और चटगाँव जिले से सीमित राज्य का नाम उवाक हो।

(३) कामरूप

इसका आधुनिक नाम असम है। परन्तु प्राचीन काल में कामरूप प्राग्ज्योतिष राज्य का एक भाग था।

(४) नेपाल

यह राज्य आज भी इसी नाम से संयुक्त प्रांत तथा बिहार के उत्तर में स्थित है। सम्भवतः प्राचीन नेपाल इतना विस्तृत नहीं था। समुद्रगुप्त का समकालीन जयदेव प्रथम नेपाल का शासक था; परन्तु इसका नाम प्रशस्ति में उल्लिखित नहीं है। इसी राजा के समय से नेपाल में गुप्त संवत् का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

(५) कर्तृपुर

समुद्रगुप्त से पराजित सबसे अंतिम उत्तर का राज्य कर्तृपुर है जिसके आक्रमण के पश्चात् समुद्रगुप्त पश्चिम की ओर बढ़ा। इस राज्य का आधुनिक नाम कर्तारपुर है जो पंजाब

---

१. सर्वकरदानआज्ञाकरणप्रणामागमनपरितोषितप्रचण्डशासनस्य (प्रयाग की प्रशस्ति; गु० ले० नं० १)।

२. भट्टसाली—आइकोनोग्राफी, पृ० ४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के जालंधर जिले में स्थित है। नेपाल के पश्चात् समुद्र ने कर्तृपुर पर धावा किया था, सम्भवतः यह राज्य कमायूं, गढ़वाल तथा रुहेलखण्ड में सीमित हो।

गण-राज्य

गुप्तवंशी इस पराक्रमी विजेता ने पूरब और उत्तर के राजाओं को परास्त कर अपनी दृष्टि पश्चिम की ओर फेरी। ये गण-राज्य बहुत प्राचीन काल से भारत के पश्चिमी प्रांतों में शासन करते थे। उन समस्त संघों का समुद्रगुप्त ने समूल नाश कर दिया और उसी समय से भारत में संघ शासन का अंत हो गया। समुद्रगुप्त की नीति सबके लिए एक ही थी। सभी ने उसकी अधीनता स्वीकार की और राजकीय 'कर' अर्पित कर सीमा पर शासन करते रहे। प्रयाग की प्रशस्ति में इन नव संघों का नाम मिलता है :—

(१) मालव

नव गण-राज्यों में मालव का नाम सर्वप्रथम मिलता है। मालव नाम की एक बहुत प्राचीन जाति थी जो उत्तर-पश्चिम में निवास करती थी। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में ग्रीक लोगों ने मल्लोई (Malloi) के नाम से इसका उल्लेख किया है। सिकन्दर से भी मालव लोगों की मुठभेड़ हुई थी। कालान्तर में इन लोगों ने अपना निवास राजपूताने में स्थापित किया जहाँ पर शक राजा नहपान के जामाता उषवदात से मालवों का युद्ध हुआ था। इस जाति के निवास के कारण उस स्थान का नाम 'मालवा' हो गया। विक्रम संवत् से भी इनका संबंध बतलाया जाता है और इसी कारण विक्रम संवत् को 'मालव संवत्' भी कहते हैं[1]। समुद्रगुप्त के समय में यह जाति मध्यभारत में निवास करती थी। ई० तीसरी सदी के बहुत से सिक्के जयपुर राज्य के नागर स्थान में मिले हैं जिन पर 'मालवानां जयः' या 'मालवगणस्य जयः' लिखा है[2]।

(२) आर्जुनायन

यह गण-नामावली की दूसरी जाति है जो समुद्रगुप्त के हाथों परास्त हुए। बृहत्संहिता में इसका नाम यौधेय के साथ आता है तथा लेख में मालव और यौधेय के बीच में उल्लिखित है। इस आधार पर यह प्रकट होता है कि यह जाति मध्यभारत में मालवों तथा यौधेयों के निवासस्थान (पूर्वी पंजाब) के बीचोबीच निवास करती थी। इस जाति के बहुत से सिक्के भरतपुर व अलवर राज्य में मिले हैं जिन पर 'आर्जुनायनानां जयः' लिखा है[3]।

---

१. मन्दसोर प्रशस्ति में इसी संवत् में काल-गणना दी गई है—
मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये। गु० ले० नं० १८।

२. जे० आर० ए०एस०' १८९७, पृ० ८८३।

३. इ० म्यू० कै०, पृ० १६१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(३) यौधेय

यह जाति भारत के पश्चिमोत्तर प्रांत में बहुत प्राचीन काल से निवास करती थी। पाणिनि ने (ईसा पूर्व ५००) इस जाति को आयुधजीविन संघ में उल्लिखित किया है[१]। ई० स० १५० में महाक्षत्रप रुद्रदामन् ने क्षत्रियों में वीर की उपाधि धारण करनेवाले यौधेयों को परास्त किया था[२]। भरतपुर राज्य में प्राप्त विजयगढ़ लेख में यौधेयों के 'महाराज महासेनापति' उपाधि धारण करनेवाले अधिपति का उल्लेख मिलता है। इन सब विवेचनों से ज्ञात होता है कि यौधेय एक बलशाली जाति समझी जाती थी जिसे समुद्रगुप्त द्वारा पराजित होना पड़ा। संभवतः पंजाब की बहावलपुर रियासत में होनेवाली याहिया नामक जाति यौधेयों की आधुनिक वंशधर है तथा उस प्रदेश का योहियावार नाम इन्हीं यौधेयों से निकला है। यौधेयों के छोटे-छोटे ताँबे के सिक्के मिलते हैं जिन पर 'यौधेयानां गणस्य जयः' या 'भगवतो स्वामिन ब्रह्मण यौधेयदेवस्य' लिखा रहता है[३]। कुषाणों के नष्ट करने में इनका बहुत बड़ा हाथ था।

(४) मद्रक

प्राचीन काल में मद्रकों का निवासस्थान उत्तर-पश्चिम में था। पाणिनि इसे आयुधजीविन संघ के नाम से पुकारते हैं[४]। झेलम तथा रावी के बीच का भाग मद्र-देश के नाम से प्रसिद्ध था[५]। इससे प्रकट होता है कि समुद्रगुप्त ने पश्चिमोत्तर की ओर जाकर इस गण जाति को परास्त किया। इसके पश्चात् समुद्रगुप्त ने पश्चिम की ओर बसनेवाली जातियों पर आक्रमण किया।

(५) आभीर

आभीर जाति की संभवतः दो शाखाएँ थीं जो पंजाब तथा मध्यभारत में निवास करती थीं। सिकन्दर से इनका युद्ध हुआ था। जिनको यूनानी ऐतिहासिकों ने सोड्राई (Sodrai) लिखा है। संस्कृत साहित्य में इनको शूद्र कहते हैं और पतंजलि ने भी महाभाष्य[६] में इनका वर्णन किया है। पंजाब की शाखा के अतिरिक्त आभीर लोग पश्चिमी राजपुताना और मध्यभारत में निवास करते थे। दूसरी शताब्दी में आभीर लोगों का प्रताप विशेष रूप से फैला। इसी समय इन्होंने पश्चिमी भारत के शासक महाक्षपत्र को परास्त किया और आभीर ईश्वर-

---

१. अष्टाध्यायी ५।३।११४

२. सर्वक्षत्राविष्कृतवीरशब्द जातोत्सेकाविधेयानां यौधेयाना (इ० ए०, भा० ८, पृ० ४७)।

३. क्कायन आफ़ ऐंशेंट इंडिया, प्लेट ६।

४. मद्रवृज्ययोः कन्।

५. आरके० सर्वे रिपोर्ट, भा० २, पृ० १४।

६. महाभाष्य १।२।३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेन ने शासक का स्थान ग्रहण कर लिया था[1]। आभीरों के निवासस्थान होने के कारण झाँसी तथा भिलसा के मध्यभाग को आहिरवाड़ा कहते हैं[2]। समुद्रगुप्त ने इस बढ़ते हुए आभीरों के प्रवाह को रोका जिसके कारण ये उसके अधीन हो गये।

(६) प्रार्जुन

इस गण-राज्य के विषय में अभी तक बातें अज्ञात हैं। इसका नाम मध्य भारत के संघ-राज्यों के साथ उल्लिखित है अतएव ये भी मध्य भारत में कहीं स्थित होंगे।

(७) सनकानीक

यह भी मध्यभारत का गण-राज्य था। समुद्रगुप्त के पुत्र द्वितीय चंद्रगुप्त के उदयगिरि लेख में सनकानीक महाराजा का वर्णन मिलता है कि सनकानीक शासक गुप्तों के अधीन थे[3]। इससे प्रकट होता है कि समुद्रगुप्त के समय में ही सनकानीक शासक परास्त हुए जो सम्भवतः उदयगिरि प्रदेश (आधुनिक भिलसा) के समीप निवास करते थे।

(८) काक

काक नामक गण-राज्य के विषय में प्रामाणिक बातें उपलब्ध नहीं हैं। पराजित गण-राज्यों की नामावली से यही ज्ञात होता है कि गुप्त नरेश ने इसके शासक को भी परास्त किया। महाभारत (६, ९, ६४) में भी काक लोगों का वर्णन मिलता है (ऋषिका विदर्भाः काका तुंगना परितुंगना)। समुद्रगुप्त के पुत्र द्वितीय चंद्रगुप्त का एक लेख काकनाड (साँची) नामक स्थान से मिला है जिससे प्रकट होता है कि यह स्थान समुद्रगुप्त के समय में गुप्तों के अधीन हो गया था[4]। इस लेख के आधार पर प्रकट होता है कि साँची के समीपवर्ती प्रदेश का नाम काक या काकनाड़ था। जायसवाल भिलसा से बीस मील उत्तर काकपुर नामक स्थान में काकों का निवासस्थान बतलाते हैं[5] जिसका नाम संभवतः काक जाति के निवास के कारण पड़ा हो।

(९) खर्परिक

इस गण-राज्य का नाम मध्यभारतीय संघों में उल्लिखित होने के कारण यह ज्ञात होता है कि इनका निवासस्थान मध्य प्रांत हो[6]।

---

१. गुण्डा की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि ईश्वरसेन आभीरों का सेनापति था। परन्तु नासिक गुहा नं० १० के लेख में आभीर ईश्वरसेन दो वर्ष का शासनकर्त्ता प्रकट होता है—आभीरस्य ईश्वरसेनस्य द्वितीय वत्सरे।

२. जे० आर० ए० एस० १८९७ पृ०, ८९१।

३. गु० ले० नं०, ३।

४. गु० ले० नं० ५।

५. जे० बी० ओ० आर० एस०, २८।

६. इ० हि० क्वा०, १९२५, पृ० २५८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विदेश में प्रभाव

समुद्रगुप्त की विजय-यात्रा की दुंदुभि समाप्त होने पर उसके दिग्विजय का प्रताप सुदूर देशों में फैल गया। उस विजेता की अतुल कीर्ति इस चरम सीमा को पहुँची कि विदेशी राज्यों को बाधित होकर उससे मित्रता की भीख माँगनी पड़ी। इसी मैत्री के कारण उन पर गुप्त नरेश ने आक्रमण नहीं किया तथा उनका राज्य शांतिमय रहा। विदेशी राजाओं ने केवल मित्रता का दिखलावा नहीं किया प्रत्युत उसे कितनी ही चीजे भेंट में दी। इन नरेशों ने आत्म-निवेदन, अपनी कन्याओं की भेंट तथा अपने राज्य (विषय-मुक्ति) में शासन करने के लिए गरुड़ की मुहर से मुद्रित अधिकार (Charter, फ़रमान) माँगे[1]। इन विदेशी राजाओं का नाम प्रयाग की प्रशस्ति में निम्न प्रकार से उल्लिखित है—'दैवपुत्र शाहि शाहानुशाहि शकमुरुण्डैः सैंहलका-दिभिश्च'।

इसमें किन किन राजाओं का उल्लेख है, इस विषय में गहरा मतभेद है। कतिप्रय विद्वान् अनुमान करते है कि इस उल्लेख से पाँच राजाओं—(१) दैवपुत्र शाही, (२) शाहानुशाहि, (३) शक, (४) मुरुण्ड तथा (५) सैंहल का बोध होता है[2]। दूसरे लोग चार राजाओं का उल्लेख मानते हैं। इन भिन्न-भिन्न मतों का कोई विशेष पार्थक्य न होने से यह मानना युक्तिसंगत है कि दैवपुत्र शाहि शाहानुशाहि की पदवी से एक ही नरेश का बोध होता है। इसी प्रकार शक, मुरुण्ड तथा सैंहल का भी नाम उसी के साथ उल्लिखित है।

(१) दैवपुत्र शाहि शाहानुशाहि

यह एक पदवी है जो विदेशी राजा के लिए प्रयोग की गई है। पश्चिमोत्तर प्रांत में एक कुषाण नामक विदेशी जाति गुप्तों से पहले ही शासन करती थी। इन राजाओं के लेख तथा सिक्के पर इस पदवी का उल्लेख मिलता है।[3] कुषाणों के नष्ट होने के पश्चात् बहुत सी जातियाँ गंधार के समीप शासन करती थीं। इसका नाम किदार कुषाण है जो बड़े कुषाणों के स्थान पर पश्चिमोत्तर प्रांत में निवास करने लगीं। उस समय कोई भी उस प्रदेश में प्रभावशाली राजा नहीं

---

१. आत्मनिवेदनकन्योपायनदानगुरुत्मकङ्कखविषयभुक्तिशासनयाचना—फ्लीट-गु० ले० नं० १।

२. एलन—गुप्त क्वायन पृ० ७९।

३. शाहानुशाहि ईरान की प्रभुत्व-सूचक राजाओं की पदवी है। इनका ही कुषाणों ने अनुकरण किया तथा अपने लेखो व सिक्कों पर इसे स्थान दिया। संस्कृति में इस पदवी को महाराजा राजति राजा के रूप में पाते हैं जिसे हिन्दू राजा भी धारण करते थे। आरा की प्रशस्ति (कार० इन० इन्डी०, भा० २, पृ० ८९) तथा मथुरा के समीप प्राप्त एक लेख में (आर० सर्वे रिपोर्ट-१९११-१२, पृ० १२४) महाराजा राजति राजा व देवपुत्र की उपाधि कुषाण राजाओं के लिए प्रयुक्त है। कुषाण-सिक्कों पर इस पदवी का ग्रीक रूपान्तर शावो-नैनो-शावो (Shao Nano Shao) उत्कीर्ण रहता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। अतएव बहुत संम्भव है, इन छोटे (किदार) कुषाणों ने पहले के कुषाणों की इस लंबी पदवी को धारण किया हो। इन्हीं समस्त नरेशों ने समुद्रगुप्त के प्रवल प्रताप के सम्मुख शिर झुकाया तथा उससे मित्रता स्थापित की।

(२) शक

विदेशी राजाओं की नामावली में शक जाति को दूसरा स्थान मिला है। इन्होंने भी पश्चिमोत्तर किदार कुषाणों के सदृश समुद्रगुप्त के प्रताप के सामने सिर झुकाया। गुप्तों से पहले शक जाति पश्चिम तथा मध्य भारत में शासन करती थी। इस शक से सौराष्ट्र के शक क्षत्रप तथा मध्य भारतीय शक नरेशों का तात्पर्य है। इन्हीं शक नरेशों का एक लेख साँची के समीप मिला है जिससे ज्ञात होता है कि महादण्डनायक श्रीधरवर्मन् ई० स० ३१९ के लगभग राज्य करता था[1]। इस लेख के द्वारा मध्यभारत में शकों का अस्तित्व ज्ञात होता है तथा उपरियुक्त बात की पुष्टि होती है। इसमें सन्देह नहीं है कि समुद्रगुप्त के सम्मुख सभी विदेशियों के समान ही शकों का भी स्थान मिला परंतु इसके पुत्र द्वितीय चंद्रगुप्त ने शकों को परास्त कर उनके राज्य को गुप्त-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।[2]

(३) मुरुण्ड

शकों के पश्चात् मुरुण्ड जाति के शासकों ने भी समुद्रगुप्त की शरण ली तथा उसकी छत्र-छाया में शासन करते रहे। मुरुण्ड जाति के विषय में विद्वान् भिन्न-भिन्न अनुमान करते हैं। स्टेनकेनो का कथन है कि मुरुण्ड पृथक् कोई जाति नहीं थी। शक भाषा में मुरुण्ड का अर्थ है स्वामिन्। अतएव शक मुरुण्ड से शक जाति के स्वामी या राजा का बोध होगा। पुराणों में यवन तथा तुषार के साथ मुरुण्ड शब्द मिलता है[3]। अतएव यह प्रतीत होता है कि मुरुण्ड जाति यवनों के साथ पश्चिमोत्तर प्रान्त में निवास करती हो तथा समुद्रगुप्त से उन लोगों ने मित्रता स्थापित की हो।

(४) सैंहल

समुद्रगुप्त का प्रभाव सुदूर पश्चिमोत्तर प्रदेशों में तो फैला था ही, परन्तु इससे भी दूर दक्षिण भारत के समीपस्थ द्वीपों में भी उसकी कीर्ति ने अपना स्थान बनाया। प्रशस्ति में 'सर्वद्वीप वासिभिः' का उल्लेख है परन्तु उनमें केवल सैंहल का नाम ही मिलता है। इस सहल द्वीप से श्री लंका का तात्पर्य है। इसका राजा मेघवर्ण गुप्त विजेता समुद्रगुप्त का समकालीन था जिसका शासनकाल

---

१. ए० इ०, भा० १६, पृ० २३२; जे० आर० ए० एस०, १९२३, पृ० ३३७।
२. राय-चौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री आफ एंसियेंट इंडिया, पृ० ३७३।
३. मत्स्य पुराण।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ई० स० ३५१—७९ तक माना गया है। इसी राजा मेघवर्ण ने समुद्रगुप्त से मित्रता स्थापित की तथा उसके उपलक्ष में अपने दूत के साथ-साथ अमूल्य रत्न भी भेंट में भेजा। मेघवर्ण का विचार था कि बुद्धगया में बौद्ध यात्रियों के विश्राम के लिए एक मठ बनवाया जाय जिसकी आज्ञा उसने गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त से माँगी। समुद्रगुप्त ने अपने सम्मान के बदले में उसे मठ निर्माण की आज्ञा दे दी। मेघवर्ण ने कला-कौशल से युक्त उस मठ में रत्नजटित बुद्ध की प्रतिमा स्थापित करवाई। सातवीं शब्तादी के चीनी बौद्ध यात्री ह्वेनसांग ने उस मठ का सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है[1]। इस वर्णन से प्रकट होता है कि समुद्रगुप्त ने विदेशियों से अपनी मित्रता का निर्वाह किस सीमा तक किया। इस प्रकार गुप्त नरेश का प्रताप हिमालय से लेकर श्रीलंका आदि द्वीपों तक तथा पूरब से पश्चिम पर्यंत विस्तृत था।

(१) राजग्रहण मोक्षानुग्रह = राजाओं को जीतकर, अनुग्रह से उनको पुनः राज्याधिकार देना। यह नीति दक्षिणापथ के राज्यों के प्रति व्यवहृत की गई थी।

(२) राजप्रसमोद्धारण = बलपूर्वक राज्यों को साम्राज्य में मिलाना। इसका प्रयोग आर्यावर्त के राजाओं के प्रति हुआ था।

(३) परिचारकीकृत = सेवक बनाना। वन के नरेशों के साथ इसका व्यवहार हुआ।

(४) करदानाज्ञाकरण प्रणामागमन = कर देना, आज्ञा मानना तथा प्रणाम करना। प्रत्यन्त नृपति तथा गण-राज्यों के साथ समुद्रगुप्त ने इस नीति का व्यवहार किया।

(५) भ्रष्टराज्योत्सन्नराजवंशप्रतिष्ठा = नष्ट राज्यों की पुनः स्थापना करना। दक्षिणापथ के राजाओं के साथ यह नीति व्यवहृत हुई थी। इससे समुद्रगुप्त के विशालहृदय का परिचय मिलता है।

(६) आत्मनिवेदन, कन्योपायन-दान, गरुत्मदङ्क-स्वविषयभुक्ति-शासन-याचना = आत्मसमर्पण, कन्या का विवाह, गरुड़ की मुद्रा से अंकित अपने विषय तथा भुक्ति में राजाज्ञा की भिक्षा माँगना[2]। समुद्रगुप्त ने इस नीति का व्यवहार विदेशी राजाओं के साथ भी किया था।

(७) प्रत्यर्पणा[3] = विजित राजाओं के छीने हुए धन को पुनः लौटा देना।

उपर्युक्त विभिन्न व्यवहृत नीतियों के वर्णन से समुद्रगुप्त की नीति-निपुणता तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति-कुशलता का पूर्ण परिचय मिलता है। अतः यदि समुद्रगुप्त को कुटिल राजनीतिज्ञ कहा जाय तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं होगी। सम्राट् अशोक के पश्चात् समुद्रगुप्त

---

१. बाटर्स, पृ० १७३।

२. कुछ विद्वानों में 'गरुत्मदङ्क-स्वविषयभुक्ति-शासनयाचना' के अर्थ में गहरा मतभेद है। जायसवाल महोदय का मत है कि विदेशियों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर गरुड़ध्वज से अङ्कित समुद्रगुप्त के सिक्कों को अपने राज्य (विषय-भुक्ति) में प्रचलित करने की आज्ञा माँगी थी।

३. स्वभुजबलविजितानेकनरपतिविभवप्रत्यर्पणानित्यनित्यव्यापृतायुक्तपुरुषस्य—प्रयाग की प्रशस्ति।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने पुनः एकराट् साम्राज्य की स्थापना की। इसने ही सर्वप्रथम स्वतंत्रता का शंखनाद किया था। अपनी अद्भुत नीति-निपुणता के कारण इसने गुप्त-साम्राज्य की नींव इतनी सुदृढ़ बनाई कि कई शताब्दियों तक प्रबल पराक्रमी शत्रु इसे हानि पहुँचाने में समर्थ नहीं हो सके।

नोट—(१) **पराक्रमांकस्य**—समुद्रगुप्त की पदवी। उसके स्वर्ण मुद्रा पर भी "पराक्रम" की पदवी अंकित है।

(२) **अनेक गो शत सहस्र प्रदायिन** :—समुद्रगुप्त के वंशजो के अभिलेख में "चिरोत्सन्ना अश्वमेधा हर्तुः" वाक्य का प्रयोग है। यानी उसने वदिक यज्ञ का पुनः प्रचलन किया जो चिरकाल से बन्द सी हो गई थी। परंतु प्रयाग प्रशस्ति में सहस्त्रों गाय-दान का ही वर्णन है। समुद्रगुप्त की स्वर्ण मुद्रा में 'अश्वमेध प्रकार' का सिक्का यह घोषित करता है कि राजा ने अश्वमेध किया था। संभवतः प्रयाग प्रशस्ति अंकन के पश्चात् यज्ञ किया हो जिसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

(४) **महादंडनायक**—डा० अलतेकर का अनुमान है कि वह एक उच्च सैनिक पदाधिकारी था (वाकाटकगुप्त एज, पृ० २७७)। अन्य विद्वान इसे पुलिस विभाग का कर्मचारी बतलाते हैं। वह फौजदारी मामलों का निर्णय करता था।

(३) **लिच्छवि दौहित्रस्य**—इस उपाधि से समुद्रगुप्त लिच्छवि राजकुमारी का पुत्र था, यह सिद्ध हो जाता है। इसी साक्ष्य से प्रथम चंद्रगुप्त की स्वर्ण मुद्रा की सार्थकता प्रकट होती है कि मुद्रालेख में कुमारदेवी लिच्छवि वंश की राजकुमारी थी। प्रयाग प्रशस्ति में इन दो शब्दों के आगे 'महादेव्यां कुमार देव्यायुत्पनाः' वाक्य सारे वैवाहिक कार्य का समर्थन करता है।

(५) **सांधिविग्रहिक**—अंतर्राष्ट्रीय मामलो का मंत्री (परराष्ट्र सचिव)।

(६) **कुमारामात्य**—गुप्त लेखों में विषय (जिला)पति के लिए यह पदवी मिलती है। वैशाली से प्राप्त मुहरों (seals) में भी यह उल्लिखित है।

(७) **खाद्यटपाकिक**—इस पद पर ध्रुवभूति नियुक्त था। संभवतः वह भोजशाला से संबंधित अधिकारी था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रामगुप्त का लेख

पूर्वी मालवा से प्राप्त रामगुप्त के अभिलेखों से इस नरेश की ऐतिहासिकता पर नवीन प्रकाश पड़ा है। मध्यप्रदेश के विदिशा (बेसनगर) से दो मील की दूरी पर स्थित दुर्जनपुर नामक ग्राम से जैन प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं। इसके चरण चौकी (Pedestal) पर लेख उत्कीर्ण हैं। पहला लेख सुरक्षित है। दूसरे की अंतिम पंक्ति नष्ट हो गई है। तीसरे उत्कीर्ण लेख का अंतिम भाग पूर्णतः लुप्त हो गया है।

बनावट के आधार पर ये प्रतिमाएँ गुप्तकालीन प्रकट होती हैं। इसकी लिपि समुद्रगुप्त के एरण लेख से समता रखती है। इसमें 'महाराजाधिराज की पदवी' रामगुप्त के लिए प्रयुक्त है। दुर्भाग्यवश इस राजा की वंशावली का विवरण लेख से अप्राप्त है। तिथि का भी अभाव है। अतएव इसके समीकरण का प्रश्न विवाद से परे नहीं है।

उपाधि, लिपि तथा प्रतिमा की निर्माण कला के आधार पर इस रामगुप्त को 'देवी चंद्रगुप्तम्' के रामगुप्त से समीकरण समीचीन होगा। रामगुप्त ने आचार्य के आदेशानुसार अर्हत की प्रतिमा की स्थापना करायी थी।

यहाँ इसका उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है कि गुप्तवंशी अभिलेखों में समुद्रगुप्त के पश्चात् चंद्रगुप्त का नाम आता है तथा उसे 'तत्परिगृहीत' (उसके द्वारा स्वीकार) कहा गया है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी चंद्रगुप्त ही था।

यों तो गुप्त वंशी नरेशों की तालिका में रामगुप्त का नाम उपलब्ध नहीं होता परन्तु रामगुप्त के संबंध में ऐतिहासिक साक्ष्य एवं विवाद का विवरण उपस्थित करना समुचित होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रामगुप्त

गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त के पश्चात् इस विशाल गुप्त-साम्राज्य का कौन उत्तराधिकारी हुआ, इस विषय में विद्वानों में गहरा मतभेद है। गुप्त लेखों से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त का पुत्र द्वितीय चंद्रगुप्त विक्रमादित्य अपने पिता के बाद राजसिंहासन पर बैठा। परन्तु आधुनिक काल में ऐतिहासिक पंडितों ने गुप्तों के एक नये राजा को खोज निकाला है जिसे वे रामगुप्त के नाम से सम्बोधित करते हैं। उन विद्वानों का कथन है कि समुद्रगुप्त तथा द्वितीय चंद्रगुप्त के मध्यकाल में काच या रामगुप्त नामक एक गुप्त-नरेश ने अल्प समय तक शासन किया। रामगुप्त की संदिग्ध स्थिति के माननेवाले विद्वानों का मत है कि गुप्त-लेखों में इस राजा का उल्लेख नहीं मिलता और न प्रामाणिक लेख ही उपलब्ध हैं। जितने साहित्यिक प्रमाण हैं वे छठी शताब्दी के पूर्व के नहीं हैं। परन्तु ऐसे विवाद में कोई सार नहीं है। अनेक गम्भीर तथा प्रामाणिक साहित्यिक प्रमाणों के आधार पर इस नये राजा रामगुप्त की स्थिति मानने में तनिक बाधा प्रकट नहीं होती। इन साहित्यक प्रमाणों की पुष्टि एक काच नामक सिक्के से होती है जो रामगुप्त का सिक्का माना जा सकता है। इस संक्षिप्त उपक्रम के बाद रामगुप्त की ऐतिहासिकता पर विचार किया जायगा।

काचगुप्त की ऐतिहासिक वार्त्ता

रामगुप्त (काच) के आधारभूत प्रमाणों पर विचार करने से पूर्व इसके संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण से परिचित होना अधिक उचित है। उन प्रमाणों के अध्ययन से पता लगता है कि गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त के बाद उसका पुत्र रामगुप्त राजसिंहासन पर बैठा। यह अत्यन्त बुद्धिहीन तथा कमजोर हृदय का मनुष्य था। रामगुप्त के समकालीन शक राजा ने उस पर आक्रमण किया। संधि के फलस्वरूप इस गुप्त नरेश ने अपनी साध्वी पत्नी ध्रुवदेवी को शकों को समर्पित करने का वचन दिया। इस सन्धि के बाद रामगुप्त के छोटे भाई द्वितीय चंद्रगुप्त ने ध्रुवदेवी का वेष बनाकर शकों के समीप पहुँच गया। इसमें वह सफल हुआ तथा उसने शकपति को मार डाला। इस घटना के पश्चात् रामगुप्त—चंद्रगुप्त या उसके प्रोत्साहक द्वारा—मार डाला गया। पति (रामगुप्त) की मृत्यु के उपरान्त महारानी ध्रुवदेवी ने अपने देवर (द्वितीय चंद्रगुप्त) से विवाह कर लिया और वही चंद्रगुप्त राजसिंहासन पर बैठा। गुप्त वंशी राजा (रामगुप्त) की जीवन-संबंधी इतनी ही घटनाओं का वर्णन मिलता है जिसका अनेक साहित्यिक ग्रथकारों ने अपनी पुस्तकों में उल्लेख या उद्धरण किया है।

साहित्यिक प्रमाण

रामगुप्त के उपरियुक्त संक्षिप्त चरित्र-चित्रण के आधारभूत प्रमाणों का यदि सूक्ष्म रीति से अध्ययन किया जाय तो समस्त वार्ता स्वतः मालूम हो जायगी। इस विचार को तिथिक्रम के अनुसार प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवीचंद्रगुप्तम्

सबसे पहला संस्कृत ग्रंथ 'देवीचंद्रगुप्तम्' नामक नाटक है जिसमें रामगुप्त की जीवन-संबंधी घटनाओं का वर्णन मिलता है। यह नाटक अभी तक अप्राप्य है। परन्तु इसके थोड़े से उद्धरण रामचन्द्र तथा गुणचंद्र कृत 'नाट्यदर्पण' नामक ग्रंथ में मिलते हैं। प्रश्न यह प्रस्तुत होता है कि 'देवीचंद्रगुप्तम्' नाटक का रचयिता कौन है तथा वह किस शताब्दी में वर्त्तमान था। विद्वानों का अनुमान है कि मुद्राराक्षस के कर्त्ता विशाखदत्त ही इस अप्राप्य नाटक के रचयिता हैं[1]। विशाखदत्त अधीन राजवंश में उत्पन्न हुए थे तथा छठी शताब्दी में वर्त्तमान थे। यह नाटककार और शृंङ्गारशास्त्र का ज्ञाता तथा अनेक नाटकों का रचयिता था[2]। राजवंश में उत्पन्न तथा विद्वान् की लेखनी को अप्रामाणिक मानना अनुचित होगा। अतएव 'देवीचंद्रगुप्तम्' के उन ऐतिहासिक उद्धरणों को यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।[3]

(१) यथा देवीचंद्रगुप्ते द्वितीयेंऽके प्रकृतीनामाश्वासनाय शकस्य ध्रुवदेवीसंप्रदाने अभ्युपगते राज्ञा रामगुप्तेनारिवधनार्थं यियासुः प्रतिपन्नध्रुवदेवीनेपथ्यः कुमारचंद्रगुप्तो विज्ञपयन्नुच्यते—

एतत्स्त्रीवेषधारि चन्द्रगुप्तबोधनार्थमभिहितमपि विशेषणसाम्येन ध्रुवदेव्या स्त्रीविषयं प्रतिपन्नम्, इति।

(२) आर्तिः खेदो व्यसनमिष्टद्विरोधः यथा देवीचंद्रगुप्ते राजा चन्द्रगुप्तमाह—

अत्र स्त्रीवेषनिह्नु ते चंद्रगुप्ते प्रियवचनैः स्त्रीप्रत्ययाद्ध्रुवदेव्या गुरुमनुसंतापरूपस्य व्यसनस्य संप्राप्तिः।

(३) इयमुन्मत्तस्य चंद्रगुप्तस्य मदनविकारगोपनपरस्य मनोजशत्रुभीतस्य राजकुलगमनार्थं निष्क्रमसूचिकेति

(४) यथा देवीचंद्रगुप्ते चन्द्रगुप्तो ध्रूवदेवीं दृष्ट्वा स्वगतमाह—इयमपि सा देवी तिष्ठति। यैषा

रम्यां चारतिकारिणीं च करुणाशोकेन नीतां दशाम्
तत्कालोपगतेन राहुशिरसा गुप्तेव चान्द्रीकला।
पत्युः क्लीबजनोचितेन चरितेनानेव पुंसः सतः
लज्जाकोपविषादमीत्यरतिभिः क्षेत्रीकृता ताभ्यते।
अत्र ध्रुवदेव्यभिप्रायस्य चन्द्रगुप्तेन निश्चयः।

---

१. जायसवाल (ज० बि० ओ० रि० सो०, भा० १८, पृ० १७); अलतेकर (वहीं, भा० १४, पृ० २२३); मिराशी (इ० हि० क्वा०, भा० १०, ए० इ, भा० ६२, पृ० २०१),

२. कुर्वन् बुद्ध्या विमर्शं प्रसृतमपि पुनः संहरन्कार्यजातम्
कर्त्ता वा नाटकानामिममनु भवति क्लेशमस्मद्विधो वा।—मुद्राराक्षस ४।३

३. जरनल एशिएटिक, १९२३, पृ० २०१-०६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हर्षचरित

देवीचंद्रगुप्तम् के उद्धरणों के पश्चात् दूसरा शक-रामगुप्त की लड़ाई का प्रमाण बाणकृत हर्षचरित (उ० ६) में पाया जाता है। इसके वर्णन से पता चलता है कि चंद्रगुप्त ने ध्रुवदेवी का स्वांग बनाकर शक राजा को मार डाला। बाण सातवीं सदी के सम्राट् हर्षवर्धन के राजकवि थे। प्रसंगवश जो इन्होंने वर्णन किया है स्वयं दरबार में रहने के कारण सभी बातों से विज्ञ थे। हर्षचरित में निम्नलिखित वर्णन मिलता है :—

अरिपुरे च परकलत्रं कामुकं कामिनीवेशगुप्तः चंद्रगुप्तः शकपतिमशातयत्।

टीकाकार शंकरार्य

बाणकृत हर्षचरित पर टीका करते हुए शंकरार्य ने उपरिलिखित बाण के उद्धरण पर सटीक ऐतिहासिक बातों से पूर्ण टीका लिखी है। शंकरार्य नवीं शताब्दी का टीकाकार है जिसने कामंदक नीतिसार पर भी टीका लिखी। इस पुस्तक की रचना गुप्त काल में हुई थी। अतएव राजनीतिज्ञ टीकाकार उस समय की घटनाओं से सम्भवतः परिचित अवश्य होगा। बाण के बाद चौथा प्रमाणयुक्त विवरण शंकरार्य से मिलता है। टिप्पणी निम्न प्रकार है—

शकानामाचार्यः शकाधिपतिः चंद्रगुप्तभ्रातृजायां ध्रुवदेवीं प्रार्थयमानः चंद्रगुप्तेन ध्रुवदेवीवेषधारिणा स्त्रीवेषजनपरिवृतेन व्यापादितः।

काव्यमीमांसा

इन तीनों प्रमाणों के अतिरिक्त चौथा उल्लेख राजशेखर-कृत काव्यमीमांसा में मिलता है। दसवीं शताब्दी के कन्नौज के शासक यशोवर्मा के राजकवि राजशेखर ने वस्तुस्वरूप का उदाहरण देते हुए अपनी पुस्तक में एक श्लोक लिखा है जिससे रामगुप्त की जीवन-सम्बन्धी घटनाओं का पता चलता है। इसके वर्णन से ज्ञात होता है कि हिमालय पर्वत-माला में रामगुप्त तथा शकों (खसाधिपति) में युद्ध हुआ। शर्मगुप्त ने ध्रुव-स्वामिनी खस राजा को दे दी। वहाँ एक राजा का यश स्त्रियाँ गीतों द्वारा वर्णन करती हैं—

दत्त्वा रुद्धगतिः खसाधिपतये देवी ध्रुवस्वामिनीम्
यस्मात् खण्डितसाहसो निववृते श्रीशर्मगुप्तो नृपः।
तस्मिन्नेव हिमालये गुरुगुहाकोणत्क्वणत्किन्नरे
गीयन्ते तव कार्तिकेयनगर स्त्रीणां गणैः कीर्तयः॥

शृङ्गार-प्रकाश

इन सब साहित्यिक प्रमाणों के साथ-साथ राजा भोज के शृङ्गार-प्रकाश में कुछ उद्धरण मिलते हैं जो इन सब साक्ष्य को सबल बनाते हैं। शृङ्गारप्रकाश में देवीचंद्रगुप्तम् से ही उद्धृत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाक्य मिलते हैं। भोज ११ वीं सदी के धारा के राजा थे। राजा होते हुए भोज बहुत बड़े विद्वान् तथा अनेक ग्रंथों के रचयिता थे। इनके उद्धृत वाक्य से स्पष्ट ज्ञात होता है कि स्त्रीवेषधारी चंद्रगुप्त ने शक राजा को मार डाला।

स्त्रीवेषनिह्न तः चंद्रगुप्तः शत्रोः स्कन्धावारमलिपुरं शकपतिवधायागमत्।

यथा देवीचंद्रगुप्ते शकपतिना परं कृच्छ्रमापादितं रामगुप्तस्कन्धावाराम् अनुजिघृक्षुरुपायान्तराऽगोचरे प्रतिकारे निशि वेतालसाधनम्। अध्यवस्यन् कुमार चंदगुप्त आत्रेयेण विदूषकेन उक्तः।

ऐतिहासिक प्रमाण : संजन प्लेट

इन साहित्यिक प्रमाणों के अतिरिक्त कुछ ऐतिहासिक उल्लेख भी मिलते हैं जिनके वर्णन से इस घटना की पुष्टि होती है। दक्षिण के राजा राष्ट्रकूटवंशज अमोघवर्ष प्रथम का एक लेख मिला है[1]। इस संजन ताम्रपत्र (शक० ७५९) के वर्णन से ज्ञात होता है कि किसी दानी गुप्त-नरेश ने अपने भाई का राजसिंहासन ले लिया तथा उसकी दीन स्त्री को भी ग्रहण किया। इसमें शक नरेश तथा गुप्त राजा का नामोल्लेख नहीं मिलता परन्तु ताम्रपत्र में अमोघवर्ष प्रथम उस गुप्त नरेश से भी अधिक दानशील होने का दावा रखता है। इस लेख में सम्भवतः द्वितीय चंद्रगुप्त का निर्देश किया गया है जिसने रामगुप्त की स्त्री से विवाह किया तथा जो उसके पश्चात् राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। राष्ट्रकूट शासक गोविंद चतुर्थ के काम्बे (ई० सं० ९३०) तथा सांगली अभिलेख (ई० सं० ९३३) में भी वर्णन मिलता है कि साहसांक राजा ने ज्येष्ठ भ्राता को मारकर उसकी पत्नी से विवाह कर लिया[2]।

मुजमलुत् तवारीख

इन अभिलेखों के अतिरिक्त फारसी भाषा में अनुदित ग्रंथ से पता चलता है जिसमें देवी चंद्रगुप्तम् की कथा का प्रतिबिंब मिलता है। यह ऐतिहासिक कथानक ११वीं सदी के मुजमलुत्त-वारीख में वर्णित है[3]। इसके वर्णन के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस इतिहासज्ञ ने इस वार्ता को उसी प्राचीन संस्कृत नाटक से लिया है। जिसे अबुलहसन अली (१०६२ ई०) ने लिखा था वह वृत्तांत इस प्रकार दिया गया है—

राजा रव्वाल तथा वरकमारीस दो भाई थे। रव्वाल के शासन-काल में स्वयंवर में वरक-मारीस को एक राजकुमारी मिली। राजकुमारी के साथ घर लौटने पर रव्वाल उस पर मोहित हो गया तथा राजकुमारी से स्वयं विवाह कर लिया। इस व्यवहार के बाद वरकमारीस विद्याभ्यास में लग गया और एक सुप्रसिद्ध विद्वान् हुआ। रव्वाल के पिता के शत्रु ने उस पर आक्रमण किया।

---

१. ए० इ०, भा० १८, पृ० २४८।

२. ए० इ०, भा० ७, पृ० २६१; ए० इ०, भा० १२, पृ० २४७।

३. इलियट – हिस्ट्री आफ इण्डिया, भा० १, पृ० ११०-१२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पराजित होने पर राजा अपने भ्राता तथा समस्त सरदारों को लेकर पर्वत की चोटी पर शरण ली। उस स्थान पर रव्वाल ने संधि के लिए प्रार्थना की। संधि-स्वरूप रव्वाल ने अपनी स्त्री तथा सरदारों की पुत्रियों को शत्रुओं को समर्पण करने का वचन दिया। इस अपमान जनक वृत्तांत को सुनकर वरकमारीस ने राजा से आज्ञा माँगी कि उसे तथा समस्त सरदार पुत्रों को कुमारियों का स्वांग बनाकर सशस्त्र शत्रु के पास भेजा जाय। ऐसा वेष बनाने पर राजा वरकमारीस को अपने पास रख लेगा तथा दूसरों को अपने सरदारों में बाँट देगा। उसने सोचा कि जब राजा उसे एकान्त में ले जायेंगे तो वह (वरकमारीस) अस्त्र से शत्रु को मार डालेगा। शत्रु की मृत्यु के साथ बिगुल बजेगा और उसे सुनकर समस्त नवयुवक शत्रुओं पर टट पड़ेंगे। वरकमारीस को आवाज को सुनते ही सैनिक शत्रु-सेना पर धावा करेंगे जिससे रव्वाल की विजय होगी।

इस युक्ति के सफल होने पर रव्वाल विजयी हुआ। इस शौर्य कार्य के बाद भी वजीर ने वरकमारीस के प्रति रव्वाल के दिल में सन्देह पैदा कर दिया। इस कारण वह पागल हो गया और शहर में उन्मत्त की तरह घूमने लगा। संयोगवश इसी वेष में वरकमारीस एक दिन राजमहल में प्रवेश कर गया। वहाँ कुछ साधारण कार्य के पश्चात् राजा पर टूट पड़ा और वरकमारीस ने रव्वाल के मृत शरीर को सिंहासन से नीचे गिरा दिया। तदनन्तर वह वजीर तथा जनता के सम्मुख राजसिंहासन पर बैठा और रानी से विवाह कर लिया। वरकमारीस का प्रताप दूर तक फैला और राजा के रूप में यशस्वी सिद्ध हुआ।

यह वृत्तान्त रामगुप्त, शकों की लड़ाई और विक्रमादित्य तथा ध्रुवदेवी की ऐतिहासिक वार्ता को लक्ष्य करता है। मुजमलुत्तवारीख के रचयिता ने उसी घटना का वर्णन कुछ भिन्नता के साथ दिया है। इस कथानक में रव्वाल के नाम की समता रामगुप्त से करना कठिन है परन्तु वरकमारीस के शौर्य की समता विक्रमादित्य से होती है। देवीचंद्रगुप्तम् के उद्धृत अंशों को पढ़ने से सब बातें स्पष्ट हो जाती हैं तथा दोनों वर्णनों में बहुत अधिक साम्य है।

प्रमाणों की प्रामाणिकता

इन समस्त ऐतिहासिक प्रमाणों पर ध्यान देने से रामगुप्त की जीवन-संबंधी सच्ची घटनाओं का ज्ञान होता है। इन सब विद्वानों तथा राजनीति के पण्डितों के कथित या उद्धृत अंशों की प्रामाणिकता में संदेह नहीं होता। यद्यपि साहित्यिक प्रमाण ईसा की छठी सदी से पूर्व के नहीं हैं परंतु उस समय जो जनश्रुति वर्तमान थी उसको भी सर्वथा निराधार नहीं माना जा सकता। विशाखदत्त चंद्रगुप्त की जीवन घटनाओं से अनभिज्ञ न होगा। देवीचंद्रगुप्त के कथानक को सभी ने बाण, शंकरार्य, भोज तथा राष्ट्रकूट लेखों के रचयिता ने सत्य माना तथा उसका परिपोषण किया है। इन समस्त प्रमाणों के अध्ययन से यह प्रकट होता है कि रामगुप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अत्यंत शक्तिहीन और असमर्थ राजा था[1] उसके राज्य पर शकों ने आक्रमण किया[2]; परंतु राज्य को सुरक्षित रखने के लिए उसने शत्रुओं से संधि कर ली। संधि के परिणामस्वरूप उसने अपनी पत्नी ध्रुवदेवी को उन शकों को समर्पण करना स्वीकार कर लिया। उसका कनिष्ठ भ्राता चंद्रगुप्त अपने कुल की मर्यादा का ऐसा पतन देख न सका। उस वीर तथा साहसी योद्धा[3] ने ध्रुवदेवी का वेष बनाकर शत्रुओं के शिविर में जाने का निश्चय किया ताकि उन दुष्ट नीचों (शकों) के राजा को मार डाले[4]। वह (चंद्रगुप्त) स्त्रीवेषधारी सैनिकों के साथ[5] वहाँ पहुँचा जहाँ पर शक राजा ध्रुवदेवी (ध्रुवस्वामिनी) के आगमन का रास्ता देख रहा था।[6] उसके शिविर में प्रवेश कर कृत्रिम वेषधारी चंद्रगुप्त ने उसकी हत्या कर डाली।

गुप्तों के लेख से भी उसकी ऐतिहासिकता प्रतिपादिव हो जाती है। गुप्तवंशी बिलसद अभिलेख में प्रथम कुमारगुप्त को द्वितीय चंद्रगुप्त की महादेवी ध्रुवदेवी से उत्पन्न कहा गया है (महाराजाधिराज श्रीचंद्रगुप्तस्य महादेव्यां ध्रुवदेव्यां उत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्तस्य)।

काच की स्वर्णमुद्रा

इन साहित्यिक प्रमाणों की पुष्टि काच नामक स्वर्णमुद्रा से किसी अंश में होती है। यह सिक्का समुद्रगुप्त के ध्वजधारी प्रकार से मिलता है किंतु इसके पुरो भाग पर काच के हाथ में 'चक्रध्वज' है। पृष्ठ भाग पर देवी की खड़ी आकृत है। इस तरह का सिक्का लखनऊ तथा ब्रिटिश संग्रहालय में वर्तमान है तथा बयाना ढेर में भी मिला है। तौल समुद्रगुप्त के सिक्के के बराबर है। यह कौन गुप्त राजा था यह कहना कठिन है। काच का नाम गुप्त वंशावली में नहीं मिलता। केवल वलिया से समुद्रगुप्त तथा काच के सिक्के एक साथ उपलब्ध हुए हैं। अधिकतर विद्वान् प्रायः काच को गुप्त वंश का एक राजा मानते हैं। इसमें दो मत हैं। पहले मत के अनुसार समुद्रगुप्त तथा काच एक ही व्यक्ति थे तथा द्वितीय मतानुसार वह समुद्रगुप्त का पुत्र था। किंतु किसी मत के लिये प्रबल प्रमाण नहीं मिलते। काच के सिक्के की तौल ११६ ग्रेन थी जो समुद्रगुप्त के बाद १२६ ग्रेन तक बढ़ गई। इस कारण द्वितीय चंद्रगुप्त से पीछे काच नहीं रक्खा जा सकता क्योंकि चंद्रगुप्त के मुद्राओं की तौल १२६ ग्रेन थी। प्रथम मत के पक्ष में यह भी कहा

---

१. पत्यु क्लीबजनोचितेन चरितेनानेन पुंसः सतः। उद्धरणः नं० ४।—देवीचन्द्रगुप्तम्।

२. प्रकृतीनामाश्वसनाय शकस्य ध्रुवदेवीं संप्रदानेऽभ्युपगते—उ० नं० १।

३. एकस्यापि विधूतकेसरसटा भारस्य भीता मृगाः।
गन्धादेव हरेर्द्रवन्ति बहवो वीरस्य किं संख्यया। शृङ्गार-प्रकाश।

४. अरिवधनार्थं—उ० नं० १।

५. स्त्रीवेषपरिवृत्तेन (शङ्करार्य टीका)।

६. वैशाली मुद्रालेख में ध्रुवदेवी को ध्रुवस्वामिनी कहा गया है (महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त पत्नी महादेवी ध्रुव स्वामिनी)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाता है कि काच के सिक्कों पर उल्लिखित 'सर्वराजोच्छेता' की पदवी गूप्तलेखों में समुद्रगुप्त के लिए प्रयुक्त मिलती है। किंतु काच को समुद्रगुप्त से पृथक मानना अधिक उचित प्रतीत होता है। बनर्जी के मतानुसार काच समुद्रगुप्त का भ्राता था, जो देश को मुक्त करते मारा गया और उसी की याद में समुद्रगुप्त ने मुद्रा तैयार करायी[1]। परंतु हिंदू परंपरा में स्मारक सिक्कों का कोई स्थान नहीं है। मुद्राशास्त्रीय प्रमाणों से यह अधिक संभव प्रकट होता है कि काच समुद्रगुप्त से पीछे राज्याधिकारी हुआ होगा। काच के सिक्के समुद्रगुप्त के दंडधारी तथा धनुर्धारी प्रकार के बाद ही तैयार किये गये होंगे। देवी चंद्रगुप्त नामक नाटक में जो कथानक आया है उससे यह विदित होता है कि द्वितीय चंद्रगुप्त का रामगुप्त नामक कोई भाई था। रामगुप्त का दूसरा नाम काच हो सकता है। वास्तविक नाम काच था जो लिखने में अशुद्धि से राम हो गया। डा० भण्डारकर ने इसी मत का प्रतिपादन किया है। चूंकि काच समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी था अतः उसके सिक्के समुद्रगुप्त के अश्वमेध मुद्रा का अनुकरण करते हैं। काच या रामगुप्त ने थोड़े समय के लिए शासन किया, अतएव उसने एक ही ढंग का सिक्का निकाला। काच (उपनाम रामगुप्त) वैष्णव था, इसलिये चक्रध्वज को सिक्के पर स्थान दिया था। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है कि पिछले लेखों में रामगुप्त के नाम का अभाव है। रामगुप्त के वंशज उत्तराधिकारी नहीं हुये और वह स्वयं कुलकलंक था, इसलिये उसका नाम गुप्त वंशावली में लोप कर दिया गया। काच तथा रामगुप्त की एकता स्थापित करने के लिये उपरिलिखित प्रमाण काफी महत्त्वपूर्ण हैं। हाल ही में मालवा से रामगुप्त के ताम्बे के सिक्के मिले हैं। जिसे जैन प्रतिमा लेख से प्रमाणित करना न्याय संगत होगा।

---

१. एज आफ इम्पीरियल गुप्त, पृ० ९—११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय चंद्रगुप्त के लेख

लेखों के आधार पर इस गुप्त नरेश की मुख्य-मुख्य घटनाओं का वर्णन किया जाता है। अतएव उन लेखों में क्या वर्णित है इन समस्त बातों पर विचार करना महत्वपूर्ण है। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के कुछ लेखों में तिथि का उल्लेख है तथा किसी पर तिथि का अभाव है। इसलिए तिथि-क्रम के अनुसार उनका वर्णन प्रस्तुत किया जायगा।

(१) मथुरा का स्तम्भ-लेख

द्वितीय चंद्रगुप्त का सबसे प्रथम लेख मथुरा के समीप भूभाग से मिला है। यह लेख शिव-प्रतिमा के पार्श्व में स्तंभ के निचले भाग में खुदा है। इस लेख की तिथि गु० स० ६१ (ई० स० ३८०) है[1] तथा इस लेख की तिथि के साक्ष्य पर द्वितीय चंद्रगुप्त की शासन-अवधि निर्धारित करना सरल हो जाता है। इस लेख की प्राप्ति से पूर्व राजा की सबसे पहली तिथि गु० स० ८२ थी जो उदयगिरि गुहालेख से ज्ञात है। परन्तु इस लेख के आधार पर उसकी तिथि बीस वर्ष पहले ई० स० ३८० निश्चित हो जाती है। अतएव इस परिवर्तन के कारण मथुरा के लेख का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसके वर्णन से ज्ञात होता है कि उदिताचार्य ने इस स्तंभ में उल्लिखित कपिलेश्वर तथा उपमितेश्वर की प्रतिमा की स्थापना की थी। इस लेख में द्वितीय चंद्रगुप्त तथा उसके पिता समुद्रगुप्त के लिए भट्टारक महाराजा राजाधिराज की पदवियाँ उल्लिखित हैं जो महाराजाधिराज की पदवी से भिन्न है। बहुत संभव है कि मथुरा में स्थित होने के कारण इस पर पूर्व शासक कुषाणों का प्रभाव हो। महाराजाधिराज की पदवियाँ कुषाण लेखों तथा सिक्कों में मिलती हैं।

---

१. ए. इ., भा. २१ नं. १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मथरा का स्तंभ लेख धार्मिक क्षेत्र में विशेष महत्व रखता है। जिस स्तंभ पर लेख अंकित है उस पर एक खड़ी मनुष्याकार आकृति खुदी है जिसके हाथ में दण्ड है। चूंकि यह अभिलेख शैव मत से संबंधित है अतएव उस आकृति को पाशुपत मत के प्रवर्तक लकुलीश का चित्र मानते हैं। कुषाण नरेश हुविष्क के सिक्के पर हाथ में दंड लिए लकुलीश की आकृति दीख पड़ती है। अतः मथुरा स्तंभ पर भी खुदी आकृति उसी लकुलीश को मानी गई है। इस लेख में "भगवत्कुशिकात् दशमेन" वाक्य का प्रयोग विशेष अर्थ में किया गया है। दशमेन शब्द यह व्यक्त करता है कि उदिताचार्य कुशिक की परंपरा में दशवें शिष्य थे जिन्होंने दो शिव प्रतिमा—कपिलेश्वर तथा उपमितेश्वर की स्थापना की।

यदि एक शिष्य के लिए पचीस वर्ष की अवधि मान ली जाय तो दस पीढ़ी पहले यानी २५० वर्ष पूर्व कुशिक की तिथि मानना होगा। तात्पर्य यह है कि कुशिक दूसरी सदी यानी (ई० ३८० मथुरा स्तंभ लेख की तिथि —२५० वर्ष) १३० ई० में पैदा हुए थे। एक लेख के (चित्र प्रशस्ति ए० इ०, भा० १, पृ० २८) आधार पर कुशिक पाशुपत मत के प्रवर्तक लकुलीश के प्रथम शिष्य माने गए हैं। उन्हीं की दशवी शिष्य परंपरा में उदिताचार्य थे। कहने का तात्पर्य यह है कि मथुरा स्तंभ लेख के वर्णन से प्रकट होता है कि पाशुपत मत का प्रसार मथुरा क्षेत्र में हो गया था।

(२) उदयगिरि गुहा-लेख

द्वितीय चंद्रगुप्त का यह लेख मध्य प्रदेश में भिलसा के समीप उदयगिरि गुहा में उत्कीर्ण है। इसकी तिथि गु० स० ८२ (ई० स० ४११) है। इस गुहा-लेख में द्वितीय चंद्रगुप्त के अधीनस्थ सनकानीक महाराजा का उल्लेख है। दक्षिण भारतीय ब्राह्मी में (बाक्सनुमा आकार सहित) खुदा है।

(३) गढ़वा का शिलालेख

तीसरा लेख उ० प्र० के प्रयाग जिले में गढ़वा नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। इसकी तिथि गु० स० ८८ (ई० स० ४०७) है। इस लेख में द्वितीय चंद्रगुप्त की धार्मिक पदवी 'परम भागवत' का उल्लेख मिलता है तथा पाटलिपुत्र के किसी गृहस्थ द्वारा अपनी स्त्री के पुण्य-प्राप्ति के निमित्त दस दीनार दान में देने का वर्णन है। दीनार सोने के सिक्के का नाम था।

(४) साँची वेदिका लेख

द्वितीय चंद्रगुप्त का यह चतुर्थ तिथि-युक्त लेख है जिसमें गु० स० ९३ (ई० स० ४१२) का उल्लेख मिलता है। यह लेख मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल के समीप साँची से प्राप्त हुआ है। साँची महाचैत्य को वेदिका के पूर्वी तोरण पर यह लेख खुदा है। भाषा संस्कृत तथा गद्य में अंकित है। इसमें वर्णन मिलता है कि चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के सेनापति अम्रकार्द्दव ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काकनादवाट (साँची) नामक महाविहार में एक गाँव तथा पचीस दीनार दान में दिये थे। इसकी आय से पाँच भिक्षुओं को भोजन तथा रत्नगृह में दीपक जलाने का काम चलता था। एक मुख्य बात यह है कि इस लेख में चंद्रगुप्त के दूसरे नाम 'देवराज' का भी उल्लेख मिलता है। वाकाटक नरेश द्वितीय प्रवरसेन के दानपत्र में चंद्रगुप्त के लिए देवगुप्त नाम मिलता है। पंचमंडली शब्द वर्तमान पंचायत के लिए प्रयुक्त है।

(५) उदगिरि का गुहालेख

चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के इस लेख में तिथि का उल्लेख नहीं मिलता। यह लेख भी भिलसा के समीपवर्ती उदयगिरि गुहा में उत्कीर्ण है। इस लेख से प्रकट होता है कि द्वितीय चंद्रगुप्त अपने सांधिविग्रहिक मंत्री पाटलिपुत्र का निवासी वीरसेन के साथ जिस समय समस्त पृथ्वी जीतने के विचार से निकला था, उस समय वह भिलसा में ठहरा होगा। उस मंत्री ने शैव होने के कारण एक शंभुगृह का निर्माण किया था। वह कवि था तथा शास्त्र का ज्ञाता भी।

(६) मथुरा का शिलालेख

इस गुप्त लेख की तिथि भी अज्ञात है। यह लेख मथुरा से प्राप्त हुआ है। यह खण्डित है परन्तु इसमें द्वितीय चंद्रगुप्त की वंशावली श्रीगुप्त से चंद्रगुप्त तक उल्लिखित है। इसमें राजा का नाम खंडित है।

(७) मेहरौली का लौह-स्तंभ लेख

द्वितीय चंद्रगुप्त का सबसे मुख्य यही लेख है परंतु इसमें तिथि का उल्लेख नहीं मिलता। इसके वर्णन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि राजा चन्द्र ने नदी को पार कर वाह्लिक तक आक्रमण किया था। इसमें गुप्त राजा का दिग्विजय सुंदर शब्दों में वर्णित है। यह दिल्ली के समीप मेहरौली नामक ग्राम में कुतुबमीनार के समीप स्थित है।

इस लेख में तिथि तथा चंद्र राजा के वंश का वर्णन प्राप्त न होने से यह स्थिर करना कठिन था कि वह कौन-सा राजा था जिसने इतना पौरुष दिखलाया। ऐतिहासिक विद्वानों में प्राचीन भारतीय राजवंश के शासकों को चंद्र से समीकरण करने में गहरा मत भेद है। मुख्यतः इसमें तीन विभिन्न विचार हैं, जिसका संक्षिप्त वर्णन क्रम से किया जायगा :—

(१) चंद्र = गुप्त सम्राट् प्रथम चंद्रगुप्त

इस प्रथम सिद्धान्त के माननेवाले डा० कृष्णस्वामी एयंगर[1] तथा डा० वसाक[2] महोदय हैं। उनका कथन है कि गुप्त-साम्राज्य का सर्वप्रथम महाराजाधिराज प्रथम चंद्रगुप्त था। इस

---

१. स्टडीज इन गुप्त-हिस्ट्री, पृ० १४।

२. हिस्ट्री आफ नार्दर्न इंडिया, पृ० २१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेख में वर्णित 'प्राप्तेन स्वभुजार्जितं च सुचिरं चैकाध्यराज्यं क्षितौ' के आधार पर वे अपने कथन की पुष्टि करते हैं। उनका मत है कि समुद्रगुप्त के पिता प्रथम चंद्रगुप्त ने ही बंगाल आदि देशों को जीता था और यही कारण है कि समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में बंगाल का उल्लेख नहीं मिलता (पिता के विजय करने के कारण पुत्र उसका पहले से ही स्वामी था)। इसकी पुष्टि में तीसरा प्रमाण यह भी है कि फ्लीट को इस लेख की लिखावट प्रयाग के लेख से पूर्व की मालूम होती है। परंतु यदि गुप्त लेख तथा सिक्कों के आधार पर विचार किया जाय तो उपरियुक्त प्रमाण न्यायसंगत नहीं प्रतीत होते। गुप्त लेख यह बतलाते हैं कि प्रथम चंद्रगुप्त ने केवल थोड़े समय तक राज्य किया (संभवतः ई० स० ३२०-३३५), अतएव इस लौह-स्तम्भ लेख में वर्णित 'एकाधिराज्य' (महान् राजा) प्रथम चंद्रगुप्त के लिए कैसे प्रयोग किया जा सकता है ? अभी तक कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता कि समुद्रगुप्त के पिता ने वंग, दक्षिण तथा उत्तर पश्चिम भारत पर विजय प्राप्त किया हो ! प्रथम चंद्रगुप्त का राज्य गंगाघाटी में सीमित था। सबसे प्रथम विजय-यात्रा तो उसके पुत्र ने प्रारंभ की। पुराणों में वर्णित 'अनु गंगा प्रयागं च' आदि से ज्ञात होता है कि उसका राज्य मगध से प्रयाग तक विस्तृत था। इन सब कारणों से मेहरौली लेख के चंद्र की समता प्रथम चंद्रगुप्त से करना असंगत है।

(२) चंद्र = चंद्रवर्मन्

सुसानियाँ पर्वत पर एक लेख मिला है[1] जिसके वर्णन से ज्ञात आया है कि पुष्करण (जोधपुर राज्य) नामक स्थान से चंद्रवर्मन् नाम का राजा पश्चिमी बंगाल तक आया। उसने सुसानियाँ पर्वत पर अपने आगमन-सूचक लेख लिखवाया। इसी के सदृश वर्णन मेहरौली लेख में भी उपलब्ध है। चंद्र ने बंगाल जीता था। इस आधार पर बनर्जी[2] तथा हरप्रसाद शास्त्री[3] ने चंद्र की समता चंद्रवर्मन् से की। इनका कथन है कि दोनों (चंद्र तथा चंद्रवर्मन्) ने बंगाल में पदार्पण किया था। बहुत संभव है कि सुसानियाँ पर्वत के समान चंद्रवर्मन् ने अपने आगमन के उपलक्ष्य में विष्णुपद पर्वत पर भी विष्णुध्वज स्थापित किया हो। ये दोनों वैष्णव लेख हैं (सुसानियाँ पर्वत पर विष्णु चक्र है)। इन सब कारणों से दोनों विद्वान् चंद्र की समता एक छोटे राजा चंद्रवर्मन् से करते हैं। परंतु इनके विचार से सहमत होने पर अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। पुष्करण राजाओं के लेख के आधार पर चंद्रवर्मन् का निम्नलिखित वंश वृक्ष तैयार किया गया है—

---

१. ए० इ० भा० १३ पृ० १३३।
२. ,, ,, ,, १४ ,, ३६।
३. ,, ,, ,, १३ ,, १२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जयवर्मन्
|
सिंहवर्मन्
|

(गंगधर का लेख वि० स० ४८०) — नरवर्मन[1] — चंद्रवर्मन्[2] (सुसानियाँ लेख)
|
विश्ववर्मन्[3]
|
(मंदसोर का लेख) वि० स० ४९३ — बंधुवर्मन्[4]

इस वंश-वृक्ष में वर्णित बंधुवर्मा गुप्तसम्राट् प्रथम कुमारगुप्त का नायक था। अतएव चंद्रवर्मन् समुद्रगुप्त का समकालीन हो जाता है। यदि मेहरौली लेख के चंद्र की समता सुसानियाँ लेख के चंद्रवर्मन् से की जायगी तो यह असंभव प्रतीत होता है कि समुद्रगुप्त के सम्मुख पुष्करण का एक राजा बंगाल तथा उत्तर-पश्चिम तक आक्रमण करे। चंद्रवर्मन् के भ्राता नरवर्मन् का पश्चिमी मालवा में शासन केवल दो पीढ़ी तक रहा, वह भी गुप्तों के अधीनस्थ होकर। ऐसी दशा में चंद्रवर्मन् कोई बड़ा स्वतंत्र राजा ज्ञात नहीं होता। पुष्करण शासकों के लेखों में सुसानियाँ या मेहरौली के विषय में कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। सुसानियाँ की प्रशस्ति में चंद्रवर्मन् 'महाराजा' कहा गया है, परंतु मेहरौली में चंद्र के लिए 'अधिराज' शब्द प्रयुक्त है। इन सब प्रमाणों के सम्मुख चंद्र की समता चंद्रवर्मन् से नहीं की जा सकती।

(३) चंद्र = द्वितीय चंद्रगुप्त विक्रमादित्य

अधिकतर विद्वानों ने चंद्र का समीकरण गुप्तसम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त से किया है। चंद्र की विजयों की सीमा गंगाघाटी से बाहरी प्रदेशों—सिंध नदी से बंगाल तक सीमित थी। द्वितीय चंद्रगुप्त वैष्णव धर्मावलंबी था तथा उसके लिए परमभागवत की उपाधि अभिलेखों तथा मुद्रा-लेख में मिलती है। मेहरौली का चंद्र इसी धर्म का उपासक था। उसने विष्णुपद पर विष्णुध्वज की स्थापना की (प्रांशुविष्णुपदे गिरौ भगवतः विष्णुध्वजः स्थापितः)।

द्वितीय चंद्रगुप्त के संबंध में दीर्घकालीन शासन तथा एकछत्र (सुचिरं चैकाधि राज्यं क्षितौ) राज्य की चर्चा सर्वथा उचित है। इसने गुजरात से बंग तक विस्तृत भूभाग में चालीस वर्षों तक शासन किया था। चंद्र के लिए भी ऐसी बातें उल्लिखित हैं।

---

१. ए० इ० भा० १३, पृ० १३३।
२. फ्लीट—गु० ले०, नं० १७।
३ वहीं ,, १८।
४. कौमुदीमहोत्सव में उद्धृत चंद्र नाग चंडसेन प्रतिपादनीय नहीं लगता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मेहरौली के अभिलेख में चंद्र ने अपने बाहुबल से विशाल राज्य को अधिगत किया (प्राप्तेन स्वभुजार्जितम्)। गुप्तवंश में चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के लिए यह कहा जाता है कि शक लोगों को परास्त कर सुराष्ट्र तक उसने राज्य विस्तार किया तथा उज्जैनी को अपनी द्वितीय राजधानी बनाया। देवीचंद्रगुप्तम् में वर्णित घटनाओं का समर्थन कर विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि द्वितीय चंद्रगुप्त ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर शत्रु शिविर (शकों) में प्रवेश किया था। यह चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के बाहुबल का (शकों पर विजय) का साक्ष्य है।

गुप्तसम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त की ताम्रमुद्रा पर 'चंद्र' नाम अंकित है। अतएव सारे साक्ष्य के आधार पर मेहरौली के चंद्र का समीकरण चंद्रगुप्त विक्रमादित्य से करना सर्वथा उचित होगा।

वाह्लीक शब्द का शुद्ध रूप वाहिक है जिस भूभाग को चंद्र ने विजित किया था। हर प्रसाद शास्त्री या डा० मजुमदार ने इसका (वाह्लीक) तात्पर्य बल्ख (वैक्ट्रिया) से उल्लिखित किया है। चंद्र ने सिंधु नदी के सातों मुखों को पार कर वाह्लीक पर विजय प्राप्त किया था। पेरिप्लस तथा टालेमी ने सिंधु के सातमुखों (सहायक नदियों) का वर्णन किया है परंतु वाहीक देश वल्ख माना नहीं जा सकता। यह भाग व्यास (विपाशा) नदी के दोनों तटों के पार्श्ववर्ती क्षेत्र ही था। उसका उल्लेख महाभारत में आया है—

वहिश्वनाम ही कश्च विपाशायां पिशाचकौ
तयोरपत्यं वाहीका नैषासृष्टिः प्रजायते।
तान्धर्म्म वाह्यान शुचीन वाहीकानपि वर्जयेत्। (महा० ८।४३)

वाहीक शब्द शतयथ ब्राह्मण (१।७।३।८) में उल्लिखित है। यह उत्तर पश्चिम में निवास करने वाली जाति का नाम था। पंजाब में भी उनकी स्थिति (वाहीक) ज्ञात होती है तथा उस भूभाग (व्यास नदी का किनारा) को वाहीक कहने लगे। डा० भण्डारकर ने भी विद्वानों का ध्यान रामायण में उल्लिखित पद्य की ओर आकृष्ट किया है जिसमें भरत को बुलाने के लिए केकय देश जाने का वर्णन है। उन दूतों ने मार्ग में वाह्लीक नामक प्रदेश होकर अपनी यात्रा संपन्न की थी।

ययुर्मध्येन वाह्लीकन् सुदामांन च पर्वतम्
विष्णोः पदं प्रेक्षमाणा विपशां चापि शाल्मलिम्। (राम० २।६८)

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि वाह्लीक (शुद्ध वांहीक) विपाशा नदी के पार्श्ववर्ती भूभाग का नाम था। मेहरौली अभिलेख में वर्णित—तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोर्ज्जिता वाह्लीकाः तथा रघुवंश में उल्लिखित पंक्ति—पारसीकां ततोजेतुं प्रतस्थेस्थलवर्त्मना (पारसीकों को जीतने के लिए रघु ने स्थलमार्ग से प्रस्थान किया था) में कुछ साम्य होने पर भी वाह्लीक को वल्ख मानना समीचीन न होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णुपद—मेहरौली अभिलेख में वर्णित विष्णुपद के संबंध में विचार करना उचित होगा। चंद्र ने यहीं विष्णुध्वज की स्थापना की थी। महाभारत में (वनपर्व, अध्याय १३०, श्लोक ६) निम्न पंक्तियाँ मिलती हैं :—

एतद विष्णुपदं नाम दृश्यतेतीर्थमनुत्तमम्
एषां रम्या विपाशा च नदी परमपावनी।

यानी विष्णुपद नामक श्रेष्ठ तीर्थ विपाशा नदी के भूभाग में स्थित था। इस साक्ष्य से स्पष्ट हो जाता है कि विष्णुपद तीर्थ व्यास नदी के समीप था जहाँ चंद्र ने विष्णुध्वज स्थापित किया। ऊपर इसका उल्लेख हो चुका है कि वाहीक व्यास नदी के पार्श्ववर्ती क्षेत्र को कहते थे। अतः रामायण तथा महाभारत के साक्ष्यों के आधार पर विष्णुपद पूर्वी पंजाब में स्थित ज्ञात होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम कुमारगुप्त के लेख

गुप्तकाल को प्राचीन भारत का स्वर्णयुग कहते हैं। इसकी चरमोन्नति प्रथम कुमार गुप्त के शासन में प्रकट होती है। वास्तविक ढंग से इसी का काल स्वर्णयुग का द्योतक हो सकता है। सामाजिक, आर्थिक तथा कलात्मक दृष्टि से तो इसकी विशेषता है ही। साहित्यिक कार्य के प्रसंग में भी प्रथम कुमारगुप्त के अभिलेख अधिक संख्या में प्राप्त हुए हैं, जिनकी अपनी विशेषता है।

(१) प्रथम लेख उत्तर प्रदेश के एटा जिला के अंतर्गत अलीगंज तहसील में स्थित बिलसद स्थान से प्राप्त हुआ है जो रंगीन प्रस्तर स्तंभ पर खुदा है। स्तंभ के पूर्वी भाग में यह लेख गु० सं० ९६ (= ई० सं० ४१६) में ध्रुवशर्मन नामक व्यक्ति द्वारा खुदवाया गया था।

स्वामि महासेन—यह कार्तिकेय का नाम है जिसका मंदिर (प्रासादाग्राभि रूपं गुणवर भवनं) निर्मित किया गया।

प्रतोली—सोपान सहित मुख्य द्वार

धर्मसत्र—सत्र शब्द का प्रयोग पूर्व मध्यकालीन (८००-१२०० ई०) अभिलेखों में अधिकता से पाया जाता है। मंदिरों से संबंद्ध यह स्थान निर्धनों को भोजन देने के लिए निर्मित था। साधु या ब्रह्मचारी को भी निःशुल्क भोजन दिया जाता था। अभिलेखों में 'सत्र' शब्द का प्रयोग अधिकतर 'वलिचरु सत्र' के रूप में मिलता है। सर्वत्र अर्थ एक ही है—निःशुल्क भोजन वितरण का स्थान। गुप्त लेख में सबसे पहले प्रथम कुमार गुप्त के बिलसद स्तंभ में 'सत्र' शब्द का उल्लेख है जो 'धर्म' से संयुक्त है। इसे धार्मिक महत्व दिया गया है। स्यात् भिक्षावृत्ति के निवारण के निमित्त सत्र की स्थापना की गई थी। यति या ब्रह्मचारी अथवा निर्धन व्यक्ति समाज में भीख न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मांग कर मंदिर के उस स्थान पर जाकर भोजन प्राप्त करता था। इस प्रकार भीख मांगने की बुरी प्रथा का अंत करना सत्र का अभिप्राय था। इस लेख में धर्मसत्र उसका द्योतक है। सत्र स्थापन के इतिहास में बिलसद का उल्लेख (धर्मसत्र) पहला साक्ष्य है। (विशेष विवरण देखिए—लेखक का ग्रंथ—Socio-Religious Condition of North India, pp. 179—82).

गढ़वा लेख

उत्तर प्रदेश के प्रयाग के समीप गढ़वा नामक स्थान से दो शिलालेख प्राप्त हुए हैं। एक लेख की तिथि अज्ञात है। द्वितीय लेख की तिथि गु० सं० ९८ (ई० स० ४१७) उल्लिखित है। इनमें गुप्त वंशावली का अभाव है। कुमारगुप्त को परम भागवत की पदवी से विभूषित किया गया है। शासक के नाम (कुमारगुप्त) संस्कृत भाषा में लेख तथा विषय के अध्ययन से दोनों अभिलेख एक ही व्यक्ति से संबद्ध हैं। 'सत्र' की सहायतार्थ दस तथा बारह दीनार (स्वर्ण मुद्रा) दान में देने का विवरण है। दीनार शब्द दिनेरियस का संस्कृत रूप है जिसे गुप्त सम्राटों ने अपने सिक्कों के लिए प्रयोग किया था।

उदयगिरि गुहा लेख

मध्यप्रदेश के विदिशा के समीप उदयगिरि में गुफाएँ खुदी है। इसी स्थान पर द्वितीय चंद्रगुप्त के लेख तथा वराह एवं शेषशायी भगवान् विष्णु की विशाल प्रतिमाएँ स्थित हैं। पहाड़ी के एक तरफ प्रथम कुमारगुप्त के शासनकाल में जो गुफा खोदी गई उसका उद्देश्य था कि गुहामुख पर पार्श्वनाथ (जैनमत के तेइसवें तीर्थंकर) की प्रतिमा स्थापित की जाय (जिनवर पार्श्व-जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ) भाषा संस्कृत, गुप्तलिपि तथा तिथि गु० स० १०६ (=ई० स० ४२५)।

धानाइदह ताम्रपत्र—बंगाल के राजशाही जिला अंतर्गत धानाइदह ग्राम से प्राप्त। भाषा संस्कृत एवं गुप्तलिपि। तिथि ११३ (=ई० स० ४३२)।

यह ताम्रपत्र अग्रहार न होकर क्रय संबंधी विलेख (दस्तावेज) के रूप में लिखा गया है। यों तो दान का वर्णन है किंतु ब्राह्मणों को कम मूल्य में राजकीय भूमि विक्रय का उल्लेख है। वास्तविक रूप में धार्मिक कार्य के निमित भूमि का भाव घटा कर बेचा गया था।

परम दैवत परम भट्टारक—अभिलेख में गुप्त सम्राट् की पदवी। ऐसे दानपत्रों में अधिक उल्लिखित हैं।

अष्टकुल—पंचमंडली या वर्तमान ग्राम पंचायत।

अधिकरण—न्यायालय ग्राम की शासन समिति।

तुमैन अभिलेख

ग्वालियर (मध्यप्रदेश) रियासत के गुन जिले में स्थित तुमैन ग्राम से यह अभिलेख मसजिद के दीवाल पर अंकित पाया गाया था। शिलालेख का आधार प्रस्तर खंडित हो गया है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिसके संबंध में कुछ ज्ञात नहीं है। शेष छः पंक्तियाँ उपलब्ध हुई जो छंदोवद्ध हैं। यह गुप्त लिपि में अंकित दक्षिणी शैली का अभिलेख है। इसकी तिथि गु० स० ११६ (=४३६ ई०) खुदी है।

अंतिम पंक्ति में स्थान का काम तुम्बवन उल्लिखित है जिस स्थान के निवासी पाँच भ्राताओं ने—हरिदेव, श्रीदेव, धन्यदेव, भद्रदेव तथा संघदेव—देवता (नाम अज्ञात) के मंदिर का निर्माण किया था।

घटोत्कचगुप्त—इस लेख में घटोत्कचगुप्त का संबंध गुप्त नरेश से उल्लिखित नहीं है। पर यह प्रथम कुमारगुप्त का भ्राता था जो ऐरिकिण (एरण—जिला सागर मध्यप्रदेश) में राज्यपाल था। एरण के अंतर्गत तुम्बवन का शासन संबद्ध था।

तुम्बवन—इस स्थान का नाम सांची वेदिका के लेखों में ये कई बार उल्लिखित है। संभवतः यहाँ के लोगों ने सांची तोरण के निर्माण में भाग लिया था। वराहमिहिर के वृहत्संहिता (१४, १५) में भी इसका उल्लेख है। इसका तुमैन से समीकरण न्यायसंगत होगा। यह प्राचीन स्थान था जहाँ प्राचीन सामग्रियाँ मिली हैं।

वटोदक—स्थान विशेष का नाम। मिलसा जिले में स्थित वर्तमान वदोह से इसकी समता की जानी चाहिए।

करमदांडा शिललिंग लेख

उत्तर प्रदेश के फैजावाद जिले के अंतर्गत भरादीडीह (करमदांडा के समीप) ग्राम से प्राप्त। लिंग के चौकोर प्रस्तर आधार पर अंकित लेख भाषा—संस्कृत। लिपि—गुप्तलिपि। तिथि—गु० स० ११७ (=४३६ ई०)।

विशेषता :—शिवलिंग पूजा का क्रम भारत में अति प्राचीनकाल से चला आ रहा था। संभवतः यह गुप्त युग का अंतिम शिवलिंग प्रतिमा है जो उपलब्ध है। इसके अनंतर लिंग के साथ मानव मुख जोड़ दिया गया। इसीलिए भूमरा से एकमुखलिंग की अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। चतुर्मुखलिंग इसके पश्चात् तैयार की गई और अंतिम अवस्था में मनुष्याकार शिव की प्रतिमा निर्मित हुई। दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि अभिलेख से गुप्त शासन पद्धति पर प्रकाश पड़ता है। कुमारगुप्त का मंत्री पृथिवीषेण द्वितीय चंद्रगुप्त के मंत्री शिखर स्वामी का पुत्र था—

द्वितीय चंद्रगुप्त—शिखरस्वामी
↓ ↓
प्रथम कुमारगुप्त पृथ्वीषेण

इससे प्रकट होता है कि मंत्रीपद वंशानुगत था। ऐसा साक्ष्य अन्यत्र नहीं मिलता।

कुमारामात्य—राजकुमार का आमात्य जो कालांतर में सम्राट् का मंत्री हो गया। अतएव नाम के साथ पदवी अंकित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाबलाधिकृत—सेना का सर्वोच्च पदाधिकारी।

पृथ्वीश्वर—महादेव (शिव) का नाम। संभवतः पृथिवीषेण के नाम पर देवता का नाम दिया गया।

देवद्रोणी—प्रतिमा की शोभा यात्रा।

कलैकुरि ताम्रपत्र अभिलेख

बंगाल के बोगरा जिले में स्थित कलैकुरि ग्राम निवासी किसी मुसलमान सज्जन के यहाँ से प्राप्त। वह स्थान नवगांव से ८ मील की दूरी पर स्थित हैं। इस ताम्रपत्र में एक ओर ३४ पंक्तियाँ तथा दूसरी ओर १६ पंक्तियाँ खुदी हैं। भाषा संस्कृत तथा गुप्तलिपि में अंकित है।

कुछ लोगों का कथन है कि वैग्राम नामक स्थान से अनेक ताम्रपत्र उपलब्ध हुए हैं उसी स्थान से किसी व्यक्ति द्वारा कलैकुरि लाया गया होगा। इसकी तिथि गु० स० १२० (ई० स० ४३९) अंकित है। यद्यपि इस अभिलेख में शासक का नाम उल्लिखित नहीं है परंतु उस तिथि के लगभग प्रथम कुमारगुप्त शासन करता था। इसकी लेखन-शैली तथा लिपि उस स्थान से प्राप्त पाँचवी सदी के अन्य लेखों से मिलती है।

पूर्ण कौशिक नामक स्थान से आज्ञा प्रसारित करने का विवरण इस लेख से उपलब्ध होता है। ऋंगवेर वीथि से आयुक्तक अच्युतदास ने हस्तिशीर्ष विमितकी गुल्मगंधिका के निवासियों को तीन वेदाध्यायी ब्राह्मणों को नव कुल्यवाप भूमिदान देने की सूचना दी। संक्षेप में यह विवरण उपस्थित किया जाता है कि कुलिक भीम तथा उस वीथी के कई अन्य व्यक्तियों ने तत्कालीन प्रचलित भाव (दो दीनार प्रति कुल्यवाप) भूमि खरीदने के लिए आयुक्तक से निवेदन किया ताकि उस क्रयभूमि को स्थायी रूप से दान दिया जा सके। आवेदन-पत्र स्वीकार किया गया और भूमि को खरीद कर स्थायी रूप में दान दे दिया गया।

भुक्ति=प्रांत

विषय—जिला

वीथी—तहसील-जिला का छोटा भाग

आयुक्तक—तहसील का पदाधिकारी

विषयपति=जिलाधीश

अधिकरण=समिति

कुटुम्बिन=ग्राम महत्तर

अधिकरणिक=समिति के सदस्य

दीनार—गुप्तकालीन स्वर्ण मुद्रा का नाम जो सोलह रुपया के बराबर था।

अक्षय नीवि—स्थायी रूप से, किसी समय भी वापस न हो सके।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुल्यवाप—भूमि के माप का नाम (जो भूमि एक कुल्य-टोकरी बीज द्वारा बोई जा सके)
द्रोणवाप—चौथाई कुल्यवाप
पंचमहायज्ञ—अध्यापन, तर्पण, होम, वलि एवं अतिथिपूजन या (वलि, चरु, वैश्यदेव, अग्निहोत्र तथा अतिथिपूजन)
अप्रतिकर—जिस भूमि से भूमिकर प्राप्त न हो। घोषाल का मत है कि इस शब्द का तात्पर्य उस भूमि से है जिसके लिए द्रव्य देना न पड़े।
खिल क्षेत्र—बंजर भूमि
प्रावेश्य—भूमिकर। इससे भूमि पर अधिकार का भाव है।
कुलिक—हस्तकलाविद
कायस्थ—लेखक (अभिलेख लिखनेवाले व्यक्ति)
पुण्ड्रवर्धन—पुण्ड्रवर्धन भुक्ति का मुख्य नगर, वर्तमान वोगरा जिले का महास्थान नगर।
वाटानदी—वर्तमान वारानई नदी

उक्तञ्च महाभारते भगवता व्यासेन

पूर्व मध्ययुगी दानपत्रों के अंतिम पंक्तियों में ऐसे श्लोकों को स्थान दिया गया है जिसके उद्गम स्थान के विषय में अंतिम निर्णय न हो सका है। व्यास से इनका संबंध जोड़ा जाता है। प्रथम कुमारगुप्त के दान-पत्रों में (दामोदरपुर ताम्रपत्र या वैग्राम, कलैकुरि आदि) श्रापयुक्त एवं मंगलमय श्लोकों का उल्लेख है जिनका तात्पर्य यह है कि दान देनेवाले स्वर्गगामी होता है तथा उसे क्षति करनेवाला (वापस लेनेवाला) व्यक्ति नरक में निवास करता है। इसका उद्देश्य था कि दानकर्त्ता अपने वंशजों को यह संकेत करता था कि दान की (भूमि की) प्रतिष्ठा करना चाहिए। उसे वापस लेने पर नरकगामी होते हैं। इस प्रकार के श्लोक बृहस्पति स्मृति या पुराणों से उद्धृत किए गए हैं। कहीं-कहीं इनको दान-संबंधी श्लोक भी कहा गया है। (विशेष विवरण के लिए देखिए लेखक का ग्रंथ—प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ० १२४–२६)

दामोदरपुर ताम्रपत्र अभिलेख

बंगाल के दीनाजपुर जिले के अंतर्गत दामोदरपुर नामक स्थान से प्रथम कुमारगुप्त के दो ताम्रपत्र उपलब्ध हुए थे। एक की तिथि गु० स० १२४ तथा दूसरा गु० स० १२८ (=४४४ ई० तथा ४४८ ई०)। भाषा—संस्कृत तथा लिपि—गुप्त। इन ताम्रपत्रों में स्थायी रूप से भूमि क्रय कर (तीन दीनार प्रति कुल्यवाप) अग्निहोत्र के लिए दान देने का वर्णन है। शासनाधिकारियों की सूची भी इससे उपलब्ध होती है।

पुण्ड्रवर्धन भुक्ति—यह नगर इसी नाम के प्रदेश का प्रधान कार्यालय था। पुण्ड्रवर्धन का समीकरण उत्तरी बंगाल के बोगरा जिले में स्थित महास्थान से किया गया है। उसका राज्यपाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(उपरिक) चिरातदत्त था। गुप्त साम्राज्य प्रांतों में विभक्त था। बंगाल पुण्ड्रवर्धन नाम से विख्यात था।

कोटिवर्ष विषय—विषय (जिला) का नाम। संभवतः जिले का मुख्य नगर भी इसी नाम से ज्ञात था।

तन्नियुक्तक—गुप्तकाल में भुक्ति का राज्यपाल जिले के अधिकारी (विषयपति) की नियुक्ति करता था।

अधिष्ठान—नगर (शहर) के लिए प्रयुक्त

अधिकरण—पदाधिकारी का कार्यालय। विषयपति चार व्यक्तियों द्वारा शासन में सहयोग लेता रहा।

(१) नगर श्रेष्ठी—व्यापारी संघ का अध्यक्ष
(२) सार्थवाह—प्रधान व्यापारी
(३) प्रथम कुलिक—हस्तकला संघ का मुख्य

(४) प्रथम कायस्थ—लेखकों का प्रधान व्यक्ति। कायस्थ एक वर्गसमूह का नाम था जो लेखक का कार्य करता था। इस वर्ग में सभी जाति के व्यक्ति कार्य करते थे। (संभवतः यही शासन समिति का कार्यकारी सचिव होता था)

दोनों दानपत्रों के अध्ययन से प्रकट होता है कि जिले की शासन समिति पाँच या चार वर्षों तक कार्य करती थी। क्योंकि गु० स० १२४ तथा गु० स० १२८ वाले ताम्रपत्रों में नामावली एक ही है—

ताम्रपत्र गु० स० १२४	ताम्रपत्र गु० स० १२८
(१) नगरश्रेष्ठी धृतिपाल	(१) धृतिपाल
(२) सार्थवाह बंधुमित्र	(२) बंधुमित्र
(३) प्रथम कुलिक धृतिमित्र	(३) धृतिमित्र
(४) प्रथम कायस्थ शाम्बपाल	(४) शाम्बपाल

अप्रदा—अनिश्चित धन, जिसका निर्णय न हुआ हो

अप्रहत—जिसे जोता नहीं गया हो। या खिल—बंजर भूमि

चंद्रार्क्क—चंद्रमा तथा सूर्य की स्थिति तक यानी शाश्वत रूप में—स्थायी दान

नीवीधर्म या अक्षय नीवी—स्थायी दान जिस भूमिको वापस नहीं ले सकते। उसकी सूद आय का उपभोग मात्र करते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुस्तपाल—अभिलेखागार का अधिकारी (Record-Keeper)। इसको अधिकार था कि यह निर्णय लेवे कि अमुक भूमि (बंजर या उर्बरा) बेची जा सकती है या नहीं।

हट्टयानकैः—नहर के पानी का सिंचाई के निमित्त उपयोग करना।

भूमिदान संबंधिनो श्लोकी—दोनों ताम्रपत्रों में यह पंक्ति अंकित है। पहले लेख (गु० स० १२४) में श्लोक के पंक्तियों के मध्य में यह वाक्य उल्लिखित है। किंतु श्लोक एक से नहीं है। पहले में 'स्वदत्तापरदत्तां' से आरंभ करते हैं किंतु दूसरे में 'पूर्वदत्तांद्विजातिभ्यो' को स्थान दिया गया है। ऊपर जैसा कहा गया है कि इन पद्यों का मूलस्थान निश्चित न हो सका है, अतः दोनों ताम्रपत्रों के लेखकों ने भिन्न स्थान से इन श्रापयुक्त तथा मंगलमय श्लोकों का संग्रह किया होगा।

मनकुवार प्रस्तर बौद्ध प्रतिमालेख

उत्तरप्रदेश के इलाहाबाद जिले के अंतर्गत करछना तहसील में स्थित मनकुवार ग्राम से यह प्रतिमा उपलब्ध हुई थी। इसकी तिथि गु० स० १२९ (ई० स० ४४७) तथा लेख संस्कृत में बौद्ध प्रतिमा के चरण पीठ पर अंकित है। भगवान् बुद्ध आसन मुद्रा में है। सिर पर चिपकी टोपी है। शरीर नंगा है। जंघिया पहने हैं। अभिलेख पीठ पर खुदे धर्मचक्र के ऊपर तथा निचले प्रस्तर पर अंकित है।

यह बौद्ध धर्म से संबंधित है। भगवान् बुद्ध की प्रार्थना से आरंभ हुआ है (ओं नमो बुधान)। बुद्धमित्र नामक भिक्षु ने प्रथम कुमार गुप्त के शासन काल में इस प्रतिमा की स्थापना की थी।

भगवतो—यह शब्द बुद्ध के लिए प्रयुक्त है।

सम्यक् सम्बुद्धस्य=जिसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है। राजकुमार की अवस्था में बुद्ध का नाम सिद्धार्थ था। उरूबेला (बोधगया) के जंगल होकर निरंजना नदी (वर्तमान फलगू) के किनारे पीपल वृक्ष के नीचे सिद्धार्थ ने ज्ञान प्राप्त किया। उसी समय से उनका नाम बुद्ध हुआ।

मंदसोर प्रशस्ति

प्रथम कुमारगुप्त का यह पहला अभिलेख है जिसमें तिथि मालव संवत् में उल्लिखित है। समस्त गुप्त अभिलेखों में तिथि गुप्त संवत् में दी गई है, जो स्वाभाविक ही था। मंदसोर नामक स्थान मध्य प्रदेश के ग्वालियर रियासत में स्थित था जिस भूभाग पर मालव संघ ने ईसवी पूर्व सदियों में राज्य किया था। उसी संघ के नाम से एक संवत्सर प्रसिद्ध हुआ जिसे मालव संवत् कहते थे। इसका आरंभ ई० पू० ५७ वर्ष में हुआ था। अतएव ईसवी सन् में ५७ जोड़ देने से मालव संवत् की तिथि ज्ञात हो जाती है। यानी मालव संवत् की तिथि में ५७ कम करने (ऋण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने) पर ईसवी सन् का वर्ष ज्ञात हो जाता है। गुप्त संवत् ई० स० ३१९-२० में प्रारंभ हुआ था जिससे सारी गुप्त तिथियों को संबंधित करते हैं। इस प्रकार प्रथम कुमारगुप्त के मंदसोर लेख की तिथि ४३६ ई० (४९३-५७) तथा ४७३ ई० (५२९-५७) प्रकट होती है। मालव संवत् के प्रयोग का विशेष कारण था जिस अवस्था में प्रथम कुमारगुप्त ने गु०स० के स्थान पर मालव संवत् का प्रयोग किया होगा। मंदसोर का भूभाग ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था। दशपुर का नगर (वर्तमान मंदसोर) प्राचीन भारतीय इतिहास में विशिष्ट स्थान रखता है। मंदसोर से कई अभिलेख प्राप्त हुए हैं, वह सभी मालव संवत् में तिथियुक्त हैं। नरवर्मा का मंदसोर लेख, यशोवर्मा के दो लेख (मंदसोर प्रशस्ति) मालव संवत से ही संबंधित है। उनके लेखों में क्रमशः मा० स० ४६१ (= ४०४ ई०) एवं मा० स० ५८९ (=५३३ ई०) की तिथियाँ उल्लिखित है (सरकार, सेलेक्ट इन्सक्रिप्सन, पृ० ३७७-३९३)। कहने का तात्पर्य यह है कि उस प्रदेश (मालवा) में प्रचलित संवत्सर का प्रयोग अभिलेखों में आवश्यक था। गुप्त प्रशस्तियों में "गुप्त नृप काल भुक्तौ" या "गौप्ताब्दे" (गंजाम ताम्रपत्र) शब्दों का प्रयोग गु० स० के लिए किया गया है किन्तु मंदसोर लेख के चौतीसवें श्लोक में "मालवानां गण स्थित्या" का उल्लेख यह स्पष्ट कर देता है कि इस प्रशस्ति की गणना मा० स० के अनुसार की गई है।

इस प्रशस्ति के लेखक वत्सभट्टि ने काव्यमय शैली में सारी वार्त्ताओं को श्लोकबद्ध किया है। मंदसोर प्रशस्तिकार ने उपेंद्रवज्रा, वसंततिलका, आर्या आदि छंदो का विशेष प्रयोग किया है। इस अभिलेख में उपध्मानीय तथा जिह्वामूलीय चिह्नों का प्रयोग मिलता है। संभवतः सम्राट् द्वितीय चंद्रगुप्त के शासन काल में महाकवि कालिदास ने काव्यों की रचना की थी, इस कारण वत्सभट्टि ने उनका अनुकरण कर मंदसोर प्रशस्ति लिखा जिसके उदाहरण उपस्थित किए जाते हैं। संस्कृत काव्य के इतिहास में प्रशस्ति को विशेष स्थान दिया गया है। 'भाव सौष्ठव' के साथ 'अर्थ गौरव' भी विद्यमान है। अलंकारों की छटा निराली है। वत्सभट्टि के रचित प्रशस्ति में कालिदास का गहरा छाप है। स्यात् वह कालिदास के काव्यों का विशेष अनुरागी था। मंदसोर लेख में दशपुर के गृहों का जो रमणीय वर्णन है वह कालिदास के अलकापुरी के प्रासादों के वर्णन से मिलता है—

चलत्पताकान्यबला-सनाथा न्यत्यर्थं शुल्कान्यधिकोन्नतानि
तडिल्लता-चित्र सिताभ्रकूट तुल्पोपमानानि गृहाणि यत्र
कैलाश-तुंग-शिखर-प्रतिमानि चान्या न्याभाति दीर्घं बलभीनि सवेदिकानि
गान्धर्व शब्द मुखरानि निविष्ट चित्र कर्माणि लोलकदलि बन शोभितानि
(वत्सभट्टि-मंदसोर प्रशस्ति ११)

विधुत्वंतं ललित-वनिताः सेंद्रचापं सचित्राः
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्ध गंभीर घोषम्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंतस्तोयं मणिमय भवः तुंगमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादाः त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः।
(कालिदास—मेघदूत उत्तर—१)

मंदसोर में वर्णित ऋतु-वर्णन कालिदास के ऋतु संहार से नितांत मिलता है। दोनों में भावसाम्य इतना अधिक है कि उसका वर्णन देना सहज कार्य नहीं है—सुनिए

रामा सनाथ रचने दर भास्करांशु वह्नि प्रताप सुभगे जललीन मीने
चंद्राशु हर्म्यतल चंद्रन तालवृतं हारोपभोग रहिते हिमदग्ध पद्मे।
(वत्सभट्टि-मंदसोर प्रशस्ति ३१)

न चंदनं चंद्र मरीचि शीतलं, न हर्म्यपृष्ठं शरदिन्दु निर्मलम्।
न वायवः सांद्र तुषार शीतलाः जनस्य चितं रमयन्ति सांप्रतम्।
(कालिदास-ऋतुसंहार ५। ३)

वत्सभट्टि की कविता सरल तथा रसीली है। वह गौड़ी रीति से लिखे गए काव्य का उत्कट उदाहरण है। सुंदर अलंकारों का स्थान स्थान पर सन्निवेश किया गया है। कविता का कम परिमाण (मंदसोर लेख) होने पर भी गुण के कारण वत्सभट्टि को द्वितीय श्रेणी के कवियों में स्थान दिया जा सकता है। इसके काव्य का नमूना सुनिए—

य⌣ प्रत्यहं प्रतिविभात्युदया चलेन्द्र, विस्तीर्ण तुंग शिखर : खलितांशु जालः।
क्षीबांगना जन कपोल तलाभि ताम्र, ⌣ पायात्स वस्सु किरणा भरणो विवस्वान्॥
(मंदसोर प्रशस्ति ३)

लाट विषयान्नगावृत शैलाज्जगति प्रथित शिल्पा :

लाट विषय मालवा से पश्चिमी दिशा में प्रसिद्ध भूभाग था जिसको वर्तमान नौसारी (नवसारिका) से एकीकरण कर सकते हैं। वह लाट (गुजरात) देवकुल, सभागृह एवं चैत्यभवनों के कारण अत्यंत चित्ताकर्षक था। इसी भाग में शिल्पी संघ निवास करता था जो समयांतर में वहाँ से दशपुर (मालवा नगर) में आकर कार्य करने लगा। इस प्रकार स्थानांतर होकर भी शिल्पी वर्ग लोगों का विश्वास भाजन बना रहा। देश की आर्थिक विकास में शिल्पी वर्ग का बड़ा हाथ था।

श्रेणी (शिल्पी वर्ग) :

वत्सभट्टि ने दशपुर का वर्णन कर श्रेणी का विवरण उपस्थित किया है जिसका स्थानीय व्यापार में प्रमुख हाथ रहा तथा जिसके कारण दशपुर वैभवयुक्त हो गया। प्राचीन भारत में व्यापार पूंजीपतियों के हाथ में न था। व्यापारिक संस्था श्रेणी के नाम से साहित्य तथा लेखों में उल्लिखित है। व्यापार का कार्य श्रेणी द्वारा व्यवस्थित ढंग से होता था। गुप्तकालीन व्यापार इसी संस्था के हाथ में था। श्रेणी व्यापार तथा मुद्रा की शुद्धता पर सदा ध्यान रखती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्मृति ग्रंथों में इस संस्था का विशद विवरण उपलब्ध है। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि गण (श्रेणी) वाले अपना सुव्यवस्थित समुदाय बनाते, नियमों का पालन करते तथा व्यापर के हानि लाभ के उत्तरदायी होते थे—

समवायेन वणिजां लाभार्थं कर्म कुर्वताम्
लाभालाभौ यथा द्रव्यं यथा वा संविदा कृतौ ।

(याज्ञ० स्मृति २।२५९)

मनु ने भी व्यवसायिक नियमों का उल्लेख किया है। इस (श्रेणी) संघ के नियमों का राजा भी आदर करता था—

जातिजान पदान् धर्मान् श्रेणिधर्माश्च धर्मवित्
समीक्ष्य कुलधर्माश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत्

(मनुस्मृति ८।४१)

नारद का कथन सुनिए—

पाषंडि नैगम श्रेणी पूगव्रात गणादिषु
संरक्षेत्समयं राजा दुर्गे जनपदे तथा

(नारद स्मृति १०।२)

गुप्त कालीन लेखों में श्रेणी का वर्णन भरा पड़ा है (का० इ० इ०, भा० ३ नं० १६, १८ एवं वैशाली व भीटा की मुहरें—आ० स० रि० १९११-२)। प्रथम कुमारगुप्त के शासन में पटकार संघ (श्रेणी) लाट से आकर दशपुर में निवास करने लगा (मंदसोर लेख) इसके पश्चात् लेखों में तैलिक श्रेणी, पटकार, मूर्तिकार, शिल्पकार, वणिक वर्ग आदि श्रेणी के समूह रूप में वर्णित हैं।

एकेन शिल्पेन पण्येन वा ये जीवन्ति तेषां समूह श्रेणी (काशिका २।१।५९)

प्राचीन भारत में श्रेणियाँ आधुनिक बैंक के सदृश कार्य करती थीं। श्रेणी का प्रमुख कार्य था—व्यापार तथा दान में प्रदत्त भूमि या द्रव्य का संरक्षण। उस धन की आय (भूमिकर या सूद) को मंदिरों के पूजा निमित्त अथवा निदिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यय करती थी। स्मृतियों में श्रेणी के शिक्षा संबंधी कार्य का भी उल्लेख है। उस संस्था से संवद्ध व्यक्ति या बालक शिक्षा संस्था में नियमित समय तक विद्याभ्यास करता था। गुरु उस बालक को विशिष्ट कला का ज्ञान कराता था। इस प्रकार श्रेणी के बहुमुखी कार्यों का विवरण साहित्य तथा अभिलेखों से उपलब्ध हो जाता है।

स्वशिल्पमिच्छन्नाहर्तुं बांधवानांमनुज्ञया
आचार्यस्य वसेदन्ते कालं कृत्वा सुनिश्चितम्

(नारद ५।१६)

कृतशिल्पोऽपि निबसेत्कृतकालं गुरोर्गृहे।

(याज्ञ० २।१८४)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मंदसोर प्रशस्ति में वर्णन मिलता है कि पटकार समिति के सदस्य समाज के विभिन्न वर्ग से संवद्ध थे पर सभी श्रेणी सामूहिक नियमों का पालन करती थीं। वत्सभट्टि ने अनेक श्लोकों में (मंदसोर प्रशस्ति सं० १६, १७, १८ व १९) सदस्यों के गुणों तथा विशिष्ट काम में निपुणता का वर्णन किया है। कतिपय व्यक्ति संगीत में प्रवीण, धनुर्वेद, कथा प्रसंग, वस्त्र बुनने में निपुण, ज्योतिष शास्त्र का ज्ञाता या धर्मशील (धर्मपरायण) एवं क्षमाशील थे। कुछ तो युद्ध क्षेत्र में प्रगल्भ तथा शत्रुओं के विनाश में निपुण थे। इस प्रकार के सदस्यों द्वारा, देवतुल्य, मुक्तराग, उदार एवं कुलभूषण द्वारा भी शिल्पियों की समिति (श्रेणी) सर्वदा सुशोभित थी।

स्व-कुल-तिलक भूतैः मुक्तरागैरुदारैः
अधिकमभिविभाति श्रेणीरेवं प्रकारैः।

वही पटकार श्रेणी दशपुर में निवास करने लगी। उसके कार्यों से यह नगर वैभवपूर्ण हो गया। इस नगरी की सुंदर वाटिकाओं, कासारों, गगन चुंबी अट्टालिकाओं तथा मदमत्त गजेंद्रों का रमणीय वर्णन वत्सभट्टि ने किया है।

प्रासादमालभिरलंकृतानि, धरां विदार्यैव समुत्थितानि
विमान माला सदृशानि यत्र गृहाणि पूर्णेन्दुकरामलानि। (मंदसोर १२)

वभूवगोप्ता नृप विश्ववर्म्मा

दशपुर के भूभाग पर शासन करने के लिए विश्ववर्म्मा को प्रथम कुमारगुप्त ने राज्यपाल (गोप्ता) नियुक्त किया। वह वृहस्पति के सदृश बुद्धिमान तथा रण में कुशल वर्णित किया गया है।

पट्टवायैरुदारं—पटकार (बुनकार) श्रेणी। इसी ने भगवान् सूर्य का मंदिर निर्मित करवाया था (श्रेणी भूतैर्भवनमतुलं कारितं दीप्त रश्मेः)।

मालवानां गण स्थित्या

मालव गणना (संवत्) के ४९३ वर्ष (=ई० स० ४३६) में सूर्य मंदिर का निर्माण हुआ। तथा कालांतर में मंदिर के क्षति ग्रस्त होने के कारण पटकार श्रेणी ने अपने यश की अभिवृद्धि निमित्त इस सूर्य मंदिर का जीर्णोद्धार मा० स० ५२९ वर्ष (=४६२ ई०) में किया था। प्रथम कुमारगुप्त के शासन काल में दोनों कार्य संपन्न हुए थे। ई० स० ४३६ में बंधुवर्मा मालवा का राज्यपाल था किंतु इस लेख में (ई० स० ४६२ में) मालवा में कौन शासन (सामंत के रूप में) करता था, यह उल्लिखित नहीं। संभव है गुप्तराज्य के संबंध में कोई झगड़ा खड़ा होने के कारण दशपुर के शासक का उल्लेख नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्कंदगुप्त के अभिलेख

प्रथम कुमारगुप्त का उत्तराधिकारी सम्राट् स्कंदगुप्त के कई लेख उपलब्ध हुए हैं जिनके साक्ष्य पर उसके व्यक्तित्व एवं उपलब्धियों के विषय में पूर्ण ज्ञान हो जाता है। सभी लेख तिथि युक्त नहीं हैं तथा कुछ में उसकी वंशावली अज्ञात है। भितरी स्तंभलेख तथा विहार स्तंभ अभिलेख के द्वितीय अंश में स्कंदगुप्त के पूर्वजों के नाम उल्लिखित हैं। केवल इंदोर से प्राप्त ताम्रपत्र में उसका नाम परमभट्टारक महाराजाधिराज की पदवी से विभूषित है। कालक्रम की दृष्टि से (गु० स० १३६, १३७ एवं १३८) सर्व प्रथम जूनागढ़ का शिलालेख उल्लेखनीय है। इसमें स्कंदगुप्त की उपलब्धियों का विवरण मिलता है। दूसरा अभिलेख कहौम के स्तंभ पर अंकित है जिसकी तिथि गु० स० १४१ दी गई है। इस वर्ष को (१४१=४६० ई०) स्कंदगुप्त के राज्य का शांत वर्ष कहा गया है।

तीसरा लेख इंदौर ताम्रपट्ट पर खुदा है जिसमें इंद्रपुर की तेलिक श्रेणी द्वारा सूर्य मंदिर में दीपदान का वर्णन है।

भितरी का स्तंभ लेख जूनागढ़ अभिलेख के समान महत्वपूर्ण है। इसमें गुप्त वंशावली का उल्लेख है। इस लेख में भगवान् विष्णु की विशाल प्रतिमा की स्थापना का विवरण प्रस्तुत किया गया है। हाल ही में रीवा नगर के समीप सुपिया नामक स्थान से स्कंदगुप्त के शासन काल का एक छोटा लेख प्राप्त हुआ है। इसमें गुप्त वंशावली घटोत्कच से प्रारंभ होती है।

'श्री घटोत्कच तद् वंशे' वाक्य से गुप्त वंशावली का उल्लेख हैं।

इसमें ज्येष्ठ शुक्ल २ गु० स० १४१ की तिथि उल्लिखित है। अभिलेख में समुद्रगुप्त तथा स्कंदगप्त का व्यक्तिगत नामोल्लेख है किन्तु द्वितीय चंद्रगुप्त तथा प्रथम कुमारगुप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पदवियों—विक्रमादित्य तथा महेंद्रादित्य—से ही ज्ञात हैं। स्कंद के लिए 'महाराजा' की पदवी अंकित है।

इस अभिलेख को स्थानीय सती स्तंभ के नाम से पुकारते हैं। इसका उद्देश्य यह था कि सुपिया के सेठ (Banker) कैवर्त के पौत्र एवं हरि सेठ के पुत्र चंद्रिका नामक व्यक्ति ने षष्टी माता की पुजा के लिए स्तंभ स्थापित कर लेख अंकित कराया। षष्टी शिव के पुत्र कार्तिकेय की स्त्री कही गई हैं। स्कंद का दूसरा नाम कार्तिकेय भी है। दक्षिण भारत में 'सुब्रह्मण्य' के नाम से विख्यात हैं। अभिलेख में नामोल्लेख के अतिरिक्त मूर्ति का अभाव है।

स्कंदगुप्त के विहार स्तंभ लेख के विषय में विद्वानों में मतभेद है। इसमें तिथि का अभाव है। गद्य अंश में गुप्तवंश वृक्ष का उल्लेख है। डा० मजुमदार का मत है कि विहार स्तंभ लेख स्कंदगुप्त कालीन नहीं है। संभवतः पुरुगुप्त के शासन काल में उसे अंकित किया गया था। यद्यपि पुरुगुप्त का नामोल्लेख नहीं है किन्तु अंतिम पंक्तियां मिट गई हैं। उसके साक्ष्य पर अंतिम रूप से कुछ व्यक्त करना समीचीन न होगा। स्कंदगुप्त का अंतिम तिथियुक्त लेख (गु० स० १४८) गढ़वा से प्राप्त हुआ था जहाँ से उसके पूर्वजों (द्वितीय चंद्रगुप्त एवं कुमारगुप्त) का लेख भी उपलब्ध हुए हैं।

जूनागढ़ शिला लेख

काठियावाड़ के जूनागढ़ के क्षेत्र में गिरनार नामक पर्वत पर अंकित है। उस स्थान पर स्कंदगुप्त ने ऐतिहासिक लेख अंकित कराया था। यह स्थान मौर्य युग से प्रसिद्ध था। अशोक ने भी अपने चौदह शिलालेख गिरनार चट्टान पर अंकित कराया था। कालान्तर में शकवंशी महाक्षत्रप (सम्राट्) रूद्रदामन का लेख स० १५० में खुदवाया गया था। अशोक के चौदह शिलालेख 'धर्मशासन' के रूप में अंकित है जो प्राकृत (भाषा) तथा ब्राह्मी (लिपि) में लिखे गए थे। महाक्षत्रप रूद्रदामन का लेख संस्कृत साहित्य का सर्वप्रथम गद्य खण्ड है जिसके पूर्व संस्कृत संबंधी किसी प्रकार का गद्य या पद्य नहीं मिलता। रूद्रदामन का गिरनार लेख वैदर्भ रीति में लिखा गया जिसे "स्फुट-लघु-मधुर-चित्र-कांत-शब्द समयोदारालंकृत गद्य पद्य काव्य" कहा गया है। इस लेख का विशेष महत्व है क्योंकि यह स्कंदगुप्त के जूनागढ़ लेख की पूर्वपीठिका के रूप में काम करता है। रूद्रदामन के लेख (गिरनार प्रशस्ति) के साक्ष्य पर ही काठियावाड़ में मौर्यों द्वारा सिंचाई के निमित्त सुदर्शन झील तथा उससे संबंधित नहरों के निर्माण का विवरण उपस्थित किया जाता है। उसी झील को रूद्रदामन ने अधिक दृढ़ बनाया। स्कंदगुप्त की जूनागढ़ प्रशस्ति में भी उसी सुदर्शन के संस्कार (मरम्मत) का वर्णन है। संभवतः गुप्त सम्राट् ने इसी उद्देश्य को दृष्टि में रख कर गिरनार पर्वत की चट्टान पर अपना लेख खुदवाया। रूद्रदामन के लेख सदृश स्कंद का अभिलेख भी काव्यमय संस्कृत में लिखा है परंतु इसकी लिपि 'गुप्तलिपि' के नाम से प्रसिद्ध है। अतः प्राकृत एवं ब्राह्मी के पश्चात् संस्कृत तथा गुप्तलिपि को कालान्तर में गिरनार पर स्थान दिया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस अभिलेख में तीन तिथियाँ १३६, १३७, व १३८ गुप्त संवत् में अंकित हैं। प्रथम गु० स० १३६ (=४५५ ई) में गिरनार के सुदर्शन तट का बांध टूटा जिससे नागरिकों को महान कष्ट हुआ। गु० स० १३७ (=४५६ ई०) के ग्रीष्ममास में इस बांध के पुनर्निर्माण का कार्य आरंभ हुआ। जीर्णोद्धार की कारवाई चक्रपालित (नगर का पदाधिकारी) ने की। गु० स० १३८ (=४५६ ई०) में इसी कर्मचारी ने विष्णु मंदिर का निर्माण किया।

म्लेच्छ – हूण जाति जो मध्य भारत पर प्रथम कुमारगुप्त के अंतिम समय में आक्रमण कर रही थी।

व्ययेत सर्वान्मनुजेन्द्र पुत्रां लक्ष्मी स्वयं यं वरयांचकार।

इस पंक्ति से स्कंदगुप्त के राज्यारोहण का प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि सभी राजकुमारों को त्याग कर लक्ष्मी ने स्कंदगुप्त को अपना पति चुना। यानी स्कंद सम्राट् हो गया। इस प्रसंग में यह कहा जा सकता है कि उत्तराधिकार की कुछ कठिनाइयाँ अवश्य ही सामने आई थी। प्रथम कुमारगुप्त के अन्य पुत्रों ने संभवतः सिंहासन के लिए प्रतिस्पर्धी दावे उपस्थित किए थे। किन्तु इस साक्ष्य पर कोई निश्चित निष्कर्ष संभव नहीं है। मनुजेन्द्र राजकुमार के लिए प्रयुक्त है।

सर्व्वेषु देशेषु विधाय गोप्तृन—गुप्त साम्राज्य में अनेक प्रदेश स्थित थे जिनका शासन राज्यपाल को सुपुर्द कर दिया गया था। स्कंदगुप्त के सामने भी पश्चिमी भारत में शासक की नियुक्ति का प्रश्न था। उस काल में हूणों का आक्रमण हो रहा था, अतएव पश्चिम भारत पर विशेष ध्यान था। स्कंदगुप्त ने इस कारण सोच-समझकर योग्य व्यक्ति को गोप्ता (राज्यपाल) चुना। आठ से दस पद्यों में उसके गुणों का वर्णन किया गया है (सर्वस्य लोकस्य हिते प्रवृत्तः)।

नृविशेषयुक्त—आदर्शशासक विशिष्ट गुणों से युक्त।

सुराष्ट्र—सौराष्ठ (कठियावाड़)

पर्णदत्त—राज्यपाल का नाम

चक्रपालित—पर्णदत्त का पुत्र तथा नगर का स्वामी। वह लोगों का विश्वास भाजन था।

सुदर्शन—जूनागढ़ क्षेत्र का झील, जो पानी की अधिकता के कारण क्षतिग्रस्त हो गया था।

गुप्त प्रकाले गणनां विधाय—जिस तिथि १३६ का उल्लेख है वह गुप्तकाल से संबंधित है। गुप्तों के काल के अनुसार गणना होती रही। यानी गुप्त संवत् में इस तिथि को मानते हैं। गु० स० ३१९ ई० में स्थापित हुआ था, अतः तिथियों में ३१९ जोड़ने से ईसवी सन् की तिथि ज्ञात हो जाती है।

रैवतक—पर्वत का नाम जो गिरनार के सम्मुख था जहाँ से नदियाँ निकली थीं।

पलाशिन, सिकता—दोनों नदियों के नाम। सिकता को वर्तमान सोनरेखा से एकीकरण करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सटाक संस्कार-ग्रंथ रचना—सुदर्शन झील की मरम्मत का विवरण—प्रायः सौ फीट लम्बा बाँध निर्मित हुआ।

चक्रभृतः—विष्णु का नाम जिसके मंदिर को नगर स्वामी चक्रपालित ने बनवाया था। अतएव भगवान् चक्रभृत कहलाए।

कहौम प्रस्तर स्तंभ लेख

उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले में स्थित ग्राम। अभिलेख में कहौम के लिए कुकुम शब्द उल्लिखित है। भाषा संस्कृत तथा ब्राह्मी (उत्तरी उपशाखा) में लेख अंकित है। तिथि गु० स० १४६ (=४६६ ई०)।

स्कंदगुप्तस्यशांते—अंतिम शब्द विशेष महत्व रखता है। संभव है इसका भाव यह है कि स्कंदगुप्त के शांतिमयवातावरण में यह लेख अंकित हुआ। यानी बाहरी शत्रु—हूणों के पराजय के पश्चात् स्कंद का शासन शांतिमय हो गया था।

कुकुम—कहौम का प्राचीन नाम

अर्हतान् आदिकतृ ंन—इससे प्रकट होता है कि स्तंभ पर पाँच जैन अर्हतों की आकृतियाँ खोदी गई थी—आदिनाथ, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर।

पंचेंद्रां—पाँच इंद्र यानी जिनेन्द्र जिनका उल्लेख हो चुका है।

धरणिधरमय—शिलाखंड पर जिनकी स्थापन हो।

इंदोर ताम्रपट्ट लेख

उत्तर प्रदेश के बुलंद शहरनामक जिले के अंतर्गत डिभाइ के समीप इंदोर ग्राम है जहाँ से यह ताम्रपट्ट उपलब्ध हुआ था। गु० स० १४६ (=४६६ ई०) तिथि का उल्लेख है। संस्कृत भाषा एवं गुप्तलिपि में अभिलेख खुदा है। इसमें गुप्त वंशावली का अभाव है। गुप्तनरेश स्कंदगुप्त की महान पदवी—परमभट्टारक महाराजाधिराज इस लेख में मिलती है। इस ताम्रपत्र में भगवान् सूर्य के मंदिर में दीपदान का वर्णन है। इंद्रपुर (वर्तमान इंदोर) की तेलिक श्रेणी ने दो पल (माप) तेल का प्रबंध किया था। ब्राह्मण द्वारा प्रदत्त भूमि की आय से उसका प्रबंध होता था और श्रेणी की स्थायी संपत्ति थी।

शर्वनाग—स्कंदगुप्त का विषय पति (जिलाधीश)

अंतर्वेदी—गंगा तथा यमुना का मध्य भाग जो प्रयाग तथा हरिद्वार के मध्य स्थित है।

छांदोग्य तथा राणायणीय—सामवेद के दो शाखाएँ। छांदोग्य शाखा का अध्ययन मध्य भारत में होता रहा। प्राचीनकाल में दानग्राही ब्राह्मणों को वैदिक शाखा के अनुसार भी वर्णित किया गया है। विशेष कर दानपत्रों में। (विशेष जानकारी के लिए देखिए लेखक का ग्रंथ—Socio-Religious Condition of North India (700–1200 A.D., P. 120–124)।

इंद्रापूर गा इंद्रपुर—इंदोर का प्राचीन नाम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वणिग्भ्यां—क्षत्रिय अचलवर्ण तथा मृकुंठसिंह क्षत्रिय वर्ण के वास्तविक कार्य को छोड़कर व्यापार में लग गए थे। जो शास्त्र के अनुकूल नहीं है।

माडास्यात लग्ने = माडास्यात इंद्रपुर के समीप का स्थान

तैलिक श्रेणी—तेल का व्यापारिक समूह

जीवन्त—श्रेणी के प्रधान (अध्यक्ष) का नाम

आजस्त्रिकं—स्थायी रूप से

दत्त = दान

मूल्य = वह दान जिसकी आय से सूर्य भगवान् के दीपार्थ व्यय किया जाय।

देय तैलस्य तुल्येन = दान दिया तेल का वजन (तुल्य = तौल)

तु = तुल्येन का संक्षिप्त रूप

चंद्रार्क्क समकालीयं = दानपत्रों में इन शब्दों का सदा प्रयोग किया गया है। यानी चंद्र एवं सूर्य की स्थिति के समय तक श्रेणी दो पल तेल दीपार्थ दिया करेगी। तात्पर्य यह है कि असीमित काल तक प्रत्येक दशा में श्रेणी को तेल देना होगा।

निवद्धं = दानपत्र को (रजिस्टर्ड) निबंधित किया गया।

गोघ्नो, गुरुघ्नो, द्विजघातक—बुरे कार्य करने से पाप होता है उसी का उल्लेख, गोहत्या, गुरुहत्या तथा ब्राह्मणहत्या से वर्णित किया गया है। जो व्यक्ति दान को नष्ट करेगा, उसे इन तीनों की हत्या का पाप लगेगा।

पातकै पञ्चभि :—प्राचीन साहित्य एवं अभिलेखों (दानपत्रों) में पाँच पातक या दस पातकों (पाप) की संख्या उल्लिखित है।

हिंदुओं के पाँच पातकों में

(१) ब्रह्महत्या, (२) सुरापान, (३) स्तेयं, (४) गुवर्ग नागमः (गर्भवती से मैथुनइच्छा), (५) संसर्ग (मैथुन) की गणना की जाती है। बौद्ध-साहित्य में दश पातक (दश अकुशल कर्मपथ) में विभिन्न नामों का उल्लेख है।

(१) हत्या, (२) चोरी, (३) मैथुनिक दुर्व्यहार, (४) असत्य, (५) मिथ्यापवाद, (६) कठोर शब्द प्रयोग, (७) व्यर्थ वकवास, (८) लोभ, (९) कुत्सित विचार, तथा (१०) भ्रांतिपूर्व दार्शनिक दृष्टिकोण

भितरी स्तंभ लेख

उत्तरप्रदेश के गाजीपुर जिले के अंतर्गत सैदपुर नामक ग्राम के समीप भितरी ग्राम में यह स्तंभ आज भी स्थित है। यह काव्यमय संस्कृत तथा गुप्तलिपि में अंकित है। इस स्तंभ की तिथि उल्लिखित नहीं है। परंतु गुप्त वंशावली के साक्ष्य पर (स्कंदगुप्त के नामोल्लेख) इसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्कंदकालीन प्रस्तर स्तंभ पर अंकित प्रशस्ति मानते हैं। आरंभ में श्रीगुप्त से लेकर प्रथमकुमार गुप्त तक 'पुत्रः तत्पादानुध्यातो' वाक्य का उल्लेख है किंतु स्कंदगुप्त के लिए निम्न पद्य (सं० २) मिलता है—

जगति भुज बलाढ्यो गुप्तवंशैकवीरः
प्रथित विपुल धामा नामतः स्कंदगुप्तः

जूनागढ़ शिलालेख के सदृश भितरी स्तंभ भी महत्वपूर्ण अभिलेख है जिसके आधार पर स्कंदगुप्त के जीवन काल की घटनाओं की पुष्टि होती है। इस अभिलेख में सिंहासन के निमित्त युद्ध का आभास मिलता है कि स्कंदगुप्त का कोई प्रतिस्पर्धी था जो राजगद्दी चाहता था। इसके शासन काल में हूण लोगों से घनघोर युद्ध हुआ जिसकी संपुष्टि इस लेख के साक्ष्य पर हो जाती है।

वृतं—जो सद्गुणी हो तथा नियमों का पालन करनेवाला।

न विहितं अमलात्मा—जिसकी आत्मा स्वच्छ है तथा कलुषित नहीं है।

पुष्पमित्रांश्च—स्तंभ पर खुदे अक्षरों को नष्ट हो जाने से स्पष्ट नहीं। कुछ लोग इसे युध्यमित्रांश्च पढ़ते हैं। यानी जो युद्ध के प्रेमी हैं। चौथे पद्य के विवेचन से यह प्रकट होता है कि स्कंदगुप्त ने राज्य लक्ष्मी को विचलित करनेवाले शत्रुओं को (पुष्यमित्रां) पराजित किया तथा उन शासकों के पीठ पर अपना चरण रखा। पुराणों में पुष्यमित्रां नामक जाति का उल्लेख है जिसे गुप्त सम्राट् ने परास्त किया हो या घरेलू शत्रु हो।

देवकीमभ्युपेत :—छठे पद्य का भाव यह है जिस प्रकार शत्रुओं को पराजित कर श्रीकृष्ण ने अपने विजय की वार्ता माता देवकी को सुनाया था, उसी प्रकार स्कंदगुप्त ने भी गृहयुद्ध में प्रतिस्पर्धियों को पराजित कर अपनी जननी को विजय की खबर दी। इसी कारण पद्य के आरंभ में वंश-लक्ष्मी का विचलित होना कहा गया है। इस संबंध में यह भी विचार उपस्थित किया जाता है कि गद्दी का उत्तराधिकारी स्कंदगुप्त न था। उसकी माता महादेवी नहीं कही गई है। पर यह दृष्टिकोण न्यायसंगत नहीं है। जो भी स्कंदगुप्त के शत्रु हों, उसे पराजित कर माता को सूचना देता है।

हूणै—चीन के पश्चिमी दीवार के समीप मध्य एसिया में हूण नामक जाति निवास करती थी जिसे सफेद हूण या इफथलाइट कहते हैं। चौथी पाँचवीं सदी से मध्य एसिया से पश्चिम दिशा में अग्रसर होने लगें। कालिदास ने भी भारतीय राजनीति में हूण के पदार्पण का उल्लेख किया है। बल्ख में निवास कर हूण जाति का बढ़ाव हिन्दुस्तान के पश्चिमोत्तर प्रांत की ओर हुआ। प्रथम कुमारगुप्त के शासन काल में गुप्त साम्राज्य की पश्चिमी दिशा की नाकाबंदी कर दी। परंतु स्कंदगुप्त उनको पराजित करने में सफल हुआ जिसका साक्ष्य भितरी स्तंभ लेख से उपलब्ध होता है। किंतु थोड़े ही दिनों बाद हूणों का राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मध्य एसिया से मध्य भारत तक फैल गया जिसके प्रमाण स्वरूप हूणों के लेख (एरण तथा ग्वालियर लेख) तथा उनकी मुद्राएँ उपस्थित की जाती हैं। इसी वंश के शासक मिहिरकुल को मालवा के राजा यशोधर्मन तथा गुप्त नरेश बालादित्य ने हराया था। परंतु इससे हूण का प्रभाव घट न सका। समयांतर में हूण एक शक्तिशाली जाति तथा शासक के रूप में भारतीय राजनीति में स्थिर हो गए। भारतीय राजाओं ने हूण कन्याओं से विवाह किया और अन्ततोगत्वा हूण जाति हिन्दू जाति में विलीन हो गई। उसका पृथक् अस्तित्व समाप्त हो गया। इसको विदेशियों का भारतीयकरण कह सकते हैं। (प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, पृ० ५८)।

शार्ङ्गिण :—भगवान् विष्णु का नाम जिनकी प्रतिमा स्थापित की गई तथा वह ग्राम दान में दिया गया (संस्थितः)।

बिहार स्तंभ लेख

बिहार प्रदेश के नालंदा जिले में स्थित बिहार (बिहारशरीफ भी कहते हैं) नामक प्रधान नगर है जहाँ से यह स्तंभ लाकर पटना संग्रहालय मे रखा गया है। संस्कृत तथा गुप्त लिपि में लेख खुदा है। इसमें तिथि का अभाव है पहले भाग में अभिलेख पद्य में अंकित था। प्रायः प्रत्येक पद्य के आरंभिक दो पंक्तियों तथा चौथी पंक्ति का अंतिम पद्य प्रस्तर के चिटकने से नष्ट हो गया है। पहले भाग के तीसरी पंक्ति में कुमारगुप्त तथा छठीं पंक्ति में स्कंदगुप्त का नाम पढ़ा गया है।

इसकी दसवीं पंक्ति में स्तंभ स्थापना का वर्णन है जिसे 'यज्ञ यूप' कहा गया है। एग्यारहवीं पंक्ति में स्कंदगुप्तवट नामक ग्राम दान का उल्लेख है।

मातृमि ।=इसका भाव दैवी माताओं से है जिनकी संख्या सात मानी जाती है—

ब्राह्मी, माहेश्वरी चैव, कौमारी बैष्णवी तथा माहेंद्री चैब वाराही चामुंडा सप्त मातर ।

हिंदू समाज मे इनकी पूजा होती है तथा शैव मंदिरों में इनके लिए स्थान रहता है। बम्बई के पास ऐलेफेंटा तथा कैलाश नाथ मंदिर (एलोरा) में सप्तमातृका की मूर्तियां निर्मित हैं। गोद में शिशु ग्रहण करने से माता का भाव प्रकट है तथा विशिष्ट देवताओं के वाहन सहित स्थिति होने पर उनका नामकरण भी सरल हो जाता है। यों तो भारतीय कला में आठ नव तथा सोलह मातृकाओं का भी विवरण पाया जाता है।

उपरिक = राज्यपाल
कुमारामात्य = प्रांत पति का मंत्री
अग्रहारिक = अग्रहार दान का निर्देशक
शौल्किक—शुल्क (कर) ग्रहण करनेवाला
गौल्मिक = जंगल का कर्मचारी (पदाधिकारी)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गढ़वा लेख (गु० स० १४८)

उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले के अंतर्गत करद्दना तहसील के गढ़वा स्थान से प्राप्त हुआ है। यह प्रस्तर खंड दशावतार मंदिर के फर्श से संबद्ध था। इसकी भाषा संस्कृत तथा लेख उत्तरी भारत की शैली (गुप्तलिपि) में अंकित है। इसमें शासक का नाम अज्ञात है किंतु पहली पंक्ति में तिथि १४८ का उल्लेख है। भाषा एवं लिपि का साक्ष्य इसे गुप्त युग में खुदा सिद्ध करता है। अतएव १४८ का संबंध गुप्त संबत् से हो जाता है जिस काल में स्कंदगुप्त शासन कर रहा था। इसमें अनंत भगवान् (विष्णु) की प्रतिमा स्थापना का वर्णन है। इस देव की पूजा निमित्त—गंध धूप, पुष्प तथा मंदिर के मरम्मत (खंड स्फुट) के निमित्त दान दिया गया। उस अग्रहार का विवरण अज्ञात है। स्यात् चित्रकूट स्वामी के अग्रहार ग्राम के समीप में स्थित था।

सुपिया लेख

मध्य प्रदेश में रीव के समीप सुपिया से एक स्तंभ प्राप्त हुआ है जिस पर एक लेख गुप्तलिपि में अंकित है। उसमें स्कंदगुप्त का नाम तथा तिथि २४१ के आधार पर इसे गुप्त अभिलेखों में सम्मिलित किया गया है। इस लेख का उद्देश्य यह व्यक्त करना है कि षष्टी माता की पूजा निमित्त स्तंभ स्थापित किया गया है। षष्टी को कार्तिकेय की पत्नी कहा गया है। षष्टी देवी की पूजा सभी हिंदू बालक के जन्म के छठे दिन करते हैं ताकि उसकी रक्षा हो सके। यों तो इसके अतिरिक्त शास्त्रों में प्रत्येक मास की शुक्लपक्ष की षष्टी पूजा का विधान मिलता है। कार्तिक मास की 'गोषष्टी' का विशेष महत्व है। बिहार प्रदेश में बड़े ही धूमधाम से पूजा संपन्न करते हैं। षष्टी माता का इतिहास बौद्धधर्म से भी संबंधित है। कहा गया है कि वज्रयान की देवियों के अतिरिक्त हारीति नामक देवी का उल्लेख गंधार युग से मिलता है। गंधार, साँची, मथुरा, अमरावती से हारीति की प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं। कला में हारीति एकाकी रूप में भारतीय नारी के सदृश (गोद में स्तनपीता बच्चा) तथा युग्म रूप में (कुवेर तथा हारीति) प्रतिमाएँ मिलती हैं। रत्नकूट में कथानक है कि हारीति राजगृह के समस्त बच्चों को निगल जाती थी। लोगों ने बुद्ध से विनय किया। भगवान् ने हारीति के सौ संतानों में एक को छिपा लिया। हारीति रोती बुद्ध के पास गई। भगवान् ने प्रश्न किया—क्या तुम बच्चों को प्यार करती हो ? उत्तर था—हाँ। उसी दिन से हारीति ने बच्चों की हत्या के स्थान पर प्रेम तथा रक्षा करने की प्रतिज्ञा की। उस समय से हारीति वात्सल्य प्रेम दिखाने के कारण बालकों का रक्षक हो गई। हिन्दू ग्रंथों में वर्णित षष्टी हारीति का परिवर्तित रूप है। आजकल नवजात शिशु के छठे दिन 'षष्टीमाता' की पूजा की जाती है। कुछ विद्वान् षष्टी को एक स्वतंत्र देवी मानते हैं। षष्टी पूजा में सूर्य की प्रमुखता है। जिसका चित्र कार्तिक षष्टी पूजा में दीख पड़ता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय कुमारगुप्त एवं बुधगुप्त के अभिलेख

स्कंदगुप्त के पश्चात् गुप्त साम्राज्य की अवनति होती गई। लेखों तथा मुद्राओं के साक्ष्य के आधार पर यह निर्णय किया गया है कि स्कंदगुप्त के शासन आरंभ से ही सिंहासन के लिए गृहयुद्ध हुआ परंतु स्कंदगुप्त ही शासक बना। शक्ति बल से शत्रुओं को पराजित कर उसने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली। विद्वानों में मतभेद है कि प्रथम कुमारगुप्त के दो पुत्रों—स्कंदगुप्त एवं पुरुगुप्त में कौन वास्तविक उत्तराधिकारी था। क्या स्कंद ने प्रभुता तथा शक्ति के कारण सिंहासन प्राप्त कर लिया? या राज्य का बंटवारा हो जाने पर गुप्त साम्राज्य के दो नरेश पूर्व तथा पश्चिम दिशा (बिहार, उत्तर प्रदेश, गुजरात) में शासन करने लगे? द्वितीय कुमारगुप्त के भितरी राजमुद्रा के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रथम कुमारगुप्त के पश्चात् पुरुगुप्त शासक हुआ। इन साक्ष्यों पर आधारित विचार उपस्थित किए गए हैं जिनका उल्लेख हो चुका है।

द्वितीय कुमारगुप्त का पहला अभिलेख सारनाथ की बुद्ध प्रतिमा के पाद पीठ पर खुदा है। भाषा संस्कृत तथा गुप्तलिपि में। इसकी तिथि गु० स० १५४ (=४७४ ई०) दी गई है। वर्णन मिलता है कि बुद्ध (शास्ता) की प्रतिमा को अभयमित्र ने स्थापित किया था। स्कंदगुप्त की अंतिम तिथि ई० स० ४६७ (गढ़वा लेख गु० स० १४८) मानी गई है। अतः यह कुमारगुप्त द्वितीय कुमारगुप्त ही माना जा सकता है।

शास्ता—बुद्ध

सत्यकाय—जो सद्गुणों का आगार हो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस शासक का दूसरा लेख गाजीपुर जिले (उत्तर प्रदेश) के भितरी नामक स्थान से प्राप्त रजत मुद्रा (Seal) पर अंकित है। जिसकी भाषा संस्कृत है तथा उत्तर भारतीय शैली लिपि में खुदा है। इसमें तिथि का अभाव है। इसके अनुशीलन से ज्ञात होता है कि प्रथम कुमारगप्त के पश्चात् पुरुगुप्त नामक राजकुमार सिंहासनारूढ़ हुआ। श्रीगुप्त से वंशावली का आरंभ अन्य अभिलेखों के सदृश है किंतु कुमारगुप्त के पश्चात्—"तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महादेव्यां उत्पन्नो महाराजाधिराज श्री पुरुगुप्तः" वाक्य उल्लिखित है। अतएव इस आधार पर कुमारगुप्त (प्रथम कुमारगुप्त) का उत्तराधिकारी (तत्पादानुध्यात) पुरुगुप्त ही प्रकट होता है। इस पुरुगुप्त के सिक्के भी मिले हैं (एलन—सूचीपत्र, फलक २१ सं० २३) अन्य सिक्कों पर बुध नाम पढ़ा गया है। इस मुद्रालेख (Seal) के साक्ष्य पर राजा का वास्तविक नाम पुरुगुप्त था।

प्रथम कुमारगुप्त
↓
पुरुगुप्त
↓
नरसिंहगुप्त
↓
कुमारगुप्त (द्वितीय)

कुमारगुप्त के पिता नरसिंह की एक मुद्रा नालंदा से प्राप्त हुई है। एलन ने इसकी स्वर्ण मुद्रा का विवेचन किया है जिसके ऊपरी भाग में खुदी शासक की आकृति में बाएँ हाथ के नीचे नर अंकित है (=नरसिंहगुप्त) पृष्ठभाग पर बालादित्य की पदवी लिखी है। बौद्ध ग्रंथों के आधार पर मगध का एक राजा बालादित्य था जिससे हूण राजा मिहिरकुल का (ई० स० ५१५ के समीप) युद्ध हुआ था। ह्वेनसांग ने भी बालादित्य का उल्लेख किया है।

बुधगुप्त

गुप्त साम्राज्य के अवनति काल में बुधगुप्त का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिसकी प्रभुता सुदूर तक फैली थी। दामोदरपुर (उत्तरी बंगाल) से सारनाथ (उत्तर प्रदेश) तथा एरण (मध्य प्रदेश) तक का भूभाग बुधगुप्त के अधीन था। सारनाथ प्रतिमा लेख की तिथि गु० स० १५७ (ई० स० ४७७) बुधगुप्त के शासन का प्रारंभिक काल था। यानी स्कंदगुप्त के बाद (ई० स० ४६७) दसवें वर्ष में यह शक्तिशाली नरेश हो गया था। कुछ लोग इसके पूर्व दस वर्षों (ई. स० ४६७ से ई० स० ४७७) में ही पुरुगुप्त, नरसिंहगुप्त एवं कुमारगुप्त की शासन अवधि को सीमित करते हैं। इन बादविवाद के तथ्य पर पहुँचना कठिन है। वृद्धावस्था में पुरुगुप्त शासक हुआ हो। चंद वर्षों के बाद ही नरसिंह तथा उसके पश्चात् कुमारगुप्त का शासन समाप्त हो गया हो। यानी दस वर्षों में तीन नरेशों का राज्यकाल सीमित करना संदेहास्पद हो सकता है किंतु असंभव नहीं। बुधगुप्त की स्वर्ण मुद्राएँ भी उपलब्ध हुई हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन सिक्कों की बनावट भारी तौल तथा शैली के कारण स्कंदगुप्त के उपरान्त ही गुप्तमुद्रा की सूची में रखी जा सकती हैं (देखिए लेखक का ग्रंथ—प्राचीन भारतीय मुद्राएँ, पृ० १६९–१७१)।

सारनाथ बुध प्रतिमा लेख (गु० स० १५७)

प्रतिमा के पाद पीठ पर खुदा है। भाषा संस्कृत तथा उत्तरी भारत की पाँचवीं सदी की लिपि में अंकित हैं। प्रथम पंक्ति में तिथि (गु० स० १५७) का उल्लेख है इसमें **'गुप्तानां समति क्रांते'** वाक्य से गुप्त संवत् का आभास मिल जाता है। इस छोटे लेख में बुधगुप्त के नाम के सिवाय वंशावली का अभाव है। आश्चर्य है किसी लेख में बुधगुप्त की वंशावली का उल्लेख प्रशस्तिकार ने नहीं किया है। संभवतः इसे वंश क्रमागत ने परंपरा से सिंहासन की प्राप्ति न हुई थी, यानी शक्तिशाली होने के कारण शासक हो गया अतः वंशावलीका उल्लेख नहीं किया गया। लेखों में 'परमदैवत परम भट्टारक महाराजाधिराज' की लम्बी उपाधि का विवरण उपलब्ध है। पर पूर्वजों के नामों का अभाव खटकता है। इस बुद्ध (शाक्यभिक्षु) प्रतिमा की स्थापना अभयमित्र ने की जिस समय बुधगुप्त राज्य कर रहा था (बुधगुप्ते प्रशासति)।

दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख

बंगाल के दीनाजपुर जिले में स्थित दामोदरपुर नामक स्थान से बुधगुप्त के दो ताम्रपट्ट मिले हैं। दोनों की भाषा संस्कृत तथा गुप्तलिपि में अंकन है। एक ताम्रपट्ट पर अंक में (अक्षरों में नहीं, सारनाथ प्रतिमा लेख में अक्षरों में तिथि का अंकन है) १६३ खुदा है जिसे गु० स० से संबंधित करते हैं यानी ई० स० ४८२ में यह ताम्रपट्ट खोदा गया जिसमें दान का विवरण पाया जाता है।

पुण्ड्रवर्धन—गुप्तकाल में उत्तरी बंगाल प्रदेश का प्रमुख स्थान
भुक्ति—प्रदेश
उपरिक—प्रांतपति, राज्यपाल
पलाश वृंद—स्थान का नाम—स्थानीय शासन का केन्द्रस्थल
महत्तर—ग्राम के मुख्य व्यक्ति
अष्ट कुलाधिकरण—आठ अभिनिर्णायक (ग्राम के आठ व्यक्ति जो न्याय में सम्मति दें)
ग्रामिक—ग्राम का मुखिया
पुस्तपाल—अभिलेख का संग्रह करने वाला
ग्रामानुक्रम बिक्रय मर्यादा—ग्राम में खेत बेचने की परंपरा
समुदय बाह्य—भूमि कर अथवा अन्य ऋण आदि से मुक्त (जिससे कर न उपलब्ध हो)
अप्रद—धन का हस्तान्तरण न हो
दीनार—गुप्तकालीन सोने के सिक्के का नाम
स्थायपाल—पहरेदार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अष्ट नवक नवक नल—क्षेत्र के माप का छड़ी-(नल) जिससे (८ × ९ नल) क्षेत्रफल मापा जाता था। या उस छड़ी से ८ फुट चौड़ा तथा ९ फुट लम्बा क्षेत्र को नापते थे।

कोटिवर्ष—दामोदरपुर के तिथि रहित ताम्रपट्ट में पुण्ड्रवर्धन भुक्ति (प्रदेश) के अन्तर्गत जिले (विषय) का नाम। यही नाम प्रथम कुमारगुप्त के दामोदरपुर ताम्रपत्र पर खुदा है जिसकी मुद्रा भी उपलब्ध हुई है। इसमें विषयपति के निम्न कर्मचारियों का नाम उल्लिखित है—

(१) **नगर श्रेष्ठी**
(२) **सार्थवाह**
(३) **प्रथम कुलिक**
(४) **प्रथम कायस्थ**

जो पद प्रथम कुमार गुप्त के शासन काल में कोटिवर्ष विषय के निमित्त स्वीकृत थे।

हिमवच्छिखरवर—संभवतः दामोदरपुर के समीपवर्ती भूभाग जो वन था और देवता को दान में दिया गया। यदि इसे हिम से आच्छादित पर्वत का शिखर समझा जाय तो यह निश्चित करना कठिन होगा कि कोटिवर्ष की सीमा उत्तरी भाग में हिमालय तक विस्तृत थी।

कोकामुख स्वामिन—महाभारत में (६। ८) दुर्गा के लिए कोकामुख का प्रयोग है। यानी यह वाक्य शिवजी के लिए प्रयुक्त है।

श्वेतवराह स्वामि—वराह भगवान् विष्णु का अवतार माना जाता है। अतएव यह वाक्य विष्णु के निमित्त उल्लिखित है।

कुल्यवाप—भूमि का माप।

नामलिंग—दो देवताओं में एक लिंग के रूप में।

देवकुल—मंदिर।

कोष्ठिका—भंडार गृह।

पुस्तपाल—अभिलेख का रक्षक।

विक्रय मर्यादा—बेचने का नियमित दर। मंदिर के समीप में भूमि क्रय कर दान दी गई थी उसी को तीन दीनार प्रति कुल्यवाप की दर से खरीदा गया।

उक्तं व्यासेन—प्रत्येक ताम्रपत्र के अंत में धर्मश्लोक अंकित करने की परंपरा चल पड़ी थी। इन अभिलेखों में प्रथम ताम्रपत्र में "उक्तं च महर्षिभिः" लिखा है। दूसरे में 'व्यासेन' अंकित है। इस प्रकार अनिश्चित दशा में इन श्लोकों का वास्तविक संबंध जोड़ना कठिन है। एक ही स्थान पर खुदे ताम्रपट्टों पर समान श्लोक प्रकाश में नहीं आए हैं। पहले ताम्रपट्ट पर तीसरा श्लोक के 'षष्टि वर्ष सहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिद आक्षेप्ता चानुमंता च तान्येव नरके वसेदिति' स्थान पर दूसरे ताम्रपट्ट पर नये श्लोक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को स्थान दिया गया है—

पूर्वदत्तां द्विजातिभ्यो यत्नारक्ष युधिष्ठिर।
मही महीमतां श्रेष्ठ दानाश्रेयोनपालनम्।

एरण स्तंभ लेख (गु० स० १६५)

बुधगुप्त का एरण स्तंभ लेख ऐतिहासिक महत्व रखता है। संस्कृत भाषा तथा गुप्तलिपि मे अंकित है। इसमें तिथि (१६५) अंक तथा अक्षरों में उल्लिखित है और केवल बुधगुप्त का ही नाम खुदा है। इस लेख का उद्देश्य यह है कि बुधगुप्त के अधीनस्थ शासक मातृविष्णु एवं उसका अनुज धन्यविष्णु नेभगवान् जनार्दन का ध्वंजस्तंभ स्थापित किया था। उसी काल में कालिंदी (यमुना) तथा नर्वदा नदियों के मध्य भू-भाग में सुरश्मिचंद्र राज्यपाल नियुक्त था। इसी स्थान से प्राप्त हूण राजा तोरमाण की एरण प्रशस्ति में यही धन्यविष्णु तोरमाण का सामंत कहा गया है। इसका तात्तर्य यह है कि मध्यभारत का पूर्वी भाग (मध्य प्रदेश) गुप्तों के बादण हू तोरमाण के शासन में चला गया था। संभवतः बुधगुप्त के पश्चात् मध्य भारत का भूभाग हूण शासक के राज्य में सम्मिलित हुआ। उसी समय भानुगुप्त मारा गया और तोरमाण का अधिकार हो जाने पर उस भाग का राज्यपाल (सामंत) धन्यविष्ण तोरमाण के अधीनस्थ हो गया। यह भी समव है कि मध्य भारत का पश्चिमी भाग (मालवा) स्कंदगुप्त के मृत्यु उपरान्त हूणों के अधिकार में आ गया हो। स्कंदगुप्त के बाद किसी गुप्त शासक के लेख गुजरात या मालवा से उपलब्ध नहीं हुए हैं।

एरण—प्राचीन नाम एरिकिण मध्यप्रदेश के सागर जिले में प्रसिद्ध स्थान। इसका ऐतिहासिक महत्व था, इसी कारण कई शासकों ने इसी स्थान पर स्तंभ पर लेख उत्कीर्ण कराया।

(१) समुद्रगुप्त का एरण स्तंभ लेख
(२) बुधगुप्त का एरण स्तंभ लेख
(३) भानुगुप्त का एरण स्तंभ लेख
(४) तोरमाण का एरण वराह प्रतिमा लेख

कालिंदी नर्म्मदयोर्मध्ये—प्राचीन काल में भूभाग की सीमा कई प्रकार से निश्चित की जाती थी। नदी के प्रसंग में भी ऐसी बातें कही गई हैं। यमुना (उत्तर प्रदेश) नर्वदा (मध्य प्रदेश) की घाटी।

लोकपाल—राज्यपाल (गवर्नर)

सुरश्मिचंद्र—व्यक्ति वाचक संज्ञा, शासन कर्त्ता का नाम।

वाजिनः—यज्ञ करने वाला।

मैत्रायणीय—कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मातृविष्णु—इसकी पदवी महाराज की थी। अतएव यह सामंत हो सकता है।

धन्यविष्णु—मातृविष्णु का अनुज। दोनों ने विष्णु भगवान् (जनार्दन) का ध्वज स्तंभ स्थापित किया। इसीका नाम तोरमाण की एरण प्रशस्ति में उल्लिखित है। यानी गुप्त शासन के नष्ट हो जाने पर उसने हूण शासन स्वीकार कर लिया।

बनारस स्तंभ लेख

राजघाट वाराणसी से प्राप्त संस्कृत तथा गुप्त लिपि में अंकित। तिथि गु० स० १५९ (=ई० ४७९) में महाराजाधिराज बुधगुप्त के राज्य का उल्लेख है। शिला स्तंभ की स्थापना का वर्णन है। वहाँ पर दो प्रकार का स्तंभ है। (१) पूजा-स्तंभ जिसमें चार ताख हैं। उनमें विष्णु के चार अवतारों की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं।

(२) स्मारक स्तंभ के लिए यष्टि शब्द का प्रयोग किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैन्यगुप्त का लेख

इस गुप्त नरेश का ताम्रपट्ट गुणैघर से प्राप्त हुआ है जो बंगाल के टिपेरा जिले में स्थित है। इस लेख के ११ या २१ पंक्ति में गुणिका अथवा गुणेका शब्द वर्तमान गुणैघर के लिए प्रयुक्त है। पहली पंक्ति में 'महादेव पादानुध्यातो महाराज श्री वैन्यगुप्त' उल्लिखित है। लेख के सिरे पर बैठे नंदी की आकृति (seal) तथा श्री वैन्यगुप्त अंकित है। इससे प्रकट है कि राजा शैवधर्मावलम्बी था परंतु बौद्ध संघ को दान देने के कारण धार्मिक सहिष्णु भी था। महाराज की पदवी गुप्त नरेश वैन्यगुप्त तथा उसके अधीनस्थ रुद्रदत्त के लिए प्रयुक्त होने के कारण वैन्यगुप्त के महत्व, प्रभाव एवं शक्ति का कम मूल्यांकन करना अन्याय होगा। नालंदा मुद्रा लेख में इसे 'महाराजाधिराज' कहा गया है जिसका लेख पूर्वी बंगाल तथा नालंदा मुद्रा (seal) से उपलब्ध है। उसके वैभव को सीमित करना अप्रमाणिक होगा। इसकी तिथि ताम्रपट्ट के अंत में अंकों में १८८ दी गई है जिसका संबंध गुप्त संवत् से जोड़ते हैं। अर्थात् ५०७ ई० में वैन्यगुप्त शासक था।

इस विषय में यह विवाद उपस्थित हो जाता है कि बुधगुप्त के पश्चात् गुप्त राज्य का उत्तराधिकारी कौन था? यदि स्कंदगुप्त की मृत्यु बाद बुधगुप्त गुप्तसिंहासन पर बैठा तो द्वितीय कुमारगुप्त के पुत्र विष्णुगुप्त की क्या स्थिति थी (इसका विवरण अगले पृष्ठों में प्रस्तुत किया जायगा)। कालीघाट मुद्रा ढ़ेर में विष्णुगुप्त के सिक्के मिले हैं जिसके साक्ष्य पर वह पूर्वी बंगाल (वर्तमान बंगला देश) का शासक प्रतीत होता है। उसी के बाद वैन्यगुप्त शासक हुआ जो बुधगुप्त का (ई० स० ४९५) समकालीन था। अन्य साक्ष्यों के अभाव में वास्तविक परिणाम पर पहुँचना कठिन है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस ताम्रपत्र में बौद्धसंघ लिए (पूजन सामग्री तथा भवन मरम्मत) अग्रहार का वर्णन मिलता है। उस ग्राम का क्षेत्रफल तथा चौहद्दी (चारों सीमाओं) का विस्तार पूर्वक विवरण प्रस्तुत किया गया है। पंक्ति १८ से ३१ तक सीमा का उल्लेख है।

महानी—पानी की जहाज। पूर्वमध्य युग से (छठी सदी) जल सेना का महत्व बढ़ता गया और लेखों में उसका उल्लेख पाया जाता है।

हस्त्यश्व—हाथी तथा घोड़े के सहित सैन्य।

जयस्कंधावारात्—सेना के पड़ाव (कैम्प से) प्राचीन समय में "हस्त्यश्व-रथपदातं सेनांगं" (सेनाके चार अंगों–हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सिपाही) का विवरण पाया जाता है।

पादवास महाराजा रुद्रदत्त—वैन्यगुप्त का कर्मचारी (उपरिक) भी महाराज कहा गया है।

महायानिक=महायान शाखा–बौद्ध मत की तीन शाखाओं में—हीनयान, महायान तथा वज्रयान, महायान का विशेष योगदान रहा।

अवलोकितेश्वर—महायान मत की अनेक विशेषताओं में बोधिसत्व की कल्पना अपना स्थान रखती है। इसमें लोकोपकारी व्यक्ति भिक्षु का वर्णन है जो 'सर्वहित सुखाय' का भाव रखता है तथा सभी के लिए निर्वाण की कामना करता है। वह स्वयं बुद्ध नहीं है। बोधि प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर है। इसे राजकुमार के परिवेश में सुंदर वस्त्राभूषण से सुसज्जित कलात्मक रूप से दर्शाते हैं। महायान शाखा में कई बोधिसत्व (जो बुद्धि का सत्व चाहता है यानी ज्ञान) को स्थान मिल चुका है जिसमे पद्मपाणि अवलोकितेश्वर प्रमुख माने गए हैं। भारतीय कला में इनकी प्रतिमाएँ बनने लगी जो ईसवी सन् के आरंभ से बारहवीं सदी तक बनती रही। गांधार से मगध शैली तक कलात्मक प्रदर्शन मिलता है।

विहारे—बौद्ध स्थापत्य कला में भिक्षुओं के निवास के स्थान को 'विहार' कहा जाता है। पश्चिमी सहयाद्रि पर्वत में गुफा खोद कर निवास तैयार किया गया (Rock cut Vihar) किंतु गुप्त युग से ईंट प्रस्तर जोड़ कर समतल भूमि पर विहार (निवास स्थान) निर्मित होने लगे, जैसे नालंदा विहार आदि (देखिए लेखक का ग्रंथ—भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर पृ० १२०, १३७)।

महायानिक वैवत्तिक—महायान शाखा के वह अनुयायी गण जो वैवर्त (माया) के सिद्धांत को मानते हैं।

भगवतो बुद्धस्य सततं त्रिष्कालं (त्रिकालं)–पूजा की सामग्रियों के संग्रह की मात्रा ऐसी हो जो बुद्ध के पूजनार्थ तीन समय तक काम में लाई जा सके। संभवतः अगली पंक्ति में "गन्धपुष्पदीप धूपादि" का उल्लेख है जिसका प्रयोग तीन समय प्रतिदिन हुआ करेगा और यह प्रबंध सर्वदा के लिए निश्चित है। बौद्ध धर्म में पूजा विषय की चर्चा नहीं के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बराबर है किंतु हिंदू धर्म में विष्णु की पूजा—सुबह, दोपहर, संध्या—तीन काल में होने लगी। इसीका प्रभाव बौद्धधर्म पर पड़ा। वैष्णव पूजा रीति का प्रयोग होने लगा। इसी कारण दान की आय से पूजा सामग्रियों के संग्रह करने का निर्देश दिया गया है।

गंध, पुष्प, दीप धूपादि—ब्राह्मण धर्म में देव पूजन का पृथक विधान है। देवपूजन में स्नान के पश्चात् चंदन, पुष्प, धूप, दीप का अर्पण आवश्यक हो जाता है। उसी पूजा विधि का अनुकरण बौद्धों ने किया।

चीवर पिण्डपात शयनासन—वैग्राम ताम्रपत्र में गुप्त नरेश ने जो अग्रहार दान में दिया उस भूमि की आय को भिक्षुसंघ (साधुओं) के चीवर (वस्त्र), पिण्डपात (भिक्षा-भोजन) तथा विहार में शयन निमित्त स्थान के प्रसंग में व्यय किया जाता था। इस प्रकार का वर्णन मध्य युगी लेखों में अधिक मिलता है। बौद्ध विहार दान की आमदनी के अनुसार कार्य करते थे। भिक्षुओं के तीनों सुख (वस्त्र, भोजन, निवास) के लिए प्रबंध किया गया था।

ग्लान प्रत्यय भैषज्य—भिक्षुओं के रोगी हो जाने पर दान की आय से औषधि का संग्रह किया जाता था।

परिभोगाय—उपयोग

विहारे—विहार (निवास स्थान)

खंडफुट्ट प्रति संस्कार करणाय—अग्रहार दान की आय से तीन कार्य। विहार के भवन की मरम्मत हुआ करती थी। खंडित (टूटने) होने पर मरम्मत (प्रति संकार) करना परमावश्यक कार्य था। अतएव उस संभावित संकट का भी उस निधि से निवारण करना पड़ता था। इस प्रकार अग्रहार दान से इस ताम्रपत्र में निम्न बातों का निर्देश मिलता है—

(१) त्रिकाल पूजन सामग्री का प्रबंध।

(२) वस्त्र, भोजन तथा आवास का प्रबंध।

(३) औषधि का संग्रह।

(४) विहार (निवास भवन) के भग्न होने पर मरम्मत की योजना।

पाटक क्षेत्रमाप (कुल्यवाप के सदृश) इसका माप १ पाटक = ४० द्रोणवाप।

ताम्रपट्ट—जिस ताम्रपट्ट पर लेख खुदा है।

श्रुति स्मृति इतिहास विहितां—पुण्यभूमि का दान वेद स्मृति तथा पुराण के अनुसार (निर्दिष्ट मार्गानुसार) कर किया गया। ध्यान रखें, अवैदिक मार्ग (बौद्धमत में) के अनुयायी भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेद स्मृति के अनुकूल धर्माचरण करने लगे थे। यानी श्रुति (वेद) तथा स्मृति के नियमानुसार दान करने से पुण्य लाभ होगा, ऐसी भावना हो गई थी।

यशो धर्मावाप्तवे—यश तथा धर्म पुण्य लाभ।

व्यासेन गीताश्लोका भवन्ति—बंगाल से प्राप्त दान पत्रों में अंतिम श्लोकों का रचयिता कौन था, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। इस ताम्रपत्र में व्यास द्वारा यह धर्मश्लोक (गीता श्लोक) कहे गए थे।

दूतेन—राजदूत।

महाप्रतीहार—राज प्रासाद का प्रधान रक्षक।

महापीलूयति—हाथी स्थान का निरीक्षक या प्रधान हाथीवान।

पाठयुपरिक—अर्थ विभाग का प्रधान पदाधिकारी।

उपरिक महाराज—राज्यपाल को महाराज महासामंत की उपाधी दी गई थी।

पुरपाल—आरक्षी (नगर का प्रधान रक्षक)।

कुमारामात्य—विषय का पदाधिकारी। महासामंत विजयसेन (दूतक) ने कुमारामात्य रेवज्जस्वामि को कार्य भार सौंपा था। उसके साथ अन्य दो कर्मचारी भी थे।

भोगिक—विषय का कर्मचारी या अस्तवल का अधिकारी।

लिद्धितं संधि विग्रहिक कायस्थ नरदत्तेन—दान पत्र को युद्ध एवं शांति के मंत्री के कार्यालय से संबद्ध लेखक (कायस्थ) नरदत्त ने लिखा।

काबस्थ—वर्तमान काल में कायस्थ एक जाति का बोधक है किंतु प्राचीन भारत में अग्रहार या दानपत्र के लेखक को कायस्थ कहते थे। कालांतर में वह वर्ग संघ बनाकर जाति के रूप में समाज में प्रसिद्ध हुआ। गुप्त युग में यह समूह (कायस्थ) लेखक का कार्य करता रहा। (देखिए लेखक का ग्रंथ—Socio-Religious Condition of North India, pp. 81-87)

द्रोणवाप—भूमि का माप, द्रोणवाप तथा पाटक दो मापो का नामोल्लेख मिलता है।

सीमा लिंगानि—क्षेत्र सीमा पर लिंग की स्थापना।

गुणेका—वर्तमान गुणैघर स्थान। इस अग्रहार ग्राम की चारों सीमाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन ताम्रपत्र के अंतिम पंक्तियों में मिलता है।

जोला-खाई—जो चूड़ामणि नगर तथा श्री नौयोग नामक ग्रामो के मध्य बनाई गई थी।

देवकुल—मंदिर (भगवान् प्रद्युम्नेश्वर का)।

हज्जिक—बाढ़ एवं सूखा।

विहारप्रावेश्य—मठ की संपत्ति।

शून्य कर—'कर' रहित, उस अग्रहार पर किसी प्रकार का 'कर' न था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भानुगुप्त के अभिलेख

गुप्त वंशावली में भानुगुप्त का स्थान निश्चित करना कठिन है। इसके अभिलेखों में पूर्वजों का नाम बुधगुप्त के लेखों की तरह अज्ञात है। स्कंदगुप्त के पश्चात् गुप्त राज्य का संभवतः उपविभाजन हो गया था। एक मत यह है कि निम्नलिखित शासक पृथक पृथक भूभाग पर राज्य कर रहे थे। गुप्त साम्राज्य के पश्चिमी भाग पर—पहली शाखा

(१) स्कंदगुप्त के पश्चात्
(२) द्वितीय कुमारगुप्त
(३) बुधगुप्त
(४) भानुगुप्त

शासन करते रहे। राज्य के पूर्वी भाग पर द्वितीय शाखा के नरेश

(१) पुरुगुप्त
(२) नरसिंहगुप्त
(३) तृतीय कुमारगुप्त
(४) विष्णुगुप्त
(५) वैन्यगुप्त

राज्य करते रहे।

इस विवाद में जाना अप्रासंगिक होगा। (देखिए लेखक का ग्रंथ—गुप्त साम्राज्य का इतिहास, पृ० १३३-६)। भानुगुप्त के दो अभिलेख उपलब्ध हुए हैं परन्तु इनके साक्ष्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूर्व शासकों से संबंध स्थिर नहीं हो पाता। भानुगुप्त की उपाधि बालादित्य थी तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग ने बुधगुप्त के पौत्र बालादित्य का उल्लेख किया है। इनका एकीकरण संदेह से रहित नहीं है। जिस समय वैन्यगुप्त पूर्वी बंगाल में शासन (ई० स० ५०७) कर रहा था उसी काल मे भानुगुप्त भी मध्य भारत (मध्य प्रदेश) के एरण प्रदेश में राज्य करता रहा। इसका पहला लेख एरण (सागर, मध्य प्रदेश) स्तंभ पर खुदा है जो संस्कृत तथा उत्तरी भारत की शैली (लिपि) में अंकित है। इसकी तिथि गु० स० १९१ (=५१० ई०) अंक तथा अक्षरों में उल्लिखित है। इसमें भानुगुप्त के सेनापति गोपराज का नामोल्लेख है जो हूण युद्ध में मारा गया और गोपराज की पत्नी सती हो गई। मध्य भारत में हूणों का अधिकार उनके अभिलेखों तथा सिक्कों के साक्ष्य पर प्रमाणित होता है।

गोपराज—विख्यात शक्तिशाली नरेश और अपने वंश का तिलक कहा गया है।

भानुगुप्त—वैन्यगुप्त का समकालीन पश्चिमी भाग मध्य प्रदेश का शासक। वह जगत में प्रसिद्ध शूर वीर था।

प्रिया च कांता—गोपराज की पत्नी के लिए प्रयुक्त।

भार्या वलग्नानुयताग्नि राशिम्—गोपराज की मृत्यु उपरांत उसकी पत्नी सती हो गई। भारतीय अभिलेखों में सती प्रथा का यह पहला साक्ष्य है। वेदव्यास स्मृति में निम्न पद्य मिलता है—मृतर्भतारमादाय, बाह्मणी वह्निमाविशेष (२, ५३)

मध्य युग में यह प्रथा अधिक प्रचलित हुई। अरब लेखकों ने सती का उल्लेख किया है। राजपूत ललनाएं सती होती रही जिसे जौहर कहा गया। पति के साथ चिता पर जलने की रीति को सहमरण भी कहते थे।

इसका दूसरा लेख बंगाल के दीनाजपुर जिले में स्थित दामोदरपुर नामक स्थान से उपलब्ध हुआ है। इस स्थान से अनेक ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं। प्रथम कुमारगुप्त तथा बुधगुप्त के ताम्रपत्र प्रकाश में आए हैं। चूंकि गुप्त साम्राज्य का पुण्ड्रवर्धन एक प्रदेश था जहा के कोटिवर्ष से शासन का कार्य हुआ करता था। अतएव वहाँ से ताम्रपत्र लेख की उपलब्धि साधारण सी बात है। इसकी तिथि गु० स० २२४ (=५४३ ई०) अंको में खुदी है। 'परम दैवत परम भट्टारक महाराजाधिराज' की महान पदवी के बाद राजा के नाम का अभाव है। अतः विवाद उपस्थित हो जाता है कि ताम्रपट्ट किस शासक से संबद्ध हैं। ई० ५४३ के आधार पर भानुगुप्त का नाम लिया जा सकता है जिसका एरण लेख ५१० इ० में अंकित किया गया था। तिथि के साक्ष्य पर इसे भानुगुप्त का ताम्रपट्ट स्वीकृत करना उचित होगा।

काटिवर्ष अधिष्ठात अधिकरण—कोटिवर्ष विषय की शासन समिति की मुद्रा।

तत्पाद परिगृहीते—जो शासक द्वारा नियुक्त किया गया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुण्ड्रवर्धन भुक्ति = यह गुप्त शासन का एक पूर्वी प्रदेश था जहाँ राज्यपाल अन्य पदाधिकारियों सहित शासन करता था।

उपरिक—राज्यपाल जिसकी उपाधि 'महाराज महाराजपुत्र' उल्लिखित है।

कोटिवर्ष = जिले का नाम

विषयपति स्वयंम्भुदेव = जिलाधीश का नाम स्वंयम्भुदेव था। उसके सहायक निम्न सदस्य थे—

(१) नगर श्रेष्ठी का मुख्य
(२) सार्थवाह प्रमुख
(३) प्रथम कुलिक
(४) प्रथम कायस्थ—प्रधान लेखक

अयोध्यक—उत्तर प्रदेश के फैजावाद जिले में स्थिर प्रधान नगर-अयोध्या (कोशल की राजधानी)

अप्रहत खिल क्षेत्र—जिस भूमि पर कृषि कर्म न हुआ हो। बंजर भूमि या थोड़े समय तक न जोती गयी भूमि।

त्रिदीनारक्य कुल्यवाप—तीनदीनार (स्वर्णमुद्रा) प्रति कुल्यवाप के दर से खरीदी भूमि।

श्वेत वराह स्वामि—वराह विष्णु का नाम। बुधगुप्त के दामोदरपुर ताम्रपट्ट पर भी अंकित है। स्यात् वही मंदिर (देवकुल) था जिसका उल्लेख यहां किया गया है।

खंड फुट्ट प्रतिसंस्कार = देवकुल के भग्न होने पर मरम्मत, इसे दान की आय से संपन्न किया जाता था।

बलिचरु सत्र प्रवर्तन—उत्तर गुप्तयुगी दान-पत्रों में यह तीनों शब्द बारंबार उल्लिखित मिलते हैं। बलि से पूजा, चरू से नैवेद्य तथा सत्र से भिक्षागृह का तात्पर्य था। मंदिर में दान के धन से इन कार्यों को संपन्न किया जाता था (देखिए—Socio Religious Condition of North India P. 180-2)।

गंध धूप पुष्प प्रायण मधुपर्क्क दीप—दान भूमि की आय से पूजन सामग्री-गंध धूप, पुष्प, दीप आदि देवकुल में पहुँचाया जाता था (प्रापण) उसी के साथ प्रसाद (बलि) तथा मधुपर्क का भी प्रबंध होता रहा। मधुपर्क पाँच वस्तुओं का सम्मिलित रूप होता है—
(१) क्षीर, (२) दधि, (३) घृत, (४) गोमूत्र एवं (५) गोबर।

दधि सर्पिजलं क्षौद्रं सिता चैतैश्च पंचभिः
प्रोच्यते मधुपर्कः समांसो मधुपर्कः।
(आप्टे-कोश पृ० ७६८)

मनु ने भी वर्णन किया है कि राजा, पुरोहित, दामाद श्वशुर आदि संवत्सर के बाद घर में आवे तो गृहस्थ को उचित है कि मधुपर्क से उनकी पूजा करे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजत्विक् स्नातक गुरुन प्रिय श्वशुर मातुलान्
अर्हयेन्मधुपर्केण परि संवत्सरापुनः ।
(मनुस्मृति ३।११९)

अप्रदाधर्मेण—अपरिवर्तन या स्थानान्तरणीय न हो (Non-Transferable) ।

ताम्रपट्टी कृत्य - ताम्रपत्र पर लिखित आदेश ।

विषयपतिना कश्चिद्विरोधः = स्थानीय शासन में विषयपति (जिलाधीश) से किसी अन्य पदाधिकारी का विरोध हो (शासन संबंधी विरोध या व्यक्तिगत विरोध) ।

परममट्टारकपादेन धर्मपरता प्राप्ति :—परम भट्टारक महाराज की आज्ञा अंतिम होगी । उसे तो धर्मफल की प्राप्ति होगी । विरोध का भागी न होगा ।

मातु अनुग्रहेण—माता के स्थान का विचार कर (उसका आदर सम्मान के कारण आदेश का पालन) ।

प्रावेश्य—जिस भूमि से 'भूमिकर' ग्रहण किया जाय ।

कुल्यवाप—विभिन्न ग्रामों में स्थित भूमि (माप के अनुसार) दान में दी गई ।

शाश्वतकाल भोग्या दत्ता :—दान सदा के लिए दिया गया, जिससे श्वेत वराह स्वामि का पूजन आदि कार्य संपूर्ण किया जा सके ।

भूमिदान संवद्धा श्लोका—पिछले पृष्ठों में इस विषय पर विचार किया गया है कि दानपत्र के अंतिम श्लोकों का किसी धर्मशास्त्र से संबंध अज्ञात है। दामोदरपुर के अन्य ताम्रपत्र में 'व्यासेन श्लोक' उल्लिखित है । संभवतः उस लेखक को इन पद्यों के रचयिता का ज्ञान न रहा अतएव 'दान से संबंधित श्लोक' कहकर लेखनी समाप्त की । बुधगुप्त के दामोदरपुर ताम्रपट्ट पर अंकित पद्य ही यहाँ उद्धृत हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर-गुप्त वंशी अभिलेख

गुप्तवंश की प्रमुख शाखा से मगध में शासन करनेवाले गुप्त नरेशों का क्या संबंध था, यह अज्ञात है। मगध एवं अंग के भूभाग में जितने अभिलेख उपलब्ध हुए हैं, उनके साक्ष्य पर कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता। दूसरी प्रधान बात यह है कि इन राजाओं के अभिलेखों में गुप्त संवत् का प्रयोग नहीं मिलता। राजाओं की समसामयिकता पर विचार करने से प्रकट होता है कि इन अभिलेखों की तिथियों हर्ष-संवत् (ई० स० ६०६) से संबद्ध है। इस परिवर्तन का एक मात्र कारण यह है कि थानेश्वर तथा कन्नौज के राजा का इतना प्रभाव तथा शक्ति का विस्तार हो गया था कि उत्तरी भारत में ६०० ई० के पश्चात् हर्ष महान् सम्राट् के रूप में उदित हुआ। अतएव उसकी प्रमुखता सर्व व्यापिनी थी। पाटलिपुत्र का स्थान कन्नौज ने ले लिया। कन्नौज का शासक भारत का सम्राट् स्वीकृत हो गया। यही कारण था कि मगध नगण्य हो गया और मगध नरेश उसकी छत्रछाया में आ गए। गुप्त सम्राटों की अवनति पश्चात् कई राजवंशों का प्रादुर्भाव हुआ परंतु हर्ष के सदृश प्रख्यात, शक्तिशाली एवं प्रभावकारी कोई राजा न हुआ। उत्तर-गुप्तवंशी लेखों में हर्ष संवत् का प्रयोग उसी के परिवेश में हुआ। आदित्य सेन की अफसद प्रशस्ति तथा विष्णुगुप्त का मगरांव अभिलेख की तिथियाँ इसी हर्ष संवत् से जोड़ी गई हैं।

आदित्यसेन का अफसद लेख

बिहार प्रदेश के गया जिले में स्थित नवादा तहसील के अफसद ग्राम से यह लेख प्राप्त हुआ था। लेख संस्कृत में है। उत्तरी भारत की सातवी सदी के अक्षरों कुटिल लिपि में यह लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंकित है। इसका साक्ष्य लेख की अंतिम शब्दों पर आधारित है। २७वें पंक्ति में "प्रशस्ति विकटाक्षरा" शब्दों का प्रमाण पर्याप्त है। इस अभिलेख का उद्देश्य निम्नलिखित है :—

(१) मगध राजा आदित्यसेन द्वारा विष्णु मंदिर का निर्माण।

(२) राजा की माता श्रीमती द्वारा मठ की स्थापना।

(३) आदित्यसेन की पत्नी श्री कोण देवी द्वारा कासार (तालाब) का उत्खनन।

अफसद लेख की तिथि निश्चित करने के निमित्त समसामयिक राजाओं के विषय में अनुशीलन परमावश्यक होगा। आदित्य के पूर्वज निम्नलिखित मगधराजा थे।

(१) कृष्णगुप्त
↓
(२) हर्षगुप्त
↓
(३) प्रथम जीवितगुप्त
↓
(४) कुमारगुप्त
↓
(५) दामोदरगुप्त
↓
(६) महासेनगुप्त
↓
(७) माधवगुप्त

सभी मगध में ही राज्य करते थे। उसका पिता माधवगुप्त हर्षवर्धन का मित्र था जिसका उल्लेख अफसद प्रशस्ति तथा बाणकृत हर्ष चरित में मिलता है—

(अ) श्री हर्षदेव निजसंगवाच्छया च
(अफसद लेख)

(ब) विनितौ विक्रांतावभिरुपौ मालव राजपुत्रो भ्रातरौ भुजा
इव में शरीरादव्यतिरिक्तौ कुमारगुप्त माधवगुप्त नाम्ना
(हर्ष चरित उच्छ्वास ४)

अतएव आदित्यसेन के पिता हर्ष के समकालीन थे यानी ई० ६०६-४८ के मध्य तिथि निश्चित की जा सकती है। सभवतः आदित्य सेन ई. ६५० के पश्चात् शासक हुआ, यह अनुमान सही होगा। इस बात की पुष्टि उसके शाहपुर लेख से हो जाती है जिसमें ६६ तिथि खुदी है। यदि इस हर्ष संवत् (ई० स० ६०६) की तिथि मान ले, तो वह ६०६ + ६६ = ६७२ ई० में शासन कर रहा था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरी समकालीनता का परिशीलन भी इसी परिणाम पर पहुँचता है। मगध वंश के चौथे राजा कुमारगुप्त से मौखरि नरेश ईशानवर्मन के साथ युद्ध का वर्णन मिलता है—

प्रख्यात शक्तिमाजिषु पुरःसरं श्री कुमारगुप्त

....

....

भीमः श्रीशानवर्मा क्षितिपति शशिनः सैन्य दुग्धोद सिन्धुः

लक्ष्मी संप्राप्ति हेतुः सपदि विमथितो मंदरीभूय येन

(अफसद लेख)

प्रसिद्ध मौखरि नरेश ईशान वर्मा के हरहा (उत्तर प्रदेश, बारावंकी) लेख में मालव संवत् की तिथि ६११ यानी (=५५४ ई०) का उल्लेख है। कुमारगुप्त की चौथी पीढ़ी में आदित्य सेन का जन्म हुआ था। अतः सौ वर्षों के पश्चात् आदित्य सेन मगध का शासक हुआ। ईशान वर्मा (ई० ५५४ ई०) तथा कुमारगुप्त की समकालीनता निश्चित है। अतएव आदित्यसेन ७वीं सदी (५५४+१००=६५४ ई०) में शासन करता रहा। शाहपुर लेख से उसकी तिथि ६७२ ई० ज्ञात है।

कुमारगुप्त के उत्तराधिकारी पुत्र तथा आदित्य के प्रपितामह दामोदरगुप्त के शासनकाल में भी मौखरि एवं मगध नरेशों में युद्ध हुआ था। दामोदर गुप्त पराजित हुआ, फलस्वरूप उसका पुत्र महासेनगुप्त मगध से मालवा चला गया और उज्जैन में शासन करने लगा। यही कारण है कि आदित्य सेन के पिता माधवगुप्त मालवा राजपुत्र कहा गया है (हर्ष चरित उच्छ्वास ४)। बांसखेडा ताम्रपत्र (ए० इ० भा० ४ पृ० २०८) से ज्ञात है कि महासेनगुप्त की बहन महासेन गुप्ता वर्धन परिवार में ब्याही थी। इसका तात्पर्य यह है कि ६ठी सदी के अंतिम चरण में महासेनगुप्त राज्य करता रहा। अफसद की प्रशस्ति में इसके यशगान का विवरण पाया जाता है। अतएव महासेन का पौत्र आदित्यसेन ७वीं सदी के मध्य में अवश्य शासन करता रहा। इस तीसरे प्रमाण के आधार पर आदित्यसेन की तिथि (६७२ ई०) का विवाद समाप्त हो जाता है।

श्री शानवर्मा—मौखरी महाराजाधिराज श्री ईसान वर्मा जिस की ऐतिहासिक उपलब्धियाँ हरहा लेख में वर्णित हैं। उसने ई० स० ५०० में मौखरि संवत् का प्रचलन किया। हरहा लेख में उसके विजय का विवरण प्रस्तुत किया गया है। आंध्रपति, शूलिकान् तथा गौड़ नरेश को पराजित किया था। (प्राचीन भारतीय अभिलेख पृ० ३६१)

प्रयाग=इलाहाबाद जहाँ राजा अग्नि में प्रवेश कर गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अम्भसीव करिषाग्नो मग्नः

शौर्य एवं सत्य व्रत को धारण करनेवाला राजा प्रयाग आया और गहरे जल में डुबने के तुल्य प्रज्ज्वलित अग्नि में प्रविष्ठ हो गया। प्राचीन भारत में प्रयाग ऐसा पवित्र तीर्थ था जहाँ राजा गण धार्मिक भावना से प्रेरित होकर मोक्ष प्राप्ति के लिए आत्म-बलिदान (Self-Immolation) किया करते थे। प्राचीन भारतीय इतिहास में ऐसे दृष्टांत भरे पड़े हैं (देखिए विस्तृत विवरण के लिए लेखक का ग्रंथ (Socio-Religious Condition of North India P. 108-110) मत्स्यपुराण में भी ऐसे बलिदान के लिए—अग्नि, विष, जल तथा उपवास के चार उपायों (साधनों) का उल्लेख है—

अग्नौ विष जले वापि तथा चैवह्यनाशके

(मत्स्य १८५।३४)

उसी धार्मिक दृष्टिकोण से कुमारगुप्त ने अग्नि में प्रवेश कर आत्मदाह किया था।

यो मौखरेः समितिषष्ठहूण सैन्या—जिस मौखरि वंश (कन्नौज के शासक) की सेना ने हूणों को पराजित किया था। संभवतः हूण तथा मौखरि नरेशों में युद्ध का आभास मिलता है।

गुणवद् द्विजकन्यानानां नानालंकार यौवन वतीनां परिणयिततवान्स नृपः—

प्राचीन काल में दान देने के कई उद्देश्य थे जिनमें ब्राह्मण कन्या के विवाह का व्यय भी दान सम्पत्ति के उपयोग का मार्ग था। दानकर्त्ता इस कार्य से पुण्य लाभ करता था। पुराणों तथा स्मृति ग्रंथों में इस कार्य (ब्राह्मण कन्या विवाह) की बड़ी प्रशंसा की गई तथा श्लाघनीय समझा गया है। पद्मपुराण में इस कार्य के साधन से मोक्ष प्राप्ति का उल्लेख है। उस दानकर्त्ता का पुनर्जन्म नहीं होगा, यही धारणा थी।

सालंकारां द्विज श्रेष्ठ कन्यां यक्षति यो नरः
स गच्छेद् ब्रह्म सदनं पुनर्जन्म न विद्यते।

(पद्मपुराण–ब्रह्मखंड अ० २४ श्लोक २२)

संभवतः इसी धार्मिक कल्पना तथा सात्विक धारणा के कारण भारतवर्ष के राजा शास्त्रोक्त वार्ता पर अटूट विश्वास कर ब्राह्मण कन्या के विवाह का भार वहन करते थे। दक्ष (३।३२।) तथा विष्णु स्मृति (२९।१९) में भी ऐसे कार्यों की सराहना की गई है। प्राचीन भारत के दान पत्रों में भी स्तुत्य माना गया है। नासिक गुहालेख में 'शक नरेश' नहपान ने भी ऐसे पुण्य कार्य के लिए दान दिया था (ए० इ० भा० ८ पृ० ७८—ब्राह्मणेभ्यः अष्टभार्या प्रदेन) इसी श्रेष्ठ कार्य के निमित्त मगध नरेश ने अग्रहार दान में दिया था।

सुस्थित वर्म—असम का शासक।

लौहित्य तटेषु—असम की नदी तट।

माधवगुप्त—आदित्यसेन का पिता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रीहर्षदेव—थानेश्वर के वर्धन राजा हर्षवर्धन। जिसने राज्यश्री के पश्चात् कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। कवि बाण ने हर्ष चरित में उनका गुणगान किया है।

आदित्यसेन—जिसके राज्यकाल में यह लेख अंकित किया गया।

विष्णो कृते कारितं—विष्णु मंदिर का निर्माण

श्रीमती—शासक की माता

कारितः मठः—मंदिरों से सम्बद्ध साधुओं के निवास के लिए धनीमानी मठ (भवन) तैयार किया करते थे। उसमें निवास करने वाले भिक्षुओं के भोजन निमित्त दान दिया जाता था। कालान्तर में प्रधान साधु के हाथो शक्ति आ गई। अतएव उसी को मठाधीश कहने लगे।

श्री कोणदेव्या सर पेपीयमानः जलैः—आदित्यसेन की पत्नी श्री कोणदेवी ने मीठा पानी वाला तालाव तैयार कराया।

गौड़ेन—गौड़ देश (बंगाल) का निवासी—अभिलेखों में गौड़ कायस्थ (लेखक) को सुलेखी कहा गया है। वह सुदंर अक्षर लिखते थे।

प्रशस्ति विकटाक्षरा=यह प्रशस्ति विकट-टेढ़ी लिपी में अंकित है। गुप्तलिपि के पश्चात् उत्तरी भारत में जिस लिपि का प्रचार हुआ उसे कुटिल (विकट) लिपि कहते हैं।

आदित्यसेन का दूसरा लेख मंदार पर्वत के शिला पर अंकित है। यह भागलपुर जिले के बंका नगर के समीप सात मील दक्षिण पूर्व दिशा में स्थित है। समीप में एक तालाब के किनारे ऊंची शिला पर अभिलेख खुदा है। भाषा संस्कृत तथा कुटिल लिपि में है। दो छोटे लेखों में एक ही विषय की चर्चा है। यह अभिलेख अफसद लेख के बाद अंकित किया गया। इसमें राजा के लिए परमभट्टारक महाराजधिराज की महान् पदवी उल्लिखित है जो अफसद लेख में अज्ञात है। सम्राट् आदित्यसेन ने स्वतंत्रता की घोषणा कर दी थी। पूर्व लेख के सदृश मंदार लेख में भी राजा की पत्नी श्री कोण देवी द्वारा तालाव निर्माण का विवरण है।

तीसरा लेख शाहपुर से प्राप्त हुआ था। यह प्रस्तर सूर्य प्रतिमा के पादपीठ पर अंकित है जिसमें ६६ तिथि का उल्लेख है। भाषा संस्कृत तथा कुटिल लिपि में। यह कहा जा चुका है कि इस तिथि का संबंध हर्ष संवत् से था। इस आधार पर ज्ञात होता है कि आदित्य सेन सातवीं सदी में (६६ + ६०६ = ६७२ ई०) राज्य करता था। यह स्थान विहार नामक स्थान (नालंदा जिला) से नौ मील की दूरी पर दक्षिण दिशा में स्थित रहा जिसे कनिंघम ने बडगांव से (नालंदा के समीप में स्थित) एकीकरण किया है। वह सूर्य प्रतिमा शाहपुर में स्थापित की गयी जिस समय राजा आदित्यसेन शासन कर रहा था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय जीवितगुप्त का लेख

बिहार प्रदेश के आरा शहर से २५ मील पश्चिम दिशा में देव वरर्णाक नामक स्थान में स्थित प्रस्तर स्तंभ पर अभिलेख खुदा है। यह लेख संस्कृत भाषा में है तथा कुटिल लिपि में लिखा गया है। इसमें तिथि का अभाव है किन्तु मगध नरेश के उल्लिखित वंशावली से इसकी तिथि का अनुमान लगाया जा सकता है। इसमें निम्न वंशावली का उल्लेख है—

माधवगुप्त
↓
आदित्यसेन
↓
देवगुप्त
↓
विष्णुगुप्त
↓
जीवितगुप्त

इसमें आदित्यसेन के पश्चात् शासक की महान पदवी—'परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' का वर्णन आता है जिसका वास्तविक उद्देश्य अज्ञात है। यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि मगध नरेश ऐसे प्रभावशाली नहीं थे जो महान पदवी धारण कर सकें। अपने सीमित भूभाग के स्वामी थे। शक्तिहीन तथा श्रीहीन शासक के लिए इतनी लम्बी पदवी अशोभनीय प्रकट होती है।

इस लेख में सूर्यमंदिर के लिए ग्रामदान (स्यात् वरुणा) का विवरण मिलता है। इस लेख के अनुशीलन से प्रकट होता है कि प्रस्तर स्तंभ पर खुदे रहने पर भी ताम्रपत्र के समान इसकी वर्णन पद्धत्ति है। किंतु ताम्रपत्र के सदृश मंगलश्लोकों (धर्मश्लोकाः) का अंत में अभाव है। दान प्रग्रहार के संबंध में अनेक पदाधिकारियों को सूचना दी गई है।

महानौह हस्त्यश्वपति – मध्ययुगी लेखों में जयस्कंधावार का नामोल्लेख है जहाँ से दानपत्र का आदेश प्रसारित किया जाता था। इसमें जलसेना, हस्ति एवं अश्वपति का उल्लेख अलंकारिक प्रतीत होता है। मगध नरेश के पास इस प्रकार की सेना की स्थिति असंभव थी। इस दान लेख में गोमति कोट्टक दुर्ग जयस्कंधावार का उल्लेख है। गोमति नदी (गंगा से) उत्तर बनारस एवं गाजीपुर के मध्य गंगा से मिलती है। मध्य युग में विजयी शासक सेना के पड़ाव (जयस्कंधावार) से दान की घोषणा करता था।

वारुणिका—देव वर्नाक का प्राचीन नाम। संभवतः बक्सर के समीप वरुणा स्थान से इसकी समता करना उचित होगा।

तलवाटक = ग्राम के आय-व्यय का लेखा रखनेवाला।

दूत—ताम्रपत्र लेख संबंधी शासन का दूत (घोषणा करनेवाला)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजपुत्र—राजकुमार, जो शासन में राजा की सहायता करता था।

राजामात्र—राजा का मन्त्री (केंद्रीय शासन से संबंधित)।

महाक्षपटलिक—लेख—प्रमाण का सुरक्षित करनेवाला।

महादंडनायक—न्याय विभाग का अधिकारी।

महाप्रतिहार—राजकीय महत्व का प्रबंधक।

महासंधिविग्रहिक—युद्ध एवं संधि का निर्णायक अधिकारी।

नोट—मध्य युग में पदाधिकारियों के पद के साथ 'महा' शब्द जोड़ना वास्तविकता का परिचायक नहीं है। महा शब्द रहित पदाधिकारी उसी श्रेणी के कर्मचारी थे। (देखिए लेखक का ग्रंथ—प्राचीन भारतीय अभिलेख पृ० ६९–७०)।

कुमारामात्य—प्रांतपति (राज्यपाल) का मंत्री।

राजस्थानीय—वैदेशिक विभाग का मंत्री।

उपरिक—राज्यपाल।

चौराद्धरणिक—चोर को पकड़नेवाला पदाधिकारी।

दण्डिक—न्याय (दंड) संबंधी कर्मचारी।

वरुणोवासी—भोजपुर जिले में बक्सर के समीप वरूणा स्थान के वासी।

बालादित्येन—शासक का नाम जिसने हूण राजा मिहर कुल को पराजित किया था। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने उसका उल्लेख किया है।

सर्ववर्मन—मौखरि नरेश।

अवन्तिवर्मन—मौखरि राजा, जिसे व ण ने हर्ष चरित में वर्णन किया है। ग्रहवर्मा का पिता। इन मौखरि नरेशों ने जिस अग्रहार का अनुमोदन किया था। अर्थात् यह स्थान (वारूणिका) इससे पूर्व मौखरि अधिकार में रहा। जीवितगुप्त ने उन्हें पुनः दान में दिया।

योजक—इससे ग्राम के मुखिया का तात्पर्य है जिसने अग्रहार का अनुमोदन किया था। ग्रामदान में महत्तर (मुखिया) का योगदान रहा है। भूमि संबंधी विषयों पर उसका विचार या दृष्टिकोण जानने अथवा सूचना देने की परम आवश्यकता होती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णुगुप्त का मंगरांव लेख

पिछले पृष्ठों में मगध के गुप्त नरेशों का उल्लेख किया गया है। द्वितीय जीवित गुप्त के देव वर्णाक लेख में देवगुप्त (आदित्यसेन का पुत्र) के उत्तराधिकारी विष्णुगुप्त का नाम वर्णित है। उसीका एक लेख मंगरांव नामक स्थान से प्राप्त हुआ था। वह स्थान बक्सर तथा कैमूर पठार के उत्तर स्थित है। वह संस्कृत तथा कुटिल लिपि में प्रस्तर के टुकड़े पर अंकित है। पटना संग्रहालय में सुरक्षित है। इस लेख की तिथि का विषय विवादास्पद है। कुछ विद्वानों ने ११७ की तिथि पढ़ी है। १०० का चिन्ह, १० का चिन्ह तथा ७ का सम्मिलित ११७ (अभी तक लेखों में दशमलव प्रणाली का अभाव-सा रहा और अंक स्थान का मूल्यांकन प्रचुरतया विदित न था) यदि तिथि ११७ है तो शाहपुर लेख की तरह इसे भी हर्ष संवत् से जोड़ कर काल का निर्णय करते है। यानी उस मतानुसार विष्णुगुप्त ११७ + ६०६ = ७२३ ई० में शासन करता रहा। दूसरा साक्ष्य यह है कि आदित्यसेन का पौत्र विष्णुगुप्त मगध में ही शासन करता रहा। ६७२ ई० (शाहपुर लेख की तिथि) के दो पीढी पश्चात् विष्णुगुप्त सिंहासन पर बैठा। अतः पचास वर्षों के बाद यानी ६७२ + ५० = ७२२ ई० के समीप उसका राज्यारोहण मानना उचित होगा। यही तिथि मगरांव लेख से भी विदित है। तीसरे साक्ष्य से भी इस तिथि की पुष्टि होती है। ईत्सिंग के समकालीन (सातवी सदी के मध्य) कोरियन यात्री ह्यू लून ने विवरण दिया है कि सन आरमी (Sun = आदित्य तथा आरमी = सेन यानी आदित्यसेन) ने नालंदा में एक मंदिर का निर्माण किया था। अतः दो पीढ़ियों बाद शासक की तिथि आठवी सदी के प्रथम चरण में ज्ञात होती है। इन सभी साक्ष्यों के अनुशील से मंगरांव लेख की तिथि ११७ प्रमाणित हो जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरे मत के पोषक ११७ अंक में १०० के चिन्ह को संदेहात्मक मानते हैं। उनका मत है कि सप्तदश के पश्चात् सौ का चिन्ह न होकर सम्व (संवत्) लिखा गया है जो अस्पष्ट है। इसका तात्पर्य यह है कि केवल दो अंकों में १७ (की तिथि) विष्णुगुप्त के राज्य-वर्ष का द्योतक है।

महाराजाधिराज परमेश्वर—विष्णुगुप्त की पदवी। यह देव वर्णाक में "परम माहेश्वर परम-भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर" के विस्तृत रूप में उल्लिखित है। मगध के सीमित भूभाग में शासन करने वाले नरेश की इतनी लम्बी पदवी वास्तविकता से परे है। इस पर अक्षरशः विचार नहीं किया जा सकता। आलंकारिक रूप में मान सकते हैं।

कुट्टुकदेशीय = एकीकरण न हो सका है। सभंवतः कुकुटपाद गिरि का निवासी।

अंग्रार ग्राम—दान अग्रहार क्षेत्र।

पल = एक तेल का माप।

चांद्रार्क क्षिति समकालीन = चंद्रमा सूर्य तथा पृथ्वी की स्थिति के समकालीन यानी शाश्वत काल तक अग्रहार भूमि या ग्राम दान में दिया गया।

लिखितादेवदत्तेन = दान पत्र का लेखक देवदत्त। ताम्रपत्रों में उसे कायस्थ कहा गया है।

क्रय चीरिका = इस लिखित भाग को क्रय करने के पश्चात् अंकित।

वृहस्पति ने ऐसा उल्लेख किया है।

गृह क्षेत्रादिकं कृत्वा तुल्य मूल्या क्षरान्वितम्
पत्रं कारयते यत्तु क्रय लेख्यं तदुच्यते।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्तकालीन मुद्राएँ (Seals)

भारतीय इतिहास में मुद्रा की वार्ता अत्यंत प्राचीन समझी जाती है। प्राग्ऐतिहासिक युग कें-मोहनेजोदड़ो, हरप्पा, लोथल तथा कालीबंगा-स्थानों में एक विशेष प्रकार की मुद्राएँ बनती रही जिन पर पुरालिपि में लेख खुदे हैं। दुर्भाग्य वश विद्वान उस गूढ़ लिपि का भाव समझने में असमर्थ हैं। उन गूढ़ लिखावट के अतिरिक्त प्राग्ऐतिहासिक मुद्राओं पर जानवरों (घोड़ा के अतिरिक्त) की आकृतियाँ कील से खोदी गई थी। उनके संबंध में खोज जारी है पर अनुसंधान कर्त्ता किसी निर्णय पर पहुँचने में असफल रहे। उन्हें सज्जी (Soap-Stone) से तैयार किया जाता था।

प्रायः मुद्राएँ लोक-कला के द्योतक थे अतएव बौद्ध युग से मिट्टी को काम में लाया गया। सांचे में आकृति या लेख लिखकर मिट्टी से मुद्रा तैयार होती और आग की भट्टी में पका कर उस को स्थायी रूप दिया जाता था। (Terra Cotta Seals)। मृत्‌भांड के साथ मुद्राएँ भी पुरातत्व की खुदाई से निकली है जो उस कथन को प्रमाणित करती हैं। इस प्रसंग में या विषय को अंतिम सीमा तक ले जाने के निमित्त यह कहना आवश्यक है कि मध्य युग में ताम्रपत्र के साथ धातु की मुहर बनाकर, (धातु की अंगूठी के सहारे) तामपट्ट तथा मुहरों को बांध दिया जाता था। उन धातु मुहरों पर धार्मिक चिन्ह तथा शासक का नाम खुदा रहता था। उनका विवरण देना विषय-सीमा का अतिक्रम होगा। यहाँ गुप्त कालीन मुहरों का विश्लेषण एवं अनुशीलन न्यायोचित है।

गुप्त कालीन मुहरों का अध्ययन करने पर विदित होता है कि तत्कालीन मुहरे प्रायः मिट्टी की बनाई गई थी। उसमें द्वितीय कुमारगुप्त का भितरी राजमुद्रा अपवाद है। वह चांदी की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनी है तथा वैष्णव मुहर होने के कारण ऊपरी भाग में विष्णु के वाहन गरुड़ की आकृति खुदी है। निचले अंश में अभिलेख उत्कीर्ण है।

गुप्त कालीन मुहरें संस्कृत में लिखी गई थी। प्रायः सभी गुप्त लिपि की पूर्वी शैली में अंकित है। वैशाली तथा नालंदा नामक स्थानों से अधिक मुहरे उपलब्ध हुई हैं। उनकी तिथि के निर्णय करने में ध्रुव स्वामिनी की मुहर सहायक सिद्ध हुई। यह ध्रुव स्वामिनी चंद्रगुप्त द्वितीय की पत्नी ध्रुवदेवी (अभिलेखों में ध्रुव देवी उल्लिखित है) मानी गई है। गोविंदगुप्त प्रथम कुमारगुप्त का भाई था जिसका नाम इस मुहर में अंकित है। द्वितीय चंद्रगुप्त ई० स० ३८० ई० के समीप सिंहासनारूढ हुआ। अतएव उसके शासन में इन मुहरों की तिथि निर्धारित करना समीचीन होगा। प्रायः चौथी पाँचवी सदी में मुहरों को तैयार किया गया होगा। सभी मुहरों के अक्षर समान नहीं हैं। कुटिल लिपि का प्रयोग भी देखा जाता है। मेहरौली स्तंभ लेख की लिपि से भी मिलता जुलता है। इनको लघु अभिलेख कहना सर्वथा उचित होगा। मुहरों में उल्लिखित संज्ञाओं को अभिलेखों में अधिक स्थान न मिल सका, क्योंकि चौथी पांचवी सदी के लेख अधिक संख्या में उपलब्ध नहीं हुए हैं। गुप्त कालीन मुहरों को निम्न वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

(१) धार्मिक मुहरे
(२) पदाधिकारी की मुहरे
(३) श्रेणी, निगम, सार्थवाह की मुहरे
(४) व्यक्तिगत मुहरे।

कुछ मुहरों में श्रेणी के साथ अन्य लेख भी अंकित हैं। धार्मिक मुहरों पर 'मांगलिक पद्य' उत्कीर्ण है। कुछ मुहरे मंदिर से संबधित हैं। लिंग तथा त्रिशूल के चिन्ह है। लेख है = श्री विष्णुपद स्वामी नारायन। उनके परीक्षण से ज्ञात होता है कि मांगलिक श्लोक व्यापारी-निगम के नाम सहित खुदे हैं। कभी व्यक्तिगत नामो के साथ। यदा कदा "नमस्तस्मैं" (उसे नमस्कार है) वाक्य मिलता है।

वैशाली की मुहरे—वैशाली नामक स्थान से अधिक संख्या में मुहरे प्राप्त हुई हैं। प्रायः सभी गोलाकार हैं। ऊपरी भाग में चिन्ह तथा निचले अंश में खेद खुदा है। यदि चिन्हों का विश्लेषण किया जाय तो प्रकट होता है कि सभी धार्मिक प्रतीक हैं। हिन्दूधर्म (ब्राह्मण मत) से उनका संबंध है। बौद्धमत के प्रतीक का अभाव है। चक्र, पद चिन्ह एवं शंख वैष्णव मत के प्रतीक हैं। सुदर्शन चक्र, विष्णुपद तथा शंख भगवान विष्णु के पूजनीय प्रतीक है। पूर्ण कलश भी अधिक मात्रा में मुहरों पर खुदा है इससे यज्ञ के कार्य का भाव प्रकट होता है। यज्ञ-वेदि का सर्वथा अभाव नहीं है। इसके अनंतर पदाधिकारियों की मुहरों पर अंकित चिन्ह का विशेषतया उल्लेख किया गया है। वह है गज लक्ष्मी। कमलासन पर लक्ष्मी बैठी हैं। दोनो पार्श्व से हाथियों सूढ़ द्वारा घड़े से (लक्ष्मी पर) जल गिरा रहे हैं। इन सब विषयों के अतिरिक्त भौगोलिक चर्चा भी लघुलेखों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से उपलब्ध है। तीरभुक्ति का नाम कई बार आया है। यह गुप्त शासन का एक प्रदेश था जो गंगा के उत्तर में स्थित था। वैशाली उस प्रदेश (भुक्ति) का प्रधान नगर था। उसी शब्द का विकृत स्वरूप 'तिरहुत' हैं जो आज भी कमिश्नरी मानी गई है।

पदाधिकारियों के मुहरों में 'कुमारामात्याधिकरण' शब्द बार-बार प्रयुक्त है। अधिकरण शब्द का तात्पर्य प्रमुख या निदेशक समझा गया है। बलाधिकृत (सेना का मुख्य) के स्थान पर बलाधिकरण (सैनिक व्यवस्था का प्रमुख) उल्लिखित किया गया है। अतएव कुमार आमात्य के प्रमुख से उसका अभिप्राय है। कुमारामात्य एक विवादास्पद पदवी है। इससे राजकुमार के सभासद, राजकुमार के मंत्री या राजा के प्रतिनिधि राजकुमार के आमात्य का अर्थ बतलाते हैं। गुप्त अभिलेख के प्रयाग प्रशस्ति में हरिषेण को कुमारामात्य तथा द्वितीय चंद्रगुप्त के मंत्री शिखर स्वामी भी इस पदवी से विभूषित किए गए थे। डा० राखालदास बनैर्जी का मत था कि राजकुमार के सदृश सम्मान पाने वाले आमात्य को 'कुमारामात्य' की संज्ञा दी गई है। इसके अतिरिक्त 'युवराज पादीय' अथवा 'युवराज भट्टारक पादीय' शब्द कुमारामात्य के साथ जोड़ दिए गए हैं। संभवतः पादीय, 'पादानुध्यातों' के समानार्थक शब्द था। अतः पादीय शब्द का भावार्थ यही होगा कि वह कुमारामात्य राजकुमार की तरह समादर स्थान रखता हो। अथवा वह मुहर राजकुमार भट्टारक के मंत्रीगण का प्रमुख व्यक्ति का है। इन सभी लघुलेखों के अनुशीलन से यह प्रकट होता है कि 'कुमारामात्य' एक सरकारी पद था जो राजा या राजपुत्र (राजकुमार) के कार्यालय से संबंधित था। सर्वेक्षण से यह विदित होता है कि कुमारामात्य विषयपति (जिलाधीश) का काम करता था। राजा या युवराज से संबद्ध होने पर 'भट्टारक पादीय' या 'युवराज पादीय कुमारामात्य' पुकारा जाता था।

युवराज भट्टारक पादीय बलाधिकृत पदाधिकारी युवराज से संबद्ध प्रमुख सेना नायक रहा होगा। (विशेष विवेचन के लिए देखिए—गुप्तसाम्राज्य का इतिहास भा० २ पृ० २९-३१)

उसी प्रकार पदाधिकारियों की भी मुहरें प्राप्त हुई हैं। रण भाण्डागार अधिकरणस्य का अर्थ है, प्रमुख अधिकारी जो युद्ध के खजाने की देखरेख करता था। दण्डपाश अधिकरणस्य का भाव उस आरक्षी (पुलिस) के प्रधान कर्मचारी से है जिसकी मुहर उपस्थित की गई है। कुछ मुहरों में पदवी के साथ व्यक्तिगत नाम भी जुड़ा है। महादण्ड नायक अग्निगुप्तस्य लेख का अर्थ है—अग्निगुप्त नामक जज (न्यायाधीश) की मुहर। स्थान विशेष का उल्लेख कर मुहर में लघुलेख खोदे गए थे। 'तिरभुक्तौ विनय स्थित स्थापक अधिकरणस्य' लेख से यह भावार्थ समझा जाता है कि तिरभुक्ति में निवास करने वाला प्रमुख व्यक्ति जो जनता के सदाचार या धार्मिक कार्यों का निगरानी करता था। 'विनत स्थिति स्थापक' नामक कर्मचारी अशोक के धर्म महामात्र' के सदृश कार्य करता था। इस प्रकार गुप्त कालीन पदाधिकारियों के कार्यालय या व्यक्तिगत मुहरों की वार्ता वैशाली से उपलब्ध मुहरों के अध्ययन से ज्ञात हो जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैशाली प्राचीन काल में व्यापार का भी केंद्र था। इसीलिए इस स्थान से व्यवसायी संघ (Corporation) की अत्यधिक मुहरें प्रकाश में आई हैं।

श्रेष्ठी—व्यापारिक संस्था का प्रमुखा जो दान में प्रदत्त धन राशि का संरक्षण करता। श्रेणी बैंक का कार्य करती तथा सूद को सुनिश्चित मार्ग या कार्य में व्यय करती थी।

कुलिक—वाणिक समूह जो व्यवसाय में लगा रहता था। व्यापार का देख-रेख करता था।

सार्थवाह—व्यापार के प्रबंध का भार श्रेणी नामक संस्था पर था, जो साझेदारी में व्यापार करती थीं। सार्थवाह व्यापार करने वाले पंथों का अगुआ माना गया है। पांथान वहति सार्थवाह (अमरकोश—३७८) से स्पष्ट हो जाता है कि सार्थ को यात्रा करने वाले पांथो का समूह मानते थे। उनका नेता था—सार्थवाह। गुप्त सम्राट् प्रथम कुमारगुप्त के दामोदरपुर ताम्रपत्र में कोटिवर्ष के सार्थवाह बंधुमित्र का नामोल्लेख है। जातक कथाओं में बोधिसत्व को सार्थवाह के रूप में कार्य करने का वार्ता कई स्थलों में वर्णित है। तात्पर्य यह है कि व्यापारी समूह विभिन्न मार्गों से आया जाया करता था। मध्ययुग के चाहमान लेखों में इन्हें वणजारक—बनजारा—कहा गया है। (समस्त वणजारेषु—ए० इ० भा० ११ पृ० ४३) इस प्रकार श्रेष्ठि, सार्थवाह, कुलिक कुलिक एवं निगम की सबसे अधिक (२७४) मुहरें वैशाली से प्राप्त हुई है। इनके साक्ष्य पर वैशाली पुराने समय का प्रसिद्ध व्यापारिक केंद्र था, यह कहना सर्वथा उचित होगा। व्यक्तिगत व्यवसायी की अनेक मुहरें—कुलिक भगदत्त या कुलिक गौरीदास अथवा कुलिक कृष्णदत्त आदि—प्रकाश में आई हैं जो उपरियुक्त कथन को पुष्ट करती हैं। वैशाली से ऐसी मुहरें भी उपलब्ध हुई हैं जिन पर व्यक्तियों के नाम खुदे हैं। यह कहना कठिन है कि उन लोगों का क्या स्थान था? क्यों उन्होंने मुहरें अंकित कराया? संभवतः सभी साधारण व्यक्ति होंगे, जिनकी समाज में प्रतिष्ठा होगी। अतएव मुहरें खुदवाना उन लोगों ने आवश्यक समझा। इस बात की संभावना हो सकती है कि प्रमुख व्यक्तियों ने सम्मान सूचक कार्य किया हो यानी नामांकन कराया हो। उनके अनुशीलन से यह निश्चितरूप से व्यक्त नहीं किया जा सकता कि कभी भी उनका संबंध शासन तंत्र से हो।

वैशाली से दानपत्र संबधी एक मुहर प्राप्त हुई है जिसे कुमारामात्य ने अंकित कराया था। उस मुहर में उस अग्रहार के विषय में सूचना प्रसारित की गई है कि अमुक भूभाग ब्राह्मण को दान में दिया गया। मुहर के अग्रभाग में गजलक्ष्मी की आकृति दीख पड़ती है। अधिक स्थान आकृति द्वारा घिरा है। उस आकृति के पार्श्व में दो बैठे व्यक्ति दृष्टिगोचर हो रहे हैं। नीचे के अंश में एक पंक्ति में "कुमारामात्याधिकरणस्य" खुदा है। (राजकुमार के मंत्रियों के प्रमुख की मुहर) पृष्ठ भाग पर दान की वार्ता उत्कीर्ण है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नालंदा की मुहरें—वर्तमान नालंदा के प्राचीन इतिहास का अनुशीलन करने से यह विदित होता है कि पूर्व मध्य-युग से इस नगर को विशेष महत्व प्राप्त हुआ था। यों तो भगवान् बुद्ध से मध्य-युग तक यह प्रतिष्ठित केंद्र रहा किंतु वज्रदान के अभ्युदय से यह विद्या-केंद्र बन गया। महाविहार के संबंध में कुछ कहना अप्रासंगिक होगा परंतु इस स्थान से नाना प्रकार की मुहरें उपलब्ध हुई हैं जिनमें गुप्त कालीन मुहरें राजकीय वंशावली की चर्चा करती हैं। संस्कृत भाषा एवं गुप्तलिपि में खुदी हैं। इनमें उल्लिखित शासकों तथा अभिलेख में वर्णित राजाओं की समता निश्चित कर तिथि का ज्ञान सरल हो जाता है। प्रथम कुमारगुप्त के पश्चात् सिंहासन संबंधी विवाद का वर्णन किया गया है। भितरी राजमुद्रा के वर्णन से ज्ञात होता है कि गुप्तवंश में प्रथम कुमारगुप्त का पुत्र पुरुगुप्त ने शासन भार संभाला। उसकी पुष्टि नरसिंह की नालंदा मुहर से की जाती है। इसमें प्रथम कुमारगुप्त का पुत्र पुरुगुप्त तथा पौत्र नरसिंहगुप्त का नामोल्लेख है। इस मुहर के साक्ष्य पर यह मत स्थिर हो जाता है कि स्कंदगुप्त के अतिरिक्त पुरुगुप्त उसका द्वितीय पुत्र था। इसी प्रकार द्वितीय कुमारगुप्त की मुहर नालंदा से प्रकाश में आई है। इसमें गुप्तवंश की पूरी वंशावली (श्री गुप्त से लेकर द्वितीय कुमारगुप्त तक) उल्लिखित है। साम्राट् तथा महादेवी के नाम मिलते हैं। इस शासक की एक धातु मुद्रा भितरी (जिला गाजीपुर, उत्तर प्रदेश) नामक स्थान से उपलब्ध हुई हैं। दोनों में समानता हैं। एक ही प्रकार का विवरण मिलता है। इसमें कुमारगुप्त के लिए परम भागवत तथा महाराधिराज की पदवियाँ उल्लिखित हैं।

तीसरी मुद्रा बुधगुप्त के शासन में अंकित हुई जिसके अध्ययन से प्रकट होता है कि पुरुगुप्त का पुत्र बुधगुप्त पिता के पश्चात् सिंहासनारुढ़ हुआ। किंतु अन्य साक्ष्य के आधार पर विभिन्न राजनीतिक परिस्थिति दीख पड़ती है। उपरि लिखित नालंदा मुहर का परीक्षण यह सिद्ध करता है कि पुरुगुप्त, नरसिंह तत्पश्चात् (द्वितीय) कुमारगुप्त क्रमशः शासन करते रहे। पुरुगुप्त के पश्चात् बुधगुप्त को अधिकार प्राप्त न हो सका। कुछ विद्वान् इसकी आशंका करते हैं कि पुरुगुप्त के मृत्यु पश्चात् बुधगुप्त शासक बना। किंतु इसके पक्ष में अन्य साक्ष्य नहीं मिलते। कालीघाट से जो गुप्त स्वर्ण मुद्रा का ढेर मिला है उसमें पुरुगुप्त, नरसिंहगुप्त तथा कुमार (द्वितीय) के ही सिक्के उपलब्ध है। बुधगुप्त के सिक्कों का अभाव का क्या कारण था? यह संभावना हो सकती है कि पुरुगुप्त के अनंतर बुधगुप्त राज्य के पश्चिमी हिस्से पर तथा नरसिंहगुप्त एवं कुमारगुप्त पूर्वी क्षेत्र पर शासन करने लगे। बुधगुप्त के लिख तथा सिक्के प्रमाणित करते हैं कि वहदूरवर्ती प्रदेशों पर शासन करता रहा। पर्याप्त प्रमाण के अनुपस्थिति में बुधगुप्त तथा नरसिंहगुप्त (दोनों पुरुगुप्त के पुत्र) के पारस्परिक संबंध निश्चित करना कठिन है। चौथी मुहर पर उत्कीर्ण लेख अपूर्ण है। अंतिम पंक्ति में वैन्यगुप्त का नाम अंकित है। परम भागवत तथा महाराजाधिराज की पदवियां उसको गुप्त वंशावली से संबद्ध बतलाती हैं तथा गुप्तलिपि एवं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृत लेख भी प्रमाणित करते हैं कि वह गुप्त नरेश था। इसी मुहर के आधार पर बुधगुप्त के पिता पुरुगुप्त का नाम ज्ञात होता है अन्यथा बुधगुप्त के पूर्वजों का नाम सदा अज्ञात ही रहता। नालंदा से प्राप्त गुप्त मुहरों के समूह में विष्णुगुप्त की मुहर का उल्लेख आवश्यक है। लघुलेख वास्तव में पूर्ण है तथा अभिलेखों में वर्णित गुप्त वंशावली के अक्षरशः समान है। इसके परीक्षण से प्रकट होता है कि विष्णुगुप्त महाराजाधिराज कुमारगुप्त का पुत्र था। यह द्वितीय कुमारगुप्त का उत्तराधिकारी था। इसी कुमारगुप्त की मुहरें भितरी तथा नालंदा से उपलब्ध हुई हैं। नालंदा मुहर की विशेषता यह है कि इस प्रमाण के आधार पर ही विष्णुगुप्त का गुप्त वंशावली में स्थान स्थिर हो सका है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त - मुद्रा लेख (Legend)

भारत में मुद्रा का इतिहास यह व्यक्त करता है कि सिक्कों पर लेख उत्कीर्ण करने की परिपाटी भारतीय-यूनानी सिक्कों के अनुकरण पर प्रारंभ हुई। आहत सिक्कों पर केवल चिह्न मात्र थे। यूनानी तथा उनके अनंतर शासन करनेवाले शक, पहलव तथा कुषाण राजाओं ने सिक्कों परलेख अंकित कराया। वह परंपरा अक्षुण रूप से भारत में कार्यान्वित होती रही। कुषाण साम्राज्य के सभी सिक्कों पर यूनानी भाषा तथा अक्षर में लेख खोदे गए। उत्तर-पश्चिम भारत में पिछले कुषाण नरेशों ने नई पद्धति अपनाई। यद्यपि उनके सिक्के कलाहीन हैं तथापि मुद्रालेख की नवीनता के कारण प्रमुख स्थान रखते हैं। पिछले कुषाण मुद्राओं पर बाँह के नीचे ब्राह्मी में राजा का पूरा अथवा संक्षिप्त नाम खोदना आरंभ हो गया था। गुप्त सम्राट् चंद्रगुप्त प्रथम ने उसके अनुकरण पर अपना नाम चद्रगुप्त बाँह के नीचे अंकित कराया और रानी की आकृति के पीछे "श्री कुमार देवी" खुदवाया। भारतीय मुद्रा शास्त्र में यह नया प्रयोग था जिसे प्रमुखता दी गई। गुप्त सम्राटों ने इसका अक्षरशः अनुसरण किया। मुद्रा लखों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि संस्कृत राजभाषा होने के कारण गुप्त शासकों ने संस्कृत तथा गुप्त लिपि में लेख खदवाना श्रेयस्कर समझा। इतना ही नहीं, उनके सर्वेक्षण से एलन महोदय ने यह प्रमाणित किया कि मुद्रालेख छंदवद्ध भी हैं। नाना प्रकार के छंदों का प्रयोग मुद्रा लेखों में मिलता है। दूसरी विशेषता यह है कि उन लेखों में शासक की उपलब्धियों का भी विवरण छिपे तौर पर प्रस्तुत किया गया है। गुप्त राजाओं के जीवन घटनाओं तथा धार्मिक विचारधारा का सजीव वर्णन मिलता है। स्वर्ण तथा रजत मुद्राओं का वृत्तांत साम्राज्य के इतिहास पर प्रकाश डालता है। शासकों के विजय, आखेट, मनोरंजन एवं सांस्कृतिक जीवन का परिचय मुद्रालेखों के परिशीलन तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन से उपलब्ध हो जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उदाहरणार्थ—व्याघ्र निहंता, सिंह निहंता गैंडा मारते हुए, वीणाधारी आदि घटनाएँ सिक्कों के परीक्षण से ज्ञात हो जाती हैं।

श्री कुमार देवी—प्रथम चंद्रगुप्त की महारानी। प्रयाग प्रशस्ति में सम्राट् समुद्रगुप्त अपने को "लिच्छवि दौहित्रस्य कुमारदेव्यां उत्पन्नः" कहता है। अतएव इस आधार पर कुमारदेवी लिच्छवि राजकुमारी प्रमाणित हो जाती है। सिक्के के साक्ष्य से अभिलेख में वर्णित कुमारदेवी का एकीकरण हो जाता है। सिक्के के पृष्ठभाग पर अंकित लिच्छवयः शब्द भी उपरियुक्त कथन की पुष्टि करता है तथा कुमारदेवी का लिच्छवि वंश से संबंध असंदिग्ध हो जाता है।

समरशत बितत विजयो—समुद्रगुप्त के दंडधारी प्रकार स्वर्णमुद्रा पर इस प्रकार का लघु लेख प्रमाणित करता है कि गुप्त सम्राट् ने सैकड़ो युद्ध में शत्रुओं को पराजित किया था। इस विजय की झलक प्रयाग प्रशस्ति में वर्णित पंक्ति से हो जाता है जिसमें उसके शरीर पर युद्ध में चोट के निशान दीख पड़ते हैं।

व्रण-शतांक शोभा-समुदयोरचित कांततर वर्ष्मणः।

इसी सिक्के के पृष्ठभाग पर 'पराक्रमः' की पदवी उत्कीर्ण है। प्रयाग लेख में भी समुद्रगुप्त को "पराक्रमांकस्य" कहा गया है। अतः मुद्रालेख की प्रमाणिकता प्रशस्ति में उल्लिखित वाक्यों से हो जाती हैं। लेख उपगीति छंद में (संस्कृत में) उत्कीर्ण है।

दिवं जयति—स्वर्ग श्री प्राप्त करता है। महाराजाधिराज समुद्रगुप्त की अभिलाषा थी कि संसार में समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर यश लाभ करें। अंतिम अवस्था में स्वर्ग की प्राप्ति हो। ऐसी आकांक्षा स्वाभाविक थी। जीवन दर्शन इसी में निहित है। समुद्रगुप्त के मुद्रालेखों में प्रायः ये दो शब्द अवश्य उल्लिखित हैं।

वाजिमेधः—वैदिक परंपरा में शासक अनेक यज्ञों में अश्वमेध भी संपन्न करता था। समुद्रगुप्त के अश्वमेध प्रकार की स्वर्ण मुद्रा पर यह वाक्य खुदा है। प्रयाग प्रशस्ति में अश्वमेध का वर्णन नहीं है किंतु समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारियों के अभिलेखों में "चिरोत्सन्नाश्वमेधाहर्तुः" वाक्य बारंबार प्रयुक्त है। इस साक्ष्य पर यह संदेहरहित हो जाता है कि समुद्रगुप्त ने अश्वमेध संपन्न नहीं किया था। सिक्के के पृष्ठ भाग पर राजमहिषी सारी प्रक्रिया सहित खड़ी है। कात्यायन श्रोतसूत्र में (१२३।८) में विवरण मिलता है कि मेध (यज्ञ) का अश्व यूप से बंधा रहता (जो सिक्के पर चित्रित है) तथा महिषी वस्त्र तथा यज्ञ-सूची सहित उपस्थित है। शतपथ ब्राह्मण (११,७,२) तथा रामायण (अयोध्या १४।२२) में अश्वमेध का वैसा ही वर्णन है। उसीके अनुरूप समुद्रगुप्त के सिक्के पर अश्व, यूप तथा महिषी चित्रित हैं। संस्कृत लेख उपगीति छंद में खुदे हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृतांतपरशु—यमराज का अस्त्र फरसा। इस परशु के प्रयोग से समुद्रगुप्त ने शत्रुओं पर विजय प्राप्त किया। सम्राट् समुद्रगुप्त के लिए यह पदवी प्रयाग प्रशस्ति में अज्ञात है किंतु उत्तराधिकारियों के लेख में उत्कीर्ण है। 'कृतांतपरशोः' वाक्य प्रथम कुमारगुप्त के विलसद लेख में उल्लिखित हैं। स्वर्णमुद्रा से यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्राट् परशु का भी प्रयोग करता रहा। प्रयाग प्रशस्ति में अनेक अस्त्र-शस्त्र की सूची में परशु का उल्लेख है। स्वर्ण-मुद्रा के अग्रभाग पर अधूरा लेख पढ़ा गया है। किंतु यह पदवी पृष्ठभाग पर स्पष्ट रूप में उत्कीर्ण है। अन्य लेखों में समुद्रगुप्त की तुलना कुबेर, वरुण तथा आंतक या कृतांत से की गई है—

धनद वरुणेन्द्रान्तक समस्य—(विलसद एवं भितरी स्तंभ लेख)।

अप्रतिरथो—समुद्रगुप्त के धनुर्धारी प्रकार की स्वर्णमुद्रा पर 'अप्रतिरथो विजित्य क्षितं—(पृथिवी का विजय करनेवाला अपराजित राजा) उत्कीर्ण है। इसीके प्रयाग प्रशस्ति में इसी अर्थ में "पृथ्वीव्याम् अप्रतिरथ" का प्रयोग हुआ है। उसके उत्तराधिकारी शासकों के लेखों में समानार्थक रूप में वैसी ही प्रयोग मिलता है।

काचोगामवजित्य—काच नामक राजा के सिक्का पर गुप्त स्वर्ण मुद्राओं के समान खुदा है : संस्कृत भाषा (उपगीति छंदमय) तथा गुप्तलिपि में लेख उत्कीर्ण है। तौल १२४ ग्रेन। इस प्रकार के सिक्कों को चलानेवाला कौन व्यक्ति था ? यह कहना कठिन है। गुप्तवंश से पृथक् किसी वंश का शासक रहा होगा, यह कहना नितांत भ्रममूलक होगा। सिक्कों का विश्लेषणात्मक परीक्षण यह सिद्ध करता है कि वह समुद्रगुप्त तथा द्वितीय चंद्रगुप्त के मध्य में शासन करता रहा।

देवश्री—द्वितीय चंद्रगुप्त ने पिता द्वारा प्रचलित सिक्कों का सर्वथा अनुकरण नहीं किया किंतु कई नए प्रकार के सिक्के तैयार कराया था। इस सम्राट् के नवीन मुद्रा लेख में भारतीयपन झलकता है। वैष्णव मत का अनुयायी होकर सिक्कों पर लक्ष्मी को प्रमुख स्थान दिया और वैष्णव पदवी धारण किया। उसी क्रम में देवश्री की पदवी उल्लिखित है। धनुर्धारी सिक्के गुप्तवंश में पर्याप्त लोकप्रिय रहे। अवनति काल में भी दुर्बल शासक मिश्रित धातु के सिक्के प्रचलित करते रहे।

परम भागवत—गुप्त शासकों की वैष्णव पदवी। गुप्त सम्राटों के वैष्णव होने पर संदेह नहीं किया जा सकता। गरुड़ (विष्णु का वाहन) तथा लक्ष्मी (विष्णु की भार्या) की आकृतियाँ उसके ज्वलंत उदाहरण हैं। द्वितीय चंद्रगुप्त की यह लोकप्रिय पदवी थी। अभिलेखों के आधार पर इसकी पुष्टि होती है। अश्वारोही प्रकार मुद्रा पर यह अधिक उत्कीर्ण है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नरेंद्रचंद्र—राजाओं में चंद्रमा के सदृश प्रकाशमान। चंद्रगुप्त के आखेट प्रेम का प्रमाण उसके सिंह निहंता प्रकार से मिल जाता है। उसी मुद्रा पर यह पदवी अंकित है। सिंह के मारते समय राजा के पराक्रम एवं साहस का परिचय मिलता है। इसी क्रम में 'पृथिवीं जित्वा दिवं जयति' वाक्य भी उत्कीर्ण है। पृथ्वी को विजय कर स्वर्ग प्राप्त करेगा। पृष्ठ भाग पर सिंह विक्रमः पदवी से विभूषित है।

सुचरितैःदिवं जयति—छत्र प्रकार के सिक्कों पर यह विरुद अंकित है। राजा विक्रमादित्य संसार को जीतकर पुण्य कर्मों द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति करता है। गुप्त सम्राट् राज्य में शांति तथा सुशासन पैदा कर स्वर्ग की कामना करता था। उसीके कारण बारंबार 'दिवं जयति' सिक्कों पर खुदे रहते थे।

रूपाकृती—द्वितीय चंद्रगुप्त के पर्यंक प्रकार के सिक्कों पर यह शब्द उत्कीर्ण है। इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है। साधारणतया रुपयुक्ता आकृति (राजा का सुंदर चित्र) का भाव प्रकट होता है। किंतु संस्कृत साहित्य में रूप शब्द से नाटक का बोध होता है। अपितु रूपाकृति से यह आभास नहीं मिलता। मूल लेख के 'रूपकृती' मान लिया जाय (ऐसा पढ़ा नहीं गया है) तो उसका तात्पर्य नाटक रचना में कुशल व्यक्ति (राजा से) माना जा सकता है। इस समस्या का अभीतक सुझाव ठीक न हो पाया है।

महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त—प्रथम कुमारगुप्त की स्वर्ण मुद्रा पर अंकित लेख। अधिकतर गुप्त मुद्रालेख छंदवद्ध मिले हैं परंतु यह लेख गद्य मे है। इसके अतिरिक्त अन्य लेख छंदोवद्ध हैं। अश्वारोही प्रकार पर अंकित लेख—"पृथिवीतलांवर शशी कुमारगुप्तो जयत्यजितः" उपगीति छंद में है।

गुप्तकुल व्योम शशी—गुप्त अभिलेखों के अतिरिक्त मुद्रा लेख में भी 'गुप्त वंश' का उल्लेख है। "गुप्तवंश रूपी आकाश का चंद्रमा" विरुद प्रथम कुमारगुप्त के लिए प्रयुक्त है।

गामवजित्य—खड्गधारी प्रकार स्वर्ण मुद्रा पर यह वाक्य द्वितीय चंद्रगुप्त के छत्र प्रकार वाले मुद्रा लेख के समान है। केवल क्षिति शब्द के स्थान पर 'गो' का प्रयोग है। पृथ्वी को जीत कर (स्वर्ग की प्राप्ति करेगा)।

सिंहमहेंद्रो—कुमारगुप्त सिंह के सदृश महेंद्र (स्वर्ग की प्राप्ति करेगा) सिंह निहंता प्रकार सिक्के पर उत्कीर्ण लेख।

साक्षादिव नरसिंहो सिंह महेंद्रो जयत्य निशम्—महेंद्र, सिंह के सदृश, साक्षात् नरसिंह का अवतार है सदा विजयी रहेगा। सिंह निहंता प्रकार के मुद्रा पर अन्य वर्गों में यह लेख मिला है। उपगीति छंद सहित काव्यमय संस्कृत।

सिंह निहंता महेंद्र गजः—महेंद्र का हाथी सिंह का नाशक—प्रथम कुमारगुप्त की पदवी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खड्ग त्राता—खड्ग का प्रयोग श्लेषात्मक रूप में किया गया है। खड्ग=तलवार; खड्ग=गैंडा यानी प्रथम कुमारगुप्त प्रजा को गैंडा के आतंक से बचाता है अथवा तलवार द्वारा रक्षा करता है।

जयति स्वगुणैर्गुण—अपने गुण से विजयी (राजा) कार्तिकेय प्रकार सिक्कों पर यह लेख उत्कीर्ण है। प्रथम कुमारगुप्त के सिक्कों पर राजा के लिए अनेक प्रकार के विरुद मिलते हैं। इसने चौदह प्रकार की स्वर्ण मुद्राएँ प्रचलित की थी। अतः सिक्कों पर नवीन पदवी अंकित हैं।

परहितकारी राजा—स्कंदगुप्त की स्वर्ण मुद्राओं पर दो प्रकार के लेख खुदे हैं। 'जयति महीतलम्' लेख को पूर्णतः पढ़ा न जा सका। उस सम्राट् के लिए परहितकारी (दूसरे की भलाई करनेवाला) वाक्य का क्यों प्रयोग किया गया, यह प्रश्न है। शासक तो प्रजा की भलाई करता ही है। इस विरुद का तात्पर्य उसके शासन में राजगद्दी के लिए प्रतिद्वंदिता से संबद्ध करना उचित होगा। प्रथम कुमारगुप्त के पश्चात् स्कंदगुप्त उचित रीति से सिंहासनरूढ़ हुआ। झगड़े के प्रश्न विवादास्पद ही हैं। इस पदवी से राजा के व्यवहार का आभास होता है। युद्ध न करनेवाला तथा सबके कल्याण का इच्छुक।

लिच्छवयः—प्रथम चंद्रगुप्त के स्वर्ण सिक्कों के पृष्ठभाग पर यह लेख खुदा है। इस शब्द का तात्पर्य यही है कि सिक्के का संबंध लिच्छवि प्रजातंत्र से था जो उत्तरी बिहार में वैशाली में स्थित था। इस उल्लेख की वास्तविकता प्रयाग प्रशस्ति में उल्लिखित 'लिच्छवि दौहित्रस्य कुमारदेव्यां उत्पन्नः' वाक्य से सिद्ध होती है। उसके अनुशीलन से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त लिच्छवी वंश की राजकुमारी कुमारदेवी से उत्पन्न हुआ था जिसका नाम आकृति प्रथम चंद्रगुप्त की स्वर्ण मुद्रा के अग्रभाग पर अंकित है। डा० अलतेकर ने उसी मुद्रा पर खुदी आकृति को सिंहवाहिनी दुर्गा को लिच्छवी प्रजातंत्र की कुलपूज्या देवी कहा है। इसीलिए प्रथम चंद्रगुप्त के सिक्के पर इस देवी को स्थान दिया गया। गुप्तों का लिच्छवी वंश में विवाह हो जाने पर राजा रानी प्रकार (चंद्रगुप्त तथा कुमार देवी) का सिक्के का प्रचलन अवश्यंभावी था। इस कारण ही गुप्त शासक को लिच्छवियों से सहाय्य की कल्पना हो सकती थी।

अश्वमेध पराक्रमः—अश्वमेध प्रकार के सिक्कों पर इस उत्कीर्ण लेख से अश्वमेध की वास्तविकता पर प्रकाश पड़ता है। यह समुद्रगुप्त की पदवी है। इसी प्रकार 'श्री अश्वमेध महेंद्रः' की पदवी से प्रथम कुमारगुप्त द्वारा अश्वमेध करने की वार्ता प्रमाणित हो जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चक्रविक्रमः—द्वितीय चंद्रगुप्त का एक विशेष प्रकार की स्वर्ण मुद्रा बयाना निधि से प्राप्त हुई है। अग्रभाग पर घुटने तक वृत्ताकार तीन प्रभामंडल से घिरे देवता (विष्णु) की आकृति प्रकट होती है। जो पार्श्व में खड़े व्यक्ति (राजा) को कुछ प्रसाद दे रहा है। डा० अलतेकर ने पृष्ठभाग पर खुदे 'चक्रविक्रम' शब्द को द्वितीय चंद्रगुप्त की पदवी माना है। वह राजा विष्णुभक्त था तथा परमभागवत की पदवी से विभूषित था। इस विरुद का निश्चित अर्थ करना कठिन है किंतु उसका आशय यह होगा कि वह राजा चक्र के प्रसाद या चक्रधारी विष्णु के प्रसाद से विजयी हुआ। अतएव पृष्ठभाग पर उत्कीर्ण लेख से चक्रविक्रम प्रकार का सिक्का द्वितीय चंद्रगुप्त का माना गया है।

गुप्त सम्राटों की रजत मुद्राओं का अध्ययन भी शासक की विशेष गुणों पर प्रकाश डालता है। मुद्रालेखों का परीक्षण यह प्रकट करता है कि द्वितीय चंद्रगुप्त ने क्षत्रपों के अनुकरण पर साम्राज्य के पश्चिमी भाग में रजत सिक्के प्रचलित किया था। उसके उत्तराधिकारी प्रथम कुमारगुप्त तथा स्कंदगुप्त ने उस प्रदेश क्षेत्र में वैसा ही सिक्का चलाया। पश्चिम भारतीय सिक्कों पर संस्कृत में लेख है पर गद्य में अंकित है। उस भूभाग के सिक्कों पर 'परम भागवत' की विरुद से मुद्रालेख प्रारंभ होता है। उन रजत सिक्कों पर गुप्त नरेशों ने स्तूप के स्थान पर गरुड़ (विष्णु का वाहन) की आकृति खुदवाई थी तथा गुप्तलिपि में लेख उत्कीर्ण हुए।

द्वितीय चंद्रगुप्त के उत्तराधिकारियों ने मध्यदेश (गंगा यमुना घाटी) में कुछ नवीनता लिए रजत सिक्के प्रचलित किए थे।

(१) सर्वप्रथम मुद्रालेख में नवीनता लाया गया। परमभागवत् विरुद सहित लेख के स्थान पर 'विजितावनिरवनिपतिः' लेख नाम सहित जोड़ दिया। यह प्रथम कुमारगुप्त के धनुर्धारी प्रकार में उत्कीर्ण किया गया था। मध्यदेश में दो सौ वर्षों तक यह लेख प्रचलित रहा तथा कालांतर में शासन करने वाले—बुधगुप्त, तोरमाण, मौखरि राजा, हर्षवर्धन आदि की रजत मुद्राओं पर अमुक नाम सहित वही लेख अंकित होता रहा। लेख छंदोवद्ध हैं।

(२) अक्षरों की शैली में कोई भिन्नता नहीं है।

(३) गरुड़ के स्थान पर पंख फैलाए मोर को पृष्ठभाग पर स्थान दिया गया।

रामगुप्त—इस राजा के संबंध में चर्चा हो चुकी है कि वह गुप्तवंशी शासक था। काव्यमीमांसा के अनुसार उसने राज्य के प्रतिद्वंदी शक नरेश को अपनी भार्या समर्पित करना चाहा। इस कारण रामगुप्त का कथानक अश्रद्धेय हो जाता है। गुप्त वंशी तालिका में भी रामगुप्त का नाम नहीं है। यह कहना उचित होगा कि उसके नाम की गुप्त लेखों में अनुपस्थिति एक संकल्पपूर्ण एवं सोद्देश्य घटना थी। पिछले वर्षों में मालवा से कुछ लेख उपलब्ध हुए हैं जिनमें 'रामगुप्त' महाराजाधिराज पदवी सहित अंकित है। उसी भूभाग से ताँम्बे के सिक्कों पर 'रामगुप्त' लेख भी पढ़ा जा चुका है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामंत नरेशों के अभिलेख

पूर्वी भारत तथा मध्य भारत में कुछ ताम्रपट्ट उपलब्ध हुए हैं जिनमें तिथियों का उल्लेख है और उन्हें गुप्त संवत् से संबंधित करते हैं। पूर्वी बंगाल के बैग्राम तथा पहाड़पुर ताम्रपट्टों पर अंकित तिथियों के आधार यह प्रमाणित किया गया है कि गुप्त सम्राटों के शासन अवधि में उन सामंतों ने शासन किया था। ताम्रपट्ट लिखने की शैली तथा पुरालिपि के साक्ष्य पर यह निर्णय लिया गया था तथा तिथियों (१४८ व १५९) को गुप्त संवंत् से जोड़ते हैं। मध्य भारत में परिव्राजक तथा उच्छकल्प वंशी नरेशों के ताम्रपत्र उपलब्ध हुए हैं जिनमें (संक्षोभ का खोह तामपत्र) "गुप्त नृप राज्यभुक्तौ" वाक्य का उल्लेख है। उनका विवेचन यह प्रमाणित करता है कि मध्य भारत के पूर्व-मध्ययुगी शासक गुप्तों के सामंत रहे। उनकी तिथियाँ गुप्त संवत् से संबद्ध की जाती हैं।

बैग्राम ताम्रपत्र लेख

यह ताम्रपट्ट पूर्वी बंगाल के बोगरा जिले में स्थित बैग्राम स्थान से उपलब्ध हुआ था। यह संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण है। उत्तर भारत की लिपि (गुप्तलिपि) के समान अंकित है। पुरालिपि के आधार पर ज्ञात होता है कि यह ताम्रपट्ट गुप्त लेखों के पश्चात् खोदा गया था। इसके अंत में अंकों में १४९ (=४४८ ई०) उत्कीर्ण है। अतएव यह प्रकट हो जाता है कि गुप्तसम्राट् प्रथम कुमारगुप्त के शासन अवधि में यह दान पत्र लिखा गया। प्रथम पंक्ति में भट्टारक शब्द का प्रयोग गुप्त सम्राट् की ओर संकेत करता है। इस दान पत्र का मुख्य उद्देश्य यह था कि उस भूमि की आय से भगवान् विष्णु (गोविन्द स्वामि) के देवकुल (मंदिर) की मरम्मत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होती रहे तथा प्रतिदिन पूजन साम्रगी उपलब्ध कराई जा सके। ऐसे अग्रहार को स्थायी रूप से दान किया जाता था। उसे वापस लेने वाला नरकगामी होता था।

पंचनगर्य्या—यह स्थान कुलवृद्धि नामक विषय (जिला) का प्रधान नगर था। जिस स्थान पर कार्यालय (अधिकरण) स्थित था।

भट्टारक—संभवतः गुप्त नरेश के लिए प्रयुक्त।

कुमारामात्य—विषय का शासक।

वायिग्रामि—बैग्राम का प्राचीन नाम।

त्रिवृत श्री गोहाल्योः—दो स्थान का नाम जो बैग्राम से संबंधित थे।

संव्यवहारि प्रमुखां ग्राम कुटुम्बिनः—ग्राम के आठ प्रमुख परिवार के व्यक्ति (ग्राम के अभिनिर्णायक) जो शासन के पदाधिकारी थे।

अल्पवृत्तिक—जिसका छोटा व्यवसाय हो। कम आमदनी वाला।

समुदय बाह्य—जिस भूमि से 'कर' न मिलता हो या कर मुक्त।

अस्तम्ब—झाड़ी रहित।

खिल—बंजर।

किञ्चित् अप्रतिकर—जिस भूमि की क्षति पूर्ति न किया जा सके। हर्जाना न देना पड़े।

शाश्वत आचंद्रार्क्क तारकभोज्यानां—वह भूमि स्थायी रूप में दे दी जाय। जब तक चंद्रमा, सूर्य एवं तारागण आकाश में स्थिर रहें। (सर्वदा के लिए) उसका उपभोग किया जाय।

अक्षय नीवि—इसका तात्पर्य है कि वह अग्रहार स्थायी निधि के रूप में दान किया जाता है जो वापस नहीं लिया जा सकता। केवल उसकी आय का ही उपयोग हो सकता है। प्राचीन काल में श्रेणी बैंक का कार्य करती थी। वही दानधन का संग्रह कर रक्षा करती थी। सूद दिया करती।

द्विदीनार कुल्यवाप—दो दीनार (स्वर्ण मुद्रा) प्रति कुल्यवाप भूमि का क्रय मूल्य था।

षड् दीनाराष्ट च रूपकानायीकृत्य— छःसोने की मुद्रा (दीनार) तथा आठ चांदी का सिक्का (रूपक)। इस ताम्रपत्र के विवेचन से प्रकट होता है कि बैग्राम स्थान में भूमि का क्रयमूल्य कम था। दामोदरपुर ताम्रपत्र में तीन दीनार प्रति कुल्यवाप की दर से भूमि खरीदी जाती रही। पर इसमें दो दीनार का भाव उल्लिखित है। सत्तरहवीं पंक्ति में ३ कुल्यवाप तथा दो द्रोणवाप का मूल्य ६ दीनार एवं आठ रुपये बतलाया गया है। दो द्रोणवाप १/४ कुल्यवाप के बराबर माना गया है। इस कारण तीन और चौथाई कुल्यवाप की कीमत ६ तथा आधा दीनार के तुल्य उल्लिखित है। अतएव आठ रुपया = १/२ दीनार यानी १६ रुपया = १ दीनार के प्रकट होता है। कहने का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तात्पर्य यह है कि बैग्राम ताम्रपत्र के आधार पर दीनार तथा रुपया का अनुपात स्वतः ज्ञात हो जाता है।

खंड स्फुट प्रतिसंस्कार करणाय—खंडित होने पर मरम्मत।

गंधधूपदीपसुमनसा—पूजन सामग्री।

तल—निवास का स्थान।

वाटक—रास्ता।

स्थल वास्तु—गृह संबंधी भूमि।

तलवाटक—देव मदिर का कर्मचारी।

पुस्तपाल—ग्राम का अभिलेख संग्रहकर्त्ता (Record-Keeper)। डा० सरकार का मत है कि यह अधिकारी क्रय करनेवाले व्यक्ति के दृष्टिकोण पर विचार करता था। यदि भूमि को कर-रहित विक्रय किया जाय तो राज्य को कितनी आय या हानि होगी, यह भी विचारणीय प्रश्न था।

एवं विध अप्रतिकर—इस प्रकार भूमि विक्रय करने से किसी प्रकार की हानि की पूर्ति (हर्जाना) न हो।

किंचिद्राजार्त्थ विरोध—जिस भूमि के विक्रय से राजा के अर्थ का विरोध यानी कर की हानि होती हो।

मट्टारक पादानां धर्म्मफलषड्भागाप्तिश्च—प्राचीन समय में राजा भूमि की आय का 'छठा' भाग प्रजा से ग्रहण करता था (षड्भाग भितो राजा)। दान के अवसर पर भूमिकर के ग्रहण न करने पर राजा की आय की हानि होती है किन्तु धार्मिक दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो उसी अनुपात (षड्भाग) में राजा प्रजा के पुण्य से लाभान्वित होता था। धर्मादित्य के फरीदपुर ताम्रपत्र में "धर्मषड्भाग लाभ" वाक्य का उल्लेख है। इसका तात्पर्य यही है कि राजा छठा हिस्सा भूमिकर के बदले में प्रजा के गुण तथा पुण्य के छठे भाग का उपभोग करता था। ब्राह्मणों के पारलौकिक कार्य तथा उसके यज्ञ के अंश का पुण्य लाभ करता था।

राजा प्रजाभ्यः सुकृतदुस्कृत षठांश भाक्। ब्राह्मणेभ्यः करादानं न कुर्यात्। तेहि राज्ञो धर्म करदा। (विष्णु संहिता ३।१३)

पाल नरेश धर्मपाल के खालीमपुर ताम्रपत्र मे षड्भाग (षष्टाधिकृत) का उल्लेख है। इसी परंपरागत छठे भाग के 'भूमिकर' को कम करने के लिए अशोक ने लुम्बिनी ग्राम (बुद्ध का जन्म स्थान) के 'कर' को घटा कर छठा भाग से आठवां कर दिया था। (अठ भगिए त्र) सारांश यह है कि राजा प्रजा से कर का छठा भाग लेता है। इसके अभाव में पुण्य का भी छठा भाग राजा को मिल जाता है (धर्म्मफल षड्भाग)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ताम्रपट्टेनदत्तम्—ताम्रपट्ट पर लेख अंकित कर दानग्राही को दिया जाता था। ग्राम का पुस्तपाल उसके निबंध का संरक्षण करता।

निम्न—निम्नभूमि

कु—कुल्यवाप का संक्षिप्त रूप

द्रो—द्रोणवाप का संक्षिप्त रूप

स्वकर्षणाविरोध स्थाने—जिसे भूमि का कोई विवाद न हो। स्वंय खेती (कर्षण) करना। ग्रामबासी का इस भूमि से लगाव न हो।

कर्म हस्त—नाप (हस्त द्वारा)

नल—क्षेत्र माप का साधन

उक्तंच भगवता वेद व्यासेन महात्मना—दान पत्र के अंतिम धर्म श्लोकों के रचयिता वेद व्यास कहे गए हैं।

सं—संवत्सर का संक्षिप्तीकरण

दि—दिवस का संक्षिप्तीकरण

पहाड़पुर ताम्रपत्र लेख

बंगाल के राजशाही जिले में स्थित पहाड़पुर से यह ताम्रपट्ट उपलब्ध हुआ था। संस्कृत-भाषा तथा उत्तरी भारत की ब्राह्मी में अंकित है। तिथि १५९ बीसवी पंक्ति में अंको में खुदी है। लिपि के आधार पर यह लेख गुप्तकालीन प्रकट होता है। गु० स० में १५९ (=४७९ ई०) तिथि से यह अनुमान लगाया जाता है कि उस समय बुधगुप्त गुप्त साम्राज्य के पश्चिमी भाग में शासन कर रहा था। इस ताम्रपत्र में भी भूमिदान का वर्णन है जिसकी आय अर्हत (जिन, जैनसाधु) के विहार (निवासस्थान) तथा जैन देवता के पूजा निमित्त-गंध धूप सुमन दीप-में व्यय होता रहा। बैग्राम ताम्रपत्र की शैली का अनुकरण इसमें किया है तथा परंपरागत बातों की चर्चा की गई है।

पुण्ड्रवर्द्धन—इसी नाम के प्रदेश (प्रांत) का मुख्य नगर जहाँ से शासन होता था उत्तरी बंगाल।

आयुक्त—पदाधिकारी

आर्य नगर श्रेष्ठी—नगर के शासन समिति (अधिकरण)। नगर श्रेष्ठी का प्रमुख हाथ था। आयुक्त तथा अधिकरण सम्मिलित रूप से आज्ञा पत्र प्रसारित करते थे।

नागिरट्ट मण्डल—शासन का एक भाग

दक्षिणां शकेवीथि—क्षेत्र का नाम (जिलास्तर पर)

पलाशाट्ट—भौगोलिक नाम

वटगोहली—जम्बुदेव के अधिकार क्षेत्र

पृष्ठिमर्पात्तक तथा गोषाट पुंजक—मूल नागिरट्ट नामक व्यक्ति के अधिकार में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रावेश्य—भूमिकर संग्रह करने का अधिकार

महत्तर—मुखिया

द्विदीनार कुल्यवाप—बिक्री का दर, भाव या दो स्वर्णमुद्रा प्रति कुल्यवाप

पंचस्तूप निकायिक या पंचस्तूप कुल निकायिक—जैनमत में वाराणसी की पंचस्तूप नामक उपशाखा

निग्रंथ श्रमणाचार्य—जैनसाधु के आचार्य

भगवतामर्हतां गंध धूप सुमन दीप—मध्य युगी लेखों (दानपत्रों) में वर्णन आता है कि ब्राह्मण मतानुयायी मंदिर में स्थापित देवता के पूजन निमित्त दान दिया जाता था। बौद्ध तथा जैनमत में भी बुद्ध एवं महावीर की पूजा होने लगी। महायान मत में बुद्ध को देवता का रूप दिया गया। अतएव ब्राह्मण धर्म के पूजा विधान को बौद्धों तथा जैनियों ने भी अपनाया। मठ के मरम्मत (खंड स्फुट) निमित्त दान का उल्लेख मिलता है। उसी के साथ सभी मतों के देव पूजन में एक समान पूजा सामग्रियों का वर्णन लेखों में निहित है। जैन तथा बौद्ध मत में पूजा का विधान ब्राह्मण धर्म का अनुकरण है अथवा नास्तिक मतों पर उसका प्रभाव है।

परमभट्टारक पादानामर्त्योपचयो—इसमें पहले दो शब्द सम्राट् की पदवी निमित्त उल्लिखित है। समवतः सम्राट् बुधगुप्त को संकेत करता है। उस शासक को दान देने के कारण (भूमिकर) आय की अभिवृद्धि नहीं हो सकती किन्तु 'धर्म षड्भाग' का लाभ अवश्य होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मध्य प्रदेश के लेख

गुप्त सामंतों में मध्य भारत के दो वंशों के नाम उल्लेखनीय है जिन्हें ताम्रपत्रों में (अ) उच्छकल्प तथा (ब) परिव्राजक कहा गया है। खोह ताम्रपत्र में 'उच्छकल्पान' तथा 'परिव्राजक' शब्दों का प्रयोग उपरियुक्त कथन की पुष्टि करता है। इनके दानपत्रों में वंशावली का उल्लेख है। किंतु परिव्राजक दानपत्र भगवान् की प्रार्थना से आरंभ किए गए हैं। किसी में 'नमो महादेवाय' अथवा 'नमो भगवते वासुदेवाय' का उल्लेख है। इस प्रकार परिव्राजक ताम्रपत्र राजाओं के धार्मिक विचार को व्यक्त करते हैं। इनकी एक विशेषता यह है कि परिव्राजक ताम्रपट्ट अभिलेखों में तिथि के साथ 'गुप्त नृप राज्य मुक्तौ' वाक्य उत्कीर्ण है। इससे सामंत स्वरूप का स्पष्ट आभास मिलता है तथा तिथियों को गुप्त संवत् से जोड़ कर राजा के शासन काल का परिज्ञान होता है। उच्छकल्प ताम्रपत्रों में इस वाक्य का अभाव है। परंतु मध्य भारत के खोह प्रदेश से जितने ताम्रपत्र उपलब्ध हुए हैं सब से प्रायः तिथि का अंकन किया गया है। उच्छकल्प ताम्रपत्रों में १७४, १७७, १९३, १९७ एवं २१४ तिथियाँ पढ़ी गई हैं। परिव्राजक लेखों में 'गुप्त नृपराज्यभक्तौ' वाक्य सहित १५६, १६३, १९१ तथा २०९ तिथियों का उल्लेख है। एक ही स्थान से प्रायः सभी ताम्रपत्र प्रकाश में आए हैं। उनका अनुशीलन यह स्पष्ट कर देता है कि ताम्रपत्रों के लिखने की शैली, विषय चर्चा तथा शासन संबंधी वार्त्ता में समानता है। यदि तिथियों को एक ही काल गणना (गुप्त संवत्) से संबद्ध किया जाय तो यह आपत्तिजनक न होगा और शासकों के राज्यकाल (या अवधि) में उस गणना के कारण अप्रमाणिकता का दोष भी नहीं दिखलाई देता। इसी कारण खोह के समस्त ताम्रपत्रों की तिथियों को गुप्त सवंत् से मिला कर सभी नरेशों के सामंत स्वरूप को घोषित करना सरल हो जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खोह ताम्रपत्रों का परिशीलन यह सिद्ध करता है कि दान देने का उद्देश्य एक सा था। सभी पत्रों में देवकुल के 'खण्ड स्फुट प्रतिसंस्कार' निमित्त दान का उल्लेख है। 'वलिचरूसत्र' वाक्य भी उपचार तथा भिक्षागृह की बातें बतलाता है। पिछले सदी के ताम्रपत्रों से इनमें एक विशिष्ट शासकीय वार्त्ता उल्लिखित है कि राजकीय कर का संग्रह शासक नहीं कर सकता। अपितु दानग्राही को यह सौंप दिया गया कि समस्त प्रकार के स्थायी, अस्थायी कर, चुंगी (शुल्क) आदि वह दान के उद्देश्य पूर्ति निमित ग्रहण करेगा। इस प्रकार के सर्वेक्षण से प्रत्येक ताम्रपत्र का कुछ निजी महत्व ज्ञात नहीं होता। तिथि के क्रम से दानपत्रों का विवरण उपस्थित किया गया है।

परिव्राजक महाराजा हस्तिन का खोह ताम्रपत्र

यह मध्य भारत के नगोद के समीप उछेहरा नामक स्थान से प्राप्त हुए हैं। खोह गुहा के लिए प्रयुक्त है। संभवतः गुहा के समीप भूभाग से सभी ताम्रपत्र प्रकाश में आए हैं। संस्कृत भाषा तथा उत्तरी भारत की ब्राह्मी (छठी सदी) में अंकित है। इसकी तिथि १६३ (शब्दों में) के पश्चात् 'गुप्त नृप राज्य भुक्तौ' (गुप्त सम्राटों के प्रयुक्त वर्ष) वाक्य सहित उल्लिखित है। अतएव इनकी तिथि विदित हो जाती है (१६३ + ३२० = ४८३ ई०)।

वाजसनेय—वैदिक शाखा का नाम था (शुल्क यजुर्वेद) जिसके पठनपाठन के कारण ब्राह्मण प्रसिद्ध होते रहे।

गोत्र—ब्राह्मण को प्राचीन ऋषियों से संबंध स्थापित कर अमुक गोत्र की संज्ञा दी जाती है। भारद्वाज, कौत्स, भार्गव, वासुल गोत्रों के नाम इस दान पत्र में ब्राह्मणों के साथ (वैदिक शाखा सहित) उल्लिखित हैं।

उद्रंग—कृषकों को स्थायी 'भूमिकर' देना पड़ता था जिसे उद्रंग कहते थे।

उपरिकर—अस्थायी कर। कुछ कृषक जमीन पर अस्थायी कर दिया करता था। वह भूमि उसकी संपत्ति न होती थी। यह कर राजा द्वारा ग्रहण किया जाता था। दान के पश्चात् 'राज कर' अधिकारी द्वारा वसूल नहीं किया जाता था। यानी दान 'कर' सहित दिया गया है।

अचाटभट प्रावेश्य—चाट से उन सैनिकों का अर्थ है जो धोखे से गांव में प्रवेश करते थे। भट पुलिस (आरक्षी) के अर्थ में प्रयुक्त है। ग्राम में प्रवेश कर चाटभट मनमाना प्रजा से धन संग्रह करते थे। उस भूमि (ग्राम) के दान पश्चात् इनका प्रवेश भी निषेध था। अन्य लेखों में 'प्रतिनिषिद्ध चाटभट प्रवेश' उल्लिखित है। संभवतः इनका ग्राम में प्रवेश राजकीय कर्मचारी के रूप में रहता जो दान पश्चात् वर्जित कहा गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाटतस्कर दुर्वृत महासाहसिकादिभिः
पीड्यमानाः प्रजारक्षेत कायस्थैश्चविशेषतः
(याज्ञ० आ० अ० ३३६)

करितलाई ताम्रपत्र लेख

मध्य प्रदेश के जवलपुर जिले में मुंडवार के समीप करितलाई ग्राम में स्थित विष्णु मंदिर से ताम्रपत्र उपलब्ध हुआ था। भाषा संस्कृत, लिपि छठी सदी की ब्राह्मी है। तिथि गु० स० १७४ (=४९४ ई०) उल्लिखित है। प्रारंभ में उच्छकल्प महाराज शब्द का प्रयोग जयनाथ को मध्य भारत के उच्छकल्प परिवार का वंशज बतलाता है। इस दानपत्र की वार्ता खोह ताम्रपत्र से मिलती जुलती है। इसमें भी उसी प्रकार ब्राह्मणों की वैदिक शाखा, गोत्र तथा राजकीय करों का विवरण मिलता है।

काण्व
वाजसनेय
एवं
माध्यन्दिन } शुल्क यजुर्वेद की शाखाएँ

सोद्रंग सोपरिकर अचाटभट प्रावेश्य—ताम्रपत्रों में इन्हीं शब्दों का बार-बार प्रयोग किया गया है। करितलाई दानपत्र में 'भाग भोग कर प्रत्याय' शब्दों का उल्लेख है। गुप्तकालीन अभिलेखों में इन 'करों' में कोई विभेद नहीं है। भाग शब्द से राज का षड्भाग (भूमिकर) का तात्पर्य है जिसे उद्रंग भी कहते थे। 'भोग कर' अस्थायी कर जो कृषकों से वसूल किया जाता था। उपरि कर (कर से उपर, अधिक) तथा भोगकर में समता है। दोनों एक प्रकार के 'कर' के लिए प्रयुक्त है (विस्तृत विवरण देखिए—गुप्तसाम्राज्य का इतिहास, भा० २, पृ० १४–१६)।

भाव्य कर प्रत्याया न ग्राह्या—दान में दी गई भूमि से राजा द्वारा राजकीय कर ग्रहण करना वर्जित था। सभी कर दानग्राही लेता था।

पंचभि पातकैः—पाँच महान पाप (जिसका उल्लेख किया गया है)।

ब्रह्म हत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महाति पातकान्याहुः तत्संसर्गश्च पंचमम्॥ (मनु ११।५५)

भोगिक—ग्राम का एक पदाधिकारी। (अश्वपालक) डा० सरकार ने जागीरदार कहा है।

दूतक—दूत, संवादवाहक।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जयनाथ का खोह ताम्रपत्र

उसी नगोद रियासत के उछेहरा नामक स्थान से प्राप्त हुआ है जिसकी तिथि गु० स० १७७ (=४९७ ई०) है। भाषा सस्कृत तथा गुप्तलिपि में उत्कीर्ण है। उच्छकल्प की वंशावली के पश्चात् दान का विवरण प्रस्तुत किया गया है। जयनाथ ने अग्रहार संबंधी आज्ञापत्र प्रसारित किया जिससे ग्राम के निवासी, ब्राह्मण एवं कलाकार को इसका परिज्ञान हो जाय।

चंद्रार्क समकालीन—चंद्रमा तथा सूर्य (अर्क) के समय तक यानी शाश्वत रूप से।

शाशतन—गोत्र का नाम।

दिविर—लेखक, यह शब्द सर्वप्रथम अशोक के धर्मलेख में प्रयुक्त हुआ था।

देवाग्रहार—देवता का अग्रहार (दानग्राम)।

वलिचरुसत्र—पूजा के उपचार तथा भिक्षागृह (सत्र) की स्थापना।

समुचित शुल्क भाग भोग कर हिरण्य—चुंगी, राजकीय स्थायी कर, अस्थायी तथा नकद सोना।

राजा भाव्य कर प्रत्याया न ग्राह्या—राजा द्वारा कर ग्रहण वर्जित।

चोर दंड वर्ज्य—दान के भूभाग या ग्राम में चोरी करने पर जो दंड (जुर्माना) देना पड़ता था उसे दानग्राही ग्रहण नहीं कर सकता था। यानी अर्थदंड राजकीय अधिकारी लेता था।

उक्त च—धर्म श्लोकों का संबंध व्यास से स्थिर किया गया है। बीसवीं पंक्ति में 'सर्व्व सस्य समृद्धान्' (धान्य से पूर्ण) वाक्य खोह ताम्रपत्रों में पाया जाता है। पहले "स्वदत्तां परदत्तां वा" वाक्य मिलता हैं (दामोदरपुर ताम्रपत्र में)।

सांधि विग्रहिक—युद्ध तथा संधि का निर्णय करनेवाला (मंत्री)।

पाली—तट बंध।

उच्छकल्प वंशी शर्वनाथ का खोह ताम्रपत्र

नगोद के समीप खोह के भूभाग से ताम्रपत्र, उपलब्ध भाषा संस्कृत तथा छठी सदी का उत्तर भारत की ब्राह्मी। तिथि गु० स० १९३ (=५१३ ई०) ताम्रपट्ट पर अंतिम भाग में अंकित है। कुछ भारतीय विद्वानों का विचार था कि इस तिथि को कलचुरि संवत् (ई० स० २४८) से संबद्ध करना चाहिए। परंतु इस गणना के आधार पर परिव्राजक हस्तिन (जिसकी तिथि गु० स० १९१ = ५११ ई०) तथा शर्वनाथ (जिसकी तिथियाँ १९१–२१४) है यानी २१४ + २४८ = ४६२ ई० समकालीन हो जाते हैं, अप्रमाणिक होगा। अतएव गु० स० से इन तिथियों को जोड़ना युक्त संगत है (मिराशी, ए० इ०, भा० २३)।

महाराज व्याघ्रराज—कुछ विद्वान् व्याघ्रराज को प्रयाग प्रशस्ति में उल्लिखित व्याघ्रराज से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एकीकरण करते हैं। परंतु व्याघ्रराज का पुत्र शर्वनाथ ई० स० ५१३ में शासन करता था। अतएव वह समुद्रगुप्त का समकालीन नहीं हो सकता।

तमसा नघा—टोंस नदी, गंगा की सहायक।

सोद्रंग : सोपरिकर अचाटभट प्रावेश्य—अग्रहार ग्राम में 'कर' ग्रहण करना तथा कर्मचारी का प्रवेश निषेध (व्याख्या पिछले पृष्ठों में)।

चोरदंड वर्जित—अर्थदंड को दानग्राही द्वारा अग्राह्य।

चतुर्भिरंशैः—उस आय का चार भाग। उसमें दो भाग विष्णुनंदिन को तीसरा अंश शक्तिनाग तथा चौथा अंश कुमार एवं स्कंदनाग को दिया जाय।

खंड फुट्ट प्रतिसंस्कार—आदित्य के मंदिर की मरम्मत।

वलिचरूसत्रगंधधूपमाल्यदीप—दान भूमि की आय से मंदिर की मरम्मत, पूजा सामग्रियों का प्रतिदिन प्रबंध तथा भिक्षागृह (सत्र) की स्थापना आदि कार्य संपन्न होते थे।

समुचित भागभोग कर हिरण्य—

भाग—पैदावार का छठा भाग।

भोग—अस्थायी कर या सामग्री प्रदान करना।

कर—भूमिकर के अतिरिक्त शुल्क।

हिरण्य—राजकीय कर, जब नकद पैसा के रूप में दिया जाय।

दत्तिन्—जो दान दिया गया हो। याज्ञवल्क्य स्मृति में (आचार अध्याय ३१८–२०) इस प्रकार का उल्लेख है—

दत्त्वा भूमि निबंधं वा कृत्वा लेख्यन्तु कारयेत्।

उक्तंच—व्यासेन—खोह ताम्रपत्र के अन्य स्थानों में भी यही उल्लिखित है, इसमें एक पद्य नए रूप से जोड़ा गया है—

प्रायेण हि नरेन्द्राणां विद्यते न शुभा गतिः।
पूयन्ते ते तु सततं प्रयच्छन्तो वसुन्धराम्।

मनु ने भी (३।१८० तथा ४।२२०) पूय शब्द पर जोर देकर घृणित काम करने पर घाव से मवाद (पीव) निकलने के कष्टदायक स्थिति का वर्णन किया है। दान वापस लेनेवाला राजा भी उसी प्रकार का कष्ट उठाएगा।

महासांधिविग्रहिक—युद्ध एवं शांति का निर्णय लेने वाला आमात्य।

दूतकर्म—दूतक।

क्षत्रिय—इस शब्द का प्रयोग विशेष स्थिति में किया गया है। क्षत्रिय वर्ण के व्यक्ति ही महाबलाधिकृत (सेना के सर्वोच्च पद पर स्थित) हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिव्राजक नरेश संक्षोभ का दानपत्र

यह ताम्रपत्र उसी खोह स्थान से उपलब्ध हुआ जिसकी तिथि गु० स० २०९ (५२९ ई०) उल्लिखित है। भाषा संस्कृत, लिपि उत्तर भारतीय शैली की ब्राह्मी। यह ताम्रपत्र द्वादशाक्षर मंत्र (ओं नमो भगवते वासुदेवाय) से आरंभ होता है तथा शासक के लिए परमभागवत की उपाधि भी वर्णित है। इस कारण यह वैष्णव धर्मी लेख है। इसमें अन्य ताम्रपत्रों की शैली तथा परंपरा का अनुकरण दीख पड़ता है। उन्हीं राजकीय करों का नामोल्लेख है जिन्हें पूर्व ताम्रपत्रों में वर्णित पाते हैं। अंतिम भाग में धर्मश्लोक उसी ढग से उत्कीर्ण हैं।

चतुर्द्दश विद्यास्थान—यह विशेषण संक्षोभ के पिता हस्तिन के लिए प्रयुक्त है। विज्ञान के चौदह अंगों का ज्ञाता।

षडंग मिश्रिता वेदा धर्मशास्त्र पुराणकम्।
मीमांसा तर्कमपि च एता विद्याः चतुर्दश ॥

षडंग—कल्प, शिक्षा, ज्योतिष, निरुक्त, छंद एवं व्याकरण (६)।
वेदा—यजु, ऋग, साम, अथर्ववेद (४)।
धर्मशास्त्र—धर्मसूत्र (१)।
पुराण—समस्त पुराण साहित्य (१)।
मीमांसा—दर्शन (१)।
तर्क—तर्कशास्त्र (१)।

भरद्वाज—गोत्र का नाम।

गोसहस्र हस्ति अश्व हिरण्य—षोड़श महादान का वर्णन मत्स्य पुराण (२७४–२८९), अग्नि-पुराण (२१०) तथा लिंग पुराण में (अ० २८) मिलता है, जिसमें हेम हस्तिरथ तथा हिरण्याश्व रथ का विवरण प्रस्तुत किया गया है। सोने का हाथी या घोड़ा दान में दिये जाते थे। अतः इस आधार पर यह प्रकट होता है कि परिव्राजक नरेश हस्तिन ने महादान दिया था। गो सहस्र का दान भी महादान कहा गया है। (Socio-Religious Condition of North India, p. 317–20)। प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के लिए "अनेक गोशत सहस्र प्रदायिनः" वाक्य उल्लिखित है।

अनेक भूमि प्रदस्य—दान में अनेक ग्राम दिया। इसी कारण ताम्रपत्रों में निम्न पद्य उल्लिखित है—

षष्टि वर्ष सहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिदः।

अनेक समर शत विजयिनः—सैकड़ों युद्धों में विजयी। यह प्रयोग परिव्राजक सामंत नरेश के लिए अलंकारिक है। प्रयाग प्रशस्ति में गुप्तस म्राट् समुद्रगुप्त के लिए विविध समर-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"शतावरण दक्षस्य" विशेषण उल्लिखित है। उसके स्वर्ण मुद्रा लेख में भी "समर सत वितत विजयी जित रिपु रजितो दिवं जयति" (सैकड़ों युद्धों में जिसने शत्रुओं पर विजय पाई) वाक्य द्वारा वही भाव व्यक्त किया गया है। स्यात् खोह ताम्रपत्र के लेखक ने हस्तिन के गौरव वृद्धि के निमित्त ऐसे अलंकारिक भाषा का प्रयोग किया हो।

अष्टादशी आटवि राज्य—अट्ठारह जंगल के राज्यों में डमाल (जबलपुर के समीप, मध्य प्रदेश) का प्रमुख राज्य रहा होगा।

हस्तिन—परिव्राजक नरेशों में हस्तिन की प्रमुखता थी। संभवतः उसी कारण संक्षोभ के खोह ताम्रपत्र में लम्बी उपाधियाँ का प्रयोग एवं गुणों की विशेषता की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है।

वर्णाश्रम धर्म्म स्थापना निरतेन—मध्ययुगी लेखों में इस प्रकार का उल्लेख अत्यधिक मिलता है कि शासक का प्रमुख कार्य था—वर्णाश्रम धर्म की रक्षा। प्राचीन परंपरागत चार वर्णों का संरक्षण राजाओं का परम कर्त्तव्य था। इसको ध्यान में रखकर हर्षवर्धन के बांसखेड़ा ताम्रपत्र में "वर्णाश्रम व्यवस्थापन प्रवृत" वाक्य प्रयुक्त है।

(ए० इ०, भा० ४, पृ० २१८)

राजा वर्णाश्रम धर्म के संरक्षण में संलग्न था। असम के निधानपुर दानपत्र में वर्णाश्रम धर्म प्रविभागाय निर्म्मितो (ए० इ० भा० १९, पृ० ११८–२०)। उपरियुक्त कथन को पुष्ट करता है। बंगाल के ताम्रपत्रों में भी शासकों के लिए ऐसे वाक्यों का प्रयोग किया गया है—

सम्यग् विभक्त चतुराश्रम वर्णधर्मा। (ज० ए० सो० बं०, १८९७, पृ० १२५)
वर्णानान् प्रतिष्ठापयता स्वधर्मे। (इ० ए०, भा० २१, पृ० २५५)
वर्णाश्रम परिपोसक। (ए० इ०, भा० १५, पृ० ३)

इसके अनुशीलन से प्रकट होता है कि चारो वर्णों को अपने धर्म के पालन करने में राजा सहायता करता था। सभी की संरक्षण करता। परंपरागत वर्णों के मिश्रण का अवसर न आ पाता। इसी उद्देश्य से हस्तिन के लिए उपरियुक्त वाक्य उल्लिखित किया गया है कि वह चारों वर्णों को स्वधर्म तथा स्वस्थान में रहने का निर्देश करता रहे। ताम्रपत्रों के सर्वेक्षण से यह स्पष्ट विदित होता है कि परिव्राजक नरेश हस्तिन को चारों वर्णों के प्रति सादर साग्रह था कि सभी अपनी-अपनी सीमा में रहे।

परम भागवत—वैष्णव मतानुयायी की पदवी। गुप्त सम्राटों को भी यह पदवी दी गई थी। मुद्रा लेखों में भी परमभागवत की वैष्णव पदवी अंकित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पिष्टपुर्या : (पिष्ठपुरी)—देवी का नाम जिनको मंदिर में स्थापित किया गया था।

वलिचरु सत्र—विवेचन हो गया है।

खंड स्फुटित संस्कार—विवेचन हो गया है।

चोर द्रोहक वर्ज्जित—चोर तथा बुरे कर्मी पर आरोपित अर्थ दंड अग्राह्य।

ताम्र शासनेन—ताम्रपट्ट को अंकित करना। याज्ञवल्क्य ने इसी प्रकार का उल्लेख किया है—

पट्टे वा ताम्रपट्ट वा स्वमुद्रोप रिचिन्हितं
अभिलेख्यात्मनो वंश्यानात्मानं च महीपतिः

(याज्ञ० स्मृति, १।३१८)

प्रत्येक शासक के लिए ताम्रपट्ट पर दानभूमि का विवरण लिखकर दान ग्राही को समर्पित करना पड़ता था।

भूमि प्रदानान्न परंप्रदानं—भूमिदान सर्वोत्तम।

लिखितं च—ताम्रपट्ट के लिखने वाला का नामोल्लेख प्रायः पाया जाता है। यहाँ ईश्वरीदास का नाम अंकित है।

शवनाथ का खोह ताम्रपत्र (गु० ति० २१४)

उच्छकल्प वंश के शासक शर्वनाथ का अभिलेख उसी खोह नामक स्थान से प्राप्त हुआ है जहाँ से अनेक ताम्रपत्र उपलब्ध हुए है। संभवतः वह प्रमुख स्थान था, इसी करण वहाँ के ब्राह्मणों को दान दिया गया। यह ताम्रपत्र संस्कृत में है तथा उत्तरी भारत की ब्राह्मी (छठी सदी की लिपि) में अंकित है। तिथि गु० स० २१४ (=५३४ ई०) है। सभी ताम्रपत्र एक ही उद्देश्य से लिखे गए थे। धार्मिक भावना तथा पुण्य लाभ के लिए ताम्रपत्र पर दान की भूमि का विस्तृत विवरण लिख कर ब्राह्मण को दे दिया जाता था। वही उसके दान का प्रमाण था जिसको उसे वंशज सुरक्षित रखते थे। दानपत्र के अनुशीलन से प्रकट होता है कि सर्वदा के लिए स्थायी रूप में वह भूमि ब्राह्मण को मिल जाती थी। दान के प्रकरण में यह वर्णित है कि राजकीय समस्त अधिकार दानग्राही को सौंपा जाता था। इसका तात्पर्य यह है कि राजा का उस भूमि से स्वामित्व हट जाता तथा ब्राह्मण उसका स्वामी हो जाता। राजा द्वारा जितने प्रकार के कर (टैक्स) ग्रहण किए जाते थे वे सभी दान के पश्चात् ब्राह्मण (दानकर्त्ता) द्वारा वसूल किए जाते। अतएव "राजाभाव्य सर्वकर प्रत्यायोत्पत्र—समेतो" वाक्य का समावेश दानपत्र में किया जाता था।

इस खोह ताम्रपत्र में राजा शर्वनाथ की वंशावली के अनंतर दान के ग्रामों का नाम उल्लिखित है। सभी प्रकार के 'कर' वैसे ही वर्णित है जैसे अन्य ताम्रपत्रों में। निम्नलिखित करों का वर्णन हो चुका है—

(१) उद्रंग, उपरि कर।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२) भागभोग कर।
(३) अचाटभट प्रावेश्य।
(४) चोर दंड।
(५) हिरण्य वातायादि।

वातायादि—गुप्त कालीन लेखों में एक विचित्र प्रकार के शुल्क का उल्लेख है जिसे विभिन्न नाम से अभिलेखों में स्थान दिया गया है। वह किसी प्रकार के कर का द्योतक है।

(क० इ० इ०, भाग ३, फ्लीट लेख, पृ० १७०)

(अ) भूतोवात प्रत्याय (गु० ले० ३१)।
(ब) वातभूत प्रत्याय (गु० ले० ३१)।
(स) भूत वात " (गु० ले० ३१)।

वात शब्द का अर्थ है वहना या फूकना। किंतु निश्चित तात्पर्य अज्ञात है। फ्लीट ने इसका संदेहात्मक अर्थ किया है।

(का० इ० इ०, भा० ३, पृ० १६५-१७०)

घोषाल का मत है कि वह 'कर' लेनेवाला भूत, प्रेतों को हटाता था।

(हिंदू रेभेन्यू सिस्टम, पृ० १२७)

डा० अलतेकर का कथन है भूतवात या भूतोवात एक प्रकार का 'कर' अवश्य था, जो उस स्थान से पैदा होने वाली बस्तुओं पर लगाया जाता था। इस आधार पर व्यापारिक तथा नशीली चीजों पर चुंगी का तात्पर्य समझना चाहिए।

(राष्ट्रकूट एंड देयर टाइम्स, पृ० २२९)

आचंद्रार्क समकालीक—सूर्य चंद्रमा की स्थिति पर्यंत।

भूमिच्छिद्र न्यायेन—जो भूमि (बंजर) कृषि के योग्य हो उसी को दान दिया जाता था।

ताम्रशासने अनुमोदितौ—दान देने के पश्चात् ताम्रपत्र अग्रहार का विवरण एवं कर वसूली का उल्लेख कर ब्राह्मण को स्थायीरूप में दे दिया जाता था। वही निबंध पत्र (रजिस्ट्री) समझना चाहिए।

पंचमि महापातकैः—उल्लेख हो चुका है।

उपपातक—इनकी संख्या उनचास थी (कल्पद्रुम, सं० ५)।

उक्तं च महाभारते शत साहस्रां संहितायां—इससे स्पष्ट विदित होता है कि मूल महाभारत में चौबीस हजार श्लोक थे जो संहिता के नाम से प्रसिद्ध था। कालांतर में एक लाख श्लोकों का ग्रंथ महाभारत हो गया।

सांधिविग्रहिकं एवं दूत—लेखक के पदों का उल्लेख—युद्ध एवं शांति तथा संवाद वाहक (राजदूत ?)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समसामयिक नरेशों की प्रशस्तियाँ

गुप्त वंश संबंधित संपूर्ण अभिलेखों का विवरण उपस्थित किया गया है। किंतु उस प्रसंग में कुछ अन्य लेखों का वर्णन नितांत आवश्यक प्रतीत होता है जिनके साक्ष्य के आधार पर समसामयिक नरेशों का उल्लेख हो सकता है। उन्होंने गुप्त वंश के पतन में हाथ बटाया था। गुप्त प्रशास्तियों का विवेचन करते समय ऐसे राजाओं का उल्लेख भी किया गया है। उदाहरण के लिए तृतीय कुमारगुप्त तथा मौखरि राजा ईशान वर्मा। माधवगुप्त एवं हर्ष वर्धन। किंतु प्रस्तुत परिशीलन में दो वंशों के ही अभिलेख विचारणीय हैं। मालवा का राजा यशोधर्मन तथा हूण नरेश की प्रशस्तियां गुप्त इतिहास पर (पतन की समस्या) पर्याप्त प्रकाश डालती हैं। यही कारण है कि निम्न पंक्तियों में उनका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

यशोधर्मा का मंदसोर शिला लेख

मालवा में मंदसोर नामक स्थान (प्राचीन दशपुर) से कई लेख प्रकाश में आए हैं। प्रथम कुमारगुप्त के समय का एक अभिलेख यह प्रकट करता है कि गुप्त सम्राट् की अधीनता में मालवा या उसके एक अंश पर शासकों की जो लम्बी श्रृंखला राज्य करती रही, उसका अंतिम सामंत शासक बंधुवर्मा हुआ जो दशपुर की राजधानी में शासन करता रहा। उसी नगर में यशोधर्मा के दो लेख प्राप्त हुए जिनके अनुशीलन से इसके उद्भव के अतिरिक्त वंश परंपरा का ज्ञान नहीं होता। पहला राजा बंधुवर्मा के वंश से यशोधर्मा का क्या संबंध था, यह अज्ञात है। इसके क्रिया कलापों के विषय में हमें कुछ ज्ञात नहीं। ई० स० ५२० के आसपास भारतीय राजनीति के क्षितिज पर यशोधर्मा उल्का के सदृश प्रकट होता है। उसके अभिलेख उसकी सफलताओं एवं उपलब्धियों का विवरण प्रस्तुत करते हैं। एक महान साम्राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का चित्र सामने आता है किंतु यशोधर्मा उल्का के सदृश अचानक ओझल हो जाता हैं। उसका साम्राज्य भी उसी के साथ विलीन हो जाता है। इस राजा ने गुप्त शासक बालादित्य के साथ हूणों को परास्त किया था।

मंदसोर के आसपास का प्रदेश यशोधर्मा के अधीन अवश्य था तथा मंदसोर शासन का मुख्य केन्द था। संभवतः उसकी शक्ति एवं सत्ता का अभ्युदय हूणों की दासता से उन्मुक्त करने के कारण हुआ हो। परंतु अधिक साक्ष्य के अभाव में निश्चित तथ्य पर पहुँचना कठिन है तथा विवादास्पद हो जाता है।

यशोधर्मा का पहला लेख एक प्रस्तर पर अंकित था जो मंदसोर के पास एक कुँए के सतह में चिपकाया हुआ था। प्राचीन दशपुर (मंदसोर) मध्य प्रदेश के पश्चिमी मालवा का प्रमुख नगर है। वह पाँचवीं सदी से शासन केंद्र रहा। यह लेख संस्कृत में है। उत्तरी भारत की लिपि शैली (ब्राह्मी छठी सदी) में खुदा है। चौबीसवें पद्य में इसकी तिथि का उल्लेख है जो मालव संवत् का ५८९ (=५३२ ई०) वर्ष है।

पचसु शतेषु शरदां यातेष्वेकान्ननवतिसहितेषु।
मालव-गण-स्थिति वशात् काल-ज्ञानायलिखितेषु।

यह शैव लेख है अतएव शिव की प्रार्थना से प्रारंभ हुआ है। उसने सारे विश्व को ढ़क लिया है तथा प्रकाशित भी किया है (तिरयति च स्फुटयति)।

भूतानां स्थिति-लय-समुत्पत्ति विधिषु।

यों तो हिंदू धर्म में त्रिदेवों—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की कल्पना है तथा शास्त्रों में तीन कार्यों क्रमशः उत्पत्ति, रक्षा एवं विनाश का वर्णन भी है। इस पद्य में शैव लोगों ने अपने इष्टदेव शंभू को ही तीनों कार्यों-स्थिति (रक्षा), लय (विनाश) तथा समुत्पत्ति (उत्पत्ति) को कारण माना है।

षष्ठ्या सहस्रैः सगरात्मजानां

महाभारत में इक्ष्वाकु वंश के राजा सगर के साठ हजार पुत्रों का विवरण पाया जाता है। उसने अश्वमेध किया और उसी प्रसंग में घोड़े (मेध का अश्व) को ढूढ़ने निमित्त पृथिवी खोद कर वे पाताल में गए। समुद्र के सतह तक पहुँच गए। अतः सगर के पुत्रों के कार्य से समुद्र को सागर कहा जाता है।

यशोधर्मन—मालवा का शासक। सैनिक विजयों द्वारा यशोधर्मा की सफलता के विषय में हमारा ज्ञान सीमित है। वह भी प्रमुखतया इसी अभिलेख से विदित होता है। यह दो प्रस्तर-स्तंभों पर दोहरी प्रति खुदी है। इसमें यशोधर्मा द्वारा विजित प्रदेशों का सविशेष उल्लेख नहीं है। किंतु सभी गर्वपूर्ण उक्ति है। उसने उन प्रदेशों को विजित किया 'जिनका भोग' गुप्त नरेशों ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी न किया था। यह भी यशोधर्मा के बारे में लिखा है कि लौहित्य नदी से (असम प्रदेश) महेंद्र पर्वत (पूर्वीघाट) तथा हिमालय से पश्चिमी समुद्र तक के समस्त शासक उसके चरणों में नत हो गए। इस प्रकार अभिलेख में उसकी महान विजय, शक्ति और प्रभुता का उल्लेख पाया जाता है। गुप्त नरेश नरसिंहगुप्त बालादित्य उसकी ताकत को रोक न सका। हूणों को परास्त किया। आश्चर्य यह है कि संग्राम क्षेत्र में चमत्कारपूर्ण सफलता प्राप्त कर भी यशोधर्मा स्थायी फल प्राप्त न कर सका।

श्री विष्णुवर्धन—यशोधर्मा के अधीनस्थ शासक। सातवीं पंक्ति में उसके विजय का जो विवरण है, सभी यशोधर्मा से संबंधित हैं। इस जीत के कारण 'राजाधिराज परमेश्वर' की महान् पदवी से विभूषित हुआ।

विन्ध्या पर्वत—मध्य भारत में विस्तृत पर्वत का नाम।

अरिषट्क—अरिषड वर्ग। मनुष्य के धार्मिक कर्तव्यों के विरोधी छः शत्रुओं की सूची निम्न प्रकार है—

(१) तृष्णा
(२) क्रोध
(३) लोभ
(४) व्याकुलता
(५) अहंकार
(६) ईर्ष्या

भानु गुप्ता—गुप्त नरेश भानु गुप्त की बहन। क्षत्रिय राजकुमारी का ब्राह्मण से विवाह।

भगवद्दोष—भानु गुप्ता की प्रथम संतान।

अभय दत्त—उसी वंश परंपरा का व्यक्ति।

राजस्थानीय—अधीनस्थ सामंत या राजा का प्रतिनिधि।

क्षेमेन्द्र के लोक प्रकाश में इसका अर्थ निम्न पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है—

प्रजा-पालनार्थं-उद्वहति रक्षयति च स राजस्थानीयः।

विंध्या—पर्वत नाम, पूर्वी विंध्यपर्वत।

पारिपात्र—पश्चिमी विंध्य तथा अरवली पर्वत (राजपुताना)।

रेखा—नर्वदा नदी जो अरबसागर में गिरती है। पश्चिमी भारत की प्रमुख नदियों में एक सरिता।

रेवां द्रक्ष्यस्युपल विषमें विंध्यपादे विशीर्णा

(कालिदास, मेघदूत, पूर्व २०)

सिंधो—पश्चिमी समुद्र।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मालव-गण—स्थिति वशात्काल ज्ञानाय

प्राचीन भारत में काल तथा तिथि निर्णय करने की एक परिपाटी थी जिसे संवत्सर कहते हैं। मालव नामक गणतंत्र ने जिस काल गणना का शुभारंभ किया था वह ईसा पूर्व ५७ वर्ष में चलाया गया तथा उसे मालव संवत् कहते हैं। मालवगण की स्थिति से उस काल का उल्लेख अभिलेखों के साक्ष्य पर प्रमाणित किया जाता है। मंदसोर से जितने लेख प्रकाश में आए हैं सभी में तिथि मालव संवत् में दी गई है जिससे ५७ ऋण करके ईसवी सन् का ज्ञान करते हैं। इस लेख का काल ५८९ यानी ई० स० ५३२ (५८९—५७) प्रकट होता है। साहित्यिक तथा प्रशस्तियों के आधार पर विदित होता है कि इस मालव संवत् के तीन नाम विख्यात रहे—(१) कृत संवत् (२) मालव संवत् तथा (३) विक्रम संवत् या संवत्सर। समस्त प्रमाणों के अनुशीलन से पता लगता है कि तीनों गणना का आरंभ ई० पू० ५७ वर्ष से हुआ। ऐसी परिस्थिति में यह विचारणीय विषय हो जाता है कि एक गणना के तीन विभिन्न नाम क्यों प्रयुक्त हुए ?

साधारणतया इस प्रश्न का समाधान किया गया है कि मालवा गण (मालव में निवास करने से प्रसिद्ध हुआ) का मुख्य विक्रमादित्य ई० पू० में शासन करता था। उसने शक लोगों को परास्त कर प्रदेश में सुख एवं शांति का संचार किया। दूसरे शब्दों में उसे कृतयुग (सतयुग) कहने लगे। विजय के उपलक्ष में ई० पू० ५७ में मालवगण ने संवत् प्रचलित किया जो वैभव की परिस्थिति (सतयुग) के कारण कृतयुग कहलाने लगा (कृत संवत्)। राजपुताना तथा मध्यप्रदेश की प्रशस्तियों में निम्न उद्धरणों से यह प्रमाणित होता है—

कृतयोः द्वयोः वर्ष शतयोः द्वय (नंदसा यूप लेख)

कृतेहि २००+८०—४।

कृतेहि २००+९०+५ फाल्गुण शुक्ल ५ (बड़वा यूप लेख)।

श्री मालवगणम्नाते प्रशस्ते कृत संज्ञिते (मंदसोर लेख नरवर्मन वर्ष ४६१)।

इससे प्रकट होता है कि मालव संवत् के पूर्व यह गणना कृत संवत् के नाम से विख्यात थी। कालांतर में शक शासकों ने सिन्धु, सुराष्ट्र तथा अवन्ति (मालवा) के भू-भाग पर अधिकार कर लिया। अवन्ति के उत्तर पूर्व भाग के निवासी मालवगण अपनी शक्ति एवं प्रतिष्ठा को पुनः जीवित करने में दत्तचित्त हुए। विजय के उपरांत उस गणना के साथ मालव नाम जोड़ दिया। अतएव वह (कृत संवत्) मालव संवत् के नाम से प्रसिद्ध हो गया। छठी सदी के कई लेखों में इस संवत् का प्रयोग मिलता है।

प्रथम कुमारगुप्त की मंदसोर प्रशस्ति में जिसकी तिथि ४९३ (=४३६ ई०) उल्लिखित है, 'मालवानांगण स्थित्या' शब्द का प्रयोग है। गंगधर प्रशस्ति तथा यशोधर्मा के मंदसोर लेख में तिथियों मालव संवत् में दी गई हैं। इस वाक्य में मालवगण की स्थापना के पश्चात् ५८९ वसंत ज्ञान के लिए लिखा गया। दसवीं सदी के ग्यारसपुर (मालवा प्रदेश) के लेख में "मालव काल"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मालव शब्द ही व्यवहृत हुआ है। उत्तर पश्चिम भारत के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में मौखरि नरेश ईशान वर्मा के हरहा लेख (वारावंकी जिला) में मालव संवत् का प्रयोग दीख पड़ता है।

स्थितिवशात्—मालवगण द्वारा स्थापित परंपरा के अनुसार।

उत्कीर्ण गोविन्देन—गोविन्द नामक व्यक्ति द्वारा अभिलेख अंकित किया गया। यशोधर्मा के प्रायः सभी प्रशस्तियाँ गोविन्द द्वारा खोदी गई थीं।

मंदसोर स्तंभ लेख

यशोधर्मा की प्रशस्ति दो प्रस्तर स्तंभों पर दोहरी प्रति अंकित है। यह समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तंभ लेख के अनुरूप एक प्रशस्ति है किंतु यशोधर्मा द्वारा विजित प्रदेशों का सविशेष उल्लेख नहीं है। उसी मंदसोर से यह स्तंभ लेख प्रकाश में आया है जो संस्कृत भाषा एवं छठी सदी की ब्राह्मी (उत्तरी शैली) में अंकित है। इसमें तिथि का अभाव है किंतु प्रस्तर लेख के साक्ष्य पर ई० स० ५३२-३५ के लगभग इसकी तिथि मानना प्रमाणिक होगा।

यह शैव धर्म से संबंधित लेख है जिसमें भगवान् शिव के ध्वजा (केतुः) पर देव के वाहन वृषभ की आकृति बनी है।

सम्राट्—मनुभरत अलर्क्क मांधाता—सम्राट् शब्द से ऐसे नरेश का बोध होता है जो राजसूय यज्ञ संपन्न किया हो। मनु, भरत, अलर्क तथा मांधाता (प्राचीन सम्राटों) के तुल्य जिसके व्यक्तित्व में सम्राट् शब्द शोभा पा रहा है।

गुप्त नाथैः—गुप्त नरेश जिन्होंने मालवा एवं उत्तरी भारत पर शासन किया था। प्रसिद्ध गुप्तवंश। तात्पर्य यह है कि यशोधर्मा ने विस्तृत क्षेत्र पर शासन किया, जिन प्रदेशों का उपभोग गुप्त नरेंद्रों ने भी नहीं किया था।

आज्ञा हूणाधिपानां—प्रसंगवश यह कहा गया है कि उन प्रदेशों पर हूण सम्राट् की आज्ञाएँ भी प्रवेश न पा सकी थीं। यह हूण जाति मध्य एसिया की वर्बर जाति थी जो भोजन निमित्त स्थान-स्थान पर भ्रमण किया करती थीं। कई कारणों से इन्होंने मूल स्थान को छोड़कर पश्चिम की ओर (मध्य एसिया के पश्चिम) प्रस्थान किया। एक शाखा योरप तक चली गई। पूर्वी शाखा के हूण आक्सस नदी के किनारे बस गए और आधिपत्य स्थापित किया। महाभारत में "हूणाः पारसिकै सह" वाक्य उल्लिखित है। रघुवंश में भी कालिदास ने लिखा है कि रघु ने प्रचंड पराक्रम से हूणों को मार डाला था (सर्ग ४ श्लोक ६७—८)। उसी हूण वंश के सरदार तोरमाण तथा उसके पुत्र मिहिरकुल का नाम साहित्य तथा अभिलेख में आता है। इस स्तंभ लेख में हूण से मिहिरकुल को संकेत किया गया है जिसको यशोधर्मा ने परास्त किया था। चौथे तथा छठे पद्यों में हूणों की वार्ता वर्णित है। यशोधर्मा के विजित प्रदेश (जो पहले हूणों के अधिकार में था) में हूणों की आज्ञा प्रवेश न पा सकी यानी उनका शासन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समाप्त हो गया था। उस राजा के पैरों पर मिहिरकुल ने अपना मस्तक झुकाया तथा बालों में लगी पुष्पों द्वारा उसके पैरों की पूजा की।

लोहित्य—ब्रह्मपुत्र की घाटी (असम)।

महेंद्र—पूर्वीघाट का भाग।

तुहिनशिखरिण—बर्फीले शिखर वाले पर्वत हिमालय।

पश्चिम पयोधे—पश्चिमी समुद्र, इसी प्रकार का विवरण यशोधर्मा के प्रस्तर लेख के १९वें पद्य में मिलता है।

मिहिर कुल नृपेण—हूण वंश का राजा मिहिरकुल

स्तंभः स्तंभाभिराम स्थिर भुज—यह स्तंभ यशोधर्मा के गुणों के उत्कर्ष को चंद्रमा के धरातल पर लिख रहा था। स्तंभ पृथ्वी के बाहु तुल्य था। समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति में भी यही कल्पना उल्लिखित है। २९वें पंक्ति में समुद्रगुप्त के ललित यश को सूचित करने वाला स्तंभ (प्रयाग स्तंभ) पृथ्वी का बाहु कहा गया है (इव भुवो बाहुत्य मुच्छ्रितः स्तंभः)। यशोधर्मा का स्तंभ भी उसकी कीर्ति को स्वर्ग का मार्ग निर्दिष्ट करता है।

वारूल—प्रशस्ति के लेखक कवि।

गोविंद—प्रस्तर स्तंभ पर लेख अंकित करने वाला व्यक्ति, इसी के द्वारा प्रस्तर लेख भी खोदा गया था।

हूण नरेशों की प्रशस्तियाँ

हूणों के विषय में चर्चा हो चुकी है कि पूर्वी शाखा के हूण मध्य एसिया से आकर आक्सस नदी के तट समीप अपना आधिपत्य स्थापित किया। ई० स० ४२५ के आसपास हूणों का ईरान पर आक्रमण का साक्ष्य मिलता है। उस समय ससैनियन वंशी वहराम पंचम का शासन था। उसकी योग्यता, कार्य कुशलता, दक्षता एवं शूरता के विषय में पर्याप्त वर्णन मिलता है। ससैनियन राज्य पर बारंबार चढ़ाइयाँ होती रहीं किंतु पराजित होकर भी हूण शांत न बैठे। पाँचवीं सदी के अंतिम चरण में फिरोज सिंहासन पर आया। ससैनियन शासक के साथ हूणो का युद्ध हुआ जिसमें फिरोज स्वयं मारा गया और हूण शासन स्थिर हो गया। विजय की यह स्थिति स्थायी न रह सकी। नौशेरवाँ नामक ससैनियन नरेश ने उन्हें परास्त कर डाला। हूण राजाओं का प्रयास निष्फल नहीं गया। हूण सिक्कों के परीक्षण से विदित होता है कि हूण सरदार तोरमाण ने ससैनियन सिक्कों का अनुकरण किया था जो ईरान पर विजय का द्योतक है। प्रमाणाभाव के कारण उन युद्धों के विषय में निश्चित जानकारी नहीं है।

विशेष रूप से भारत में हूणों के क्रियाकलापों के बारे में निश्चित रूप से कम ज्ञान है। भारतीय अभिलेख उनके कार्यों पर कुछ प्रकाश डालते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हूणों का सर्वप्रथम भारतीय आक्रमण स्कंदगुप्त के राज्यकाल में हुआ था। भितरी लेख के साक्ष्य पर यह निश्चित है, जिसका वर्णन प्रशस्तिकार ने काव्यमय ढंग से किया है। (हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कंपिता—वाहुबल से पृथ्वी कंपित हो उठी)। ई० स० ४५५-६७ के मध्य उन्हें पराजित होना पड़ा। स्कंदगुप्त के विजय होने पर भी उत्तर पश्चिम भारत में उनका राजनीतिक आधार बना रहा। गुप्त नरेश उनको गंगाघाटी से ही उन्मूल कर सका (श्रोत्रेषु गंगाध्वनिः)।

भारतीय अभिलेखों में तीन स्थान पर उनका विवरण पाया जाता है।

(१) भितरी स्तंभ लेख

(२) हूण नरेशों की प्रशस्तियाँ

(अ) एरण लेख (जिला सागर, मध्य प्रदेश)

(ब) कुरा लेख (पंजाब)

(स) ग्वालियर प्रशस्ति

(३) यशोधर्मा का मंदसोर लेख (मध्य प्रदेश)

इस स्थान पर हूण लेखों का विवरण प्रस्तुत किया जायगा। स्कंदगुप्त की मृत्यु पश्चात् (५०० ई० के आसपास) हूणों का गंगाघाटी में पुनः आक्रमण हुआ। हूण सरदार तोरमाण के लेख तथा सिक्कों से मध्य भारत में उसका अधिकार प्रमाणित होता है। तोरमाण का नाम (१) कुरा (पंजाब) के शिला लेख तथा (२) एरण की वराह प्रतिमा लेख में उल्लिखित है।

कुरा लेख में उसे 'तोरणाण षाहि जऊब्ल' कहा गया है। जऊब्ल सामंत की उपाधि थी। इस नरेश के अश्वराही सिक्कों पर यूनानी अक्षरों में 'षाहि जऊब्ल' लेख मिलता है। इसके विवाद में जाने की आवश्यकता नहीं किंतु यह प्रमाणित है कि तोरमाण सामंत अवस्था के पश्चात् हूण सम्राट् हो गया। उसके सिक्कों पर भी 'तोर' अंकित है तथा उसकी मुद्राएँ हूण शासन की प्रगति एवं फैलाव के द्योतक हैं। गुप्त सम्राट् बुधगुप्त के सामंत के (एरण लेख में महाराज मातृविष्णु का भाई) धन्य विष्णु तोरमाण के प्रथम राज्य वर्ष में उसकी अधीनता स्वीकार कर चुका था जो एरण वराह प्रतिमा लेख से प्रमाणित होता है। अतः इस साक्ष्य पर यह निश्चित हो जाता है कि ५०० ई० के समीप तोरमाण के नेतृत्व में हूणो ने एरण को जीत लिया था। एरण वराह प्रतिमा वाला लेख भगवान् वराह की स्तुति से प्रारंभ होता है—

वर्ष प्रथमे महाराजाधिराज श्री तोरमाण प्रशासति—इस संस्कृत लेख में तोरमाण के राज्य वर्ष का उल्लेख है। इसकी तिथि समकालीनता के आधार पर ज्ञात होती है। एरण पर ५०० ई० के पूर्व बुधगुप्त का शासन था। तत्पश्चात् तोरमाण का अधिकार हो गया। अतएव इसकी तिथि ई० स० ५०० के समीप विदित होती है (वर्ष—५०१ ई०)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मातृविष्णु तथा धन्य विष्णु—बुधगुप्त के एरण प्रशस्ति गु० स० १६५ (=४८५) में इन दोनों अधीनस्थ शासकों का नामोल्लेख है। अतएव यह प्रकट होता है कि एरण प्रदेश पर हूण का अधिकार हो जाने पर दोनों सामंतों ने तोरमाण की अधीनता स्वीकार कर लीं।

भगवतो वराह मूर्तेः—विष्णु के दस अवतारों में वराह अवतार को तीसरा स्थान दिया गया है। (मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह, वामन, राम, परशुराम, राम (दाशरथि), बुद्ध एवं कल्कि)।

नारायणस्य शिला प्रासाद—भगवान् नारायण (विष्णु) का मंदिर निर्मित किया गया जो वराह नाम से एरण में प्रसिद्ध है।

ऐरिकिण—एरण का प्राचीन नाम

कुरा शिला लेख—तोरमाण का दूसरा प्रमुख शिला लेख पंजाब में साल्ट पर्वत के समीप कुरा नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। प्राकृत भाषा से प्रभावित संस्कृत में यह लेख अंकित है तथा छठी सदी की उत्तर भारत की लिपि (कीलनुमा ब्राह्मी) में खुदा है। संभवतः एरण लेख से पूर्व ही यह अंकित हुआ होगा। अतएव ई० स० ५०० के समीप तिथि निर्धारित की जाती है। तिथि को 'अभिवर्धमान राज्ये ... संवत्सरे' वाक्य द्वारा व्यक्त किया गया है। इसमें बौद्ध बिहार (भिक्षुओं के निवास) के निर्माण का वर्णन है। तोरमाण की सामंत उपाधि जऊ्ल दो स्थानों पर उल्लिखित है।

भगवतो बुद्धस्य देवातिदेवस्य—बौद्धमत की तीन शाखाओं में प्रथम हीनयान में बुद्ध को महामानव समझते थे। ईसवी सन् के आरंभ से महायान का उदय हुआ। इसकी विशेषता यह थी कि संस्कृत भाषा के प्रयोग के साथ बुद्ध को देव का स्थान दिया गया। प्रतिमा-पूजन की परिपाटी चली। इसी कारण अभिलेखों में बुद्ध नाम के साथ भगवान् शब्द जोड़ दिया गया। उस काल में भगवान विष्णु की पूजा का विशेष प्रचलन था तथा उसी भागवत धर्म के प्रभाव से महायान का प्रादुर्भाव हुआ। विष्णु देवता मानकर पूजित होते रहे। अतएव बौद्ध लोगों ने भगवान बुद्ध को 'देवतादिव' उल्लेख किया। अपने मत की प्रधानता दिखलाई।

दशबल बलिन :—भगवान बुद्ध के लिए प्रयुक्त इस नामकरण की विशेषता यह है कि बुद्ध द्वारा अष्टांगिक मार्ग (आठ आदर्श मार्ग) का प्रतिपादन किया गया था। इसके अतिरिक्त बद्ध ने मार नामक राक्षस (विषय वासना) पर विजय प्राप्त किया जिसका प्रदर्शन सांची के तोरण पर किया गया है। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् बुद्ध ने सारनाथ में धर्मचक्र परिवर्तन' (प्रथम उपदेश) किया। इस प्रकार दस प्रधान कर्मों के कारण उन्हें "दशबल बलिनः" कहा गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अष्टांगिक मार्ग निम्म प्रकार है—

१. सम्म दिट्ठि—सम्यक् दृष्टि
२. सम्मा संकप्पो—सम्यक् संकल्प
३. सम्मा वाचा—सम्यक् वचन
४. सम्मा कम्मन्तो—सम्यक् कर्म
५. सम्मा आजिवो—सम्यक् जीवन
६. सम्मा वायाम—सम्यक् व्यापार
७. सम्मा सति—सम्यक् स्मरण (विचार)
८. सम्मा समाधि—सम्यक् ध्यान (तपस्या)

चतुर्वैशारद—चार विश्वसनीय कार्य-बुद्ध को चार विषय का भाव जाता रहा— (अ) सर्वज्ञ, (ब) बिषय वासना से विरक्ति, (स) धर्म (जीवन) का उपदेश, (द) निर्वाणमार्ग का ज्ञान,

चतुः प्रति संभिदा—अरहत के पारलौकिक विज्ञान का विश्लेषण

अष्टादश वेणी काद्भुत—बुद्ध का अठारह प्रमुख दशाएं जिनके कारण वह मानव की त्रुटियों (दोषों) से पृथक समझा जाता है।

बुद्ध प्रमुख—बौद्ध विहार जिसके प्रमुख व्यक्ति बुद्ध ही थे।

भिक्षुसंघ —भिक्षुओं का निवास स्थान—विहार।

जंबुद्वीप—यह शब्द भारत वर्ष के लिए प्रयुक्त है। भारत वर्ष राजनीतिक विचार का प्रतिपादन करता है किंतु जंबुद्वीप से भौगोलिक परिस्थिति का परिचय होता है। महाभारत (भा पर्व २८) में छः के बाद सातद्वीपो में जंबुद्वीप नामोल्लेख है। यह द्वीप समस्त भूमंडल के मध्य स्थित बतलाया गया है। धर्मग्रंथों में 'जंबुद्वीपे भारत खंडे' वाक्य का प्रयोग हुआ है।

मिहिरकुल का ग्वालियर लेख—मध्य भारत में ग्वालियर से प्राप्त। संस्कृत तथा छठी सदी की ब्राह्मी में अंकित है। तिथि के निर्णय करने में अन्य साक्ष्य के आधार पर ई० स० ५१५ का काल निश्चित किया गया है। स्कंदगुप्त की भितरी स्तंभ लेख में हूणों के पराजय का वर्णन है। उसके पश्चात् भानुगुप्त के हाथों ५१० ई० में दूसरा पराजय हुआ। इस प्रकार ५१० ई० तक तोरमाण हूण सरदार का शासन समाप्त हो गया होगा। कुछ काल के लिए हूण प्रशस्ति अवरुद्ध हो गई। मिहिरकुल ने अपने पिता की आकांक्षा को पूर्ण करने में सफल प्रयत्न किया। ग्वालियर प्रशस्ति के अनुशीलन से प्रकट होता है कि १५ वें वर्ष में मिहिरकुल राज्य कर रहा था—
"अभिवर्द्धमान राज्ये पंचदशाब्दे" इस प्रकार उस का आधिपत्य प्रायः ५३५ ई० तक स्वीकृत हो चुका था। मिहिरकुल के विषय में चीनी यात्री ह्वेनसांग एक लम्बी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहानी सुनाता है। मंदसोर के लेख में यशोधर्मा की गर्वोक्ति है कि विख्यात राजा मिहिरकुल भी उसके चरणों में सम्मानोपहार लाया था। उसकी सहायता से तथा बालादित्य की दृढ़ता के कारण हूण नरेश पराजित हुआ। इस विजय के कारण बालादित्य ने गुप्त राज्य को मिहिरकुल के अत्याचारों तथा बुद्ध धर्म पर विध्वंसक नीति से बचा लिया।

ग्वालियर लेख से मिहिरकुल के १५ वें वर्ष की स्थिति का परिज्ञान हो जाता है। सूर्य की प्रार्थना से प्रारंभ होता है (भुवन भवन दीपः)। तोरमाण सूर्य का उपासक था, अतएव उसने पुत्र का नाम 'मिहर' रखा। मूलस्थान (मुल्तान पंजाब) में उसने एक विशाल सूर्य मंदिर का निर्माण कराया था। मुसलमान सुल्तान के आय का वह मंदिर बड़ा श्रोत था। भारत के कोने कोने से हिंदू पूजा निमित्त वहाँ जाया करते थे।

श्री तोर—अक्षर भंग होने से तोर पढ़ा जा सका है। पूरा नाम तोरमाण। तोरमाण के सिक्कों पर भी तोर अंकित है।

मिहिरकुल—तोरमाण का पुत्र-बालादित्य तथा यशोधर्मा द्वारा पराजित। बौद्ध धर्म विरोधी।

पशुपति—शैवमत की एक शाखा लकुलीश इसके संस्थापक कहे जाते हैं। मिहिरकुल भगवान् शिव का पुजारी था। उसके सिक्कों पर शिव के बाहन नंदी का चित्र है तथा निचले अंश पर "जयतु वृषः" अंकित है। इससे वह शिव का भक्त प्रमाणित हो जाता है।

पंचशाब्दे—पंद्रहवें वर्ष। मध्य भारत में मिहिरकुल १५ वर्षों तक शासन अवश्य करता रहा (प्रायः ई० स० ५१५—५३५ तक)।

गोपाह्वय—गोपगिरि या ग्वालियर का प्राचीन नाम।

भानो प्रासाद—सूर्य मंदिर का निर्माण।

केशव—कवि नाम, प्रशस्ति का रचयिता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभिलेखों

का

हिंदी अनुवाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति

(१) जो.....अपने कुल वालों से.....जिसका।

(२) जिसका।

(३) जिसने.....अपने धनुष्टंकार से.....छिन्न भिन्न किया.....विध्वंस किया.....फैलावा.....।

(४, ५) जिसका मन विद्वानों के सत्संग-सुख का व्यसनी था, जो शास्त्र के तत्वार्थ का समर्थन करनेवाला था;.....सुदृढ़ता से स्थित।

(६) जो सत्कविता और लक्ष्मी के विरोधों को विद्वानों के गुणित गुणों को आज्ञा से दबा कर (अब भी) बहुतेरी स्फुट कविता से (मिले हुए) कीर्ति-राज्य को भोग रहा है।

(७, ८) जिसको उसके समान कुलवाले (ईर्ष्या से) म्लानमुखों से देखते थे, जिसके सभासद् हर्ष से उच्छ्वसित हो रहे थे, जिसके पिता ने उसको रोमांचित होकर यह कह कर गले लगाया कि तुम सचमुच आर्य हो और अपने चित्त का भाव प्रकट करके स्नेह से चारों ओर घूमती हुई आँसुओं से भरी, तत्व को पहचाननेवाली दृष्टि से देखकर कहा कि इस अखिल पृथ्वी का इस प्रकार पालन करो।

(९) जिसके अनेक अमानुष कर्मों को देखकर—कुछ लोग अत्यन्त चाव से आस्वादन कर अत्यंत सुख से प्रफुल्लित होते थे।

(१०) और कुछ लोग उसके प्रताप से संतप्त होकर उसकी शरण में आकर उसको प्रणाम करते थे .....।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(११) और अपकार करनेवाले जिससे संग्रामों में सदा विजित होते थे..... .....कल और कल.....मान।

(१२) आनन्द से फूले हुए और बहुत से रस और स्नेह के साथ उत्फुल्लमन से..... पश्चाताप करते हुए.....वसंत में।

(१३) जिसने सीमा से बढ़े हुए अपने अकेले ही बाहुबल से अयुच्त और नागसेन को क्षण में जड़ से उखाड़ दिया.....।

(१४) जिसने कोटकुल में जो उत्पन्न हुआ था उसको अपनी सेना से पकड़वा लिया और पुष्प नाम के नगर को खेल में स्वाधीन कर लिया, जब कि सूर्य .....तट.....।

(१५) (जिसके विषय में यह कहा जाता है) धर्म के बाँधे हुए परकोटे के समान, जिसकी कीर्ति चन्द्रमा की किरणों की तरह निर्मल और चारों ओर छिटक रही थी, जिसकी विद्वत्ता शास्त्र तक को पहुँच जाती थी, और.....।

(१६) जिनमें सूत्रों (वेद मंत्रों) का मार्ग अपना अध्येय बना लिया था और उसकी ऐसी कविता थी जो कवियों से मति के विभव का उत्सारण (प्रकाश) करती थी।..... ऐसा कौन गुण था जो उनमें न था, गुण और प्रतिभा के समझनेवाले विद्वानों का वह अकेला ध्यानपात्र था।

(१७-१८) विविध सैकड़ों समरों में उतरने में दक्ष, अपने भुजबल का पराक्रम ही जिसका अकेला साथी था, जो पराक्रम के लिए विख्यात था, और जिसका फरसे, वाण, शंकु, शक्ति, प्रास, तलवार,तोमर, भिंदिपाल, नाराच, वैस्तिक आदि शस्त्रों के सैकड़ों घावों से सुशोभित और अतिशय सुंदर शरीर था।

(१९-२०) और जिसका महाभाग्य, कोशल के राजा महेन्द्र, महाकान्तार के व्याघ्रराज, कैरल के मंत्रराज, पिष्टपुर के महेन्द्र गिरि, कौट्टूर के स्वामिदत्त, एरंडपल्ल के दमन, कांची के विष्णुगोप, अवमुक्त के नीलराज, वेंगी के हस्तिवर्म्मा, पाल्लक के उग्रसेन, देवराष्ट्र के कुवेर और कुस्थलपुर के धनंजय आदि सारे दक्षिणापथ के राजाओं के पकड़ने और फिर उन्हें मुक्त करने के अनुग्रह से उत्पन्न हुए प्रताप के साथ मिला हुआ था।

(२१) और जिसने रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चन्द्रवर्मा, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युत, नंदी, बलवर्मा आदि आर्यावर्त्त के अनेक राजाओं को बलपूर्वक नष्टकर अपना प्रभाव बढ़ाया और सारे जंगल के राजाओं को अपना चाकर बनाया।

(२२) जिसका प्रचंड शासन, समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल, कर्तृपुर आदि सीमांत प्रदेशों के राजा और मालव, आर्जुनायन; यौधेय, माद्रक।

(२३-२५) आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक, खर्परिक आदि सब जातियाँ, सब प्रकार के कर देकर, आज्ञा मानकर और प्रणाम करने के लिए आज्ञा पूरा करते थे, जिसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शांत यश, युद्ध में भ्रष्ट, राज्य से निकाले हुए अनेक राजवंशों को पुनः प्रतिष्ठित करने से भुवन में फैला हुआ था, और जिसको देवपुत्र शाहि शाहानुशाहि शक मुरुंड तथा सिंहल आदि सारे द्वीपों के निवासी आत्म-निवेदन किये हुए थे, अपनी कन्याएँ भेंट में देते थे; अपने विनय व भुक्ति के शासन के लिए गरुड़ की राजमुद्रा से अंकित आज्ञापत्र माँगते थे। इस प्रकार की सेवाओं से जिसने अपने बाहुबल के प्रताप से समस्त पृथ्वी को बाँध दिया था, जिसका पृथ्वी में कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं था। जिसने सैकड़ों सच्चरित्रों से अलंकृत, अपने अनेक गुण-गणों के उद्रेक से अन्य राजाओं की कीर्तियों को अपने चरण तल से दबा दिया था, जो अचिंत्य पुरुष की भाँति साधु के उदय और असाधु के प्रलय का कारण था, जिसका कोमल हृदय भक्ति और प्रणतिमात्र से वंश हो जाता था, जिसने लाखों गौएँ दान की थीं।

(२६) जिसका मन कृपण, दीन, अनाथ, आतुरजनों के उद्धार और दीक्षा आदि में लगा रहता था, जो लोक के अनुग्रह का साक्षात् जाज्वल्यमान स्वरूप था, जो कुबेर, वरुण, इन्द्र और यम के समान था, जिसके मन अपने भुजबल से जीते हुए राजाओं के विभव को वापिस देने में लगे हुए थे।

(२७) जिसने अपने तीक्ष्ण और विदग्ध बुद्धि और संगीत-कला के ज्ञान और प्रयोग से इन्द्र के गुरु (काश्यप), तुम्बुरु, नारद आदि को लज्जित किया था, जिसने विद्वानों को जीविका देने योग्य अनेक काव्य-कृतियों से अपना कविराज पद प्रतिष्ठित किया था, जिसके अनेक अद्भुत उदार चरित्र चिरकाल तक स्तुति करने के योग्य थे।

(२८) जो लोक नियमों के अनुष्ठान और पालन करने के लिए ही मनुष्यरूप था, किन्तु लोक में रहनेवाला देवता ही था। जो महाराज श्रीगुप्त का प्रपौत्र, महाराज घटोत्कच का पौत्र और महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त का पुत्र था।

(२९) जो लिच्छिवि-कुल का दौहित्र था, महादेवी कुमारदेवी से उत्पन्न था उस महाराजाधिराज समुद्रगुप्त की सारी पृथ्वी के विजय-जनित अभ्युदय से संसार व्याप्त है। तथा यहाँ से इन्द्र के भवनों तक पहुँचने में ललित और सुखमय गति रखनेवाली कीर्ति को बतलानेवाला ऊँचा स्तम्भ पृथ्वी की बाहु के समान स्थिति है।

(३०) जिसका यश उसके दान, भुज-विक्रम, प्रज्ञा और शास्त्र-वाक्य के उदय से ऊपर अनेक मार्ग से बढ़ता हुआ।

(३१) तीनों भुवनों को पवित्र करता है। पशुपति (महादेव) की जटाजूट को अंतर्गुहा में रुककर वेग से निकलते और बहते हुए गंगा जल की भाँति।

(३२-३४) यह काव्य उन्हीं स्वामी के चरणों के दास के, जिनके समीप रहने के अनुग्रह से, जिसकी मति उन्मीलित हो गई है, महादण्डनायक ध्रुवभूति के पुत्र (खाद्यटपाकिक) सांधिविग्रहिक, कुमारामात्य महादंडनायक हरिषेण का रचा हुआ सब प्राणियों के हित और सुख के लिए हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(३५) परम भट्टारक के चरणों का ध्यान करनेवाले महादंडनायक तिलभट्ट ने इसको अनुष्ठित किया।

एरण शिलालेख (समुद्रगुप्त)

(प्रथम से छठी पंक्ति तक नष्ट हो गया है)

(७) सुवर्णदान के क्षेत्र में पृथु तथा राघव आदि नरेश पीछे छुट चुके थे।

(९-१२) समुद्रगुप्त प्रसन्न होने पर कुबेर तथा क्रोधित होने पर यमराज के समान है। अपने पराक्रम एवं राजनय द्वारा अपने गुणों को सर्वदा चरितार्थ करता है। जिसके द्वारा पृथिवी के समस्त शासक गण उन्मूलित तथा राजकीय वैभव से वंचित हो चुके थे।

(१३-२०) भक्ति, विनम्रता तथा पराक्रम आदि विशिष्ट गुणों के कारण पिता द्वारा अभिषेक तथा राजकीय वैभव से सम्मानित तथा पुरस्कृत हुआ था। इस नरेश (समुद्रगुप्त) के समान पराक्रम में दूसरा राजा विश्व में समानता न कर सकता था।

जिसकी पत्नी का नाम दत्त देवी था। जिसका शुक्ल उस पराक्रमी ने अपने पौरुष द्वारा प्रदान किया था। जो हस्ति, अश्व, रत्न, धनधान्य एवं समृद्धि से विभूषित था। जिसके महल में अनेक पुत्र तथा पौत्र प्रमुदित थे। जिसकी कुलबधु पति परायणा तथा गुण संपन्ना थीं।

(२१-२६) युद्ध में उसका अर्जित कर्म उसके शौर्य द्वारा अनुप्राणित था। भूमंडल में उसका यश दूर-दूर तक विस्तृत हो रहा था। उसके पराक्रम को स्मरण कर शत्रु संत्रस्त हो गए थे।

अपने भोगकर ऐरिकिण प्रदेश में अपने यश की वृद्धि निमित्त उसने इस स्तंभ की स्थापना की।

समुद्रगुप्त का गया ताम्रपत्र

ओ० स्वस्ति। अयोध्या के विजय सैनिक शिविर से, जहाँ नौ-सेना, हस्ति तथा अश्व समूह भरा था, परम भागवत महाराजाधिराज समुद्रगुप्त, जो समस्त शत्रुओं का विजेता था, समान शक्तिशाली कोई भी शत्रु उसका संसार में न था, जिसका यश चारों समुद्रतट तक व्याप्त था, जो कुबेर, वरुण, इंद्र तथा यमराज के सदृश था, जो कृतांत के परशु समान था जिसने धर्मानुसार उपार्जित सहस्रों गाय तथा स्वर्ण दान किया था, जिसने अश्वमेध को पुनः प्रतिष्ठित किया, जो महाराजा श्री गुप्त का प्रपौत्र, महाराजा श्री घटोत्कच का पौत्र, महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त एवं लिच्छवि राजकुमारी महादेवी से उत्पन्न पुत्र था, गया विषय के अंतर्गत रैवतिका ग्राम तथा वलत्कैशज ग्राम के ब्राह्मणों से निवेदन किया। यह आपको विदित होगा कि अपनी तथा माता पिता के पुण्य वृद्धि के निमित्त यह ग्राम उपरिकर सहित भारद्वाज गोत्रवाले तथा बहवृच शाखा के पाठक गोपस्वामि नामक ब्राह्मण तथा ब्राह्मचारी को दान में दिया गया। अतः आप सबका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ध्यान उस ओर होना चाहिए तथा आज्ञा का पालन करना चाहिए। ग्राम के कर तथा हिरण्य (नकद) उन्हीं को देना चाहिए। इस काल से भूमिकर देनेवाला कृषक, कलाकार तथा अन्य ग्राम निवासी अग्रहार (दानभूमि) में प्रवेश न करें। अन्यथा दानभूमि के नियमों का उलंघन होगा।

वर्ष ९ वैशाख मास दसम दिवस दूत गोपस्वामि, जो ग्रामीण अभिलेख के संग्रहाध्यक्ष (अक्षपटलिक) थे, के द्वारा लिखा गया।

नोट :—नालंदा ताम्रपत्र का विषय समान रूप में उल्लिखित है। केवल अंतिम पंक्ति में विभेद है—संवत् ५ माघ दिवस २ में निबंधित (रजिस्ट्री) हुआ। ग्राम के अक्षपटलिक, महापीलूपति महाबलाधिकृत गोपस्वामि के आदेश से लिखा गया। कुमार श्री चंद्रगुप्त।

ग्रामो का नाम

ताविगुण्य विषय का भद्रपुरक ग्राम तथा क्रिमिला विषय में पूर्णना ग्राम दान में दिए गए।

अक्षपटलाधिकृत—अक्षपटल (—लेखागार) का अधिकारी।

महाबलाधिकृत—सेना का सर्वोच्च अधिकारी (जिसे अंग्रेजी में फील्ड मार्शल कहते हैं)।

महापीलूपति—हस्ति सेना का मुख्य पदाधिकारी।

रामगुप्त के लेख

महाराजाधिराज श्री रामगुप्त के द्वारा भगवान अर्हंत चंद्रप्रभ की इस प्रतिमा की स्थापना की गई। उन्होंने चेलुक्षमण के उपदेश के कारण इसका निर्माण कराया। चेलुक्षमण गोलक्यांति का पुत्र तथा सर्प्पसेन श्रमण का शिष्य था। वह आचार्य पाणिपात्रिक चंद्रक्षमणाचार्य श्रमण-श्रमण का प्रशिष्य था।

(२)

महाराजाधिराज श्री रामगुप्त के द्वारा भगवान अर्हंत पुष्पदंत की इस प्रतिमा की स्थापना की गई। उन्होंने पाणिपात्रिक चंद्रक्षमण आचार्य के प्रशिष्य.....।

(३)

महाराजाधिराज रामगुप्त के द्वारा भगवान् अर्हंत चंद्रप्रभ की प्रतिमा की स्थापना की गई थी। उन्होंने पाणिपात्रिक (जिसका पाणि ही पात्र है) के.....उपदेश.....।

चंद्र का मेहरौली का लौहस्तंभ लेख

(१) जिसने शत्रुओं को परास्त कर यश प्राप्त किया अथवा जिसके भुजाओं पर तलवार से यश लिखे गये हैं; वंग के युद्ध में जिसने अपने पराक्रम से शत्रुओं का पीछा किया, जो संगठित रूप से उसपर आक्रमण करने के लिए उद्यत थे; जिसने सिंधु के सात मुखों को पारकर युद्ध में वाहलीकों पर विजय प्राप्त किया तथा जिसकी शक्ति से दक्षिणी सागर सुगंधित हो गये हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२) उसने अतुलनीय उत्साह तथा तेज से शत्रुओं को संपूर्णतः परास्त किया जैसे किसी वन में अग्नि की ज्वाला प्रज्वलित होती हो, यद्यपि राजा ने संसार को त्याग दिया था और अपने सुंदर तथा दिव्य कर्मों से स्वर्ग में निवास करता था, तो भी यह प्रकट होता है कि वह राजा अभी जीवित है क्योंकि पृथ्वी पर उसका यश अद्यावधि वर्तमान है।

(३) जिस राजा ने अपने बाहुबल से एक छत्र राज्य स्थापित किया, सार्वभौम नरेश बना तथा अधिक काल तक शासन किया; जिसका नाम चंद्र है और उसके मुख की शोभा चंद्रमा की छटा समान है, जिसकी विष्णु भगवान् पर अटल भक्ति है; उस नरेश द्वारा विष्णुपद नामक पर्वत पर विष्णुध्वज स्थापित किया गया।

द्वितीय चंद्रगुप्त का उदयगिरि गुहा लेख

स्वस्ति। वर्ष ८२ आषाढ़ सुदी एकादशी (११वां दिन) सनकानिक महाराज ने यह धार्मिक रूप में दान दिया। उनके पिता का नाम छगलग तथा पितामह विष्णुदास थे जो परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त के आज्ञाकारी थे।

मथुरा लेख

सब राजाओं का विनाश करनेवाला, जिसका रथ पृथिवी पर निर्विघ्न चलता है, उसका कोई प्रतिद्वंदी नहीं है, जिसका यश चारों समुद्र तक व्याप्त है, जो कुवेर, वरुण, इंद्र तथा यमराज के समान है जो कृतांत का परशु सदृश है, जिसने धार्मिक मार्ग से उपार्जित सहस्रो गाय तथा स्वर्ण दान किया है, जिसने प्रसुप्त अश्वमेध को पुनः प्रतिष्ठित किया, महाराजा श्रीगुप्त का प्रपौत्र, महाराज श्री घटोत्कच का पौत्र, महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त का पुत्र, लिच्छवि राजकुमारी कुमारदेवी से उत्पन्न महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्त के पौत्र उसकी पत्नी दत्तदेवी से उत्पन्न परम भागवत महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त ने.....।

(आगे का भाग नष्ट हो गया है)

सांची वेदिका लेख

सिद्धं। काकनादवोट महाविहार में निवास करनेवाले आर्य संघ के श्रमण समूह के लिए, जो शील, समाधि, प्रज्ञा गुणों से संपन्न हैं, जिन्होंने इंद्रियों को वश में कर लिया है, जो चारों दिशाओं के पवित्र स्थान से आकर (महाविहार में) बस गए हैं, जो पंचमंडली (पंच) के स्वरूप में हैं, उन्हें उदान के पुत्र अम्रकार्दव ने ईश्वरवासक नामक ग्राम को तथा पचीस दीनार दान दिया। वह ग्राम मेज, शरभंग तथा अम्ररात राजकुल से क्रय किया गया। अम्रकार्दव महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त के दया तथा अनुग्रह द्वारा पोषित थे। सत्पुरुषों तथा सद्भावना भरे लोगों के साथ जीवन-यापन करता था। अनेकों युद्धों में यश प्राप्त कर चुका था और सुकुनि देश के अंतर्गत नष्टी नगर का निवासी था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उस दीनार (पचीस) के आधे सूद से पाँच भिक्षुओं को शाश्वतरूप से भोजन दिया जाय तथा रत्नगृह में (स्तूप के समीप) दीपक जला करे। महाराजाधिराज चंद्रगुप्त के पुण्य लाभ के निमित्त जिसे 'देवराज' भी कहा जाता है। सूद के दूसरे भाग से भी पाँच भिक्षुओं को भोजन का प्रबंध हो तथा रत्नगृह में दीपक जलाया जावे। जो इस दान में विघ्न पैदा करेगा उसे गो, ब्राह्मण की हत्या का दोष लगेगा तथा पंचमहापातक का दोष होगा।

वर्ष ९३ भाद्रपद ४।

उदयगिरि गुहा लेख

सिद्धि की प्राप्ति हो। अपनी ज्योति के कारण वह सूर्य की भांति तेजस्वी था। भुमंडल में (यश) व्याप्त था। उसका नाम चंद्रगुप्त था।

अपने विक्रम द्वारा क्रय मूल्य देकर अन्य पार्थिवों को खरीद लिया था तथा अपनी दासता मनाने के लिए उन्हें बाध्य किया।

३-४. वह राजाओं में उज्ज्वल एवं अचिंत्य कर्मों वाला था। उस सम्राट् का सांधि विग्रहिक सचिव नियुक्त हुआ। शाव कुलनाम वीरसेन कौत्स गोत्री ब्राह्मण वंशपरंपरा के आधार पर मंत्रीपद प्राप्त किया था। वह पाटलिपुत्र का निवासी कवि था। व्याकरण, दर्शन तथा राजनीति विषयों का ज्ञाता था।

५. संपूर्ण पृथ्वी के विजय की अभिलाषा लेकर वह (वीरसेन) राजा (चंद्रगुप्त) के साथ वहाँ (उदयगिरि) आया था। भगवान् शंभु के प्रति भक्ति के कारण उसने उस गुहा का निर्माण कराया।

मथुरा स्तंभ लेख

भट्टारक महाराजाधिराज समुद्रगुप्त के गुणी पुत्र भट्टारक महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त के विजयी शासन के ६१ वर्ष प्रथम आषाढ़ शुक्लपक्ष पंचमी के दिन

उस तिथि को गुरु के पवित्र स्थान (गुर्व्वायतन) में उपमितेश्वर तथा कपिलेश्वर शिवलिंग (गुरु की आकृति सहित) संस्थापित किया। जो उदिताचार्य भगवत कुशिक के दशवें शिष्य थे। भगवत पराशर से चौथे, पवित्रात्मा भगवत् उपमित के शिष्य प्रशिष्य थे। भगवत् कपिल के पवित्र शिष्य रहे। गुरुजनों की कीर्ति तथा आत्म यानी स्वपुण्य वृद्धि के निमित्त स्थापित किया था।

यह हमारे यश निमित्त उत्कीर्ण किया गया ताकि माहेश्वर के पुजारी प्रार्थना कर सके। आचार्यों के लिए भी संबोधित करने के निमित्त। गुरुओं को अपना समझकर उनकी पूजा, भक्ति तथा समादर करना चाहिए। इसी कारण यह प्रार्थना की गई। जो व्यक्ति इस स्मारक को नष्ट करेगा या लेख को हानि पहुँचावेगा, उसे पाँच महापातक तथा उपपातक होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पारलौकिक दंड की सदा विजय होती है जिसका कठोर दंड होता है और अग्रणी नायक के रूप में है।

गढ़वा लेख

परमभागवत महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त के राज्य वर्ष में.....दिवस

.....मातृदास शासन कर रहा था। पुण्य अभिवृद्धि के लिए ब्राह्मणों के लिए शाश्वत सत्र निमित्त दस दीनार दान में दिया।

जो कोई इस धार्मिक कार्य में विघ्न पैदा करेगा वह पंच महापातक का भागी होगा।

दूसरा अंश

परमभागवत महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त के ८८वें राज्य वर्ष में.....अमुक दिवस से पूर्व

पाटलिपुत्र निवासी गृहस्थ की पत्नी धार्मिक पुण्य संचय निमित्त ब्राह्मणों के सत्र लिए दस दीनार दान में दिया। दान के धर्म कार्य में विघ्न कर्त्ता पंच महापातक (पाँच पाप) का भागी होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम कुमारगुप्त के लेख

विलसद लेख

महाराजा श्री गुप्त के प्रपौत्र, महाराज श्री घटोत्कच का पौत्र महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त का पुत्र लिच्छवि राजकुमारी कुमार देवी से उत्पन्न महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्त, जिसने सभी शत्रुओं पर विजय पाई है, पृथिवी पर जिसका कोई विरोधी न हो, चारों समुद्र तक जिसकी कीर्ति विस्तृत हो; अश्वमेघ को पुनः स्थापित करनेवाला, कुबेर, वरुण, इंद्र, यमराज के समान वैभव एवं शक्तिवाला तथा यमराज के परशु के सदृश कठोर। उस (समुद्र) का पुत्र महादेवी दत्त देवी से उत्पन्न परम भागवत महाराजाधिराज का उत्तराधिकारी महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त के ९६वें राज्य वर्ष दिवस पूर्व में इस स्वामि महासेन के मंदिर पर, जो भगवत ब्राह्मण्य देव है और तीन लोक के तेज से आच्छादित है, जो निवास करता है.....यह कार्य (मंदिर निर्माण) कृत युग के आदर्श सत्य मार्गानुगामी ध्रुवशर्मन ने (महान् कार्य) संपन्न किया।

उस (मंदिर) में साधु निवास करते तथा उसका तोरण निर्मित हुआ था। स्वर्ग सोपान (सीढ़ी) जो मोतियों की माला सदृश (नाम कौवेर छंद) ज्ञात होता, तैयार किया गया जो स्फटिक की तरह चमक रहा था।

उस प्रासाद में भव्य, सभी गुणों से युक्त धर्म्म सत्र (धार्मिक भिक्षा गृह) तैयार किया गया, धार्मिक भावना युक्त धार्मिक गुणों में ही रत रहनेबाला शर्मन इसका भोग करें।

इस उच्च, स्थिर तथा वर स्तंभ को ध्रुव शर्मन ने तैयार कराया। जिन्होंने पृथिवी पर शुभ तथा अमृत (अमर रहनेवाला) कीर्ति प्राप्त की। सभी व्यक्तियों द्वारा अधिक सम्मानित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। ऐसा कोई व्यक्ति तथा जो उनकी (देव की) पूजा न करे। यह सभी पूर्वसंचित विभूति के कारण साध्य था।

गढ़वा लेख (९८)

भगवान की जय। परमभागवत महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त के राज्य के ९८ वर्ष···· दिवस पूर्व।

स्व पुण्य अभिवृद्धि के लिए स्थायी सत्र (भिक्षा गृह) की स्थापना का बारह दीनार दान में दिया।

गढ़वा लेख

भगवान् की जय। परमभागवत महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त के राज्य में संवत्सर ·····

दिवस १० इससे पूर्व ही

सत्र के कार्य के लिए दस दीनार दान में दिया। और भिक्षा गृह में तीन दीनार ·····।

जो कोई इसमें विघ्न उत्पन्न करेगा, उसे पंचपातक का भागी होगा।

गोविन्द लक्ष्मण·····।

उदयगिरि गुहा लेख

सिद्ध लोगों को नमस्कार। गुप्त वंश के श्रेष्ठ राजा के समृद्ध राज्य में, जो वैभव तथा गुणों के सागर से पूर्ण है; एक सौ छः वर्ष शुभ कार्तिक मास कृष्ण पक्ष की पंचमी के समय।

३. जिसने शत्रुओं पर विजय पाया तथा इंद्रियों को जीत लिया है उस जिनवर पार्श्वनाथ की मूर्ति गुहा मुख में निर्मित की गई। उनके सर पर सर्प का फन सुशोभित है।

४. वह भिक्षु आचार्य गोशर्मन के शिष्य, जो आचार्य भद्र के कुल के भूषण थे। पृथिवी पर पद्मावती से उत्पन्न संधिल सैनिक अश्वपति के पुत्र के नाम से विख्यात थे। शत्रुओं द्वारा अपराजित रिपुघ्न नामवाले, स्वयं नामधारी शंकर शब्द से विधान के अनुरूप तथा मुनि के आदर्श मार्ग गामी थे।

उत्तरी प्रदेश के मध्य देश में उत्पन्न हुए, जो उत्तर कुरु देश के सदृश रहा था।

वह अत्यंत बुद्धिमान था, जो कुछ धार्मिक कार्य था, उसे स्थगित किया ताकि धर्म विरोधी शत्रुओं का विनाश हो सके।

घानाइदह ताम्रपत्र

११३वें वर्ष में इस दिन (जैसा कहा गया है) परमदैवत परम भट्टारक कुमारगुप्त के राज्य वर्ष में यह ग्राम ब्राह्मणों को शिवशर्मन, नागशर्मन एवं महत्तर देवकीर्त्ति, क्षेमदत्त, गोष्ठक,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्गपाल, पिंगल, शुंकक, काल····· विष्णु, देव शर्म्म, विष्णुभद्र, खासक, रामक, गोपाल····· श्रीभद्र, सोमपाल राम इत्यादि ग्राम के आठ कुलो के अधिकारी वर्ग, को सूचित किया जाता है। निम्नलिखित (आज्ञा दी जातो है) खादाटापार विषय (जिला) में भूमि (कृषि योग्य भूमि) विक्रय के मार्यादित रीति के अनुसार तथा निविधर्म के अनुकूल (स्थायी दान की रीति के अनुसार) इस दिन भूमि दान की जातो है। समीप के गृहस्वामि द्वारा जो आज्ञाकारी है उसे संबोधित किया जाता है·····

यह निश्चित किया गया तथा इस निश्चय को स्वीकार किया गया ····· इस तरह कृषि योग्य का एक कुल्यवाप दान में दिया गया जिसका क्षेत्रफल ८×९ नल द्वारा माप कर पृथक किया गया।

वह भूमि छंदोग ब्राह्मण (सामवेदिन) वराहस्वामिन, कटक ग्राम निवासी·····आयुक्तक (कर्मचारी) द्वारा·····

दान के गुण अवगुण पर विचार कर, तथा इसमें हानि उत्पन्न करने पर, शरीर तथा धन की क्षणिकता सोचकर, इस दान को सुरक्षित किया गया।

भगवान् द्वैपायन ने इस प्रकार कहा है—

(१) जो अपने या दूसरे द्वारा प्रदत्त दान को हरण करेगा, वह पितरों के साथ विष्टा का कृमि बनकर रहेगा।

(२) सागर आदि राजाओं द्वारा भूमि दान का फल उस राजा को प्राप्त होगा।

(३) दान देनेवाला छः हजार वर्ष स्वर्ग में रहता है तथा उसे नष्ट करनेवाले नरक में जाता है।

(४) राजाओं में श्रेष्ठ युधिष्ठिर ब्राह्मणों को दान में दी गई भूमि की रक्षा करो। क्योंकि दान की रक्षा, दान देने के विचार से अधिक श्रेयस्कर है।

(लिखा गया) भद्र द्वारा स्थंभेश्वर दास ने उत्कीर्ण किया।

मथुरा जैन प्रतिमालेख

सिद्धम्। परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त के विजयराज्य में ११३वें वर्ष कार्तिक दिवस २० तिथि सामढ्य द्वारा पालित कुटुंवियों द्वारा प्रतिमा स्थापित की गई। जो भट्टीभव पुत्री ग्रहमित्र जिसने दलिताचार्य्य से आज्ञा प्राप्त किया वह कोटिगण विद्याधरी शाखा का सदस्य था।

[अस्यां पूर्वायां काट्टिया गणात् विद्याधारी शाखातोदलिताचार्य्य प्रज्ञापिताये शामाढ्याय भट्टिभवस्य धीतु ग्रहमित्र पालित प्रातारिक्य कुटुम्बिनिये प्रतिमा प्रतिष्ठापिता।]

तुमेन लेख

तीनों लोक में कमल चरण को सिद्ध पूजित करते हैं। उसी के पश्चात् समुद्र पर्यन्त चंद्रगुप्त ने पृथिवी को विजित किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इंद्र के समान चंद्रगुप्त का पुत्र कुमारगुप्त ने पृथिवी की रक्षा की जैसे गुणवती पत्नी रक्षा करती है।

चंद्रमा के सदृश किरणों को बखेरता हुआ घटोत्कच का भूमि पर उदय हुआ। पूर्वजों के समान शक्ति का संचय कर इसका यश स्थिर था।

गुप्तवंश के ११६वें वर्ष में जब कुमारगुप्त शासन कर रहा था। वटोदक नामक स्थान पर सुप्रसिद्ध उच्च भाव एवं समान वृत्ति धारी श्रीदेव, भ्राता हरिदेव, अनुज धन्यदेव, उसका छोटा भद्रदेव सबसे छोटा भ्राता संघदेव ने तुम्बवन में निवास करते हुए देव के मंदिर का निर्माण किया (देवनिकेतनं) जो चंद्रमा की तरह चमकता तथा पर्वत की तरह ऊँचा दीख पड़ता था।

करमदंडा शिवलिंग लेख

महादेवजी को नमस्कार। महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त के उत्तराधिकारी, जिसके यश ने चारों समुद्र के जल का स्वाद लिया है, महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त के विजय राज्य के संवत्सर ११७ कार्तिकमास दसवें दिवस में इससे पूर्व छांदोग्य शाखा वाजि गोत्री कुमार भट्ट के पुत्र विष्णुपालित भट्ट के पुत्र महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त के मंत्री कुमारामात्य शिखर स्वामी के पुत्र पृथिवीषेण (जो) महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त का मंत्री कुमारामात्य एवं महाबलाधिकृत (हैं) भगवान् महादेव पृथिवीश्वर के नाम से ज्ञात हैं उसी भगवान् यथारूप से कर्तव्य, धार्मिक कार्य तथा पाद-सेवन के निमित्त भगवान् शैलेश्वर स्वामी महादेव के समीप अयोध्या के निवासी अनेक गोत्र चरण तप स्वाध्याय मंत्र सूत्र भाष्य के प्रवचन में पंडित (दक्ष) ब्राह्मण (??) को देवयात्रा के निमित्त ग्राम (भरडिह) प्रदत्त (दान) किया गया।

कलैकुरि ताम्रपत्र

१-२ स्वस्ति। श्रृंगवेर वीथि अंतर्गत पूर्णकौशिक स्थान के आयुक्तक अच्यूतदास तथा शासन समिति के समस्त सदस्यगण ने लोगों की कुशल कामना करते हुए ब्राह्मणों तथा अन्य गृहस्थ कृषकों को सूचित किया जो हस्तिशीर्ष बिभीतकि, गुल्मगन्धि, धान्यपाटलिका तथा संगोहलि में निवास करते थे।

२-१२ सभी को यह विदित होगा कि कुलिक भीम, कायस्थ प्रभुचंद्र, रुद्रदास, देवदत्त, लक्ष्मण, विनयदत्त, कृष्णदास तथा पुस्तपाल सिंह नंदिन तथा उस मंडल के यशोदामन ने इस प्रकार की सूचना दी है। जिसके साथ विथी के महत्तरगण कुमारदेव, गंड, प्रजापति उभयशश, रामशर्मन, ज्येष्ठदामन, स्वामि चंद्र, हरि सिंह वर्तमान थे। वहाँ के गृहस्थ यशोविष्णु, कुमारविष्णु, कुमार भव, कुमारभूति, कुमारयशस, वैलिनक, शिवकुंड, वसुशिव, अपरशिव, दामरुद्र, प्रभमित्र, कृष्णमित्र, मेघशर्मन, ईश्वरचंद्र, रुद्रभव, श्री नाथ, हरिशर्मन, गुप्तशर्मन, सुशर्मन, हरि, अलातस्वामिन, ब्रह्मस्वामिन, महासेन, भट्टस्वामिन, रुपशर्मन,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रुष्ठशर्मन, कृष्णदत्त, नंददामन, भवदत्त, अहिशर्मन, सोमविष्णु, लक्ष्मण शर्मन, कृति-विष्णु, क्रमशर्मन, शक्रशर्मन, सर्प्पपालित, कंकुटि, विश्व, शंकर, जयस्वामिन, केवर्तशर्मन, हिमशर्मन, पुरंदर, जयविष्णु, सिंहदत्त, बोंडा, नारायणदास, वीरनाग, राज्यनाग, गुह महि, भवनाथ, गुहविष्णु, सर्व्वविष्णु, विकलदास, गुहविष्णु, रामस्वामिन, कामनकुंड, रतिभद्र, अच्युतभद्र, लोढक, प्रभकीर्ति, जयदत्त, कालक, अच्युत, नरदेव, भव, भवरक्षित, पिच्चकुण्ड,, प्रवरकुण्ड, सर्वदास तथा गोपाल वर्तमान थे। आज्ञा इस प्रकार है—

१२-१७ समस्त जनों के पितामाता के पुण्य की अभिवृद्धि के निमित्त, तथा मर्यादा यानी पृथिवी के विक्रय के नियमानुसार बंजर भूमि को दो दीनार प्रति कुल्यवाप की दर से तथा स्थाया अग्रहार के रूप में विक्रय किया जाने एवं उस बंजर भूमि का शाश्वत उपयोग किया जाय। हम इस वीथि के नव कुल्यवाप भूमि क्रय करने की इच्छा रखते हैं। इसे तीन ब्राह्मणों देवदत्त, अमरदत्त और महासेनदत्त को दान दिया जायेगा जो पुण्ड्रवर्द्धन के निवासी हैं, वाजसनेय (वैदिक) शाखा के अध्ययन करने वाले हैं और चारो वेदों के ज्ञाता हैं। इससे उनका पंच महायज्ञ का काम निर्विघ्न होता रहे। उपरिलिखित ग्राम में कुछ बंजर मौजूद है। इसलिए अठ्ठारह दीनार में नव कुल्यवाप को हमारे साथ विक्री करें।

१७-२७ स्थानीय कुलिक से ब्योरा जानकर तथा पुस्तपाल सिंह नंदिन तथा यशोदामन से पूर्ण विवरण हस्तगत कर दो दीनार प्रतिकुल्यवाप की दर से शाश्वत उपयोग निमित्त तथा स्थायी दान के रूप में बंजर भूमि बेची जाय। इस भूभाग को दान दिया जाय।
यह जान लेना आवश्यक है कि राज्य को इससे कोई विरोध नहीं है या कोई असंगति नहीं है। यह निश्चित कर कुलिक से अठ्ठारह दीनार ग्रहण कर, नव कुल्यवाप भूमि दान में दी जाती है।

हस्तिशीर्षभीतकी, धान्यपाटलिका तथा संगोहालिक ग्रामों के दक्षिण दिशा में आठ कुल्य-वाप भूमि स्थित है। एक कुल्यवाप धान्यपाटलिक ग्राम के उत्तर-पश्चिम दिशा में खुदी खाई से घिरा है। वाटा नदी उत्तर में, पश्चिम में गुल्मगंधिका ग्राम की सीमा है। आठ कुल्यवाप में दो द्रोणवाप (१/४ कुल्यवाप) गुल्मगंधिका के पश्चिम ओर, पूर्व में आद्यपथ के समीप है। सात कुल्यवाप तथा छ : दोणवाप तापसपोट्टक तथा दपितापोट्टक में स्थित है जो हस्तिशीर्ष के अधीन है। चित्रवाटंगर की भूमि विभीटक के अधीन है। पंचमहायज्ञ के निमित्त उस अग्रहार भूमि (ग्राम) के पांच कुल्यवाप (कु. ५) ब्राह्मण देवभट्ट को मिले। दो कुल्यवाप (कु० २) अमरदत्त तथा शेष दो कुल्यवाप (कु० २) महासेनदत्त को दिया जावे।

२७-३० अतएव यह प्रार्थना किया जाता है कि दान भूमि के परिणाम को देखकर, वर्तमान भूभाग के व्यक्ति, विषयपति, आयुक्तक कृषक, गहस्थ (कुटुंबिन) तथा शासन समिति (अधिकरणिक)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के सदस्यगण जो भविष्य के शासनाधिकारी हैं, इस दान भूमि को स्थायीरूप से सुरक्षा करेंगे। इस विचार से महाभारत में भगवान् व्यास ने कहा है—

अपनी दान या दूसरे द्वारा दान दी गई भूमि को जो अपहरण करेगा, वह विष्ठा का कीट होकर पितरों को च्यूत करेगा भूमिदान कर्त्ता छः हजार वर्ष स्वर्ग में निवास करता है किन्तु जो उस में व्यवधान करेगा, उसे नरक वासी होना पड़ेगा। भूमिदान कर्त्ता पृथिवी का भोग करेगा तथा जितना भूमिदान करेगा, उसी अनुसार उसे फल की प्राप्ति होगी। संबोधन कर कहा गया है कि ऐ श्रेष्ठ राजा युधिष्ठि ! जो भूमि पूर्व में ब्राह्मणो को दान में दी गई हैं उसकी यत्न पूर्वक रक्षा करो। दानदेने से दान की रक्षा श्रेयस्कर है।

वैशाख के प्रथम द्विन (प्रतिपदा) तथा गुप्त वर्ष १२० में (यह ताम्रपट्ट) लिखा गया।

दामोदरपुर ताम्रपत्र (१२४ वर्ष)

संवत् १२४ फाल्गुण दिवस ७ परम दैवत परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त पृथ्वी का स्वामी था उसके द्वारा स्वीकृत पुंड्रवर्धन भुक्ति का राज्यपाल चिरातदत्त, उसके द्वारा नियुक्त कोटिवर्ष विषय (जिला) का कुमारामात्य वेत्रवर्मन उसके कार्यालय के अधिकारी नगर का सेठ धृतिपाल, सार्थवाह बंधुमित्र, प्रथम कुलिक धृतिमित्र प्रथम कायस्थ शाम्बपाल आदि घोषणा कर कर्प्पटिक के ब्राह्मण को सूचित किया जाता है कि अग्निहोत्र के निमित्त कृषि के अयोग्य बंजरभूमि को तीन दीनार प्रत्येक कुल्यवाप को दर से खरीद कर (दिया गया)। वह दान स्थायी रूप से चंद्रमा, सूर्य, तारागण के काल (शाश्वत रूप से) तक उपभोग किया जायगा। वह लौटाया नहीं जा सकता (नीवीधर्म के अनुसार दिया गया) तीन दीनार के भाव से क्रय भूमि दी जायगी।

पुस्तपाल रिशिदत्त, जयनन्दि, विभुदत्त द्वारा सीमा निबंधन (प्रतिबंधक) कर डोगया के उत्तर पश्चिम दिशा में एक कुल्यवाप दिया गया। भूमिदान संबंधी श्लोक निम्न प्रकार हैं—

अपने या अन्य व्यक्ति द्वारा प्रदत्त दानभूमि का जो हरण करेगा वह विष्टा का कृमि बनकर पितरों के साथ वहीं कष्ट सहेगा।

दामोदरपुर ताम्रपत्र (१२८ वर्ष)

संवत् १२८ बैशाख दिवस २ परम दैवत परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त पृथ्वी का स्वामी द्वारा स्वीकृत पुंड्रवर्धन भुक्ति (प्रदेश) का राज्यपाल चिरातदत्त के अतिवैभवपूर्ण शासन में उसके द्वारा नियुक्त कोटिवर्ष विषय का कुमारामात्य वेत्रवर्मन (उसके) कार्यालय के अधिकारी नगर का सेठ, धृतिपाल, सार्थवाह बंधुमित्र, प्रथम कुलिक धृतिमित्र तथा प्रथम कायस्थ शाम्बपाल आदि घोषणा कर सूचित करते हैं कि पंचमहायज्ञ के उपयोग निमित्त प्रचलित नियम के अनुसार (क्रय कर) नीवीधर्म (स्थायी रूप में) के मर्यादा के अनुकूल दान में (भूमि) दी जाती है। इसे उपलब्ध कर पुस्तपाल रिसिदत्त, जयनंदिन, विभवदत्त द्वारा जाँचपड़ताल के पश्चात् सीमा निबंधित किया गया। इसके देने में प्रचलित नियमों के अनुसार तीन दीनार प्रत्येक कुल्यवाप के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाव से दो कुल्यवाप ग्रहण किया गया। ऐरावत राज्य के पश्चिम दिशा में पाँच द्रोण भूमि स्थिर की गई। वहाँ खुदे नहर से पानी से सिंचाई के अधिकार सहित (भूमि) दिया गया। उसके उपरांत शासन के कर्मचारी द्वारा अनुमोदित किया गया। भूमिदान संबंधी श्लोक इस प्रकार हैं—राजाओं में महान श्रेष्ठ युधिष्ठिर ब्राह्मणों को पूर्व में दान दी गई पृथ्वी की रक्षा करो।

अनेक व्यक्तियों द्वारा दी गई दान भूमि, बारंबार दान में भूमि को देनेवाला, जो भूमि देता है, उसे वैसा ही फल मिलता है।

मनुकुँग्रार बुद्ध प्रतिमा लेख

ओ०—बुद्ध को प्रणाम। भिक्षु बुधमित्र ने भगवान् बुद्ध की प्रतिमा की स्थापना की, जो सम्यक् रूप से संबोधित (पूर्ण ज्ञान) प्राप्त कर चुके थे और जो अपने धर्म में स्थिर थे (जिनके मत का विरोध नहीं था।)

संवत् १००+२०+९(=१२९) महाराजाधिराज कुमारगुप्त के राज्य में ज्येष्ठ मास दिवस १६. सभी दुखों के निवारण के लिए।

मंदसोर शिला लेख

ओ० सिद्धि। भगवान् सूर्य रक्षा करें, जिन्हें अनेक देवता एवं सिद्ध पुरुष, जो अलौकिक सिद्धि के इच्छुक हैं, संसार की स्थिति निमित्त पूजते हैं। उन महात्माओं ने ध्यान स्थित होकर सभी इंद्रियों को वश कर लिया है। वे आत्मा की मुक्ति चाहते हैं और तपस्या द्वारा पापों पर विजय प्राप्त कर लिया है। ऐसे साधुजन जगत के अभ्युदय तथा विनाश के कारण भगवान् भास्कर (सूर्य) को नमस्कार करते हैं। (१)

तत्वज्ञान के जाननेवाले ब्रह्मर्षि तथा ज्ञानी भी जिसे प्राप्त न कर सके। जो सूर्य सारे तीन लोक को किरणों से व्याप्त कर दिया है, और जिसे गंधर्व सिद्ध, किन्नर तथा देवता अभिनंदन करते हैं तथा भक्तों (पूजारियों) के अभिलषित विषयों को पूर्ति करते हैं उसी भगवान सूर्य को बारंबार प्रणाम है। (२)

जिस सूर्य भगवान् की किरणें प्रतिदिन चमकती रहती हैं तथा किरणों का समूह पर्वतों तथा उदयाचल की ऊँची चोटियों पर बिखरे रहते हैं, जिसका मतवाली स्त्रियों के कपोल के सदृश गहरा लाल रंग की प्रभा है, उसी सूर्य को प्रणाम (अभिनंदन) करते हैं। (३)

लाट (नामक) जिले से, जहाँ सुंदर वृक्ष-पुष्प के भार से नत (झुक) ही गए हैं, और जो नगर (लाट) मंदिर, सभा स्थलों तथा विहारों से भरा पड़ा है पर्वतों पर हरियाली छाई है, वहाँ से शिल्पिगण दशपुर (मालवा) में आकर बस गए। (४) उन शिल्पियों से सोचकर, समूह में पुत्र तथा स्त्री सहित वहाँ (लाट) से आकर दशपुर में निवास करने लगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तंतुवाय शिल्पि (बस्त्र बुनकार) अपने कुशलता के लिए संसार प्रसिद्ध थे। दशपुर के शासक के गुणों की प्रशंसा सुनकर शिल्पी अधिक आकृष्ट हुए और इस कारण यात्रा के असुविधाओं एवं कठिनाइयों की ओर ध्यान नहीं दिया (परवाह नहीं की)। (५)

कालान्तर में वह नगर पृथ्वी का तिलक बन गया। वहाँ अनेक पर्वतमालाएँ स्थित थीं। उन पर्वतों पर हाथियों के झुंड विचरण करते थे और जिनके कर्णपट (मस्तक) से मद गिर रहा था। उस नगर में पुष्प भार से बोझिल वृक्ष नतमस्तक हो रहे थे। (६)

उस नगर की तालाव की शोभा वर्णनीय थी। जल में काण्डव जल-पक्षी का समूह विचरण कर रहा था। जल में वृक्षों की डालियाँ झुकी थीं तथा उनसे परम सुंदर पुष्प पानी में गिर पड़े थे। विकसित पुष्पित कमल (उस जल में) उस तालाव की शोभा बढ़ा रहे थे। (७)

उस तालाव में हंसों के झुंड कमल पुष्पों से पतित पराग से आच्छादित हो गए थे। अन्यत्र कमल पुष्प की तंतुमय (पराग डंठल) के भार से झुककर तालाव की शोभा बढ़ा रहे थे। (८)

उस स्थान (दशपुर) के जंगलों में ऊँचे-ऊँचे वृक्षों के समूह खड़े थे और उनके पुष्पों पर भँवरों के झुंड भनभना रहे थे। वह स्थान पराग के कारण मतवाले भँवरों की आवाज तथा नगर ललनाओं के संगीत (गान) से गुंज रहा था। (९)

वहाँ की गगनचुंबी अट्टालिकाओं में ललनाएँ निवास करती थीं तथा पताका फहरा रहा था। ऐसा मालूम पड़ता था कि सफेद बादल बिजली की कड़क से चमक रहे हों। (१०)

नगर की अट्टालिकाएँ के शिखर कैलाश पर्वत के सदृश ऊँची हैं। पर्वत पर गंधर्व के संगीत के सदृश ध्वनि से गुंज रहे हैं। उनकी दीवारों पर केले के स्तंभों की लहराती पत्तों के चित्र खींचे हैं। (११)

यहाँ के प्रासाद की पंक्तियाँ पृथ्वी को विदीर्ण कर ऊपर उठती प्रकट होती हैं। वह विमान माला की तरह सुशोभित हैं और पूर्ण चंद्रमा की किरणें के सदृश सफेद हैं। (१२)

वह स्थान (नगर) दो नदियों के बहते जल से सुशोभित हो रहा था। मालूम पड़ता था कि ये दोनों नगर को गले लगा रही है। इससे आभास होता रहा कि कामदेव (स्मर) की दो स्तनयुक्त पत्नियों रति एवं प्रीति उसे आलिंगन कर रही हों। (१३)

उस नगर के ब्राह्मण सत्य, क्षमा, दम, शम, व्रत, शौच, धैर्य, स्वाध्याय आदि धार्मिक नियमों का पालन करते रहे। विद्या आदि गुणों से युक्त थे। वह नगर इस प्रकार शोभायमान हो रहा था जैसे आकाश में अनेक ग्रह विराजमान हों। (१४)

शिल्पिगण एक समूह में रहकर दिन प्रतिदिन अधिक सस्नेह तथा मैत्री के भाव से निवास करने लगे और राजपुत्रों की तरह इनकी प्रतिष्ठा भी होने लगी। (१५)

इस शिल्पिसमूह में (विचित्र) कार्यों में दक्ष एवं कुशल व्यक्ति रहते थे जो धनुर्वेद के ज्ञाता था और प्रत्यंचा की ध्वनि सुरीली सी प्रतीत होती थी। अन्य सदस्यगण सैकड़ों प्रकार के शिल्प

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में दक्ष तथा कुशल कलाविद् थे। कोई कथा वाचक (विद्) कोई धर्म में परमनिष्ट तथा धर्म-कर्म में पारंगत थे। कुछ कठोरपन से रहित तथा दयालु (क्षमा देनेवाले) व्यक्ति थे। कुछ कपड़े बुनने में परम दक्ष समझे जाते थे। कई शिल्पी ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता थे। कोई युद्धमें वीर योद्धा के सदृश और शत्रुओं के दमन में चतुर सैनिक थे। (१६, १७)

उसमें कुछ कुलीन वंश के व्यक्ति थे और सुंदर पत्नियों सहित वहाँ (दशपुर) पधारे थे। उनकी उपलब्धियाँ उनके वंश के अनुरूप थी। दूसरे दृढ़ प्रतिज्ञ थे, मित्रता में अडिग रहनेवाले तथा विश्वसनीय व्यक्ति थे। वह सभी अपने सहकर्मियों पर स्नेह तथा उपकार-दक्ष थे। (१८)

इस प्रकार शिल्पियों के बहुगुणों के कारण सदस्य सर्वत्र प्रख्यात तथा अदरणीय हो गये थे। उनका वैभव एवं प्रसिद्धि विदित थी। अपने कुल में सिरमौर (तिलक) होकर संसार के राग से भी विरत होने के कारण श्रेणी शोभायमान थी। दया तथा अनेक विशिष्टता के कारण पृथिवी पर देवतुल्य समझे जाते रहे। (१९)

युवती नारियाँ स्वर्ण-हार, ताम्बूल, पुष्प आदि सामग्रियों से सुशोभित होकर भी गुप्त स्थान में अपने प्रियतम से वस्त्र से अलंकृत होकर मिलने जाती है, उसी प्रकार उस क्षेत्र (दशपुर) की सारी भूमि रेशमी वस्त्र से ढकी है जो स्पर्श में मुलायम (सुखदायी), नाना रंग वाले आँखों को प्रिय एवं चित्रित (वस्त्र) बने हैं। (२०, २१)

उस क्षेत्र की समता युवती स्त्री से की गई है।

इस संसार की गति अस्थिर तथा चंचल है, जिस प्रकार विद्याधरी के कर्णफूल हवा के झोंके से उड़ जाते हैं। मनुष्य तथा विशाल धन की भी अस्थिर गति है, ऐसी परिस्थिति में भी श्रेणी के गुणों तथा कार्यों को स्थिरता दी गई है। (२२)

जिस पृथिवी की मेखला चारों समुद्र हैं, जिसके सुमेरू तथा कैलाश पर्वत विशाल स्तन के समान हैं और पृथिवी की हंसी को वन की सीमा पर स्थित वृक्षों के पुष्पों की वर्षा (गिरना) से व्यक्त किया जाता है, उस पृथिवी पर कुमारगुप्त शासन कर रहा था। (२३)

उस भाग का गवर्नर (राज्यपाल, गोप्ता) विश्ववर्मा था जो शुक्र तथा वृहस्पति के सदृश बुद्धिमान था, पृथिवी के शासकों में श्रेष्ठ तथा युद्ध में पार्थ (अर्जुन) के समान वीर योद्धा रहा था। (२४)

वह अनेक गुणों से पूर्ण था। दीन दुखियों पर दया करनेवाला, एवं कष्ट में डुबा तथा कृपण की दरिद्रता को दूर करनेवाला था। वह दयालु अनाथ का नाथ (स्वामी), कल्प वृक्ष की तरह वरदान (इच्छित फल) देनेवाला, भयभीत को अभय प्रदान करनेवाला तथा समस्त जनता का मित्र था। (२५)

उस पुत्र बंधुवर्मा विचार का परिपक्व तथा गम्भीर राजनीतिज्ञ था। उसे सभी परिवार जन की तरह प्यार करते थे, जैसे वह प्रजा का बंधु हो। शत्रुओं को नष्ट करने में वह अत्यन्त दक्ष था। (२६)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह कान्ति वाला, युद्ध पटु तथा विनम्र शासक था किंतु उसे मद छू नहीं सका था। वह शृङ्गार की मूर्ति तथा कामदेव (दूसरे) के समान सुंदर था यद्यपि उसके शरीर पर आभूषण का भार न था तथा पुष्प के धनुषवाण उसके पास न थे। (२७)

बंधुवर्मा के आक्रमण के भय से शत्रुओं की सुंदर ललनाएँ वैधव्य के कठोर जीवन को सोचकर त्रस्त हो जाती थी। सुंदरियाँ उसका नाम लेते (या सोचते) भय से ऐसा आकुल हो उठती थी कि उनके कठोर सुविकसित स्तन कम्पायनमान होने लगते। (२८)

जिस समय शसकों में श्रेष्ठ तथा उदारचेता बंधुवर्मा दशपुर नगर पर राज्य कर रहा था (जो वैभवपूर्ण नगरी थी) शिल्पिगण की श्रेणी ने कला (कपड़ा बुनना) द्वारा अर्जित तथा संचित धन से भगवान् सूर्य का अतुलनीय मंदिर का निर्माण कराया। (२९)

वह सूर्य मंदिर विस्तीर्ण रूप से तैयार किया गया जिसका शिखर पर्वत के सदृश ऊँचा था। चंद्रमा की संपूर्ण रश्मियों की तरह सफेद बना था। पश्चिम (भारत) के इस नगर (दशपुर) में यह मंदिर सुंदर भव्य, चूड़ामणि के रत्नों की तरह पिरोया हुआ तथा आँखों को सुखद छटा-सी प्रतीत होता रहा। (३०)

उस हेमन्त (जाड़े का समय) ऋतु में ललनाएँ अपने प्रियतम से मिलती हैं। उस काल में सूर्य किरणों की गर्मी आनंददायक होती है, उस ऋतु में मछलियाँ जल के निचले भाग में पड़ी रहती हैं। स्त्रियाँ चंदन की सुगंध तथा हार धारण कर मकान के छतों पर बैठ कर (सर्दी के कारण) चंद्रमा के रम्य चाँदनी का आनंद नहीं ले सकती। (३१)

उस ऋतु में कमल शीत से नष्ट हो जाते है जहाँ भवरों की आवाज गुंजायमान हैं और रोध्र (पुष्प) के रस पान कर भ्रमर अत्यंत प्रसन्न हैं। वहाँ प्रियंग वृक्ष, कुंदलता, नगण के पुष्प ढंढी वेगवती हवा से झुम रहे हैं जो (हवा) पाला के कारण कठोर तथा दुखदायी हो गई है। (३२)

उस पाले तथा ठंढ़ की दशा में प्रेम में डुबे हुए तरुण (नौजवान) व्यक्ति अपनी प्रेमिकाओं का गम्भीर आलिंगन कर उनके सुन्दर विशाल स्तन का रसास्वादन कर रहे हैं। (३३)

जब मालवगण की गणनानुसार ४९३ वर्ष व्यतीत हो गए थे। यानी (४९३ विक्रम संवत् बीत चुका था) जब (वर्षा के) बादल की आवाज का स्वागत होने लगा था (यानी कुछ गर्मी पड़ रही थी) पौष (सहस्य) मास के शुक्ल पक्ष १३ के दिन मंगलचार की विधि पूर्वक सूर्य मंदिर (प्रासाद) की स्थापना की गई। (३४, ३५)

कालान्तर में अन्य शासकों के समय में वह मंदिर नष्ट हो गया उस ध्वंस सूर्य मंदिर का संस्कार (मरम्मत) दशपुर की पटकार श्रेणी ने अपने यश वृद्धि के निमित्त किया। (३६, ३७)

सूर्य मंदिर अत्यंत मनोहर तथा ऊँचा था मानों आकाश को स्पर्श कर रहा हो। उसके शिखर पर सूर्य तथा चंद्रमा के उदय होते समय उनकी किरणें आराम करती। सब से प्रथम सुशोभित करती थी। (३८)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाँचसो उनतीस वर्ष (५२९ विक्रम संवत्) में फाल्गुन शुक्ल द्वितीय को (पुनः मरम्मत की गई)। (३९) जिस ऋतु में कामदेव अशोक, केतक, सिंदुवार अतिमुक्तकलता तथा मदयंती के पुष्पों से वाण बनाकर शिव जी पर आक्रमाण करता है। (४०)

उस समय नगणैक लता की शाखा डोल रही हैं तथा भंवरे मधुपान कर भनभन आवाज कर रहे हैं, उसी समय रोध्र वृक्ष नए पुष्पों सहित कान्त तथा रमणीय अवस्था में डोल रहा है। (४१)

(उस समय) संपूर्ण नगर (दशपुर) को वह मंदिर अलंकृत कर रहा था जिस प्रकार आकाश को चंद्रमा सुशोभित करता है, भगवान के वक्षस्थल को कौस्तुभ मणि अलंकृत करती है। (४२)

जिस अनंत काल तक शिव के सिर पर जटा है तथा चंद्रमा की विशुद्ध किरणें उसे सुशोभित करती है और जिस समय तक भगवान विष्णु कमल का माला कंधे पर धारण कर रहे हैं उस अनंत काल तक सूर्य भगवान का भवन (मंदिर) शाश्वत रूप में स्थिर रहे। (४३)

(दशपुर को) श्रेणी (पटकार) के आदेश से तथा भगवान की भक्ति के कारण वह सूर्य मंदिर तैयार किया गया। वत्सभट्टि के द्वारा प्रशंसात्मक वाक्य रचे गए। (४४)

लिखने वाले (रचयिता), वाचक, श्रोतागण तथा करने वालों का कल्याण हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्कंदगुप्त के लेख

जूनागढ़ अभिलेख

सिद्धि हो। भगवान विष्णु की जय, जिनके साथ लक्ष्मी निरंतर रहती है और कमल के तालाव में निवास करते हैं। वह विपत्ति का विनाशक हैं। देवताओं के देव इंद्र के सुख निमित्त भगवान ने बलि राजा से (यश एवं वैभव के रूप में) लक्ष्मी का हरण किया। वह बलि सांसारिक वैभव से पूर्ण था। अतः विष्णु ने उसे अधिक काल तक सुख से विमुख कर दिया।

वह देवातिदेव विष्णु जिसके वक्षस्थल को लक्ष्मी स्पर्श करती है, जो भुजबल के पराक्रम से प्रसिद्ध है। उसके गरुड़ के समक्ष अनेक शत्रु सामंत सर्पों के सदृश थे, वह भगवान विष्णु कल्याण करें।

महाराजाधिराज स्कंदगुप्त जो राजकुल के गुणों से युक्त था, पिता की मृत्यु पश्चात् उसने शत्रुओं का नाश किया, सारी पृथिवी का विजेता था, जो (पृथिवी) चारों तरफ समुद्र से घिरी है।

जिसके किनारे समृद्ध देश स्थित हैं। उस स्कंद का यश शत्रुओं के देश (विशेष कर म्लेच्छों का) में व्याप्त है। उसने विजय की घोषणा की। जिसके गुण तथा ऐश्वर्य को देख कर, बुद्धि की परीक्षा कर, गुण अवगुण पर पूर्णरूपेण विचार कर लक्ष्मी ने उसे (स्कंदगुप्त) अपना पति चुना।

स्कंदगुप्त के राज्य में कोई प्रजा धर्म से च्युत न हो सकी। दुखी तथा दीन न थी। संकटाग्रस्त न रही। दंडयुक्त या पतित न थी।

समस्त पृथिवी को जीत कर, शत्रुओं के मान का दमन कर सारे प्रदेश में रक्षक नियुक्त करने के संबंध में वह (स्कंद) गंभीरतापूर्वक सोच रहा था कि उसके समस्त कर्मचारियों में कौन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसा व्यक्ति है जो पद के योग्य हो, बुद्धिमान, शांत, शीलवान, बुद्धि एवं विचार में परिपक्व, सत्यवादी, स्पष्टवादी, सुशील, विज्ञ, सच्चरित्र तथा जो कोमलता तथा सरलता एवं सज्जनता के लिए प्रसिद्ध हो। भक्त, सहृदय, विचारवान, ईमानदार हो। जिसका हृदय कृतज्ञता से परिपूर्ण हो, मानवता का हित सोचनेवाला हो, धर्ममार्ग में संपत्ति का संग्रहकर्त्ता हो, धन का संरक्षक तथा समयानुकूल संपत्ति का व्यय करनेवाला हो, वही सौराष्ट्र का परिपालक हो सकता है। उस शासन भार को संभालने में निपुण पर्णदत्त हो सकता था।

सौराष्ट्र की उचित रूप से रक्षा की बातें रातदिन सोचकर पर्णदित्त की नियुक्ति हुई। पश्चिम दिशा में वरुण के समान ही पर्णदत्त की नियुक्ति होने पर राजा ने संतोष तथा सुख की साँस ली।

उसका पुत्र उसी के समान गुणवान, इंद्रियनिग्रह करने वाला, अपने समान रक्षा का विचारक, सुन्दर शरीर वाला, सर्व गुण संपन्न, कार्यों से सभी को प्रसन्न करनेवाला, पूर्ण विकसित कमल के सदृश वदन वाला, आश्रितों का संरक्षण करनेवाला चक्रपालित नामधारी व्यक्ति था जिसने अपने गुणों से पिता को प्रशंसनीय बनाया।

उसमें सभी गुण निहित थे। शांत, गंभीर, कोमल एवं सरल चित्तवाला, वीरभाव युक्त, अहंकार रहित, वाक् शक्तिवान, आत्मसंयमी, सरल हृदय, उच्च विचार, युक्त, सुसंस्कृत कृपा तथा आचार को माननेवाला, उचित मूल्यांकन कर्त्ता, विस्मय रहित दत्तचित्त, उदारचेता, (चक्रपालित) जिसके समान संसार में कोई गुणी न था। संपूर्ण गुणों से युक्त वह मानव के लिए मापदंड था।

सर्वगुण संपन्न होने के कारण पिता ने उसे (चक्रपालित) नियुक्त किया। वह पूर्व अधिकारियों से भी उच्च विचार रखता था। उसने नगर का (जूनागढ़) का शासन सुचारु रूप से किया। अपने भुजबल पर अवलंबित होकर (दूसरे के कार्यों से प्रभावित न होकर) उसने शासन किया और क्रूर दुष्ट जनों से नागरिकों को चिंतामुक्त किया।

उस समय वह (चक्रपालित) सभी व्यक्तियों का विश्वास भाजन था तथा जनता में स्वयं विश्वास रखता था। उसने (कार्यों से) नागरिकों को आकर्षित कर लिया। प्रजाजन से मीठे वार्तालाप, समुचित व्यवहार द्वारा अथवा भेंट से प्रसन्न कर लिया था। प्रजा के गृहों में जाकर प्रेमपूर्वक उत्सवों में सम्मिलित होता रहा। दया, शुद्ध आचारण तथा दान देकर, धर्म एवं वैभव के पारस्परिक विग्रह को मिटाकर (अंतकर) सुअवसरों पर उचित कार्य द्वारा प्रसन्नता तथा शांति का वातावरण पैदा करता रहा। पर्णदत्त के पुत्र के लिए ऐसे गुण आश्चर्यजनक न थे। क्योंकि चंद्रमा से शीतलता प्राप्त होती है अग्नि से नहीं।

ग्रीष्मकाल में लम्बी अवधि तक घनघोर वर्षा होती रही। सुदर्शन झील का बाँध टूट गया। वह (काल) गुप्त संवत् का १३६ वर्ष पौष मास था। गिरनार पर्वतों से प्रवाहित नदियों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पलाशिनी तथा सिकता अपने पति समुद्र से मिलने के लिए उतावली हो रही थीं। उर्जयत पर्वत से निकलने वाली नदियों में पलाशिनी द्रुतगति से बह रही थी जिसके किनारे पुष्प से भर गए थे। जिसके किनारे वृक्ष रोपे गए थे।

सुदर्शन झील को दुर्दशा के कारण सभी चिंतामग्न थे। रातभर नींद न आई। चिंतायुक्त सोचने लगे कि (क्या कभी झील सुंदर हो सकेगा) पिता का भक्त होकर राजा तथा प्रजा के रंजन की बात सोचकर १३७वें वर्ष में (गुप्तकाल) वह (बांध) खोदा गया। देवताओं को पूजा कर, ब्राह्मणों को दान देकर, प्रजाजन का समुचित आदर कर तथा कर्मचारियों को सूचितकर, मित्रों से मिलकर, ग्रीष्मकाल के प्रथम पखवारे में दोमास तक नियमित रूप से कार्य संपन्न होने के लिए उसने धन व्यय किया। १०० (सौ) फीट लंबा, ६८ फीट चौड़ा तथा मनुष्य की ऊँचाई से अधिक ऊँचा बांध बनाया।

राजा की सुप्रतिष्ठा के लिए प्रस्तर का शक्तिशाली बांध तैयार हुआ जिससे सुदर्शन झील अधिक दृढ़ तथा सुंदरतर हो गया। बांध तट की सुंदरता बढ़ गई। उसके किनारे हंसों की कतार (दीख पड़ने लगे)। नगर की दिनोदिन उन्नति हो, वहाँ के निवासी पापमुक्त हों जिसका गुणगान ब्राह्मणों द्वारा किया जाय। इस बांध के कारण सैकड़ों वर्ष तक सूखा तथा अकाल न पड़ेगा।

सारे पृथिवी का स्वामी शत्रुओं का मद मर्दन करनेवाले स्कंदगुप्त के पुण्यमय कार्य आश्चर्यजनक रहे। उस भूभाग का रक्षक पर्णदत्त शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ था।

उसका पुत्र (चक्रपालित) सर्वगुण संपन्न था तथा गोविंदस्वामी का भक्त था। सारी जनता उसके चरण कमल पर नतमस्तक होती रही। उसने विष्णु के मंदिर का निर्माण किया जो मनुष्यों के लिए स्वयं अवतार लेता है। उस चक्रपालित ने चक्रमृत नामक देवता का मंदिर बनवाया। गुप्तकाल के १३८वें वर्ष में जहाँ (उस नगर के) मस्तक के रूप में उर्जयत पर्वत चमक रहा था।

कहौम स्तंभ लेख

सिद्धि हो। स्कंदगुप्त के शांत राज्य में जिसका सभा भवन सैकड़ों नरेशों के आज्ञा प्रदर्शित हाथों से हिला दिया गया है, जो गुप्तवंश में उत्पन्न हुआ, जिसका यश संसार में सुदूर तक विस्तृत है, जिसका वैभव सर्वोत्तम है, जो शक्र (इंद्र) के सदृश (शक्तिशाली) है जो (स्कंद) सैकड़ों शासकों का स्वामी है उसी के १४१वें वर्ष, जेष्ठ मास में

कहौम (कुकुम) नाम ग्राम-रत्न में जो साधुजन के संसर्ग से पवित्र हो गया है, (वहाँ) प्रचुर गुणयुक्त सोमिल का पुत्र भट्टसोम रहता था। उसका पुत्र रुद्रसोम परम विज्ञ एवं यशस्वी था, जिसे व्याघ्र नाम की संज्ञा दी गई थी। उसी का पुत्र मद्र द्विज के प्रति प्रीति तथा साधु एवं धार्मिक गुरु के प्रति संमान करता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह संसार के विभिन्न चक्र (स्थिति) को देखकर भयभीत हो गया था, उसने स्वयं धार्मिक कृत्य से पुण्य लाभ किया था। उसीने परमानंद के लिए तथा मानव के सुखार्थ पांच प्रस्तर की प्रतिमाओं की स्थापना की, जो अर्हंत के मार्गानुगामी थे। जो धार्मिक पक्ष के पालक थे। यह सुंदर प्रस्तर स्तंभ वहीं स्थित किया गया, जो शैलशिखर के समान प्रतीत हो रहा था। जिस कारण कीर्तिलाभ हुआ।

इंदोर ताम्रपत्र

सिद्धि हो। पृथिवी को घेरे हुए अंधकार (तम) को भेदन करनेवाली किरणोंवाले सूर्य तुम्हारी रक्षा करें। जिसे प्रबुद्ध विचारशील ब्राह्मण ध्यान करते हैं। जिसकी ऊँची या तिर्यक अंत (सीमा) को देव असुर भी माप नहीं सकते। संसार के लोग रोग ग्रसित होकर या चेतना के निमित्त उसकी प्रार्थना करते हैं, ओर चैतन्यता की प्राप्ति करते हैं।

परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री स्कंदगुप्त के १४६वें राज्यवर्ष में फाल्गुन मास में अंतर्वेदी के भूभाग में विषयपति सर्वनाग उसके (स्कंदगुप्त) चरणों का अनुगामी था।

चंद्रापुर नगर के पद्मा क्षेत्र का चतुर्वेदिन ब्राह्मण देवविष्णु, जो डुडिक का प्रपौत्र, हरित्रात का पौत्र तथा देव का पुत्र था, अग्निहोत्र करनेवाला, राणायनीयशाखा का विद्यार्थी, वर्षगण गोत्री ब्राह्मण ने इंद्रपुर निवासी क्षत्रिय अचलवर्म तथा भृकुंठसिंह नामक व्यापारीगण द्वारा स्थापित भगवान् सूर्य के मंदिर को अपने यश अभिवृद्धि निमित्त दान दिया जिसके सूद (आय) से सूर्य के दीप जलाने का प्रबंध किया जाय।

सूर्यमंदिर को ब्राह्मण का यह दान (अग्रहार) इंद्रपुर निवासी तैलिक श्रेणी जिसका प्रधान जीवंत था, की स्थायी संपत्ति थी। जिस समय तक श्रेणी इंद्रपुर से स्थानांतर होने पर भी सुसंगठित रहे। श्रेणी द्वारा चंद्र सूर्य के समकालीन यानी शाश्वतरूप से दो पल (माप) तैल सर्वदा अक्षुण रूप से तेल जलाने के लिए दिया जाता रहेगा। जो कोई दान में बाधा उपस्थित करेगा वह गो-हत्या, गुरु-हत्या, ब्राह्मण-हत्या के पाप का भागी होगा। उसे पंचपातक तथा उपपातक का दोष होगा तथा नरकगामी होगा।

भितरी स्तंभ लेख

(महान् सम्राट् महाराजाधिराज समुद्रगुप्त) जिसने समस्त शत्रुओं का नाश किया था, जिसका संसार में कोई शत्रु न रहा, जिसकी कीर्ति चारों समुद्र तक विस्तृत थी (चारों समुद्रों के जल को जिसकी कीर्ति ने पान किया था), जो कुबेर, वरुण, इन्द्र तथा यम के सदृश (प्रभावशाली) था, जो कृतांत का परशु था, जिसने अनेक सहस्र गो एवं स्वर्ण दान किया, अश्वमेघ को पुनर्जीवित करनेवाला, जो महाराज श्रीगुप्त का प्रपौत्र, महाराज घटोत्कच का पौत्र, महाराजा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धिराज श्री चंद्रगुप्त का पुत्र लिच्छवि राजकुमारी महादेवी कुमारदेवी से उत्पन्न महाराजाधिराज समुद्रगुप्त भगवान् का परमभक्त था। उसकी स्त्री महादेवी दत्तदेवी से उत्पन्न परमभागवत महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त, जिसका विश्व में कोई शत्रु न था, उसकी पत्नी महादेवी ध्रुवदेवी से उत्पन्न पुत्र एवं उत्तराधिकारी परमभागवत महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त, उसका पुत्र स्कंदगुप्त, जो अपने गुणों के कारण विख्यात था। जिसे विपुल यश प्राप्त था, जो पिता के कमल चरण पर भ्रमर की तरह लगा रहता था, उसका यश सभी दिशाओं में व्याप्त था। जिसके पास संसार में पूरी सामरिक शक्ति थीं, जो गुप्त वंश का प्रसिद्ध योद्धा था तथा जिसके कार्यों से सत्यकार्य की प्रगति में अवरोध न आ सका, जिसका आदर्श आचरण था तथा जिसके कार्य में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न रही, उसकी निर्मल आत्मा थी; सुबिनीत था, वस्तुओं के मर्म समझने में सुदक्ष था। दैनिक कार्यों में सदाचार, शक्ति तथा नम्र व्यवहार के कारण सफलता प्राप्त कर चुका था। कार्य संचालन या कलात्मक प्रतिपादन में प्रवीण था। शत्रुओं के दमन में उसने अपनी दक्षता का प्रयोग किया तथा समस्त शत्रुदल उसके (स्कंदगुप्त) द्वारा पराजित होने में सुख का अनुभव करते रहे तथा सभी ने उसका स्वागत किया।

अपने वंश की नष्ट कुल-लक्ष्मी एवं वैभव को पुनः प्राप्त करने के लिए स्कंद ने संपूर्ण रात्रि पृथ्वी पर सोकर व्यतीत किया। शक्तिशाली पुष्पमित्रों को परास्त किया। विजित नतमस्तक राजाओं के चरणपीठ पर (पाँवदान की तरह) अपना बायाँ पैर रखा।

निर्मल, धवल कीर्ति, शांत गंभीर एवं अद्वितीय वीरता, जिसके कारण शत्रुओं के आयुध निरर्थक हो गए, का गान बालक से युवा पुरुष तक प्रत्येक दिशा में गा रहे हों।

जिस समय उसके पिता की मृत्यु हुई अपने भुजबल के द्वारा उसने शत्रुओं को परास्त किया। वंश की खोई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया। विजय का संदेश लेकर माता के पास गया जिसकी आँखें प्रसन्नता के आँसू से भरी थीं। जिस रीति से कृष्ण ने शत्रु का विनाश कर देवकी को संदेश पहुँचाया था।

स्कंदगुप्त ने अपने वंश की विघटित परंपरा को सुसंगठित किया। बाहुबल से पृथ्वी को जीता, दुखी तथा पराजित जनों पर दया दिखलाई। यद्यपि भाट उसके दिनोंदिन उन्नत यश तथा ऐश्वर्य का गान करते रहे तो भी वह हठी तथा अभिमानी न हुआ।

जिस हूणों के कारण पृथ्वी काँपने लगी तथा जिसके कारण नदियों में भयंकर तूफान आ गया। उन हूणों का विरोध कर स्कंद युद्ध में खड़ा हुआ था। जिस प्रकार गंगा के प्रवाह की ध्वनि सबके कानों में सुनाई पड़ती है।

पिता के यश वृद्धि के लिए स्कंद ने शारंगी भगवान् की मूर्ति का निर्माण कराया ताकि वह सूर्य चंद्र की स्थिति तक स्थिर रहे। पिता की कीर्ति के निमित्त मूर्ति की स्थापना कर एक ग्राम दान में दिया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवी-प्रतिमा तथा तत्संबंधी अग्रहार से स्कंद ने पिता के धार्मिक यश-वृद्धि के लिए दोनों कार्य किया।

बिहार स्तंभ लेख

(प्रथम भाग)

....

जो इंद्र के अनुज (विष्णु) के सदृश शक्तिशाली तथा अतुलनीय गुणवाला।

....

....

जिसका अतुल प्रतापी कुमारगुप्त

....

जो देव तथा पितृगण को हविष अर्पण करता है

....

पृथ्वी पर अनुपमेय मंदिरों का निर्माण किया ....

जिसके सुंदर स्तंभ हैं ....

सुंदर वृक्ष (अंजीर आदि) पुष्प के भार से झुक गए हैं ....

भद्रार्य के संमुख ....

आकाश बादलों से घिरा ....

देव स्कंद तथा मातृदेवी ....

....

स्कंदगुप्त वट ग्राम में ३५ भाग

पिता माता का भाग ....

अग्रहार का तीन भाग

(दूसरा भाग)

परम भागवत महाराजाधिराज श्री स्कंदगुप्त ने अजपुर नगर.....

(विषय).....से आज्ञा प्रसारित की कि अमुक ग्राम का क्षेत्र स्थायी रूप से दान में दे दिया गया। जिसकी सूचना उपरिक, कुमारामात्य शौल्किक, गौल्मिक तथा अन्य निवासयों को दी जा रही है—

परमभागवत महाराजाधिराज श्री स्कंदगुप्त जो महाराजाधिराज कुमारगुप्त का पुत्र एवं उत्तराधिकारी था, जो (कुमारगुप्त) परमभागवत महाराजाधिराज चंद्रगुप्त तथा महादेवी ध्रुवदेवी से उत्पन्न हुआ था एवं उत्तराधिकारी था। वह राजा (चंद्रगुप्त) महाराज श्री गुप्त का प्रपौत्र,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाराज घटोत्कच का पौत्र महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त तथा लिच्छवि राजकुमारी कुमार देवी से उत्पन्न एवं उत्तराधिकारी महाराजाधिराज समुद्रगुप्त का पुत्र था। उसने (समुद्रगुप्त) समस्त राजाओं को पराजित किया था, उसका पराक्रम अतुलनीय था, जिसके यश ने चारों समुद्र के जल का पान किया है, जो कुबेर, बरुण, इंद्र तथा अंतक (यमराज) के सदृश है, जो कृतांत के परशु समान है, जिसने न्याय से अर्जित सहस्रों गाय का दान किया है, अश्वमेध का पुनः स्थापन करने वाला, (समुद्रगुप्त सम्राट् रहा)।

गढ़वा लेख

१४८वें विजय राज्य वर्ष में माघ मास एकीसवें दिन ....
पुण्य अभिवृद्धि के लिए बलभी सहित मंदिर का निर्माण किया गया ....
अनंतस्वामी की प्रतिमा स्थापित किया ....
गंध धूप पुष्प आदि तथा मंदिर के जीर्णोद्धार निमित्त बारह (दीनार) ....
....

भगवान् चित्रकूट स्वामी के समीप कोष्ठ (भवन).....को दिया गया।
जो व्यक्ति इस दान को विफल (नष्ट) करेगा वह पंच महापातक का भागी होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय कुमारगुप्त

सारनाथ प्रतिमा लेख

गुप्त राजाओं के १५४ वर्ष के पश्चात् जिस समय कुमारगुप्त शासन कर रहा था ज्येष्ठ मास के द्वितीया को भक्ति के साथ पूर्ण मनोयोग से यति अभय मित्र के पूजार्थ प्रतिमा (बुद्ध की) स्थापित हुई। माता-पिता एवं गुरु के पुण्य लाभ तथा अच्छे कार्यों की सिद्धि के लिए किया गया।

भितरी राजमुद्रा लेख

समस्त शत्रुओं को पराजित करनेवाला पृथ्वी पर जिस रथ का कोई भी बाधक न था, महाराज श्री गुप्त का प्रपौत्र, महाराज घटोत्कच का पौत्र महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त का पुत्र लिच्छवि राजकुमारी महादेवी कुमार देवी से उत्पन्न महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्त का पुत्र, उसकी साध्वी पत्नी अनंत देवी से उत्पन्न परम भागवत महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त का पुत्र एवं उत्तराधिकारी महादेवी ध्रुवदेवी से उत्पन्न महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त उसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी महादेवी अनंतदेवी से उत्पन्न महाराजाधिराज श्री पुरुगुप्त जिसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी महादेवी चंद्रदेवी से उत्पन्न महाराजाधिराज श्री नरसिंहगुप्त उसीका पुत्र तथा उत्तराधिकारी महादेवी मित्रदेवी से उत्पन्न परम भागवत महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुधगुप्त के अभिलेख

सारनाथ का प्रतिमा लेख

गुप्त शासन के १५७ वर्ष व्यतीत हो जाने पर जिस समय बुधगुप्त शासक था, वैशाख मास कृष्ण सप्तमी के दिन शाक्य मुनि बुद्ध की प्रतिमा अभयमित्र ने स्थापित की। यह दंड, छत्र एवं आसन (कमल का) से विभूषित है। माता-पिता, गुरु तथा लोक हित के लिए पुण्य लाभ के निमित्त सुंदर बुद्ध प्रतिमा स्थापित की गई।

बनारस स्तंभ लेख

संवत् १५९ मार्ग दिवस महाराजाधिराज बुधगुप्त के राज्य में पार्वरि का निवासी मार (?) की पुत्री तथा उसके पति ने इस शिलास्तंभ की स्थापना की।

दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख

संवत् १६३ आषाढ़ दिवस १३ परम दैवत परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री बुधगुप्त पृथ्वी पर शासन कर रहा था, उसके अनुगामी पुण्ड्रवर्धन भुक्ति का राज्यपाल (उपरिक महाराज) ब्रह्मदत्त प्रबंधकर्त्ता है। स्वस्ति। विश्वास पूर्वक पलाशवृंद के मुखिया, आठ कुलों के प्रमुख व्यक्तियों, ग्राम के अन्य कुटुंबी जन, चंडग्राम के ब्राह्मण आदि साधारण प्रजा-जन कुटुंबीगण का कुशल कामना करते सूचित करता है कि ग्रामिक, नाभक, माता-पिता तथा अपने पुण्य अभिवृद्धि के निमित्त ब्राह्मणों को ग्राम में भूमि-क्रय कर विक्रय नियमानुसार जिससे राजकीय कर या नकद द्रव्य का ग्रहण नहीं होता, बंजर भूमि को दान दिया जाय। इसलिए पुस्तपाल पत्रदास द्वारा निश्चित कर यह विज्ञापित किया जावे। विक्रय मर्यादा का पालन कर परमभट्टारक महाराज का अनुयायी पुण्य लाभ के निमित्त संपन्न करेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस बंजर क्षेत्र की सीमा बंधन करके दो दीनार प्रति नाभक हस्त के दर से एकत्रित किया जाय तथा शेष स्थायपाल (पहरेदार आरक्षी) कपिल एवं श्री भद्र से ग्रहण किया जावे सभी प्रकार के 'कर' से मुक्त 'भूमिकर अग्राह्य, स्थानन्तरीयण न होकर बंजर क्षेत्र के एक कुल्यवाप जो वायिग्राम (वैग्राम) के उत्तर सीमा पर स्थित तथा ग्राम के रीति अनुकूल दक्षिण-पूर्व दिशा में स्थित है ग्राम के प्रमुख के कार्यालय तथा कुटुंबियों द्वारा प्रति आठ नव या नव नल माप से मापने पर चारों सीमाओं को निश्चित कर नागदेव के लिए दिया जाय (दान में)।

उसके अनंतर काल में उसका (दान का) समुचित पालन किया जाय।

महर्षि ने कहा है—

स्वयं प्रदत्त अथवा दूसरे द्वारा दान में दिए क्षेत्र को वापस लेता है, वह पितरों सहित कृमि बनकर विष्टा में निवास करता है। अनेक राजाओं सगर आदि ने पृथ्वी दान में दिया है। जिसने भूमि को दान किया उसका फल (पुण्य) उसको मिलेगा।

भूमि का दान-कर्त्ता साठ हजार वर्ष तक स्वर्ग का उपभोग करता है। उसके वाचक तथा हरण करनेवाला उसी अवधि तक नरक में रहता है।

दामोदरपुर ताम्रपट्ट

फाल्गुन १५ परमदेवत परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री बुद्धगुप्त पृथ्वी का स्वामी था उसके सामंत पुंड्रवर्धन का उपरिक महाराज (राज्यपाल) जयदत्त के शासन में कोटिवर्ष विषय (जिला) में उसके द्वारा नियुक्त गण्डक के कार्यालय के अन्य कर्मचारीगण नगर श्रेष्ठी रिभुपाल सार्थवाह बसुमित्र, प्रथक कुलिक वरदत्त, प्रथम कायस्थ विप्रपाल के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा गया तथा श्रेष्ठी रिभुपाल ने विज्ञापित किया कि इस स्थान से समीप (हिमवच्छि) कोकामुख स्वामि (विष्णु) को चार कुल्यवाप श्वेत वराह स्वामि (भगवान विष्णु का अवतार) को सात कुल्यवाप दान के फल एवं पुण्य वृद्धि के लिए डोंगा ग्राम में पहले ही स्थानान्तरीय न होनेवाले क्षेत्र को मैंने दिया है। उसी के समीप भूमिपर कोकामुख स्वामि तथा श्वेत वराह स्वामि के मंदिर में दो प्रतिवेशी दीवाल निर्माण करना चाहता हूँ। उनके भवन निमित्त (निर्माण क्षेत्र) भूमि क्रय नियमानुसार देना चाहता हूँ। इस कारण पुस्तपाल विष्णुदत्त, विजय नन्दिन, स्थानुनन्दिन द्वारा सीमा निबंधन कर समीप में ही (हिमवच्छिरवरे) उन दोनों कोकामुखस्वामि एवं श्वेत वराहस्वामि के मंदिर में भंडार गृह निर्माण के निमित्त स्थानान्तरीय न होनेवाले ग्यारह कुल्यवाप क्षेत्र को दिया जायेगा। उसके समीप भूमिपर निवास गृह क्षेत्र तीन दीनार कुल्यवाप की दर से विक्रय के नियमानुकूल बेचा जावे

(दूसरी ओर)

तालाब, पूर्व दिशा में रिभपाल पुष्करिणी दक्षिण सीमा पर..... दिया गया। इस काल के अनंतर देव भूमिका (भक्तिपूर्वक) सद्व्यवहार (प्रयोग) किया जाय।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यास ने कहा है कि स्वयं प्रदत्त या दूसरे द्वारा दान की गई भूमि का जो अपहरण करेगा वह पितरों के साथ कृमि बनकर विष्टा में निवास करेगा।

राजाओं में महान श्रेष्ठ युधिष्ठिर पूर्व काल में ब्राह्मणों को दी गई भूमि की रक्षा करो। दानदेने से दान भूमि की रक्षा श्रेयस्कर होता है।

राजाओं में सगर तक लोगों ने पृथ्वी का दान किया है। जिसने भूमिदान किया उसे ही पुण्यफल की प्राप्ति हुई।

एरण स्तंभ लेख

चतुर्भुजी विष्णु की जय हो, जिनका शंख चौडे चारों समुद्र का प्रतीक है, जो उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय के कारण हैं, गरुड़ जिनका पताका है।

१६५ वर्ष में, जब बुधगुप्त पृथ्वी पर शासन कर रहा था, आषाढ़ मास शुक्ल-पक्ष द्वादशी को, सुरगुरु दिवस के समय, सं० १६५ (अंकों में) महाराजा सुरश्मिचंद्र लोकपाल के गुण सहित कालिंदी एवं नर्वदा के मध्य पृथ्वी का (भूभाग) शासन कर रहा था। पूर्व कथित दिन, तिथि, मास तथा वर्ष महाराजा मातृविष्णु, जो भगवान का परम-भक्त था, विधाता की कृपा से राज्य-श्री लक्ष्मी ने जिसे अपना पति बनाने की स्वयं इच्छा प्रकट की, जिसका यश चारो समुद्र पर्यन्त विस्तृत हो गया था, जिसे अक्षीण कीर्ति एवं वैभव प्राप्त था, जिसने (मातृविष्णु) अनेक शत्रुओं को युद्ध में पराजित किया था।

वह इंद्र विष्णु का प्रपौत्र था जो स्वकर्म में संलग्न, यज्ञों को संपन्न करनेवाला, स्वाध्यायी एवं मैत्रायिनी शाखा का अनुयायी तथा ब्राह्मण तपस्वी रहा, उसीके पुत्र वरुण विष्णु का वह (मातृविष्णु) पौत्र था जिसने पिता (इंद्रविष्णु) के अनेक गुणों का अनुसरण किया था, उसीके आत्मज हरिविष्णु का मातृविष्णु पुत्र था। जिसमें (हरिविष्णु) पिता के विशिष्ट गुण वर्तमान थे तथा अपने वंश की वृद्धि में निरत रहता था।

मातृविष्णु तथा उसके अनुज आज्ञाकारी धन्यविष्णु को महाराजा (बुधगुप्त) ने स्वीकृत किया था। उसके द्वारा पितरों के पुण्य कर्म की अभिवृद्धि के निमित्त भगवान् जनार्दन का ध्वजस्तंभ निर्मित किया गया। सर्वप्रजा, गो, ब्राह्मण की ऐश्वर्य की वृद्धि हो।

गुणैघर ताम्रपत्र लेख (वैन्यगुप्त)

स्वस्ति। क्रिपुर जयस्कंधावार से, अश्व हस्ति, महान जलयान सहित—भगवान् महादेव का भक्त महाराज श्री वैन्यगुप्त ने यह आज्ञा प्रसारित की। सभी के स्वास्थ की कामना करते, अपने अधीनस्थ लोगों को सूचित किया। सभी को ज्ञात है कि अपने तथा माता पिता के पुण्य वृद्धि के निमित्त अपने दास महाराजा रुद्रदत्त के अनुरोध पर कांते उदक जो उत्तरी मंडल में स्थित है, पाँच खंडो में विभाजित ग्यारह पाटक बंजर भूमि का दान दिया गया। इसका उल्लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ताम्रपत्र में किया गया जिसका उपयोग (दानग्राही) करेगा। उस अग्रहार आय से महायान शाखा के आचार्य शांतिदेव द्वारा स्थापित वैवर्तिक संघ में (महायान शाखा) बुद्ध को सदा त्रिकाल (सुवह, दोपहर, संध्या) वेलापर समर्पित गंध, पुष्प, दीप, धूप आदि का प्रबंध किया जावे। उस आश्रम विहार में आर्य अवलोकितेश्वर को (दान दिया गया)। उस विहार का निर्माण आचार्य के लिए (ब्राह्मण) राजा ने किया तथा उस अग्रहार से भिक्षुसंघ के चीवर, भोजन, शयनासन, आसन, औषधि आदि का प्रबंध किया जाय एवं विहार के खंडित स्फुट होने पर मरम्मत किया जाय। यह (दान) वेद स्मृति के अनुसार किया गया। उस पुण्य कर्म का फल संसार तथा इसके पश्चात् श्रुतिस्मृति के अध्ययन कर प्राप्त होगा। श्रुतिस्मृति में कथित दान का प्रकरण अज्ञात है। उस दान भूमि का पालन सब लोग कठिनाई से भी करें तथा शत्रु राजा भी दानकर्त्ता के वचन के गौरव तथा यश की स्थिति के कारण, अपने पुण्य के निमित्त भी उस अग्रहार का आदर एवं पालन करे। विहार में प्रदत्त पाटक भूमि की (दान की) स्वीकृति दें। भगवान् पराशर के आत्मज वेदव्यास ने भी गीताश्लोक (धर्मश्लोक) के रूप में कहा है—दानकर्त्ता साठ हजार वर्ष स्वर्ग में निवास करता है तथा उसके आक्षेप करने वाला (वापस लेनेवाला) उस अवधि तक नरक भोगता है। स्वयं प्रदत्त भूमि या अन्य व्यक्ति द्वारा दान भूमि का जो वापस लेता या हरण करता है, वह पितरों के सहित कृमि बनकर विष्टा में रहता है। राजाओं में महान श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर, पूर्व राजाओं द्वारा ब्राह्मणों को प्रदत्त दानभूमि की रक्षा करें, क्योंकि दान देने से दान को रक्षा श्रेयस्कर होता है। वर्तमान संवत् १८८, पौषमास के २४वें दिवस दूत, महाप्रतीहार, महापीलूपति, पाँच कार्यालयों के अक्ष्यक्ष, पाठपुर के उपरिक महाराजा श्री महासामंत विजयसेन ने एग्यारह पाटक भूमि दान की आज्ञा प्रसारित की, यह आदेश कुमारामात्य रेव्वज्जस्वामी भामह वत्स भोजिक को सूचित किया गया। यह (ताम्रपट्ट) सांधिविग्रहिक करण कायस्थ नरदत्त द्वारा लिखा गया।

उस भूमि का पहला खंड में सात पाटक तथा नव द्रोणवाप भूमि मापी गई जिसके पूर्वी सीमा पर गुणिकाग्रहार ग्राम (गुणैघर) एवं विष्णु वर्धकि (अभियंता) का क्षेत्र (स्थित है)। दक्षिणी सीमा पर मिदुविलल की भूमि एवं राजविहार का क्षेत्र स्थित है। पश्चिमी सीमा पर सूरीनाशोत्मपूर्ण का क्षेत्र स्थित है तथा उत्तरी सीमा पर दोषीभोग का तालाब एवं वम्पियक तथा आदित्य बंधु के क्षेत्र स्थित हैं।

भूमि के दूसरे खंड जिसका क्षेत्रफल अट्ठाइस द्रोणवाप है, की पूर्वी सीमा पर गुणिकाग्रहार (गुणैघर) ग्राम की स्थित है। दक्षिण सीमा पर पक्वविलल का क्षेत्र, पश्चिमी सीमा पर राजविहार का क्षेत्र तशा उत्तरी सीमा पर वैद्य का क्षेत्र स्थित हैं।

भूमि के तीसरे खंड जिसका माप तेईस द्रोणवाप है, के पूर्वी सीमा पर··· ····· दक्षिण सीमा पर, अमुक····· क्षेत्र की सीमांत, पश्चिम सीमा पर जोलारी का क्षेत्र, तथा उत्तरी सीमा पर नागी जोडक का क्षेत्र स्थित हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमि के चौथे खंड (जो माप में तीस द्रोणवाप है) के पूर्वी सीमा पर बुद्धक का क्षेत्र, दक्षिण ओर कलक का क्षेत्र पश्चिमी सीमा पर सूर्य्य का क्षेत्र, तथा उत्तरी सीमा पर महीपाल के क्षेत्र स्थित हैं।

पांचवे खंड जो माप में एक तथा तीन चौथाई पाटक है, के सीमा पर पूर्व में खंड बिडुग्गुरिक का क्षेत्र, दक्षिण सीमा पर मणिभद्र का क्षेत्र, पश्चिमी सीमा पर यज्ञरात का क्षेत्र तथा उत्तरी सीमा पर नागडदक ग्राम की सीमा स्थित हैं।

विहार तलहटी भूमि की पूर्वी सीमा चूडामणि एवं नगरश्री के मध्य की खाई, दक्षिण सीमा पर गणेश्वर नामक दलदली तालाब है जो नौकाओं के खाई से संबंधित है, पश्चिमी सीमा पर प्रद्युम्नेश्वर मंदिर का क्षेत्र स्थित है, उत्तर में प्रडामार नामक नौका की खाई, स्थित हैं। इस अग्रहार को जलपूर्ण वंजर भूमि, जिससे किसी प्रकार का 'कर' नहीं प्राप्त होता तथा विहार में जाने का मार्ग निश्चित है, उस (वंजर भूमि) की पूर्वी सीमा पर प्रद्युम्नेश्वर मंदिर की भूमि स्थित है, दक्षिणी भाग पर बौद्ध भिक्षु आचार्य जितसेन के विहार की भूमि है। पश्चिमी सीमा स्वात नदी तथा उत्तर दिशा में दंड का तालाव स्थित है। वर्ष १८८, पौष मास २४वां दिन।

नोट—शांतिदेव महायान शाखा के प्रसिद्ध आचार्य थे जिन्होंने शिक्षा समुच्चय तथा वोधिचर्यावतार नामक ग्रंथों की रचना की थी।

भानुगुप्त कालीन एरणस्तंभ लेख

संवत् १९१ श्रावण कृष्ण सप्तमी वह नरेश ·· राज ···नाम से प्रसिद्ध था। तथा··· उसके वंश में उत्पन्न हुआ था। उसका अति शूर वीर पुत्र माधव नाम से विख्यात था।

उसका गोपराज नामक पुत्र था जो श्रीसंपन्न तथा विख्यात पुरुष था। वह शरभराज का दौहित्र तथा संप्रति अपने वंश का तिलक था। श्री भानुगुप्त एक जगत प्रसिद्ध राजा हुआ था जो प्रतापी नरेश तथा पार्थ के समान शूर था। उसी के साथ गोपराज मित्रता के भाव से यहाँ (एरण) आया था। वह इंद्र के समान शक्तिशाली था। विख्यात युद्ध (हूणों के साथ) में लड़ता वह मर गया। उसकी पतिव्रता, प्रिया, सुरूपा, भार्या पति के साथ संलग्न होकर अग्निराशि में प्रविष्ट हो गई यानी सती हो गई।

दामोदरपुर ताम्रपत्र (गु० स० २२४)

कोटिवर्ष कार्यालय के प्रमुख का
(पहली ओर)

संवत् २२४ भाद्र दिवस ५ में परमदैवत परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री····· गुप्त पृथ्वी पर शासन कर रहा था। उसके अनुगामी सामंत पुण्ड्रवर्धन भुक्ति का राज्यपाल (उपरिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाराज) राजकुमार देवभट्टारक द्वारा नियुक्त कोटिवर्ष विषय का जिलाधीश (विषयपति) स्वयंभूदेव, उसके कार्यालय के प्रमुख तथा नगर का श्रेष्ठी विभुपाल, सार्थवाह स्थाणुदत्त, प्रथम कुलिक मतिदत्त, प्रथम कायस्थ स्कंदपाल के सम्मुख निवेदन अयोध्या के कुलपुत्र अमृतदेव द्वारा सूचित किया गया कि विषय (जिला) के अन्तर्गत जिससे 'भूमि कर' नहीं मिलता तथा बंजर भूमि को तीन दीनार कुल्यवाप के दर से क्रय करने की अनुमति दी जाय । इस तरह मुद्रा से खरीदकर (भूमि की आय का) माता-पिता के पुण्य वृद्धि के लिए भगवान श्वेतवराह स्वामी के मंदिर में पूजा-निमित्त गंध, धूप, पुष्प, प्रापण, मधुपर्क, दीप दान में उपयोग किया जाये, वलिचरुसत्र के लिए व्यय हो तथा मंदिर के खंडित होने पर मरम्मत किया जाय ।

भूमि को स्थानांतरीयण न करने के नियमानुसार ताम्रपट्ट पर निबंधित किया जावे । प्रथम पुस्तपाल नरनन्दिन, गोपदत्त, भट्टनन्दिन आदि उसे जाँचकर धर्मानुकूल विज्ञापित करे । यदि विषयपति (जिलाधीश) उसका विरोध करे तो परमभट्टारक (राजा) उसका निर्णय करेगा ।

(दूसरी ओर)

इस प्रकार का निर्णय हो जाने पर अमृतदेव से पंद्रह दीनार ग्रहण कर स्वच्छन्द पाटक के समीपवर्ती लवंगसिकाया के निवास भूमि में दो कुल्यवाप, साटुवनाश्रमक समीप एक कुल्यवाप परस्पतिकाय अंतर्गत पाँच कुल्यवाप उसके उत्तर में जम्बू नदी से पूर्व एक कुल्यवाप पूरणवृन्दिक-हरी ग्राम के पूर्व दिशा में एक कुल्यवाप इस वंजर क्षेत्र तथा कृषि भूमि का पाँच कुल्यवाप कर रहित नियमानुकूल भगवान् श्वेतवराह स्वामी निमित्त शाश्वतकाल उपयोग के लिए दिया गया । उस काल के पश्चात् लोगों द्वारा देवदान का अनुपालन करना चाहिए ।

भूमिदान संबंधी श्लोक भी हैं । स्वयं प्रदत्त या दूसरे द्वारा दी गई दान भूमि का जो हरण करेगा, वह पितरों सहित कृमि बन कर विष्टा में निवास करेगा ।

राजाओं में सगर तक सभी ने दान किया है । जिसने जिस रूप से भूमिदान किया, उसे वैसा फल प्राप्त होगा ।

दानकर्त्ता साठ हजार वर्ष तक स्वर्ग का उपयोग करता है तथा दान का हर्त्ता उसी अवधि तक नरक में रहता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर-गुप्त वंशी अभिलेख

आदित्य सेन का अफसद लेख

परम विख्यात राजा कृष्णगुप्त पर्वत के समान था, जिसके ढाल (Slope) पर सहस्र हाथियों का झुण्ड बना रहता था, विद्याधर समीप में रहते, विद्वानों से घिरा रहता था, स्थित तथा हैवंत समान ऊँचा (शरीर) हाथ शेर के सदृश (शक्तिशाली) थे। हाथी के सदृश (बलवान) शत्रुओं के मस्तक को चूर करने वाला अनेक शत्रुओं पर विजय प्राप्त किया।

अंधकार को नाश करनेवाला पूर्ण चंद्र के समान उसके पुत्र परम विख्यात हर्षगुप्त था। उसके धनुष से बाणों की वर्षा होती रहती जो शत्रुओं के अश्रुधारा का कारण था, विजय लक्ष्मी उसके साथ थी, अनेक समरों में विजयी था, युद्ध के अनेक चिह्न उसके वक्षस्थल पर विराजमान थे।

उसका पुत्र जीवितगुप्त (प्रथम) राजाओं में मुकुट सदृश शत्रुओं के ललनाओं के कमलमुख को मलिन करने वाला, समुद्र के शीतल तथा ठढ़े तट के निवासी कदली स्तम्भ से आच्छादित घूमते हाथियों के सूड़ों से आरक्षित तथा हिमालय के बर्फ की ठंढी हवाओं से मुक्त शत्रुओं के भयरूपी ज्वर का कारण था। मनुष्यों को उसके कार्यों से आश्चर्य होता था। जैसे हनुमान पर्वत लाँघकर लंका पहुँच गए।

उस राजा को कुमारगुप्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जैसे शिव के पुत्र कार्तिकेय (मोरवाही)। ईशान वर्मा की कीर्ति (लक्ष्मी के लिए) समुद्र मंथन के सदृश मथ डाला (यानी परास्त किया) (वह) राजाओं में चन्द्रमा के समान, उसके वायु के तूफान (सेना) के कारण उड़ती हुई धूल से कदली स्तंभ के पत्ते भर गए थे। उसके सैनिकों ने मत्त हाथी घूमते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुए जल में प्रवाह पैदा किया। वीरता में विख्यात, कार्यों से प्रसन्न, सत्य का पालनकर्त्ता, वैभव, लक्ष्मी से युक्त प्रयाग जाकर पुष्पमाला से सुसज्जित होकर अग्नि में प्रवेश कर गया जो गोबर की सहायता से जली आग थी।

उसका पुत्र दामोदर गुप्त था। दामोदर के सदृश उसने शत्रुओं को नष्ट किया। मौखरियों के हस्तिसेना को चूर किया जो हूणों को परास्त करने के लिए उद्यत रहा। वह युद्ध में मारा गया। स्वर्ग में देवकन्याओं के मध्य वचन दिया; प्रेम के कारण पुनर्जीवित किया गया। उसने अनेक ब्राह्मण युवती कन्या को वस्त्रालंकार से युक्त विवाह में दान (विवाह का व्यय) दिया।

उसने अग्रहार ग्राम दान में दिया। समाज में उसका पुत्र वीर प्रसिद्ध योद्धा महासेन गुप्त था। सुस्थित वर्मन को, जिसका यश लोहित्य नदी के किनारे गाया जाता था, जिसका शीतल किनारा प्रफुल्ल नागद्रुम लता से आच्छादित होने के कारण शान्त था, पराजित किया गया।

जैसे माधव (वसुदेव) के पैरों को श्री (लक्ष्मी) प्रक्षालन करती है, उसी के सदृश (माधव) उसका (महासेन) का पुत्र माधवगुप्त पैदा हुआ। श्री उसके पैरों की पूजा करती थी। युद्ध-क्षेत्र में योद्धाओं का अग्रणी था। चरित्रवान तथा गुणों का आगार था। धन के एकत्रित करने या व्यय करने में अग्रणी, श्रीमान्, सत्य तथा विद्या का घर था। वह धर्म सेतु के सदृश था। हजारों व्यक्ति उसकी प्रशंसा करते रहे। हाथों में चक्र चिह्न युक्त तथा शत्रुओं के दमन के निमित्त तलवार, धनुषवाण से भी युक्त था। शत्रु-दमन के पश्चात प्रजा में हर्षोल्लास उत्पन्न करता तथा वह सदा राजा हर्षदेव के साथ रहने का इच्छुक था।

उसका पुत्र परम वैभवशाली आदित्यसेन था जिसे राजाओं का शिरोमणि कह सकते हैं। उसने शत्रुओं के हाथियों के मस्तक से मणि निकाला। शत्रुओं के नाश से उसकी ख्याति की अभिवृद्धि हुई। युद्ध में उसकी तलवार से शत्रुओं के स्वेतमणि की तरह पसीना आ गया था। और उसे झण्डे के वस्त्र से पोछते रहे। शत्रुओं के सिर से मणियाँ पृथक् होकर तलवार से चिपक गई थीं। शत्रुओं के मत्त हाथियों के झुंड को नष्ट किया जिनके मस्तक से चूने वाले रस पर भ्रमर आकृष्ट हो रहे थे, जो सदा प्रसन्न होकर हँसा करता था। उसकी तपस्वी पत्नी सद्-गुणों से पूर्ण थी। जो शत्रुओं के विनाश का कारण था। शत्रुओं को विनाश करने में विमुख तलवार में भी शक्ति का संचार करता था जिसके छत्र से विश्व ढक गया, जिसका हाथ शत्रुओं के मातंग-मस्तक को विदीर्ण करने में लगा रहता था, जिसका पैर शत्रुओं के केश-ग्रंथि से स्पर्श किया जाता था। लक्ष्मीवान् तथा शत्रु के विनाश से उसकी कीर्ति बढ़ गई थी।

विष्णु का सुन्दर मंदिर बनाया गया, जिसकी प्रभा संसार में व्याप्त थी। वह धन संग्रह करने में क्रोध की भावना रखता, जिसके क्रोध से शत्रुओं को स्त्रियाँ समुद्र पार निवास करने की इच्छा रखती थीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसकी माता महादेवी श्रीमती ने धार्मिक शिक्षा संस्थान का निर्माण किया जो देव-भवन के सदृश था। उसे दान में दिया गया।

उसकी पत्नी कोणदेवी ने अपनी तपस्या के कारण सुन्दर कासार (तालाब) बनवाया जिसका जल जनता के लिए पीने योग्य (पेय) था। जिस कासार की लहर शंख तथा चंद्रमा के सदृश सफेद थी तथा जिसके जल में मगर तथा मछलियाँ दीख पड़ती थीं।

जिस समय तक ब्रह्मा, सरस्वती, विष्णु, चन्द्रमा, महादेव तथा पृथ्वी (शेषनाग) पर स्थिर रहे, मेघ में विजली विद्यमान रहे, तव तक आदित्यसेन की कीर्ति फैली रहे।

यह लेख सुन्दर विकट-कुटिल अक्षरों में लिखा गया, गौड़ देश निवासी सूक्ष्म शिव ने उत्कीर्ण किया, जो धार्मिक तथा बुद्धिमान् व्यक्ति था।

शाहपुर लेख

चंद्रमा एवं पृथ्वी के समकालीन यह दिया गया है (दान किया गया है) ओम्। संवत् ६६ मार्ग शुदि सप्तमी इस दिन संवत् मास से जो वर्णित है श्री आदित्यसेन देव के राज्य में बलाधिकृत सालपक्ष द्वारा यह धार्मिक दान नालंदा महाग्रहार में प्रतिष्ठित किया गया। अपने तथा माता पिता की पुण्य वृद्धि के लिए।

मंदर पर्वत अभिलेख

ओम्। परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री आदित्यसेन की परमभट्टारिका महादेवी श्रीमती कोण देवी ने इस तालाव का निर्माण करबाया।

विष्णुगुप्त का मंगरांव लेख

ओम्। महाराजाधिराज परमेश्वर श्री विष्णु गुप्त देव के वैभवपूर्ण वर्ष १७वें साल (या ११७ साल) में श्रावण शुदि द्वितीया मित्र केशवदेव के मंदिर से संबंधित पुष्पवाटिका में चुंदस्कीला के तपोवन में कुटुक देश का निवासी, जो अपने सिद्धांत में अनुरक्त हैं, जिसका शरीर शिव संबंधी पवित्र स्थानों के जल से पवित्र हो गया है, अंगार ग्राम के कुटुंबियों से क्रय करके एक पल तेल को भगवान् श्री सुभद्रेश्वर के दीपक निमित्त दान किया है, जो पृथ्वी, चंद्र एवं सूर्य के समय तक (शाश्वत रूप में) स्थिर रहे, जो इस व्यवस्था को नष्ट करेगा, वह पाप का भागी होगा। देवदत्त ने क्रय लेख संक्षिप्त किया। सूत्रधार कुलादित्य ने उत्कीर्ण किया।

जीवित गुप्त द्वितीय का देवबरनार्क लेख

गोमतीकोटक नामक जयस्कन्धावर से, जहाँ तीनों शक्तियाँ— जहाज, हस्तिन तथा अश्व द्वारा विजय प्राप्त हुआ है—माधवगुप्त नामक यशस्वी नरेश का कैम्प (सेना का निवास) था। उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी आदित्यसेन परमभट्टारिका महादेवी श्रीमती देवी से उत्पन्न हुआ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। उसका पुत्र तथा उसका उत्तराधिकारी भगवान महेश्वर का परमभक्त परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर देवगुप्तदेव परमभट्टारिका रानी कोण देवी से उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी महेश्वर (शिव) का भक्त परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री विष्णुगुप्तदेव परमभट्टारिका महारानी श्री कमल देवी से पैदा हुआ था। उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी शिव का भक्त परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर जीवितगुप्त (द्वितीय) परमभट्टारिका महारानी इज्जा देवी से उत्पन्न हुआ था, उसने स्वस्थ दशा में दान पथ की आज्ञा प्रसारित की तलावाटक, दूत, सीमाकर्मकर राजपुत्र, राजामात्य, महादण्डनामक, महाप्रतिहार, कुमारामात्य, राजस्थानीय उपरिक, चौराद्धरणिक, दाण्डिक, दण्डपाशिक, वारुणिक ग्राम निवासी को आज्ञा दी। उस ग्राम किशोर वाटक का (दान स्वीकार किया) जो नगर भुक्ति तथा वालवि विषय में स्थित है। जो उस भूमि का लाभ उठाते हैं, उसके समीपवर्ती व्यक्तियों, ब्राह्मण, महत्तर (मुखिया) को (आज्ञा प्रसारित की गई) वरुणस्वामी के स्थान से संवद्ध सूर्यामित्र (भोजक) को भी (कहा गया)। वह ग्राम (दान दिया गया) परमेश्वर वालादित्य द्वारा पूर्व में ही (प्रदत्त था) पवित्र संस्था को दानपत्र द्वारा दिया गया था। जिस पर भोजक हंस मित्र ने अधिकार स्थापित किया। पिछले समय में परमेश्वर सर्ववर्मन तथा परमेश्वर अवन्तिवर्मन के अधिकार में रहा, उसे महाराजाधिराज की आज्ञा पत्र द्वारा स्वीकृत किया गया। अधुना भोजक दुर्घमित्र को सौंप दिया गया। (उस भूमि के लाभ निमित्त आज्ञा दी गई) सभी लोगों को राजा की आज्ञा प्रसारित की गई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामंतों के अभिलेख

बेंग्राम ताम्रपत्र (गु० स० १२८)

स्वस्ति। भट्टारक (राजा) के आज्ञाकारी कुमारामात्य कुलवृद्धि पंचनगरी (विषय का नाम) से सब लोगों के कुशल क्षेम पूछ कर, विषय के अधिकारी, ग्राम के कुटुंबीगण, ब्राह्मण तथा वायिग्राम से संबंधित त्रिवृता एवं श्री गोहली स्थानों से संवद्ध कर्मचारियों को सूचित करता है—

उस स्थान के दो परिवार प्रमुख व्यक्तियों भोयिल तथा भास्कर द्वारा आवेदन किया गया कि हमलोगों के पिता शिव नंदिन द्वारा निर्मित्त गोविंद स्वामिन का मंदिर को पर्याप्त दान नहीं दिया गया है—इस विषय में भूमि विक्रय के प्रचलित भाव, बंजर भूमि दो दीनार प्रति कुल्यवाप है जिससे सरकार को कोई भूमिकर नहीं उपलब्ध होता है वह भूमि अक्षय नीवीधर्म के अनुसार (यानी स्थायी रूप में) खरीदी जा रही है जब तक चंद्रमा, सूर्य, तारागण वर्तमान हैं तथा सभी प्रकार के 'कर' से मुक्त रहेगा।

भोयिल को त्रिवृता (स्थान) की बंजर भूमि का तीन कुल्यवाप श्री गोहली में कृषि योग्य एक द्रोणवाप भूमि निवास (तल) तथा मार्ग (वाटक) निमित्त (दिया गया) भास्कर के लिए कृषि योग्य एक द्रोण वाप भूमि (दी जाय) जिसकी छः दीनार तथा आठ रूपक की आय प्राप्त कर भगवान् गोविंद स्वामिन के मंदिर को खंडित या नष्ट होने पर मरम्मत की जाय। उसी (आय) से (मंदिर में) दैनिक पूजा निमित्त गंध, धूप, दीप, सुमन का प्रबंध किया जाय।

ऐसा सूचित किया जाता है कि पुस्तपाल दुर्गादत्त एवं अक्कंदास ने यह निश्चित किया है कि इस विषय में बंजर भूमि विक्रय का प्रचलित भाव दो दीनार प्रति कुल्यवाप ज्ञात है जिससे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किसी प्रकार 'राजकीय कर' प्राप्ति की संभावना नहीं है उसे विक्रय किया जाता है जब तक चंद्रमा, सूर्य, तारागण वर्तमान रहें। इस प्रकार के बंजर भूमि के विक्रय से राजा को किसी प्रकार की हानि (कर रहित) की संभावना नहीं है, अपितु ऐसे पुण्य कार्य से राजा को धर्म के छठे भाग के लाभ की उपलब्धि होगी। अतएव वह भूमि विक्रय में दी जावे। इस तरह छः दीनार तथा आठ रूपक (रुपया) भोयिल एवं भास्कर से प्राप्त कर भगवान् गोविंद स्वामिन के मंदिर के निमित्त भोयिल को त्रिवृता स्थान के अंतर्गत) बंजर भूमि का तीन कुल्यवाप और श्री गोहिली का कृषि भूमि एक द्रोणवाप दिया (बेचा) जाता है। भास्कर को उसी कृषि क्षेत्र का एक द्रोणवाप भूमि दिया गया। अक्षय नीवि (स्थायी रूप में) के अनुसार ताम्रपट्ट द्वारा (भूमि) दी गई। विक्रय की कुल भूमि तीन कुल्यवाप तथा दो द्रोणवाप (निश्चित हुई — कुल्य = ३, द्रो = २)।

इसलिए उन (दोनों व्यक्तियों) को विवाद रहित भूमि की चौहद्दी स्थिर कर स्थायी तरह से भूसा एवं कोयले का चिन्ह देकर (दिया जाय) ८ × ९ नल (दर्वीकर्म्म का हाथ) के सहारे उसका क्षेत्रफल स्थिर किया जाय। उस स्थान पर कृषि का कोई विरोध न होगा और सदा के लिए (शाश्वत रूप से) अक्षय नीवि धर्म के अनुसार सुरक्षित किया जायेगा। वर्तमान एवं भविष्य के शासनाधिकारी इस कार्य की मर्यादा को धार्मिक कार्य समझ कर रक्षा करेंगे।

भगवान् महात्मा वेद व्यास ने कहा है कि अपनी दी हुई या अन्य द्वारा दान में दी गई भूमि को जो हानि पहुँचावेगा वह पितरों सहित कृमि बनकर विष्ठा में निवास करेगा।

जो भूमिदान करता है वह छः हजार वर्ष तक स्वर्ग में रहता है तथा उसे नष्ट करने वाला नरक गामी होगा। महान् राजाओं में महान् युधिष्ठिर पूर्व में दी गई दान भूमि की रक्षा करें। पालन करना श्रेष्ठ कार्य है। संवत् १२८ में माघ दिवस १९ (के दिन उत्कीर्ण किया गया)।

पहाड़पुर ताम्रपत्र लेख

स्वस्ति। पुण्ड्रवर्धन के आयुक्त (जिलाधीश) तथा नगर सभा के नगर श्रेष्ठी तथा कार्यालय के अन्य पदाधिकारियों के सम्मुख दक्षिणांशक वीथी नागिरट्ट मंडलांतर्गत वटगोहली के समीप पलाशाट्ट, पृष्टिभपोत्तक, गोषाटपुंजक तथा नागिरट्ट के पार्श्व नित्वगोहाली ग्रामों के निवासीगण, ग्राम प्रमुख (मुखिया) तथा कुटुंबियों के कुशल कामना करते हुए सूचित किया गया तथा आज्ञा प्रसारित की गई कि ब्राह्मण नाथ शर्मा एवं उनकी पत्नी रामी सभी नगर सभा के प्रमुख को निवेदन करती हैं कि दो दीनार प्रति कुल्यवाप के दर से शाश्वत रूप में अक्षय नीवि रीति से उपयोग के निमित्ति बंजर भूमि के क्रय को आज्ञा दी जावे तथा डेढ़ कुल्यवाप के बदले तीन दीनार जमा करने की अनुमति दें।

इससे अपनी पुण्य की अभिवृद्धि के लिए वह गोहली में प्रतिष्ठित विहार के प्रमुख जैन साधु, जो काशी के पंचस्तूप निकाय के अनुयायी हैं, आचार्य गुहनन्दिन एवं शिष्य प्रशिष्य द्वारा प्रतिस्थापित विहार में भगवान् अर्हत (महावीर) के पूजा निमित्ति गंध, धूप, पुष्प तथा दीप और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विहार में निवास स्थान के निर्माण का प्रबंध होगा। अतएव वटगोहली के निवास भूमि का डेढ़ कुल्यवाप मात्र, पृष्ठिभपोत्तक ग्राम में चार कुल्यवाप, गोषाट पूंजक ग्राम में स्थित चार कुल्यवाय तथा मूल नागिरट्ट मंडल अंतर्गत नित्वगोहली ग्राम के ढाई कुल्यवाप क्षेत्र के क्रय तथा शाश्वत रूप में उपयोग निमित्त आवेदन किया गया था। प्रथम पुस्तपाल दिवाकर नंदिन, पुस्तपाल धृतिविष्णु, विरोचन, रामदास, हरिदास, शशिनंदिन, सुप्रभ, मनुदत्त आदि के स्वीकृति के लिए (कहा गया) कि ब्राह्मण नाथ शर्मा तथा उसकी पत्नी रामी दो दीनार प्रति कुल्यवाप की व्यवहारिक दर से अक्षय नीवि रीति के अनुसार तथा स्थायी उपयोग के लिए भूमि (क्रय करना चाहते हैं)।

जो (भूमि) पुण्ड्रवर्धन के वटगोहली जैन विहार जहाँ काशी के पंचस्तूप कुल निकाय के अनुयायी जैन साधु गुहनंदिन तथा शिष्य प्रशिष्य द्वारा विहार में अर्हंत के पूजा गंध, धूप, पुष्प, दीप आदि तथा निवास के निर्माण के लिए प्रबंध होगा। उसीलिए वटगोहली की निवास भूमि का डेढ़ कुल्यवाप क्षेत्र पृष्ठिमपोत्तक ग्राम के चार कुल्यवाप, गोषाटपुंजक ग्राम अंतर्गत चार कुल्यवाप तथा मूल नागिरट्ट मण्डलान्तर्गत निटगोहली ग्राम के ढाई कुल्यवाप क्षेत्र का विक्रय किया जाय। उस भूमि से परमभट्टारक राजा का कोई विरोध नहीं है। कुछ 'भूमि कर' के अतिरिक्त राजा को धर्म कार्य (पुण्य) का छठा भाग भी मिलेगा। ब्राह्मण नाथ शर्मा तथा उसकी पत्नी रामी का आवेदन (क्रय के लिए) क्षेत्र निमित्त स्वीकार किया गया कि तीन दीनार जमा करने पर गोहली ग्राम के निवास भूमि के साथ ढ़ाई कुल्यवाप अक्षय नीवि रीति से दिया जाय या गया। कुल्यवाप १ द्रोणवाप ४।

अपने कृषि कर्म के अतिरिक्त भूमि को छः नाल अक्षय नीवि रीति के अनुसार स्थायी रूप में सूर्य, चंद्रमा, तारा के समकालीन (शाश्वत) दान दिया गया। संवत् १५९ माघ दिवस ७ भगवान् व्यास ने कहा है—स्वयं अथवा दूसरे को प्रदत्त (दान में दी गई) भूमि का हरण करता है वह पितरों सहित कृमि होकर विष्ठा में निवास करता है।

भूमिदानकर्त्ता साठ हजार वर्षों तक स्वर्ग में रहता है तथा भूमि का हरण करने वाला उसी अवधि तक नरकगामी होता है। अनेक राजाओं ने समय-समय पर भूमि दान में दिया है, उसको उसके अनुसार पुण्य फल मिलता है। राजाओं में महान् श्रेष्ठ युधिष्ठिर ब्राह्मण को दी गई भूमि की रक्षा करो। दान देने से दान का रक्षण श्रेयस्कर होता है। जो पहले दी गई भूमि को वापस लेता है, वह काले नाग का जन्म लेकर जंगल में सूखे वृक्ष के कोंटर (खोखल स्थान) में निवास करेगा।

परिव्राजक महाराजा हस्तिन का (वर्ष १६३) खोह ताम्रपत्र

महादेव को नमस्कार! गुप्त सम्राट् के वैभवपूर्ण राज्य के १६३ वर्ष महास्वयुज संवत्सर चैत्र शुक्ल द्वितीया इस प्रकार पूर्व निश्चित तिथि तथा दिवस को महाराज श्री हस्तिन, जो नृपति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिव्राजक (तपस्वी) कुल में उत्पन्न देवाढ्य का प्रपौत्र है, महाराजा श्री प्रभंजन का पौत्र, महाराजा दामोदर का पुत्र है, जिसने सहस्रों गाय, हस्ति, अश्व, स्वर्ण तथा भूमि दान में दिया है जो गुरु, पिता, माता के पूजन (सत्कार) में तत्पर है, जो देव ब्राह्मण का भक्त है, सैकड़ों युद्ध में जिसने शत्रुओं को परास्त किया है तथा अपने वंश के वैभव का कारण है।

अपने पुण्य की अभिवृद्धि के लिए उत्तरी पट्ट में स्थित कोरपारिक नामक ग्राम को उद्रंग उपरिकर सहित (कर का नाम) दान में दिया गया जिसमें चाट भट्ट के प्रवेश का निषेध है। दान वाजसनेय शाखा तथा भारद्वाज गोत्र के अग्निस्वामि का पुत्र देवस्वामि ; सर्वस्वामिन तथा गोरिस्वामिन ; वाजसनेय शाखा तथा कौत्स गोत्र के दिवाकर स्वामिन एवं स्वातिस्वामिन ; वाजसनेय शाखा और भार्गव गोत्र के वरुण शर्मन तथा वप्पस्वामिन ; कठ शाखा और वासुल गोत्र के कुमारदेव ; वाजसनेय शाखाध्यायी मातृशर्मन, नागशर्मन, सुखदेव क्रौद्रदेव, विष्णुदेव, देवनाग, कुमारसेन, रुद्रशर्मन, देव दांगिरस, लम्बोष्ठ, देवमित्र, महादेव तथा गुंठक (ब्रह्मचारीगण) के नाम दिया गया।

उस क्षेत्र की सीमा—पूर्व में कोप्पंरगर्ता ग्राम की खाई, उत्तर में अभिमुक्तक कोणक बंगर एवं वलक ग्रामों के मध्य में दक्षिण ओर स्थित वृक (वृक्ष) पश्चिम में नागसरी (तालाव) तथा अंभ्रात वृक्ष तथा दक्षिण दिशा में वलवर्मन का परिच्छेद (विभाग) द्वारा निर्धारित की गई है।

अतः इस वंश में उत्पन्न व्यक्तियों अथवा सामंतों द्वारा भविष्य में दान में कोई बाधा उपस्थित न की जायगी ऐसी आज्ञा प्रसारित की गई। जो अन्याय करेगा, उसे देहावसान (मरण) उपरान्त, के बाद भी घृणा प्रदर्शित की जायगी।

भगवान् परमर्षि वेदव्यास ने ऐसा कहा है—राजाओं में महान राजा युधिष्ठिर, ब्राह्मण को दान में दी गई भूमि की रक्षा करो। दान देने से दान का रक्षण श्रेयस्कर है, सगर से लेकर अनेक राजाओं ने पृथ्वी का भोग किया है, जिस समय जो भूमि का स्वामी था, दान का पुण्य (फल) उसी को मिला। अपने अथवा दूसरे द्वारा प्रदत्त भूमि को जो हरण करेगा वह पितरों के साथ विष्ठा का कृमि होगा। दान देने वाला साठ हजार वर्षों तक स्वर्ग में निवास करता है, उस भूमि को हरण (वापस) करने वाला नरक गामी होता है।

आमात्य वक्र के प्रपौत्र, भोगिक नरदत्त के पौत्र भौगिक रविदत्त के पुत्र महासांधिविग्रहिक सूर्यदत्त ने दानपत्र को लिखा। दूतक भग्रह।

उच्छकल्प महाराजा जयनाथ का कारितलाई ताम्रपत्र (तिथि १७४)

ॐ स्वस्ति ! उच्छकल्प स्थान से (यह आज्ञा प्रसारित किया गया) महाराजा ओघदेव उनके पुत्र एवं उत्तराधिकारी महादेवी कुमार देवी से उत्पन्न महाराजा कुमार देव, उसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी महादेवी जयस्वामिनि से उत्पन्न महाराज जयस्वामिन उसका पुत्र तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराधिकारी महादेवी रामदेवी से उत्पन्न महाराज व्याघ्र उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी महादेवी अज्झित देवी से उत्पन्न महाराज जयनाथ, स्वस्थ दशा में यह आज्ञा प्रसारित किया, ब्राह्मण कृषक तथा कलाकार छंदापल्लिका ग्राम निवासी को विदित हो कि अपने पुण्य अभिवृद्धि के लिए इस ग्राम को दान में दिया गया।

उद्रंग उपरिकर सहित जहाँ सेना के सिपाही या सैनिक प्रवेश न करे; चौर कार्य में लगे चोरों पर जुर्माना करने का अधिकार भी प्रदत्त है। माध्यन्दिन तथा वाजसनेय वैदिक शाखा और काण्व गोत्र के ब्राह्मण मातृस्वामिन् को (दान दिया गया)।

सभी उसे (दानग्राही) राजकीय कर तथा चुँगी आदि दिया करेंगे और आज्ञा पालन करेंगे। जो राजा इस वंश से उत्पन्न होंगे उनके द्वारा इस दान का अनुमोदन होना चाहिए। वापस लेना या जब्त करना नहीं चाहिए। जो राजकीय कर वसूल किया जाता रहा, उसे (दानग्राही) ग्रहण करेगा। जो इसे वापस लेगा उसे पंच महापातक का कुफल भुगतना पड़ेगा।

महाभारत में व्यास जी ने कहा है—ओ युधिष्ठिर, श्रेष्ठ राजा वही है जो दानपत्र का अनुमोदन करता है, उस भूमि की रक्षा करता है जिस व्यक्ति ने उसका दान किया हो। दान देने से दान-भूमि की रक्षा अधिक पुण्यतर है। राजा सगर से लेकर जो शासक भूमि पर शासन करते रहे, उन्हें दान भूमि का पालन श्रेयस्कर था। उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं भुगतना पड़ा। दान देकर पुण्य लाभ किया। दानकर्त्ता साठ हजार वर्ष स्वर्ग में निवास करता है और उस भूमि को वापस लेने वाला उतने ही काल तक नरक में कष्ट भोगेगा। पितृ लोग दानकर्त्ता के कार्य से प्रसन्न होंगे और ताली बजाकर उच्च स्वर में कहेंगे कि अमुक दानी हमारे कुल में पैदा हुआ है। जो उस भूमि को वापस लेंगे वह विष्ठा के कृमि होंगे और पितृ लोगों के साथ नरक में जायेगा।

१७४ वर्ष आषाढ़ मास यह दानपत्र उत्कीर्ण किया गया। भोगिक गंजाकीर्त्ति, आमात्य भोगिक राज्यिल के प्रपौत्र, भोगिक ध्रुवदत्त के पुत्र ने उत्कीर्ण किया। उपरिक दीक्षित दूतक का कार्य किया। सर्वदत्त स्थपति का कार्य किया था।

खोह ताम्रपत्र जयनाथ (वर्ष १७७)

स्वस्ति। अज्झित देवी के पुत्र महाराज जयनाथ ने घव शंडिका ग्राम के ब्राह्मणों, कारीगरों को यह आज्ञा पत्र प्रसारित किया। वह (जयनाथ) महाराज व्याघ्र का अनुगामी पुत्र तथा महारानी राम देवी से उत्पन्न था, जो (व्याघ्र) जयस्वामिन का पुत्र एवं महादेवी जयस्वामिनी से उत्पन्न हुआ था। वह महादेवी कुमारदेवी से उत्पन्न तथा महाराजा कुमारदेव का उत्तराधिकारी पुत्र था तथा वही (कुमारदेव) महाराजा औधदेव का पौत्र था। यह सबको विदित हो कि अपने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुण्य की वृद्धि तथा भगवान की सेवा निमित्त यह ग्राम देव अग्रहार के रूप में मैंने शाश्वत रूप में चंद्रमा एवं सूर्य के समकालीन स्थिति में शाशातनेय गोत्री सर्व्ववाढ़ दिविर को दान में दिया। उसके पुत्र भागवत गंग, उसका पुत्र रंकवोट तथा अजगर दास (को दान दिया)। उनके पुण्य कार्य की वृद्धि पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र तथा उसके पुत्र द्वारा होगी। उस दान की आय से मंदिर के खंडित होने पर मरम्मत, तथा देवता के वलि, चरु एवं सत्र (सदावर्त) के निमित्त व्यय किया जाय।

उनको समुचित कर, शुल्क, राजकीय कर, अन्य कर, सोना (नकद) आदि ग्रहण करने की आज्ञा प्रसारित किया जाय।

जो व्यक्ति उस वंश में उत्पन्न होगा, वह इस दान को वापस नहीं लेगा किन्तु अनुमोदन करेगा। चोर दंड, राजकीय कर से पृथक 'कर' ग्रहण न किया जाय। चिरकाल तक इस दान का संरक्षण किया जाय। जो इसकी क्षति करेगा, उसे पंच महापातक तथा उपपातक का दोष लगेगा।

महाभारत में भगवान वेद व्यास ने कहा है—राजाओं में महान् राजा युधिष्ठिर अपनी या दूसरे द्वारा दान में प्रदत्त भूमि की रक्षा करें। दान देने से उसका रक्षण श्रेयस्कर है। वास्तव में राजाओं के लिए कोई शुभ अवस्था नहीं है परन्तु भूमिदान से वे पवित्र हो जाते हैं।

दान देनेवाला साठ हजार वर्ष स्वर्ग में निवास करता है। दान को वापस लेने वाला उस अवधि तक नरकगामी होगा। सगर से लेकर अनेक राजाओं ने पृथ्वी का भोग किया है, जिस भूमि का जो स्वामी था भूमि दान का फल उसी को प्राप्त होगा।

जो अन्न से समृद्ध भूमि को अपहरण करेगा वह पितरों के सहित विष्ठा का कृमि बनी जायगा।

१७७ वें वर्ष चैत्र मास के २२ वें दिन यह (दान पट्ट) सांधिविग्रहिक गुल्ल द्वारा लिखा गया, जो भोगिक आमात्य फलगुदत्त का पौत्र तथा भोगिक वराहदिन का पुत्र है।

उपरिक दूतक दीक्षित, स्थपति सम्राट् गृहस्थ सर्व्वदत्त।

इसकी सीमामें—धान्य वाहिक की दिशा में खाई तथा पुल, दुर्गमंडल की दिशा में एक पुल (नदीया) सुवर्ण कक्षक प्रदेश में गोपथ के मार्ग में नरकट एवं अर्द्ध पाली (पुल) आमुक की दिशा में खाई की सीमा दारमंडल प्रदेश की ओर पाली वक्रवन की दिशा में प्रवेश करते मंडल स्थित पाली (पुल) तथा ग्राम के कुआँ के समीप सीमा पहुँच जाती है।

शर्वनाथ का खोह ताम्रपत्र (१९५)

ओ० स्वस्ति। उच्छकल्प के महाराजा औघदेव के पुत्र एवं उत्तराधिकारी महाराज कुमारदेव तथा महादेवी कुमारदेवी से उत्पन्न, उनके पुत्र उत्तराधिकारी महाराजा जयस्वामिन जो महादेवी जयस्वामिनि से उत्पन्न हैं, इनके पुत्र तत्पादानुध्यात महाराजा व्याघ्र जो महादेवी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रामदेवी के गर्भ से पैदा हुए, जिसके उत्तराधिकारी एवं पुत्र महाराज जयनाथ, माता का नाम महादेवी अज्झितदेवी था, उन्हीं के वंशज महाराजा शर्वनाथ, जो मरुण्डदेवी से पैदा हुआ था, ने यह आज्ञा तमसा नदी के किनारे अश्रमक ग्राम के निवासी कृषकों, ब्राह्मणों, सभी कलाकार को आज्ञा प्रसारित किया—

यह विदित किया जाता है कि मैने चार भागों में इस ग्राम को दान में दे दिया है जबतक चंद्रमा एवं सूर्य की स्थिति रहेगी तथा उद्रंग तथा उपरिकर (टैक्स) सहित दान दिया गया जिसमें चाट और भट प्रवेश नहीं कर सकते। उन चार में दो अंश विष्णु नंदिन से संवद्ध है, एक अंश स्वामि नाग के पुत्र शक्ति नाग का है और चौथा अंश कुमारनाग और स्कंदनाग की संपत्ति है।

इस ताम्रपत्र के द्वारा उनके उत्तराधिकारी गण, प्रपौत्र, पोत्र, पुत्र एवं अन्य सदस्य इसका उपभोग करेंगे। यह निर्णय हो चुका है कि उनके पुण्य लाभ के निमित्त उसकी आय से स्थापित देवमंदिर की मरम्मत (संस्कार) की जावे।

भगवान आदित्य भट्टारक के स्थान खंड स्फुट प्रति संस्कार में व्यय किया जाय। देव मंदिर के बलिचरुसत्र तथा पूजा के गंध, धूप, दीप, पुष्प आदि के निमित्त

उन्हें (दानग्राही को) समुचित कर, भाग, भोगकर, हिरण्य आदि टैक्स ग्रहण करने दिया जाय।

उस राज वंश में जो राजा उत्पन्न होगा सभी दान भूमि का रक्षण करेगा, हरण नहीं होगा। यथा काल प्रतिपालन करेगा। जो राजकीय कर या अन्य 'कर' हैं उन्हें ग्रहण नहीं करेगा (दानग्राही वसूल करेगा)। जो वापस (क्षति) करेगा उसे पंचमहापातक तथा उपपातकों का पाप लगेगा।

महाभारत में भगवान् वेदव्यास ने कहा है कि महान् राजाओं में महान् युधिष्ठिर स्वयं दी गई या अन्य द्वारा प्रदत्त दान भूमि की रक्षा करें। दान देने से दान की रक्षा श्रेयस्कर है। प्रायः राजाओं के लिए अन्य शुभ दिन नहीं है किंतु दान देने से पुण्य गति होती है। सगर से लेकर अनेक राजाओं ने भूमि का भोग किया, पर जिस समय जिसने भूमिदान किया उसको पुण्य फल की प्राप्ति हुई।

भूमि को दान करने वाला साठ हजार वर्षों तक स्वर्ग वासी होता है परंतु भूमि का अपहर्त्ता उसी अवधि तक नरकगामी होगा।

जो शस्य (अन्न) समृद्ध भूमि का हरण करेगा, वह पितरों सहित विष्ठा में कृमि बनकर रहेगा।

१९३ वर्ष में यह ताम्रपट्ट चैत्र मास के दसवें दिन महासांधिविग्रहिक मनोरथ द्वारा लिखा गया जो भोगिक आमात्य फलगुदत्त का पौत्र तथा भोगिक वराह दिन का पुत्र था। महाबलाधिकृत क्षत्रिय शिवगुप्त दूतक था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खोह ताम्रपत्र (वर्ष १९७)

इस ताम्रपत्र को यथा काल पालन करना चाहिए। समुचित राजकीय कर, अन्य प्रकार के कर (टैक्स) ग्रहण करना उचित है। जो इसकी रक्षा न करेगा वह पंच महापातक तथा उपपातक का भागी होगा।

महाभारत में भगवान वेद व्यास ने कहा है कि महान राजाओं में श्रेष्ठ युधिष्ठिर को अपनी या अन्य व्यक्ति द्वारा प्रदत्त भूमि की रक्षा करनी चाहिए। भूमिदान का रक्षण दान देने से भी श्रेयस्कर है।

राजाओं को प्रायः ऐसी शुभ अवस्था का अनुभव नहीं है जैसा दान देने से पुण्य लाभ होता है। सगर से लकर राजाओं ने भूमि का उपभोग किया है, जो जिस भूमि का स्वामी था उसे ही दान का फल प्राप्त हुआ।

साठ हजार वर्ष तक भूमि का दानी स्वर्ग में निवास करता है। किन्तु जो उसका अपहरण करता है, वह उस अवधि तक नरकगामी होता है।

जो शस्य से समृद्ध भूमि का अपहरण करता है, वह पितरों सहित कृमि बनकर विष्ठा में निवास करता है।

यह ताम्रपत्र १९७वें वर्ष अश्वयुज मास के बीसवें दिन, भोगिक आमात्य फल्गुदत्त के पौत्र तथा भोगिक वराहदिन के पुत्र महासांधिविग्रहिक मनोरथ द्वारा लिखा गया।

महावलाधिकृत शिवगुप्त दूतक था। हलिराकर खंभ दण्ड का ग्राही अतिरिक्त दूतक उपरिक मातृशिव।

महाराजा संक्षोभ का खोह ताम्रपत्र (२०९)

भगवान् वासुदेव को प्रणाम। स्वस्ति। गुप्त सम्राट् के राज्य उपभोग के २०९ वर्ष में तथा उनके वैभवपूर्ण विजय राज्य में महाश्वयुज संवत्सर चैत्रमास शुक्लपक्ष के १३वें दिन, कथित दिवस, मास एवं संवत्सर पर—

चौदह विद्याविशारद, महर्षि कपिल के अवतार तुल्य, सर्वतत्वज्ञान का पंडित, भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न नृपति परिव्राजक सुशर्मण का वंशज महाराजा श्री संक्षोभ, (ने दान दिया) जो देवाढ्य के पुत्र का प्रपौत्र है, महाराजा श्री प्रभंजन का प्रपौत्र है, महाराजा श्री दामोदर का पौत्र है एवं महाराजा श्री हस्तिन का पुत्र है, जिसने (हस्तिन) सहस्रों गाय, हस्ति तथा अश्व, हिरण्य (सोना नकद) तथा भूमि का दान किया है। वह गुरु पिता माता की पूजा में तत्पर है, देवता तथा ब्राह्मणों का परम भक्त है, जिसने सैकड़ों युद्धों में शत्रुओं को पराजित किया है, डभाल प्रदेश पर सम्यक् सुशासन किया जो क्षेत्र उसने कुलक्रम से प्राप्त किया और जिस भूभाग में अठारह आटवी (जंगल) प्रदेश सम्मिलित हैं वह हस्तिन गुणों के कारण यशस्वी है। हस्तिन का पुत्र वर्णाश्रमधर्म के पालन में निरत रहता है, परम भागवत पितृभक्त, अपने वंश को सुख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देनेवाला संक्षोभ माता-पिता एवं अपनी पुण्य अभिवृद्धि के निमित्त तथा स्वर्ग की सीढ़ी पर अग्रसर होने के लिए (स्वर्ग जाने) छोडुगोमिन के प्रार्थना करने पर मणिनाग पेट में स्थित ओपाणि ग्राम का दान किया। ताम्रशासन (ताम्रपत्र पर अंकित लेख) द्वारा प्रदत्त हुआ जिसमें चोर तथा कुकर्मी पर अर्थ दंड वर्जित है ; मंदिर में वलिचरु सत्र के निमित्त तथा खंड स्फुटित संस्कार (मरम्मत) के लिए (दान दिया गया)। इसलिए भविष्य में मेरे वंशज तथा सामंत द्वारा इस दान में बाधा उपस्थित न की जायेगी। इस प्रकार की आज्ञा प्रसारित की गई अन्यथा मरने पर भी जो वाधा उपस्थित करेगा, उसे निंदा एवं अनादर होगा।

भगवान् परमर्षि वेद व्यास ने ऐसा कहा है—महान् राजाओं में महान् युधिष्ठिर पूर्वकाल में ब्राह्मणों को दी गई दान भूमि की रक्षा करें। दान देने से दानभूमि की रक्षा श्रेयस्कर है। सगर से लेकर अनेक राजाओं ने भूमि दान में दी, जो जिसका स्वामी था उसे उस दान का फल प्राप्त हुआ।

भूमिदान कर्त्ता साठ हजार वर्षों तक स्वर्ग में प्रसन्नतापूर्वक निवास करता है, उसका अपहरण करनेवाला उसी अवधि तक नरक में रहता है।

भूमिदान से कोई दान श्रेयस्कर नहीं है किंतु दान का रक्षण, दान देने से भी विशिष्ट है।

नृग राजा से लेकर सभी दानी दान भूमि के रक्षण के कारण स्वर्ग गामी हुए। जीवित के पौत्र तथा भुजंगदास के पुत्र ईश्वरदास ने इसे (ताम्रपत्र) उत्कीर्ण किया। चैत्र दिवस २० स्वमुख से आज्ञा प्रदान किया।

शर्वनाथ का खोह ताम्रपत्र (२१४ वर्ष)

ओ० स्वस्ति। उच्छकल्प के महाराजा औघदेव उनके उत्तराधिकारी महादेवी कुमारदेवी से उत्पन्न पुत्र महाराज कुमारदेव, जिसका उत्तराधिकारी पुत्र जयस्वामी जो महादेवी जयस्वामिनि से पैदा हुआ था, इसके उत्तराधिकारी महादेवी रमादेवी से उत्पन्न पुत्र का नाम महाराज व्याघ्र था। व्याघ्र का उत्तराधिकारी पुत्र महाराज जयनाथ महादेवी अज्झितदेवी से पैदा हुआ था। उसका वंशज, उत्तराधिकारी महादेवी मुरुण्ड स्वामिनी से उत्पन्न महाराज शर्वनाथ ने मनिनागपट्ट में स्थित व्याघ्रपालिक तथा काचर पालिक ग्रामों के निवासी ब्राह्मण आदि को सूचना दी।

सभी को यह आज्ञा प्रसारित किया जाता है कि राजा ने यह ग्राम उद्रंग उपरिकर सहित दान किया गया। इस अग्रहार में चाट भट प्रवेश नहीं कर सकते। सारे कर (राजकीय) शुल्क सहित भूमि का दान किया गया। चंद्रमा, सूर्य के समकालीन यह दान शाश्वत होगा। चोर दंड का ग्रहण दानग्राही न करेगा। इस प्रकार कुमार स्वामी तथा उनके पुत्र, प्रपौत्र (दान) इसका उपभोग करेंगे।

इस दान की आय से पिष्टपुरीक देवी के पूजार्थ, मंदिर के खंडित होने पर संस्कार (मरम्मत) किया जायगा। यह ताम्रपत्र भूमि छिद्र न्याय के अनुसार दान देकर लिखा गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह जानते हुए आज्ञा का पालन करते, समुचित ढंग से सारे भाग भोग कर हिरण्य, वात प्रत्याय सहित उपभोग निमित्त (दिया गया)।

हमारे वंश में जो राजा पैदा होंगे, वह इस दान का अपहरण न करेंगे, समयानुकूल पालन कर भूमि का रक्षण करेंगे। राजकीय कर शुल्क अन्य कर (उस भूमि से) ग्रहण न करेंगे।

जो इस दान का अपहरण करेगा, उसे पंच महापातक एवं उपपातक का (दोषी होगा) प्राप्त करेगा।

शत साहस्री संहिता यानी महाभारत में परमर्षि पराशर के पुत्र वेदव्यास ने ऐसा कहा है—

महान् राजाओं में श्रेष्ठ युधिष्ठिर पूर्वकाल में ब्राह्मणों को प्रदत्त दान की रक्षा करो। दान से बढ़कर उसका रक्षण श्रेयस्कर है। राजाओं के लिए दान से बढ़कर शुभ गति का अनुभव न हो सका जैसा दान के कारण प्राप्त होता है।

सगर राजा से लेकर जितने राजा हुए जिन्होंने भूमिदान किया है, सभी को उसका पुण्य प्राप्त हुआ है। भूमि का दानकर्त्ता साठ हजार वर्ष तक स्वर्ग में निवास करता है। किंतु उसका हरण करनेवाला उसी अवधि तक नरक में रहता है।

अपनी दी गई अथवा दूसरों द्वारा दान की भूमि को जो राजा वापस (हरण) लेता है, वह पितरों के साथ विष्टा का कृमि बनकर नरक में रहता है।

जो पहले दी गई दान भूमि का हरण करता है, वह काला नाग का जन्म लेकर सूखे वृक्ष के कोटर में निवास करेगा। जहाँ जल का अभाव एवं बंजर स्थान हैं।

यह ताम्रपत्र २१४ वर्ष पौष मास के छठे दिन, आमात्य फलगु दत्त के प्रपौत्र, बराहदिन का पौत्र तथा मनोरथ के पुत्र सांधिविग्रहिक नाथ द्वारा लिखा गया। धृतस्वामिक दूत है।

भूमरा स्तंभ लेख (हस्तिन+शर्वनाथ)

स्वस्ति। महादेव के पुजारी महाराज हस्तिन के अम्ल्वोदे ग्रामसीमा तथा महाराज शर्वनाथ के भोग ग्राम सीमा पर शिवदास द्वारा सीमा स्तंभ स्थापित किया गया, जो इंदन का पौत्र एवं ग्रामिक वायु का पुत्र था। महामाध संवत्सर कार्तिक मास दसवें दिन (स्तंभ खड़ा किया गया था)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समसामयिक नरेशों के अभिलेख

यशोधर्मन की मंदसोर प्रशस्ति (मा० स० ५८९)

सिद्धि हो। जगत के स्वामी पिनाकी (शिव) की जय हो, रात्रि के समय बिजली के सदृश प्रकाशित जिसके दंत हैं तथा जिसका हास्यमय गान है और विश्व को दृष्टि में घेरे हुए हैं। शंभू जो विश्व को उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय के कारण है, लोगों को वरदान दें।

संसार के रक्षा हेतु स्थिति निमित्त स्वयंभू जिसके आज्ञाकारी हैं, जिसे विश्वपिता के स्थान पर स्थापित कर दिया है, विश्व के रचयिता (भवसृजो) शिव का भुजंग (सर्प) आपके कष्टों का दमन करे, जो अनेक फणों में मणियों के भार से नत होकर (जटायें स्थित) चंद्रमा के प्रभा को छिपा रहा है (अंधकारमय) शरीर के मोड़ से जिसने शिव के सिरे पर मुंडमाल को सुरक्षित कर दिया है। क्षीर समुद्र के विधाता, जो साठ हजार सगर के लड़कों द्वारा खोदा गया था और जो आकाश के समान कांतिमय है, मेरे यश को चिरकाल तक सुरक्षित करें।

जन का स्वामी यशोधर्मन नामक राजा की विजय हो, जिसने अपने को शत्रुओं के समूह में डाल दिया है जैसे धतुरा के वन में (जिसके संयोग से मृत्यु हो जाती है) पड़ गया हो, उसने शत्रुओं के कीर्तिलता (यश) को नत कर दिया है तथा युद्ध में शरीर पर घाव सुशोभित कर रहे हैं, जैसे अंकुरित दाने !

पंक्ति ५—श्री विष्णुवर्धन नामक राजा विश्व विजयी हैं, औलिकर वंश में रण विजेता होकर उसे दिन दिन ऊँचा स्थान दिया है। उसने शांतिमय प्रस्ताव तथा युद्ध के द्वारा पूर्व

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के शक्तिशाली तथा उत्तर के महान् शासकों को अधीन कर लिया था, राजाधिराज परमेश्वर की उपाधि से संसार में विख्यात हुआ जिसे (उपाधि) प्राप्त करना कठिन है।

उसने बाहुबल से विश्व के उन प्रदेशों को विजित किया जहाँ सूर्य को रोशनी नहीं पहुँचती, घना गहरे भूरे रंग के बादल के सदृश प्रकट होता है।

यज्ञ संपन्न होकर उन भागों में वर्षा के कारण गाढ़े अन्न की उपज है जहाँ आम्रवन में खिलती हुई मंजरों को चंचल (विलासिनी) ललनाएँ प्रसन्नता सहित तोड़ रही हैं और गुणी राजा की स्थिति के कारण अत्यंत प्रसन्न हैं। जिसकी सेना की गति से आसमान धूल से भर गया है, रोधर वृक्ष जो पताका के सदृश ऊँचे उठे हैं, क्रोधित हाथियों के सूँढ़ से चारों दिशाओं में हिला दिए गए हैं, वन में जिनकी गति की ध्वनि विंध्या के कंदराओं से प्रतिध्वनित हो रही तथा सूर्य की परिधि काली तथा भूरी हो गई है जैसे मोरपंख की आँखें घिर गई हैं।

पंक्ति ९—षष्ठिदत्त उस राजकीय वंश के सेवक का आदि पुरुष था, जो राजा के संरक्षण (पादाश्रय में) धार्मिक गुणों के लिए प्रसिद्ध था, जिसने दृढ़विचार पूर्वक धर्म के छः शत्रुओं (तृष्णा, क्रोध, लोभ, व्याकुलता, अहंकार एवं ईर्ष्या) पर विजय पाई थी और परमगुणी था। जिस प्रकार हिमालय से गंगा की धारा सर्वत्र तीव्र या धीरे प्रवाहित होती है, जैसे चंद्रमा से रेवा की जल बहता है, उसी प्रकार नैगम वंश की प्रतिष्ठा सर्वत्र व्याप्त थी तथा अभिनंदनीय थी।

कुलीनवंशजा पत्नी से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम वराहदास था जो पिता के समान यशस्वी और इंद्रिय निग्रह के कारण प्रसिद्ध था।। लोग उसे हरि का अवतार कहने लगे।

उस वंश में रवीकीर्ति उदयाचल पर सूर्य के सदृश अपने वैभव के कारण देदीप्यमान था, वह वंश कुलीनता के लिए विदित रहा, उसका जड़ इतना गहरा था कि सहनशीलता में सुदृढ़ था तथा जो कदापि नष्ट न हो सका। रवीकीर्ति के शुद्ध, धार्मिक गहरे मार्ग को सभी जन स्वीकार कर चुके थे, कलियुग में भी कुलीनता के विषय में संदेह का स्थान न था। उसकी साध्वी पत्नी भानुगुप्ता के गर्भ से तीन पुत्र पैदा हुए जिन्होंने अपने बुद्धि से अज्ञान को दूर किया, जैसे यज्ञ की तीन ज्वालाएँ हों।

भगवद्दोष प्रथम व्यक्ति था जो बंधु बांधवों के लिए अवलंब (सहारा) था (धार्मिक कार्य में) जैसे अंधक (वृष्णि) के लिए उद्धव थे, जो गहरे अर्थ मार्ग में बेधन करनेवाला (दुरदर्शिता) बेधा के सदृश था। वह विदुर के समान तर्क सहित विचारवान था, जिसका कवियों ने अभिनंदन किया तथा जिनकी रचना या कथन संस्कृत एवं प्राकृत भाषानिष्ठ थी।

पंक्ति १५—उसके पश्चात् अभयदत्त राजा हुआ तथा प्रजाजन से भय को मिटाकर पृथ्वी पर ऊँचा स्थान बना लिया था। उसकी बुद्धि में कोई अगम्य न था कितना भी सूक्ष्म क्यों न हो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानों रात्रि में तेजमय नेत्र हो। जो देवताओं में वृहस्पति के समान था और चारों वर्गों के कल्याण के लिए राजस्थानीय द्वारा अनेक प्रदेशों पर शासन करता था। उसके सचिव उन देशों के मुख्य थे जो विंध्या पर्वत, जिसके शिखर से रेवा नदी की धारा प्रवाहित होती है, से परियात्र पहाड़ तक तथा पश्चिमी समुद्र तक विस्तृत था। उस पर्वत के वृक्षों को लंगूर उछल कूदकर नत मष्तक करते थे।

दोषकुंभ के पुत्र धर्मदोष ने अपने राज्य को कृत-युग की तरह वैभवपूर्ण बनाया, वर्णशंकर से समाज को बचाया, निश्चित रूप से शत्रुओं का दमन किया तथा राज्यभार को न्यायपूर्वक संभाला। वह (धर्मदोष) अपने सुख के लिए ललायित न था, अपने प्रभुत्व की रक्षा के निमित्त राजशासन के कठोर भार को स्वयं वहन करता रहा ; श्रेष्ठता के चिह्न स्वरूप वह राजकीय वस्त्र धारण करता था जैसे बाहुलेय (अर्थ स्पष्ट नहीं है) में सिकुड़ा लटकता हुआ भालरदार मांस सहित हो।

पंक्ति १९—उसका छोटा भाई दक्ष, मित्रों से सुरक्षित है, मानों उसका दाहिना कंधा रत्नों से सुशोभित हो। वह निर्दोष है और नितांत हृदय उत्साह से भरा रहता है, उसी ने विशाल कुएँ का खनन किया। बुद्धिमत्ता के साथ अपने पितृव्य अभयदत्त के लिए यह कुशल कार्य संपन्न किया, जो हाथी के द्वारा नष्ट वृक्ष के सदृश कृतांत (यमराज) के रोष से कुसमय में मर गया। उस वृक्ष की छाया सुखद थी और सुस्वादी फल का देने वाला था (उसी प्रकार अभयदत्त का आश्रय भी सुखकारी थी)।

पंक्ति २१—पाँच सौ नवासी शरद ऋतु व्यतीत मालव गण की स्थापना से समय को गणना होती है—उस ऋतु में कोयल की बोली कामदेव के पुष्पवाण की तरह प्रोषित ललनाओं को कष्टदायक है। जिसकी नम्र तथा मधुर ध्वनि घर से दूर व्यक्तियों (पतियों) के मित्र को व्याकुल कर देती है। भ्रमरों की झनझनाहट, जो पराग के कारण मंद पड़ गयी है, जंगल में सुनाई पड़ती है, जैसे कामदेव का पुष्पकेतु तथा प्रत्यंचा की ध्वनि प्रियतम को वसंत ऋतु में कुपित करती है तथा मानिनी स्त्रीवर्ग को प्रियतम के प्रति क्रोध उत्पन्न करती है। ऐसे नव-कुसुमित वसंत में कुँए का निर्माण किया गया।

पंक्ति २४—जबतक चंद्रमा की किरण समूह (के बाहु) द्वारा समुद्र को जल का आलिंगन कर मैत्री बनी रहे उस समय तक यह सत्कूप अमृत रस के सदृश जल से भरा रहे और ईंट का किनारा पुष्पमाला के रूप में मंडित रहे।

धीमान् दक्ष पुण्य कार्य की रक्षा करे, जो सत्यनिष्ट है, जो कृतसंकल्प है, कृतज्ञ, वृद्ध सेवी है, उत्साह पूर्ण है, कार्य कुशल है, निर्दोषी है, उसी की प्रशंसा में गोविन्द ने इसे उत्कीर्ण किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मंदसोर स्तंभ-लेख

भगवान् शूलपाणि (शिव) का तेजमय ध्वज शत्रुओं के यश का विनाश करे, जिस पर नंदी की आकृति बनी है और नंदी के शरीर पर हिमालय कन्या पार्वती के पाँच अंगुलियों की छाप पड़ी है, उस (नंदी) के भय से राक्षसों का समूह सदूर प्रदेश तक भाग जाते हैं, और जिसकी सींग की चोट से सुमेरू पर्वत की चट्टानों में दरार हो जाते हैं।

जिसका हाथ, देव शारंगपाणि के समान धनुष की प्रत्यंचा से कठोर चिन्ह युक्त है जो मानव कल्याण के लिए निश्चित रूप से कृत संकल्प है, जिस समय शासकों ने पृथ्वी को सताया, उसने समयानुकूल सहायता की है। वे (राजाओं) अभिमानी थे, उचित शिक्षा के अभाव से क्रूर थे, जिन्होंने सृष्टि की उत्पत्ति से सदाचार का उलंघन किया था और जो (नरेश) सद्गुण विहिन थे।

पंक्ति ३—उसने इस युग में, जहाँ राजाओं का आचरण निंदनीय है, अपने सुकर्म को कल्पना मात्र से महत्व प्राप्त किया, तथा निंदनीय आचरण वाले शासकों से पृथक रहा, वह गुणों का आगर था तथा सम्राट् के स्वरूप में मणि जटित स्वर्ण के सदृश प्रकाशवान था। मनु, भरत, अलर्क एवं माँधातृ से तनिक हीन रहा होगा।

उस राजा (यशोधर्मन) ने अपने वंश का राज्य सीमा को तिरस्कृत कर उन बंजर, पर्वत, वृक्ष, झाड़ियाँ तथा नदी सहित प्रदेशों को जीता तथा शक्तिशाली शत्रुओं को परास्त किया, जिन पर गुप्त नरेश भी शासन न कर सके थे। उसकी शक्ति से सारी वसुधा प्रभावित हुई। जिस भाग में हूण लोगों का नामोनिशान न था उस समस्त भूभाग के राजाओ ने रत्न-जटित मुकुट सहित सिर झुकाया।

पंक्ति ५—जिसके पैर की पूजा सारे सामंत करते रहे, जिनके अहंकार का विनाश अपने हाथों किया था। जो सामंत गण लौहित्य नदी (असम प्रदेश) के समीपवर्ती प्रदेश से महेंद्र पर्वत तक (पूर्वी घाट) शासन करते थे (जिसकी उपत्यका सघन वृक्षों से भरा था) तथा हिमालय पर्वत (वर्फ से जिसका शिखर घिरा है) की निचली घाटी जहाँ गंगा बहती है एवं पश्चिमी समुद्र तक फैले सामंतो के रत्न जटित केश की छवि फैली रही। उन समस्त भूभाग पर यशोधर्मन ने विजय किया।

पंक्ति ६—जिसका (यशोधर्मन) सिर, भगवान् स्थाणुः (शिव) के अतिरिक्त अभिवादन निमित्त नम्र (दीन) नहीं हुआ, जिसके हाथों से हिमालय का आलिंगन होने पर उसके अप्रवेश का अभिमान नष्ट हो गया, जिसके चरणों पर राजाओं के केशों पर स्थित पुष्प सादर-अभिनंदन सहित अर्पित किए जाते हैं, राजा मिहिरकुल भी जिसको नतमस्तक होकर चूड़ा पुष्प का अभिवादन करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पंक्ति ७—श्री यशोधर्मन की भुजाएँ स्तंभ की तरह सुशोमित एवं स्थिर हैं, वह स्तंभ संसार के प्रलय तक स्थापित रहेगा स्यात् वह (स्तंभ) पृथ्वी के मापने के लिए खड़ा है, स्वर्गीय ज्योति समूह की गणना के लिए उद्यत है, स्वर्ग में उसके (यशोधर्मन) यश के मार्ग का संकेत कर रहा है जो सुकृत से उपार्जित है देदीप्यमान है, मानों पृथ्वी की भुजा के सदृश यशोधर्मन की कीर्ति चंद्रमा के धरातल पर लिखने के लिए उठा है। वह श्लाघनीय वंश में उत्पन्न हुआ है, पाप विनाशक, अमल चरित्र वाला, धर्म का निकेतन तथा नियमित लोकवृत का सतत आचरण करने वाला है। इस प्रकार पृथ्वी की ऊँची भुजा के समान दोनों स्तंभ सुशोमित हैं।

राजा के पुण्य कर्म तथा गुणगान के लिए कक्क के पुत्र वासुल से इसकी रचना की। गोविंद ने इसे उत्कीर्ण किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हूण अभिलेख

तोरमाण का एरण वराह प्रतिमा लेख

भगवान् विष्णु की जय हो, जिन्होंने वराह का अवतार धारण कर पृथिवी को जल बीच उठाया था, थुथुन के आघात से पर्वतों को हिला दिया तथा महागृह रूपी तीनों लोक के स्तंभ समझे जाते हैं। महाराजाधिराज श्री तोरमाण प्रथम वर्ष में वैभव एवं ख्याति सहित पृथ्वी पर शासन कर रहा था। फाल्गुन मास के दसवें दिन राज्य वर्ष तथा तिथि के अवसर पर समस्त लक्षणों (गुण) सहित शासन कर चुका था।

धन्यविष्णु ने अपने भाई के आज्ञानुसार माता पिता के पुण्य की अभिवृद्धि हेतु, पुण्यकर्म में दोनों ने ऐरिकिण बिषय में स्थित नारायण का मंदिर निर्माण किया जो वराह के अबतार रूप में प्रकट हुए थे।

वह (धन्यविष्णु) महाराज मातृविष्णु का अनुग्रहित एवं प्रिय अनुज था, जो (मातृविष्णु) स्वर्गगामी हो चुका था, भगवान् का अनन्य भक्त था। जिसे विधाता की दया से राज्यलक्ष्मी ने अपना पति चुना था, जिसका यश चारो समुद्र तक फैला हुआ था, जिसका मान एवं वैभव अक्षीण था, अनेक शत्रुओं को युद्ध में पराजित किया था, वह (मातृविष्णु) कर्तव्यपरायण, यज्ञ संपादन करने वाले शास्त्रों के स्वाध्याय में लीन मैत्रायिणी शाखाध्यायी ब्राह्मणों में श्रेष्ठ इंद्रविष्णु का प्रपौत्र, पिता के गुणों का धारण करनेवाला वरुणविष्णु का पौत्र तथा अपने वंश की वृद्धि का जिज्ञासु एवं पिता के सदृश गुणी हरिविष्णु का पुत्र था।

समस्त प्रजा, ब्राह्मण, गो की श्री वृद्धि हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तोरमाण का कुरा अभिलेख

राजाधिराज महाराज तोरमाण षाहि जऊल्ल के वैभवपूर्ण राज्य में, जो तपस्या एवं चिंतन अध्ययन तथा मोक्ष भावना के अनुकूल था, मार्गशीर्ष मास शुक्ल द्वितीया के समय भगवान् देवातिदेव बुद्ध के, मानव को पाप से मुक्त करने वाला, सभी पुण्यों का सागर, संसार रूपी समुद्र से सभी की रक्षा करने वाला, जिसमें दशवल को शक्ति निहित है चार विषयों से भयमुक्त, चार प्रति संभिदा (अलौकिक ज्ञान का वैज्ञानिक उपविभाग का विश्लेण करने वाला), अठ्ठारह वेणिक (बुद्ध के विशिष्ट चिन्ह जो उसे मानव के अपूर्णता से पृथक करता है।) संबंधी अद्भुत धर्म संलग्न, समस्त प्राणियों का वत्सल (प्रसन्नता प्रदान करने वाला) अतीव करुणा सहित तथा बौद्ध संघ का प्रमुख (बुद्ध प्रमुख) ऐसे बुद्ध के विहार में चारों दिशाओं से भिक्षुगण आते हैं ऐसे बिहार की स्थापना हुई, जिस (बिहार) की स्थापना अनेक बिहार के स्वामी रट्टजयवृद्धि के पुत्र द्वारा की गई, जिस व्यक्ति का यश प्रतिष्ठा एवं प्रशंसा नैश्चित्य देव द्वारा कथित है, जो अभिवृद्ध वैभव का सूचक है। यह (बिहार) प्रतिष्ठापन जंबुद्वीप के मानव के अलौकिक ज्ञान के निमित्त बिहार (संघ) स्वामी रट्टसिद्धवृद्धि के सभी भाई, बहन, पुत्र, पुत्री एवं महाराज तोरमाण षाहि जऊल्ल रानियाँ राजपुत्र, राजकुमारी तथा समस्त प्राणियों के ज्ञान प्राप्ति यह बिहार सभी उपकरणों सहित चारों दिशाओं से आने वाले भिक्षुगण तथा महोशाखा (हीनयान की एक शाखा का नाम) के आचार्य से स्वीकृत अधिक आदर सहित (बिहार प्रतिष्ठापति किया गया)।

ग्वालियर प्रशस्ति (मिहिरकुल)

ओम्। भगवान् सूर्य, जिनकी किरणें बादलों के अंधकार को दूर करने में समर्थ हैं तथा जिसके किरणजाल द्वारा व्योम प्रकाशित होता है, तुम्हारी रक्षा करें! जिसकी किरणें रूपी तुरंग उदयाचल को सुशोभित करते हैं, और जो (किरण रूपी अश्व) शांत होकर अपने बालों को हिला रहे हैं, उदयगिरि पर रथ पहुँच गया है, संसार रूपी गृह के तम (कष्ट) को दूर कर रहे हैं तथा जिन कारणों के प्रभाव से रात्रि का अवसान हो जाता हैं, कमल स्फुटित हो जाते हैं, उन्हीं (किरणों) का रंग पिघले (तपित) सोने के सदृश है।

संसार में प्रसिद्ध एवं प्रभूत गुणों से संपन्न श्री तोरमाण के नाम से राजा विख्यात है जिसने अपनी शक्ति बल, द्वारा सत्यनिष्ट होकर न्यायपूर्वक पृथ्वी का शासन किया था।

उस कुल की वृद्धि करने वाला अतुलनीय पराक्रम सहित पृथ्वीपति मिहिरकुल प्रसिद्ध राजा था जिसने पशुपति के शक्ति को क्षीण किया था।

जिस समय विमललोचन वाला कष्ट को दूर करने वाला मिहिरकुल पृथिवी का स्वामी था, उसी के वैभवपूर्ण राज्य के पंद्रहवें वर्ष कार्तिक मास, सुगंध, शीतलमय एवं खिले कमल के वायुमंडल में, जहाँ चंद्र किरणें शोभा विखेर रही हैं, उसी पवित्र दिवस, तिथि, नक्षत्र, मूहूर्त काल में ब्राह्मणों के प्रमुख ने घोषित किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नानाधातुओं सहित गोप नामक पर्वत पर मातृतुल के पौत्र मातृदास के पुत्र मातृचेट ने सूर्य भगवान् का पर्वत स्थित सुंदर मंदिर निर्मित किया जिससे अपने तथा माता-पिता के पुण्य की अभिवृद्धि हो।

चंद्रमा की किरणों सदृश प्रभा सहित सूर्य भगवान् के श्रेष्ठ गृह के (मंदिर) निर्माणकर्त्ता को कल्पांत तक स्वर्ग की प्राप्ति होगी। सूर्य भगवान् के भक्त सत्धर्म की स्थापना हेतु केशव द्वारा इसकी रचना की गई।

जब तक शिव के जटा पर चंद्रमा विराजमान हैं, मेरु पर्वत का शिखर अप्सराओं (देवस्त्री) के चरणों से सुशोभित है, विष्णु के वक्षस्थल पर लक्ष्मी विराजमान है, जैसे नीले बादल, उस काल तक पर्वत के सुंदर शिखर पर शिला मंदिर स्थित रहे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुहरों पर अंकित गुप्तवंशी लघु अभिलेख

नालंदा की मुहरें (नरसिंह गुप्त का अभिलेख)

..... जिसके रथ का कोई व्यवधान नहीं, महाराज श्री गुप्त के प्रपौत्र महाराजा घटोत्कच के पौत्र श्री चंद्रगुप्त के पुत्र लिच्छवि राजकुमारी महादेवी कुमारदेवी से उत्पन्न श्री समुद्रगुप्त, उसके पुत्र एवं उसकी भार्या महादेवी दत्तदेवी से उत्पन्न परम भागवत महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त, जिसके उत्तराधिकारी एवं पुत्र ध्रुवदेवी से उत्पन्न महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त था इसके (कुमारगुप्त) पुत्र अननंत देवी से उत्पन्न महाराजाधिराज पुरु गुप्त हुआ और उसकी भार्या महादेवी वैन्यदेवी से उत्पन्न परम भागवत नरसिंह गुप्त ।

द्वितीय कुमारगुप्त की नालंदा मुहर

समस्त राजाओं का उन्मूलन करनेवाला सारे संसार में विजयी महाराज श्रीगुप्त का प्रपौत्र महाराज श्री घटोत्कच का पौत्र महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त का पुत्र लिच्छवि राजकुमारी महादेवी कुमारदेवी से उत्पन्न महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्त, उसका उत्तराधिकारी एवं पुत्र महादेवी दत्तदेवी से उत्पन्न, विजयी परमभागवत महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त, उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी महाराजाधिराज कुमारगुप्त, जो महादेवी ध्रुवदेवी के गर्भ से उत्पन्न है, उसी का उत्तराधिकारी पुत्र महादेवी अनंतदेवी से उत्पन्न महाराजाधिराज श्री पुरुगुप्त (श्री)—। इसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराधिकारी पुत्र महादेवी वत्सदेवी से उत्पन्न नरसिंह गुप्त था जिसके उत्तराधिकारी पुत्र महादेवी मित्रदेवी से उत्पन्न परमभागवत महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त (की मुहर है)।

बुधगुप्त की मुहर लेख

श्रीगुप्त के प्रपौत्र महाराजा श्री घटोत्कच के पौत्र महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त के पुत्र लिच्छवि राजकुमारी महादेवी कुमारदेवी से उत्पन्न महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्त, उसकी पत्नी महादेवी दत्तदेवी से उत्पन्न पुत्र विश्वविजयी परमभागवत महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त जिसका उत्तराधिकारी पुत्र परमभागवत महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त महादेवी ध्रुवदेवी से पैदा हुआ था, उसी का पुत्र एवं उत्तराधिकारी महादेवी अनंतदेवी से उत्पन्न महाराजाधिराज श्री पुरुगुप्त (प्रसिद्ध) हुआ। पुरुगुप्त का उत्तराधिकारी पुत्र महादेवी चंद्रदेवी से उत्पन्न परमभागवत महाराजाधिराज बुधगुप्त (की मुहर)।

वैन्यगुप्त का मुहर अभिलेख

उसका उत्तराधिकारी पुत्र श्रीगुप्त का पुत्र..... उत्तराधिकारी महादेवी..... परम भागवत महाराजाधिराज..... श्री वैन्यगुप्त !

विष्णुगुप्त का नालंदा मुहर लेख

समस्त राजाओं का उन्मूलन करनेवाला विश्वविजयी महाराज श्रीगुप्त का प्रपौत्र महाराज घटोत्कच का पौत्र महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त का पुत्र लिच्छवि राजकुमारी से उत्पन्न महादेवी कुमारदेवी से उत्पन्न महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्त, जिसकी पत्नी महादेवी दत्तदेवी से उत्पन्न प्रसिद्ध विजयी परम भागवत महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त (था) उसी का उत्तराधिकारी पुत्र महादेवी ध्रुवदेवी से उत्पन्न महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त हुआ। इसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी अनंतदेवी से महाराजाधिराज पुरुगुप्त पैदा हुआ था जिसके उत्तराधिकारी पुत्र का नाम महाराजाधिराज नरसिंह गुप्त था। उसके वंशज उत्तराधिकारी पुत्र श्री कुमारगुप्त पैदा हुआ जिसके पुत्र परमभागवत महाराजाधिराज श्री विष्णुगुप्त (की मुहर है)।

बंगाल की मुहरों पर अंकित गुप्त लेख

१. महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त की रानी महाराजा श्री गोविंदगुप्त की माता महादेवी श्री ध्रुवस्वामिनी (की मुहर)।
२. श्री घटोत्कच गुप्त की मुहर।
३. कुमारमात्य के कार्यालय की (मुहर)
४. युवराज के कुमारामात्य के कार्यालय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५. युवराज भट्टारक के कुमारामात्य के कार्यालय की (मुहर)
६. परम भट्टारक (राजा) से संबंधित कुमारामात्य का कार्यालय
७. युवराज भट्टारक के सेनापति की मुहर
८. सैनिक भण्डार के अधिकारी की मुहर
९. न्यायाधीश की मुहर
१०. प्रासाद का रक्षक तरवर विनयसूर की मुहर
११. पुलिक के अधिकारी अग्निमित्र की मुहर
१२. अश्वाधिकारी यक्षवट
१३. तीरभुक्ति (प्रदेश) के उपरिक के कार्यालय की मुहर
१४. तीरभुक्ति के कुमारामात्य के कार्यालय की मुहर
१५. वैशाली नगर कार्यालय की मुहर

गुप्त मुद्रा लेख

—सर्वत्र विजयी राजा जिसने सैकड़ों युद्ध में सफलता प्राप्त की, शत्रु को पराजित किया स्वर्ग को प्राप्त करेगा।

—राजाधिराज जिसने अश्वमेघ किया पृथ्वी का रक्षण कर स्वर्ग को प्राप्त करेगा।

—कृतांत का परशु धारण करनेवाला, सभी अजेय राजाओं को जोतनेवाला, पराक्रम से सदा विजयी है।

—पृथ्वी को जीतकर अपराजित राजा अच्छे कर्मों द्वारा (सुचरितैः या अवनिशो) स्वर्ग प्राप्त करेगा।

—पृथ्वी का विजय कर काच सुकर्म (पुण्यकर्म) से स्वर्ग प्राप्त करेगा।

—पृथिवी को जीतकर विक्रमादित्य सुकर्मों द्वारा स्वर्ग प्राप्त करेगा।

—परम वैष्णव महाराजाधिराज चंद्रगुप्त।

—चंद्रगुप्त नृपचंद्र राजाओं में चंद्रमा जो युद्ध में कौशल के लिए प्रसिद्ध है, जो अजेय है, सिंह की तरह शक्तिशाली तथा युद्ध क्षेत्र में विजयी है।

—जो राजाओं में सिंह के सदृश है, चंद्रगुप्त, पृथ्वी को जीतकर स्वर्ग को प्राप्त करता है।

—संसार को जीतकर पृथ्वी का स्वामी पुण्य कर्मों से स्वर्ग प्राप्त करता है।

—पृथ्वी का स्वामी कुमारगुप्त जिसने संसार जीता है, स्वर्ग की प्राप्ति करेगा।

—चतुर धनुर्धर कुमारगुप्त ही पृथ्वी का विजेता है।

—पृथ्वी रूपी आकाश में जो चंद्रमा के समान अजेय कुमारगुप्त, विजयी हो।

—अजेय तथा विजयी कुमारगुप्त स्वर्ग की प्राप्ति करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

—जो गुप्त रूपी आकाश का चंद्रमा है, अजेय एवं अपराजित महेंद्र (कुमारगुप्त) विजयी हो।

—अजेय तथा पृथ्वी का विजयी कुमारगुप्त स्वर्ग प्राप्त करेगा।

—गुप्तवंश का अमल चंद्रमा, अजेय वीर कुमारगुप्त, महेंद्र की तरह शक्तिशाली, विजयी हो।

—अजेय कुमारगुप्त, पृथ्वी पर इंद्र के सदृश है, शत्रु को पराजित करता है।

—महेंद्र, जो सिंह के समान शक्तिवाला, साक्षात् नरसिंह का अवतार है, सदा बिजयी होगा।

—कुमारगुप्त युद्ध में सदा सिंह के सदृश शक्तिशाली है।

—अजेय कुमारगुप्त, अजेय महेंद्र पृथ्वी का स्वामी स्वर्ग प्राप्त करता है।

—अपने गुणों से विजयी राजा महेंद्र कुमार विजयी हो।

—इंद्रियों को जीतनेवाला (पृथ्वी का विजयी) कुमारगुप्त अपने पुण्य कर्मों से स्वर्ग की प्राप्ति करेगा।

—श्रीमान् (कुमारगुप्त) जो सिंह के सदृश शक्तिवान है, पराक्रमी है।

—कुमारगुप्त सदा विजयी है जो खड्ग (तलवार) से अथवा गेंडा की भय से प्रजा की रक्षा करता है।

—राजाओं का राजा सम्राट् कुमारगुप्त, जिसने शत्रुओं को पराजित किया है।

—कुमारगुप्त जिसने शत्रुओं का विनाश किया है, सामंतों की रक्षा की है, शत्रुओं पर विजयी हों।

—विजयी स्कंदगुप्त, जिसने शत्रुओं को जीता है, पृथ्वी का स्वामी स्वर्ग की प्राप्ति करता है।

—कृतांत (यमराज) के परशु सदृश।

—अद्वितीय अश्वारोही।

—परम विक्रम वाला।

—जो अजेय है, शक्तिशाली है।

—महेंद्र अज्ञेय है।

—महेंद्र सिंह के सदृश शक्तिशाली।

—श्री महेंद्र जो तलवार के सदृश।

—महेंद्र का हाथी।

—महेंद्र अश्वमेघ कर्त्ता।

— महेंद्र का हाथी सिंह को मारता हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

—विष्णुभक्त महाराजाधिराज चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ।
—गुप्तवंश का सम्राट् राजाओं का राजा चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ।
—विष्णुभक्त, सम्राट् राजाओं का राजा कुमारगुप्त महेंद्रादित्य ।
—पृथ्वी का स्वामी (पृथ्वी को जीता) कुमारगुप्त स्वर्ग प्राप्त करता हैं ।
—पृथ्वी पर शक्तिशाली धनुर्धर ।
—दूसरे का परोपकारी राजा स्कंदगुप्त स्वर्ग प्राप्त करता है ।
—विष्णुभक्त राजाओं का राजा स्कंदगुप्त विक्रमादित्य या क्रमादित्य ।
—स्कंदगुप्त जिसने संसार जीता, स्वर्ग को प्राप्ति करेगा ।
—बुधगुप्त जिसने पृथ्वी का विजय किया, स्वर्ग प्राप्त करेगा ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट १

गुप्त साम्राज्य की राजधानी—प्रयाग

गुप्त राजाओं के आदिस्थान के विषय में मतभेद रहा है तथा विद्वानों के इस विवाद का निराकरण समुचित रूप से नहीं हो पाया है। स्थान निश्चित करने के लिए दो मूल साधनों पर विचार किया गया है। सर्वप्रथम कोरियन यात्री ह्यूलून का वर्णन तथा द्वितीय पुराणों में उल्लेख। गुप्त शासकों के आदि स्थान से राजधानी का संबंधित विचार स्वतः उपस्थित हो जाता है। कोरियन यात्री के वर्णन का उल्लेख इत्सिंग ने किया है। इसने उत्तरी भारत में मार्ग का वर्णन करते महाबोधि का भी नाम लिया है। इत्सिंग लिखता है कि राजा श्रीगुप्त (चिलिकेत) ने मृगशिखावन में एक मंदिर का निर्माण कर चौबीस ग्राम दान में दिया था। उसके समीप चीनी मंदिर का अवशेष था। इत्सिंग के अनुसार दोनों की दूरी में ४० योजन (२४० मील) का अन्तर था। इस मृगशिखावन को पूरब दिशा में बंगाल के वारेन्द्र में स्थित मानते हैं। परन्तु इसकी स्थिति पश्चिम में भी मानी जाती है (इ० हि० क्वा०, १९४६, पृ० २३)। इस आधार पर मृगशिखावन को सारनाथ से (वाराणसी के समीप) एकीकरण करते है। उत्तर प्रदेश (विशेषकर प्रयाग के भू-भाग से) गुप्त राजाओं का संबंध था, इसकी पुष्टि पुराणों के उल्लेख से हो जाती है। गुप्तवंश के प्रथम सम्राट् प्रथम चन्द्र गुप्त के राज्य विस्तार का वर्णन करते पुराणों (विष्णु तथा वायु) में निम्न पद्य मिलता है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुगंगम्[1] प्रयागं च साकेतं मागधांस्तथा ।
एताञ्जनपदान् देशान् मोक्ष्यन्ते गुप्त वंशजाः ।

(वायुपुराण ९९/३८३)

अतएव इसमें संदेह के लिए स्थान नहीं रह जाता कि प्रारम्भिक अवस्था में गुप्त राजाओं का प्रयाग के भू-भाग से निश्चित रूप में संबंध था। 'अनुगंगम् प्रयागं' से स्पष्ट प्रकट होता है कि गंगा के किनारे प्रयाग ही गुप्तों का मूलस्थान तत्पश्चात् राजधानी रहा होगा।

गुप्त सम्राटों के अभिलेख तथा सिक्कों के प्राप्ति स्थान यह घोषित करते हैं कि गुप्तों का सर्वाधिक संबंध उत्तरप्रदेश से था। अतएव प्रयाग में रहकर ही उन लोगों ने अपना शासन किया। गुप्तवंशी अभिलेखों में १७ लेख उत्तर प्रदेश से ही उपलब्ध हुये हैं जो संपूर्ण लेखों के करीब पचास प्रतिशत हैं।

१ प्रयाग स्तंभ लेख—समुद्रगुप्त
२ मथुरा
३ गढ़वा
४ मथुरा
५ मेहरौली
} —द्वितीय चन्द्रगुप्त
६ बिलसद
७ गढ़वा
८ मथुरा
९ करमदण्डा
१० मनकुवांर
} —प्रथम कुमार गुप्त
११ गढ़वा
१२ कहौम
१३ भितरी
१४ इन्दोर
} —स्कंदगुप्त
१५ भितरी मुद्रा—द्वितीय कुमारगुप्त
१६ सारनाथ प्रतिमा—द्वितीय कुमारगुप्त
१७ सारनाथ प्रतिमा—बुधगुप्त
१८ बनारस लेख—बुधगुप्त

इतने प्रधान अभिलेखों की स्थिति से गुप्त राजाओं के उत्तर प्रदेश से संबंध या उस भू-भाग से प्रेम की मनोभावना प्रकट होती है।

---

१. दूसरा पाठ 'अनुगंगा प्रयागं च' मानते हैं। परन्तु पतंजलि ने (२/१/२) अनुगंगम् वाराणसी का भी प्रयोग किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्रगुप्त द्वारा प्रयाग स्तंभ पर अपनी विजय यात्रा का विवरण अंकित कराने का विशेष प्रयोजन था। राजधानी में ऐसी घोषणा का महत्व है। पाटलिपुत्र में रहकर प्रयाग में प्रशस्ति खुदवाना सार्थक नहीं माना जा सकता।

गुप्त सम्राटों द्वारा प्रचलित स्वर्ण मुद्राओं के ढेर का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि उनके दस ढेर उत्तर प्रदेश में ही मिले हैं, जबकि इनकी कुल संख्या १६ है।

(१) भरसार (वाराणसी के समीप)....३२ सिक्के
(२) प्रयाग .... २०० सिक्के
(३) टांडा (फैजाबाद जिला) .... अज्ञात
(४) कोटवा (गोरखपुर जिला) .... १७ सिक्के
(५) बस्ती .... १० सिक्के
(६) टेकरी (मिर्जापुर जिला) .... ४० सिक्के
(७) कसरवा (बलिया जिला) .... १६ मुद्राएँ
(८) जौनपुर .... अज्ञात
(९) गोपालपुर (गोरखपुर जिला) .... २० सिक्के
(१०) झूंसी (प्रयाग के समीप) .... ३० सिक्के

यदि समस्त परिस्थिति पर विचार करें तो पता चलता है कि दो प्रधान बयाना (भरतपुर) तथा कालीघाट (बंगाल) ढ़ेरों को छोड़कर सारे गुप्त स्वर्ण सिक्कों के ढेर उत्तर प्रदेश में ही मिले हैं। उससे भी आश्चर्य का विषय यह है कि प्रथम सम्राट् प्रथम चन्द्रगुप्त के स्वर्ण सिक्के हाजीपुर के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश से ही प्राप्त हुए हैं। बयाना ढेर के छिपाने का कार्य किसी कारणवश (युद्ध की आशंका से) हुआ था। परन्तु उत्तर प्रदेश के ढेर में प्रथम चन्द्रगुप्त के सिक्के की उपलब्धि विशेषता रखती है। उसका विवाह लिच्छवि राजकुमारी कुमारदेवी से सम्पन्न हुआ था। अतएव वैशाली के समीप हाजीपुर में चन्द्रगुप्त कुमारदेवी प्रकार के सिक्कों का मिलना युक्तिसंगत प्रतीत होता है। किन्तु उत्तर प्रदेश के ढेर की प्राप्ति महत्वपूर्ण ज्ञात होती है। दक्षिणी बिहार या पाटलिपुत्र के भाग में गुप्त राजाओं के स्वर्ण सिक्के नहीं मिले हैं किन्तु वह उत्तर प्रदेश में दस स्थानों से प्राप्त हैं। अतएव यह सुझाव युक्तिसंगत होगा कि गुप्त शासकों ने प्रयाग में रहकर शासन किया न कि पाटलिपुत्र से।

यों तो पुरातात्विक खुदाई से कोई भी गुप्तों के अवशेष उपलब्ध नहीं हुए हैं परन्तु समुद्रगुप्त द्वारा विजय यात्रा का विवरण प्रयाग स्तंभ पर अंकित करना सार्थक प्रतीत होता है। जैसा ऊपर कहा गया है यदि पाटलिपुत्र राजधानी थी तो उस स्थान पर दिग्विजय का वर्णन उत्कीर्ण कराना उचित था। पर समुद्रगुप्त ने ऐसा न किया। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि गुप्त नरेश प्रयाग से शासन कर रहे थे। उसकी विजय यात्रा पर विचार करें तो सबसे प्रथम समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के राजाओं पर विजय किया जिसके नाम हरिषेण ने सर्वप्रथम उल्लिखित किया है—कोसलक महेन्द्र का उल्लेख बतलाता है कि प्रयाग से समुद्रगुप्त ने मानिकपुर सतना होकर मध्य प्रदेश की ओर प्रस्थान किया था। जिसे आजकल भी 'महाकोशल' कहते हैं। उत्तरी भारत में अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाकर ऐसा करना उचित प्रतीत होता है। इस कारण हरिषेण ने तिथिक्रम तथा स्थानक्रम के अनुसार ही समुद्रगुप्त की विजययात्रा का वर्णन किया है। पुराणों में भी सर्वप्रथम प्रयाग, द्वितीय साकेत तथा मगध तृतीय स्थान पर वर्णित है। इस क्रम में भी प्रयाग की ही प्रधानता दी गयी है।

ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्म ग्रंथों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि प्रयाग (यानी गंगा यमुना द्वाव) धार्मिक कार्यों का केंद्र था। पाटलिपुत्र से दूर जाकर शासकों ने यज्ञ किया। गुप्त नरेश परम वैष्णव तथा (भारतीय) ब्राह्मण संस्कृति के उपासक थे। अतएव बौद्धों के क्षेत्र में यज्ञ करना उनके लिए निंदनीय तथा घातक था। अट्टकथा (भा० ५) तथा जातक (भा० ६) में पाटलिपुत्र को व्यापारिक क्षेत्र में उन्नत नगर कहा गया है। जहाँ से वाराणसी एवं कौशाम्बी तक व्यापारिक नौकाएँ आया जाया करती थी (विनयपिटक, हिंदी अनुवाद, पृ० ७९)। अतएव प्रथम चंद्रगुप्त ने उचित निर्णय लेकर कौशाम्बी के समीप प्रयाग को राजधानी बनाया। वैदिक यज्ञों के लिए प्रयाग समुचित स्थान था। शतपथ ब्राह्मण में (१३/५/३/१३) में गंगा-यमुना के संगम पर स्थित प्रयाग में स्नान तथा अश्वमेध के पुण्य लाभ का वर्णन मिलता है। राजा भरत ने करीब अस्सी अश्वमेध प्रयाग में संपन्न किया था—

परः सह स्नानिद्रायाश्वमेध्यान्
यः आहरत विजित्य पृथिवीं सर्वान्

महाभारत (वनपर्व ८४/३५) में प्रयाग को तीर्थराज की संज्ञा देकर उस स्थान की तीर्थ यात्रा को पुण्यतम बतलाया है। उसके नाममात्र से सभी पाप दूर भाग जाते हैं। गंगा-यमुना के संगम पर प्रयाग को उत्कृष्ट यज्ञ का स्थल माना है।

प्र = प्रकृष्ट तथा याग = यज्ञ (यज + घञ्)

कालिदास ने भी उस अर्थ में याग शब्द का प्रयोग किया है—

ऋषिदेवगणस्वधाभुजां श्रुत याग प्रसवैः स पार्थिवः
अनृणत्वमुपेयिवान्बभौ, परिधेर्मुक्त इवोष्ण दीधितः।

(रघुवंश ८/३०)

अनुशासन पर्व (२५/३५) में प्रयाग लाखों यज्ञों का स्थल कहा गया हैं अतएव जनता वहाँ तीर्थ करने जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यमुना गंगा या सार्द्धं संगता लोक पावनि
गंगा यमुनोर्मध्ये पृथिव्यां जघनं स्मृतम्
प्रयागं संप्रतिष्ठान कम्वलाश्वतरो यथा
तीर्थं योगवती यैव वेदिरेवा प्रजायते।
तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमंतो युधिष्ठिर
प्रजापतिमुयासन्ते ऋषयश्च तपोधना
ततः पुण्यतमं नाम त्रिलोकेषु भारत
प्रयागं सर्व तीर्थेभ्योः प्रवदंति अधिक विभो
तत्राभिषेकं यः कुर्यात्संगमे लोक विश्रुते
पुण्यं सकलामाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः।

अतएव ऐसे पवित्र एवं पुण्यतम प्रयाग को राजधानी चुनना सर्वथा उचित था। पाटलिपुत्र के स्थान पर प्रयाग से शासन करना धार्मिक दृष्टिकोण से श्रेयस्कर था। इसी कारण गुप्त नरेश द्वारा प्रयाग का चयन सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण रहा होगा।

कौशाम्बी के इतिहास का अनुशीलन भी इस निर्णय पर पहुँचाता है कि गुप्तों ने मघ राजाओं को परास्त कर कौशाम्बी जीता तथा प्रयाग से राज्य करने लगे। ईसवी दूसरी सदी में कुषाण नरेश वासुदेव का कौशाम्वी पर अधिकार था तत्पश्चात् मघवंशी राजाओं ने वह भाग अपने अधीन कर लिया। उन मघ राजाओं ने ई० २२५ से २६५ ई० के मध्य शासन किया जिनका इतिहास सिक्कों के आधार पर ज्ञात हुआ है (वाकाटक-गुप्त एज, पृ० ३१-४६ तथा ज० न्यू० सो० इ० भा०, ४,११) उनमें भीमसेन का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिसने सर्वप्रथम स्वतंत्रता की घोषणा की थी। (गंज लेख १३० ई०, ए० इ०, भा० २, पृ० ३०६)। उसके कई सिक्के भी प्रकाश में आए हैं (ज० न्यू० सो० ई०, भा० ८, पृ० १६)। इसी भीमसेन की एक मुद्रा भी राजघाट से उपलब्ध हुई है (आ० स० इ० अ० रि०, १९१२-१३)। इस प्रकार अभिलेख (ए० इ०, भा० १८, पृ० १५९) तथा अनेक सिक्कों के आधार पर यह कहना उचित होगा कि कौशाम्बी के भू-भाग पर तीसरी सदी तक मघ वंश का राज्य था। विजयमघ तथा शिवमघ (ए० इ०, भा० २६, पृ० २९९) ने अंतिम समय उस वंश में प्रशंसनीय कार्य किया तथा उपलब्धियाँ प्राप्त की। संभवतः शिवमघ को प्रथम चंद्रगुप्त ने पराजित कर, उस भू-भाग पर गुप्त राज्य की नीव डाली। इसी कारण प्रयाग को राजधानी घोषित किया। कोई विद्वान् उदयगिरि गुहालेख में 'पाटलिपुत्रकः' शब्द से पाटलिपुत्र को राजधानी मानने में बल देते हैं। परन्तु उस नामोल्लेख के आधार पर पाटलिपुत्र को राजधानी मान लेना न्यायसंगत न होगा। द्वितीय चंद्रगुप्त का सेनापति वीरसेन पाटलिपुत्र का निवासी रहा हो जो सम्राट् के साथ युद्ध करने विदिसा क्षेत्र में गया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त सम्राटों के कलाकृतियो के परीक्षण से भी प्रकट होता है कि बिहार प्रदेश के बाहरी भू-भाग में ही गुप्त नरेशो ने मंदिरो का निर्माण किया। सांची का मंदिर तथा झांसी (उत्तर प्रदेश) के मंदिरों का निर्माण बिहार प्रदेश के बाहर क्योंकर हुआ था ?

(१) भूभरा का शिव मंदिर

(२) नाचना कूथर का पार्वती मंदिर

(३) लडखान का मंदिर

(४) देवगढ़ का दशावतार मंदिर

(५) भितरगांव का मंदिर

(६) तिगवा का मंदिर

उपरियुक्त कथन को प्रमाणित करते हैं। गुप्त कालीण तक्षण कला का विकास सारनाथ तथा मथुरा केंद्रों में हुआ। पाटलिपुत्र केंद्र सारनाथ कला से प्रभावित था तथा सारनाथ शैली की परंपरा को मगध शैली में अनुकरण किया गया। इस प्रकार कलात्मक नमूने भी यह प्रमाणित करते हैं कि गुप्त सम्राट् पाटलिपुत्र से संवद्ध न थे। ऊपर लिखित प्रमाणों के आधार पर एवं उनके अनुशीलन के फलस्वरूप प्रयाग को राजधानी होने का सुझाव तिरस्कृत नहीं किया जा सकता। यहीं से पूर्वी बंगाल, काटियावाड़ तथा हिमालय प्रदेश पर गुप्तों ने शासन किया था। इसे प्रयाग के संदर्भ में विचार करना न्यायोचित होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट २

उत्तरी भारत के राजाओं की समकालीनता

कामरूप	वर्धन	मागध गुप्त	मौखरि	गौड़
		कृष्णगुप्त	हरिवर्मन्	
		हर्षगुप्त	आदित्यवर्मन्	
		प्रथम जीवितगुप्त	ईश्वरवर्मन्	
		कुमारगुप्त	ईशानवर्मन्	
		दामोदरगुप्त	सर्ववर्मन्	
	आदित्यवर्धन + प्रभाकरवर्धन	महासेनगुप्त		
भास्करवर्मन्	हर्षवर्धन	माधवगुप्त	ग्रहवर्मन्	शशांक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट ३

गुप्त-युग का तिथि-क्रम

गुप्त संवत्	ई० सन्	ऐतिहासिक घटना	टिप्पणी
	२७१ के आसपास	महाराज गुप्त का राज्य-काल	
	२९० के निकट	महाराज घटोत्कच का समय	
	३०८ के लगभग	प्रथम चन्द्रगुप्त का लिच्छिवि-कन्या कुमार देवी से विवाह	
गु० स० का प्रथम वर्ष	३२०	प्रथम चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण	
९	३२८–२९	समुद्रगुप्त का राज्याभिषेक	
	३३०–३६ के निकट	आर्यावर्त की विजय-यात्रा	
	३४७–५० के लगभग	दक्षिणापथ की विजय-यात्रा	
	३५० के समीप	अश्वमेध	
	३६० के आसपास	सिंहल के राजा मेघवर्ण के राज-दूत का समुद्रगुप्त की राजसभा में उपस्थित होना	
		रामगुप्त का शासन	समुद्र तथा द्वितीय चन्द्रगुप्त के बीच में रामगुप्त शासन करता था।
	३८० के लगभग	द्वितीय चन्द्रगुप्त का राज्यारम्भ	
	३९५ के समीप	पश्चिम भारत पर विजय	
८२	४०१	उदयगिरि का शिलालेख	
	४०१–४११	गुप्त साम्राज्य में फाहियान की यात्रा	फाहियान बौद्ध यात्री था जो मध्य एशिया होकर चीन से भारत में भ्रमण करने आया था।
	४०५ के समीप	द्वितीय चन्द्रगुप्त द्वारा पश्चिमोत्तर प्रांतों पर विजय	

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त संवत्	ई० सन्	ऐतिहासिक घटना	टिप्पणी
८८	४०७	गढ़वा का शिलालेख	
९०	४०९	पश्चिम भारत में प्रचलित शैली के चाँदी के सिक्कों का प्रचार	कठियावाड़ तथा मालवा विजय करने पर चाँदी के सिक्कों को द्वितीय चन्द्रगुप्त ने चलाया।
९३	४१२	साँची का शिलालेख	
९४	४१५ के समीप	प्रथम कुमारगुप्त का राज्यारम्भ	
९६	४१५	बिलसद का लेख	
९८	४१७	गढ़वा का लेख	
११३	४३२	मथुरा का लेख	
११७	४३६	करमदण्डा का लेख	यह लेख शिवलिङ्ग के अधोभाग में खुदा है।
१७७	४३६	मदसोर का लेख	मालव संवत् ४९३) सूर्य-मंदिर का निर्माण)
१२१, १२४, १२८	४४०, ४४३, ४४७	चाँदी के सिक्कों पर उत्कीर्ण तिथियाँ	वैग्राम ताम्रपत्र उत्कीर्ण
१२९	४४८	चाँदी के सिक्के	बुधमित्र द्वारा बुद्ध-प्रतिमा की स्थापना
,,	,,	मनकुवार का लेख	
,,	,,	दामोदरपुर का ताम्रपत्र	
,,	,,	हूण जाति का आक्सस नदी के तटस्थ प्रान्तों पर अधिकार	
१३०	४४९	चाँदी के सिक्के	
	४५० के आस पास	कुमारगुप्त के शासन में पुष्यमित्रों से युद्ध	
१३५	४५४, ४५५	चाँदी के सिक्के	
	४५५	स्कन्दगुप्त का हूणों से युद्ध	
,,	,,	स्कन्दगुप्त का शासन प्रारम्भ	'लक्ष्मीः स्वयं यं वरयांचकारः' (जूनागढ़ लेख)
१३७	४५६	जूनागढ़ का लेख गिरनार में सुदर्शन झील के बाँध का जीर्णोद्धार	
१३८	४५७	वहाँ विष्णु-मन्दिर की स्थापना	
१४१	४६०	कहौम का लेख	
१४४, १४५	४६३, ४६४	चाँदी के सिक्के	
१४६	४६५	इन्दौर का शिलालेख [जि० बुलंदशहर]	

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त संवत्	ई० सन्	ऐतिहासिक घटना	टिप्पणी
१४८	४६७	चाँदी के सिक्के पुरुगुप्त | नरसिंहगुप्त |	स्कन्दगुप्त के शासन की अंतिम तिथि पुरुगुप्त तथा नरसिंहगुप्त का शासन ४६८ तथा ४७५ के बीच रहा।
१५४	४७३	द्वितीय कुमारगुप्त	वर्षशते गुप्तानां स चतुःपंचाशदुत्तरे भूमिं शासति कुमारगुप्ते (सारनाथ)
,,	,,	दशपुर (मालवा) में सूर्य-मंदिर का संस्कार	मालव संवत् ५२९
१५७	४७६	बुधगुप्त का शासन आरम्भ	
१६५	४८४	एरण का शिलालेख परमदैवत परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री बुद्धगुप्त का पुण्ड्रवर्धन भुक्ति (उत्तरी बङ्गाल) पर अधिकार	गुप्तानां समतिक्रांते सप्तपंचाशदुत्तरे शते समानां पृथिवीं बुधगुप्ते प्रशासति (सारनाथ) दामोदरपुर ताम्रपत्र
१७५	४९५	बुधगुप्त के मयूरांकित चाँदी के सिक्के (संवत् समेत) बुधगुप्त के शासन का अंत	'विजितावनिरवनिपतिः श्री बुधगुप्तो दिवं जयति' (एलन, गु० मुद्रा, पृ० १५३)
	४९५, ५०५	विष्णुगुप्त	ये सिक्के मध्यभारत के शैली के थे जिसको गुप्तनरेशों ने पीछे प्रचलित किया
१८८	५०७	वैन्यगुप्त का शासन गुणैधर लेख की तिथि	
	५००, ५०२	हूण तोरमाण का मालवा तथा मध्यभारत पर अधिकार	मयूरांकित गुप्त चाँदी के सिक्कों के समान तोरमाण ने भी मुद्रा चलाया था।
१९१	५१०	भानुगुप्त का एरण में पराजय	
१५६, १६३	४७५, ४८२	गुप्तों के अधीनस्थ	
१९१, २०९	५१०, ५२८	राजाओं के खोह लेख	
२१४	५३३	दामोदरपुर का पाँचवाँ ताम्रपत्र	
	५०२, ५४२	मिहिरकुल	
	५२८ के समीप	यशोधर्मा ने मिहिरकुल को परास्त किया	
	५३२	यशोधर्मा का मन्दसोर स्तम्भलेख	मालव संवत् ५८९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट ४

मागध गुप्त युग का तिथि-क्रम

गुप्त संवत्	ई० सन्	ऐतिहासिक घटना	टिप्पणी
	५३५-५४५	कृष्णगुप्त | हर्षगुप्त | जीवितगुप्त प्रथम	सम्भवतः इन्हीं दस वर्षों के भीतर इन तीनों राजाओं का शासन समाप्त हो गया।
	५४५ के समीप	कुमारगुप्त का शासन आरम्भ	
	५५० के लगभग	मौखरि राजा ईशानवर्मा का कुमारगुप्त के हाथों परास्त होना	५५५ ई० सन् (हरहा लेख) से पूर्व ही यह युद्ध हुआ होगा।
	६४१ के आसपास	सर्ववर्मन के द्वारा दामोदरगुप्त का परास्त होना	
	५७० के लगभग	महासेन गुप्त	हर्षवर्धन के पिता प्रभाकरवर्धन के समकालीन
		माधवगुप्त	हर्षवर्धन का मित्र
	६४१ के समीप	हर्ष द्वारा मगध का सिंहासन प्राप्त	
	६७२	आदित्यसेन का शाहपुर का लेख	हर्ष-संवत् ६६
	६७५ के समीप	अफसद्र का लेख	प्रारम्भ से आदित्यसेन तक का वंश-वृक्ष
	६८०	देवगुप्त उत्तरी भारत का शासक	'सकलोत्तरापथनाथ'
	७१५-७२३	विष्णुगुप्त का शासन	मंगरांव लेख
	७२४	द्वितीय जीवितगुप्त का अंत	देववर्नाक अभिलेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट ५

सुपिया अभिलेख

१. श्री घटोत्कच (:) तद्वंशे प्रवर्धमा
२. (ने) महाराज श्रो समु (द्रगु) प्रः तत् (पु)
३. (त्रः) श्री विक्क्रमा (दित्यः) तत् (पुत्रः)
४. महाराज (श्री) महें द्रादित्यः तस्य पु (त्रः)
५. चक्क्र (वर्त्ती) तु (ल्यो) (महा) वल विक्क्र (मे) ण रा (म)
६. तुल्यो ध (र्म्म) परतया युधिष्ठिर तुल्यः सत्ये
७. न चरवि (नये)[1] महाराजा श्री स्क (न्द)
८. गुप्त तस्य राज्य (सम्भ्व) त्स सते इक
९. चत्वारि (ण सोत्त) रके अस्यां दिवस पु
१०. व्र्रा यां अवढ़र वास्तव्य कुटुंविकः
११. कैवर्त्ति श्रेष्ठी नप्तृ (प्ता) हरि श्रेष्ठी पुत्रः श्रीदत्तः
१२. तद् भ्राता वर्ग्गः तद् भ्राताच्छन्दक
१३. स्व पुण्याप्यानार्थं यशः कीर्ति प्रवर्धयमान
१४. गोत्र शैलिक वल यष्ठिः प्रतिष्ठापिता वर्ग्गं ग्रामिकेण
१५, १६. ज्येष्ट मासे शुक्ल पक्ष द्वितीयां तिथौ

---

१. सत्याचार विनय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रमणिका

अ

अच्मृत ३६४
अनंत देवी ३७, ३२९
अभयमित्र ३०३
अभिलेखो का आधार २७–३२
अमोघवर्ष २७१
अलतेकर ३३४, ३४९
अलवेरूनी ९७–९ १०३–७
अवन्तिवर्मन ३२१
अवलोकितेश्वर ३०७
अश्वमेध २४८, २६६
अशोक ७, २८-३१, ३९-४०, ६०-६१, ७१-३, ८३-९०, २४७, २६५, २९४
अष्टांगिक मार्ग ३५८
अक्षय नीवि २८५,४००-२
अक्षरिका ८८
आदिकर्तृन ७२, १६०
आदित्यसेन २१-२४, ३२-३८, ५४, ६१, १८६, १९१, ३२०, ३१५ ३९६-८, ४३३
आभीर २६१-२
आर्यावर्त के राजा ७, ८, २४९-५२
आरदोक्षो ११६
इत्सिग ५, ४२३

उ

उदिताचार्य २७४-६
उषवदत्त २८, २६०

क

ककुस्थवर्मन ११
कनिष्क ३९, ६०, ७८
काच २६८, २७३-४
किदार कुषाण २६३-४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालिदास ११, ४२, ५४-७, ८७, २८९-९०
कालीघाट ढेर १६, १७, ४२५
कायस्थ २८७, ३१०
कुटिलाक्षर ९२, ३९८
कुमार गुप्त प्रथम ११-१७, २९-४१, ४६-५७, ६२-६६, ७१-८, ८३-७, ९०, ९५, ९७, १०१, १०५, ११०-११७, १३५-४०, १४३, १४४, १४५, १५०, १६२, १६६, १६९, २३४, २४०-२; २७३, २८२-९४, २९३-९, ३३३-४, ३७१-८०, ३८६, ३०१-४, ३८३, ४१८-९, ४२०-२, ४२४
कुमारगुप्त द्वितीय १५-१९, ३१-३७, ७१, ७५, ८१, ९८, १०६, १११, १६९, २३३, ३०७, ३११, ३२४, ३८९
कुमारगुप्त तृतीय २२, २३, ५५, १८५, ३५०, ३९६
कुमार देवी ४-६, ३६-३८, ५४, ५६, ६५, १२४-७, १३४-५, १६२, १६६-८, २३२-४, २४७, २६६, २६५-८, ३३०-१, ३३४, ३७१, ३८५, ४१८-९, ४२५
कुल्यवाप ६७-८, १३८, १४२, १७१-४, १९३-४, २८५-७, ३३७
कुवेरनागा १०, ५४
कुशिक १३०, ३६९
कृत्त संवत् ३५३
कृष्णगुप्त २१-२२, १८४, ३९६
कोकमुखस्वामी ७८, १७४, ३९१
कोट्टावी ४३४-५
कोण देवी ५४, ६१, १८८, ३१९, ३९८-९

ख

खारवेल ९३

ग

ग्रहवर्मा ४२९
गुदफर ९४
गुप्त ३६५-८, ३७१, ३८५, ३८८-९
गुप्तलिपि ८७-९०, ११३
गुप्त लेख ४२४, ३३१
गुप्त संवत् १०-११, २९-३०, ९६-१००, १०२, १०३, १०५, १५७, १९९, २४८, २८९, २९५, ३००, ३३६, ३१२, ३४१-२, ३८४
गुप्त सिक्को का ढेर ४२५
गुप्त संस्कृति का विस्तार ८२
गोपराज २०, ५४, ५९, १८०, ३१२, ३९४
गोप्ता १५५
गोविंद चतुर्थ २७१
गोविंद गुप्त ११, १२, ३२, ४१, ४६, ११०, २३५, ३२५, ४०१, ४१९

घ

घटोत्कच ५, ६, १२, १७, ११७, १२४-७, १३४-५, १६६-८, २३२-४, २३५, २९३, ३६५-८, ३७१, ३८९, ४१९

च

चक्रपालित ७५, १५६, २९५, ३८३-४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चंद्रगुप्त प्रथम ४-७, ३६-९, ६५, ११३, १२४-७, १३४-५, १४०, १६६-८, १६२-६६, २३३-४, २४७-८, २६६, २७७-८०, ३३०-१, ३६५-६, ३६८-४, ३८८-९, ४१८-१९
चंद्रगुप्त द्वितीय २, १२, २२, २९, ३३-४१, ४६, ५३, ५८, ६६, ७५-७७, ८१-३, ८७, ९५-७, ११३-७, १२९-३५, १६५, १६९, २३२-४, २५८, २६२-४, २६८, २७०-४, २८१-९, २९४ ३२५, ३३२-५, ३७१-४, ३८६-९, ४२०-७
चंद्रगुप्त मौर्य ३९, ६१
चंद्रवर्मन २७८-८०
चंडसेन ३
चाणक्य ६०
चिरातदत्त १२, १४४, ३७६

ज

जयनाथ १९, २०३-४, ३४४, ४०४-८
जीवितगुप्त द्वितीय २४, ३४, ४०, १८४, १९१, ३२०-१

त

तिथि गणना ९४-६
तोरमाण २०, ७६, ८२, ११४, २२७-९, ३०५-६, ३३५, ३५४-९, ४१५-१६ ४३२

द

दत्त देवी ३६८
दशपुर ६२, ६३, १४७-८
दक्षिणापथ राज ८, ९, २५४-७
दीनार ६६, ६७, ३३-८, १७१, १७४ १९३-४
दामोदर गुप्त २२, १८५, ३९७
देव गुप्त ३८९
देवपुत्र शाहि ३६५
देवराज १३३, ३६९
द्रोणवाप ३१०

ध

धन्य विष्णु २२८, ३०५-६, ३९२, ४१५
धर्मपाल ३३८
धर्ममहामात्र ३२६
धर्म सत्र ७८, १३६
धर्म श्लोक ८१
ध्रुव देवी (ध्रुवस्वामिनी) १०-११, ३२, ५४, ९९, ११०, २३५, २६८-७३ ३२५-६, ३८६-९, ४१८-९

न

नाना ४३५
नल ४०१
नरसिंह गुप्त १५-१८, ३१-३, ३७, १६९, २३२-४, ३०२-३, ३२८, ३८९, ४१८
नहपान ९३, २६०, ३१८
नाग सिक्के २
नागसेन ३६४
नीविधर्म २८७-८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प

पर्णदत्त ३०-३१, ७५, १५५, २९५, ३८३
पंचमहापातक २०५-१०, २४३, २४६, २८६, ४०४, ४०९
पंतंजलि २६१
प्रभावती गुप्ता २, ८, ११, ५३-४, ५९, ९६
पाणिनि २६१
पार्श्वनाथ ३७२
पाशुपतमत ७७, २७६
पिष्टपुरीक देवी ४०८
पृथ्वीषेण १२, ४२, ४६, १४०, २२५, २५८ २८४
पूजा सामग्री ३९३
पुरु गुप्त १५-१८, ३१-२, ३७, १६९, २३२-४, ३०१-३, ३२८, ३३९, ३८०, ४१८
पुलमावि ४९
पुष्यमित्र १३-५, ७३, ८५, १६२, २९८
पौथसिरि २

फ

फाहियान ११, ४३, ४४, ५१-३, ५६, ७१, ७२, ४३०

ब

बंधुवर्मा १५१
बलभी संवत् ९९
बयाना ढेर ४२५
बालादित्य १९२, ३५२, ३५९
ब्राह्मण कन्यादान ३९७
ब्राह्मी २७९
बिम्बिसार ३९
बुध गुप्त १६-२०, ३१-२, ३६, ७१, ७५, ८३, ९५, ९८, १०३, १०६-११, १७०, १७१, २३३, २५६, ३०१-६ ३११-३, ३२८, ३३५, ३३९-४०, ३९०, ४१९, ४२२-२४, ४३२
बुधमित्र २९, १४५, २८८
बोधिसत्व ७०-२
बौद्ध दार्शनिक ७१
व्याघ्रराज ३४५

भ

भवनाग २
भानुगुप्त १९, २०, ५७-९, ८०, १८०, ३०५ ३११-२, ३९४, ४३२
भानुगुप्ता ३५२
भूमिमाप ६१, ६७
भूमिदान श्लोक १८३
भारशिव १

म

मंडपिका ६४
मध्यदेशीय सिक्के ११४
मधुपर्क ३१३, ३९५
मधराजा २, ४२७
मथुरा शासक २५५
महावीर ४०१
महासेन गुप्त १८५, ३१७
महा शिवगुप्त ३
मागधी भाषा ८४-५
मातृविष्णु ५०, २२८, ३०५-६, ३५६-७, ३९२, ४१५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माधवगुप्त २१-३, ३९, १८६, १९१, ३१६-७ ३२०, ३९७-८, ४२९, ४३३
मालव संवत् २९, २२३, २८८-९, ३१७
मिनेनडर ११३, ३५३, ३८०
मिहिरकुल २०, ८२, २२५, २३०, २९९, ३२१, ३५५-९, ४१३-६, ४३२
मुरुंड २६२, ३६५
मुहरो पर लेख ११०, ११३
मेगस्थनीज ८८
मेघ वर्ण २६५, ४३०
मेत्रायिणी ३०५

र

रवीकीर्ति ९८
रुद्रदामन ९३-४
रूद्रदेव २४९-५०, २५८
राजकर्मचारी ३९९
राखालदास वनर्जी ३२६
रामगुप्त ९, १०, २४, १२८, २६७, २७१-४ ३३५, ३६७, ४३०

ल

लकुलीश ७७, २७६
लघुलेख ११२
लाट ६२
लिपि का ज्ञान ९०-९२

व

वंधुवर्मा १७, २७९, ३७९-८०
वत्सभट्टि ५७, ८७, १५३, २८९-९२, ३८१
वराहमिहिर १०१
वर्णाक (वरुणा) ३२०
वाण २५१, २७०
वालादित्य ३३१
वासुलेन २२६
विजयमग ४२७
विशाखदत्त २६९
विक्रम संवत् २६०
विष्णु दास १३१
विष्णुगुप्त १६-२०, २४, १९०-१, २३४, ३०७, ३११, ३१५ ३२२-२३, ३९८, ४१९
विष्णुगोप २५३-५८
विष्णु पूजा ७६
विष्णुवर्धन २२०
विश्व वर्मा १५०
व्याघ्रराज २५५
वीरसेन १०, २८, ४०, ७७, ८७
वेद व्यास १३०, १९५, २६९, २७७, ४२७
वैन्यगुप्त १६-२०, ८३, ९५, ११०, १७७-८, २३३, ३०७-८, ३११, ३२८, ३९२
वैशाली मुहर ४३, ४६, ६२, ६३, ७६-९ १०८-११०

स

संसोभ २१३, ३४६-७, ४०७
सत्र १८२, २०८, २१३, २८२, ४०५
सती कार्य ३९४
स्कंदगुप्त १२-२०, ३०-३८, ४०, ४१, ४७, ५५-८, ६१-६५, ७१-९, ८०, ८७, ९७, ११२, ११५, १५४, १६०-६, २४१, २५६, ३०१-५, ३११, ३४४ ५, ३८२, ३८८, ४२१-४
समुद्र ३, ४-१९, २८-९, ४*-३०, ४१-४४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५१-९, ६१-६५, ७३, ८३, ८६, ११३-५, १२१,-४, १३०-५, १६६-९, २३२-३४, २३९, २४७, २५०-५५, २६७-८, २७३-५, २७८, २९३, ३३१-२, ३४६, ३५५, २७९-८१, ३६३-८, ३८५-८, ४१८-९, ४२५
सर्वनाथ १९, २९
सर्ववर्मन १९२, ३२१
स्वर्णमुद्रा २९, ११४-५
सातकर्णि २८, ३८, ६४, ७३, ९३-४
सिकंदर २६०-१
सुदर्शन ३०-१, ६१, ८७, १५८
सुरश्मिचंद्र १८, १९, ३०५, ३९२
सूर्यपूजा ७८-९

श

शक काल (संवत्) २, ९३-४, ९६, ९८-१०३
शर्वनाथ २०७, २१५, ३४५, ३४८-९, ४०५, ४०८
श्वेत वराहस्वामी ३९५
शशांक ४२९
शांतिदेव ३९३-४
शिवमद्य ४२७
श्रेणी शिल्पी २९०-९२, ३८५
श्रेणीदान १६१, २९६-७
श्रेणीकार्य ६०-४, ११०, १४९-५३
श्रीगुप्त ४-६, २५, ३७, १२४-७, १३४-५ १६६-८, २३२-४

ष

षष्ठी देवी २९४, ३००, ४३५

ह

हस्तिन १०२, २००, २१३, ३४२, ४०२-९
हरिषेण ७, ८, २८, ४२, ८६, १२४, २५१, २५४, २५८, ३२५, ४२६
हर्षवर्धन २२, ३८, १८६, २४९, २७०, ३१५, ३१९, ३३५, ४२९
हर्ष संवत् ३२, २४, ३१५, ३१६
हूण २९८-९०
ह्वेनसांग १७, ५२, ५८, २६५
हेलियोडोरस ७४

क्ष

क्षत्रप नहपान २८
क्षत्रप रुद्रदामन ३०-३८, ४४, ५०, ८५-६ ११३, २६१, २९४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भौगोलिक स्थानों की तालिका

अ

अंतर्वेदी २५०, २९६
अफसद ३१५-१८, ४३३
अमरावती ३००
अयोध्या १४०, १८१, ३१५, ३९५
अरवली ३५९
अहिछत्तर २५२
आर्यावर्त ३६४

इ

इंदौर २९४-९६, ३८५

उ

उद्देहरा ३४४
उर्जयंत ३८४
उज्जयिनी २८०, ३१७
उदयगिरि २७६, २८३, ३६८, ३६९, ३७२, ४३०
उरुवेला २९९

ए

एरण २४८, २५०, २५३, २८४, २९९, ३०६, ३१२, ३५६-७, ३६६, ३९२, ४१५
एरणस्तंभ ३०५, ३९४
एरण्डपल्ल २५८
एलोरा २९९
ऐलेफेंटा २९९

क

कन्नौज ३१५, ३१८
कर्तारपुर ३५९
करमदंडा ३७४, ३८४-५
करितलाई ३४३, ४०३
कहौम २९३-७ ३८४
काकनाड २६२
कांची २४३, २५६ २५८
कामरूप २५९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालिंदी ३०५, ३९२
कालीघाट ३०७, ४२५
कुकुठपादगिरि ३२३
कुट्टलुर २५७
कुरा ३५६, ४१६
कुलैकुरि २८५-६, ३७४
केरल २५५
कोटिवर्ष १४४, १७३, २८७-८, ३०४, ३१२-३, ३२७, ३७६, ३९०-१ ३९५
कोणदेवी ३१६-७
कोरपारिक ४०३
कोलेह २५३
कोशल २५३-५
कौशाम्बी २४७ २८-९ ४२६-७

ख

खालीमपुर ३३८
खोह ३४१-८ ४०२-८

ग

गंगा यमुना ४२६
गंजाम २८९
गढ़वा २६६, ३८८, ३०९
गया ३६६
ग्वालियर ३५६, ३५८
गाजीपुर ३५३, ३२८
गिरनार २९४, ३८३
गुणैधर १७८, २९३, ३०७, ३१०, ३९२
गुजरात ३०५
गोपगिरि ३५९
गौड़देश ३१९

ज

जंबुद्वीप ३५८, ४१६
जूनागढ़ ३८२, २९३-८

त

तमसा ३४५
तिरहुत ३२६
तुम्बनन २८२
तुमैन २८३-४, ३७३

थ

थानेश्वर ३१५

द

दशपुर १४७, १५१-२, २८९, २९०-२, ३५९-२, ३७७-८१
दक्षिण पथ २५३, ३६४, ३६७
दामोदरपुर २८६-८, ३०३-४, ३१२ १४, ३२७, ३४४, ३७६, ३९०-४
देवगढ़ ४२७
देवराष्ट्र २५७-८
देववर्णाक ३९८

ध

धनाइदह २८३, ३७२

न

नगर श्री ३९४
नर्वदा ३०५
नालंदा ३०७, ३१८, ३१९, ३२२, ३२५, ३२९, २४८-९, २९९-३००, ३६७, ४१८,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निधानपुर ३४७
निरंजना २८८
नेपाल २५९-६०

प

पद्मावती ३५१
परियात्र २२२
पलाशिनी २९५, ३८४
पहाड़पुर ३३६-४९
प्रयाग २४८, २५१-३ २५८, २७८, ३१७, ३४६, ३५४, ३६३, ४२३-८
पाटलिपुत्र २७६, ३१५, ३६९, ३७०, ४२५-८
पालधाट २५७,
पेष्टपुर २५४-६

ब

बोधगया २८८

भ

भरतपुर ४२५
भूमरा २८४, २०९
भितरगांव २२८
भितरी ३९३-८, ३०१-३, ३२८, ३८५
भिलसा २६२, २७७

म

मगध शैली २७८, ३०८, ४२८
मधुवन २४९
मद्रदेश २६१
मथुरा २५०, २७५-७, ३६८, ३७३ ४२८
मनकुवार २८८, ३७७
मंगरांव ३२२-३, ३९८
मंदसोर २८८-९२, ३५०-३५३, ३७७, ४१०-३, ४३२,
मंदार पर्वत ३१९
महाकांतार २५५
महाकोशल ४२६
महेंद्रगिरि २५४-६, ३५२
मालवा २६७, २९०, २९२, ३०५
मेहरौली २७७-८०, ३२५, ३६७

र

राजगृह ३७०
राजशाही २८३
रामनगर २५२
रेवा ३५३
रैवतक २५५

ल

लडखान ४२७
लाट १४७, २९०, ३७७
लौहित्य २२५, ३१८, ३५८

व

वटगोहली १९६, ४०१-२
वनास ३२०
वरुणा १९२
वाटा नदी २८६
वाराणसी ३०६, ३४० ४२६
वांसखेडा ३१७
वाहलीक २८०, ३६७
विलसद २८२-३
विपाशा २८०
विदिशा २५१, २८३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विंध्या २२२, ३४२
विष्णुपद २७८, २८१, ३६८
विहार २९४
वेंगी २५६-७
वेसनगर २५१, २६७
वैग्राम ३३६-८, ४००
वैशाली २६६, ३२५-७
व्यापारिक मार्ग केंद्र ६३-४

स

समतट २५९
सह्याद्रि ३०८
सागर ३०५
सांची २७६-७, ३००, ३६९
सारनाथ ३८९, ३०२, ४२३, ४२८
सिंधु २२२, २८०, ३५२
सुदर्शन २९२-५
सुपिया २९३, ३००, ४३४
सुराष्ट्र २९५
सुसानिया २५१, २७८
सैंदपुर २९७

श

शाहपुर ३१६-८
श्रीपुर २५५
श्रीलंका ३६४

ह

हरहा ३१७, ३५४,
हिमालय २६५, ३५५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रशस्ति के आधार : (१) शिला पर अंकित लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

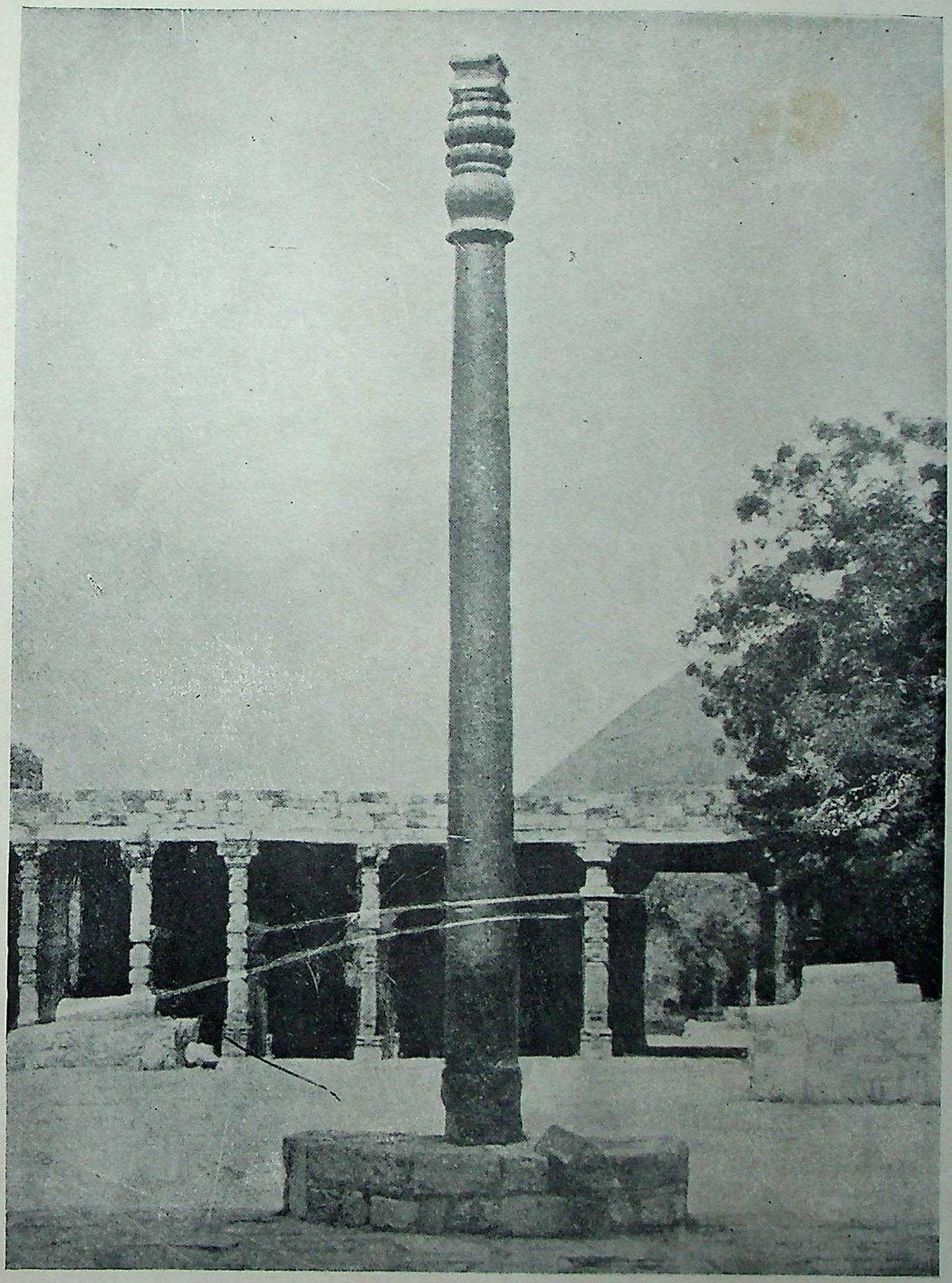

प्रशस्ति के आधार : (२) मेहरौली लौह स्तंभ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रशस्ति के आधार : (३) ताम्रपत्र पर अंकित लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

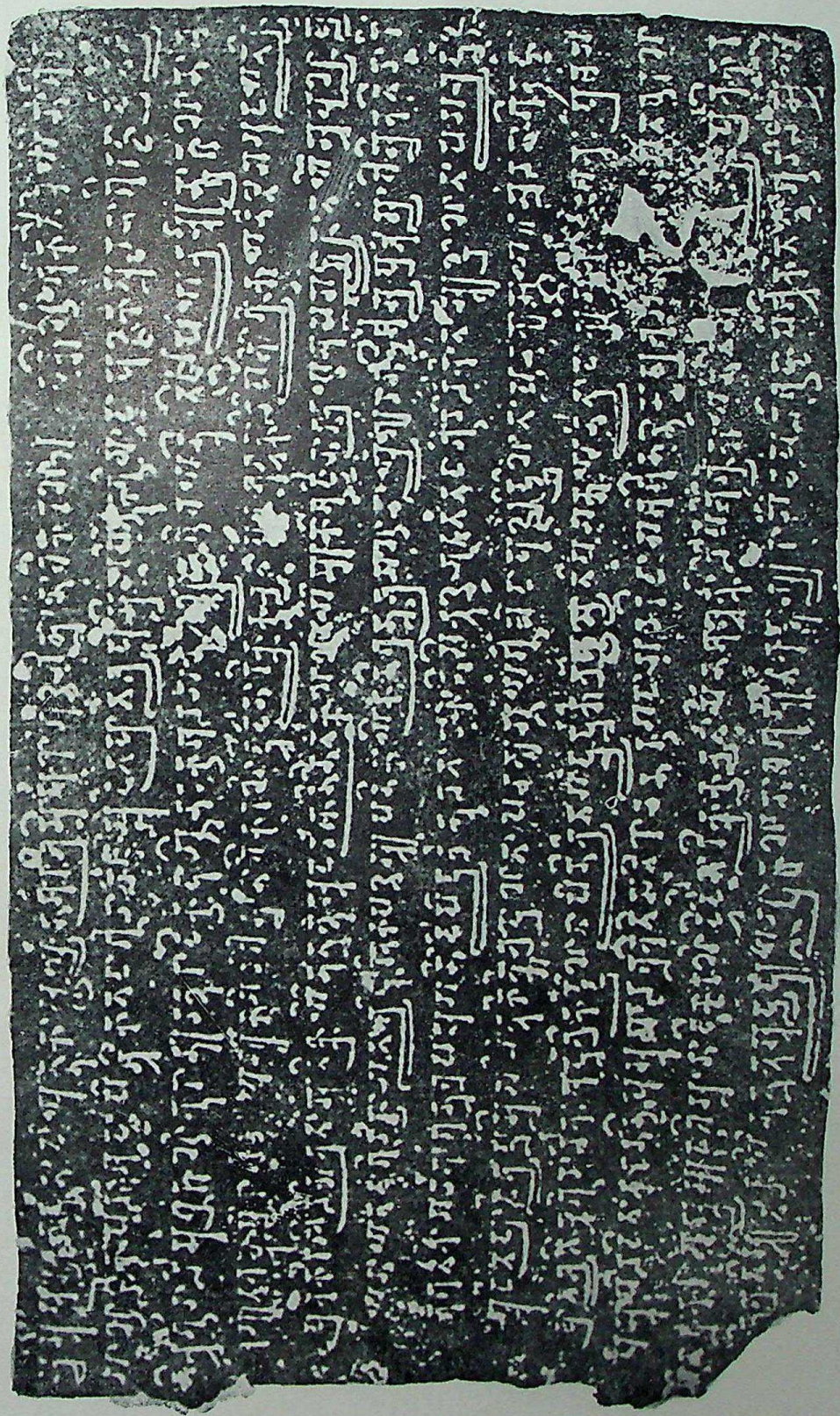

प्रशस्ति के आधार : (४) गुप्त ताम्रपत्र लेख (अग्रभाग)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

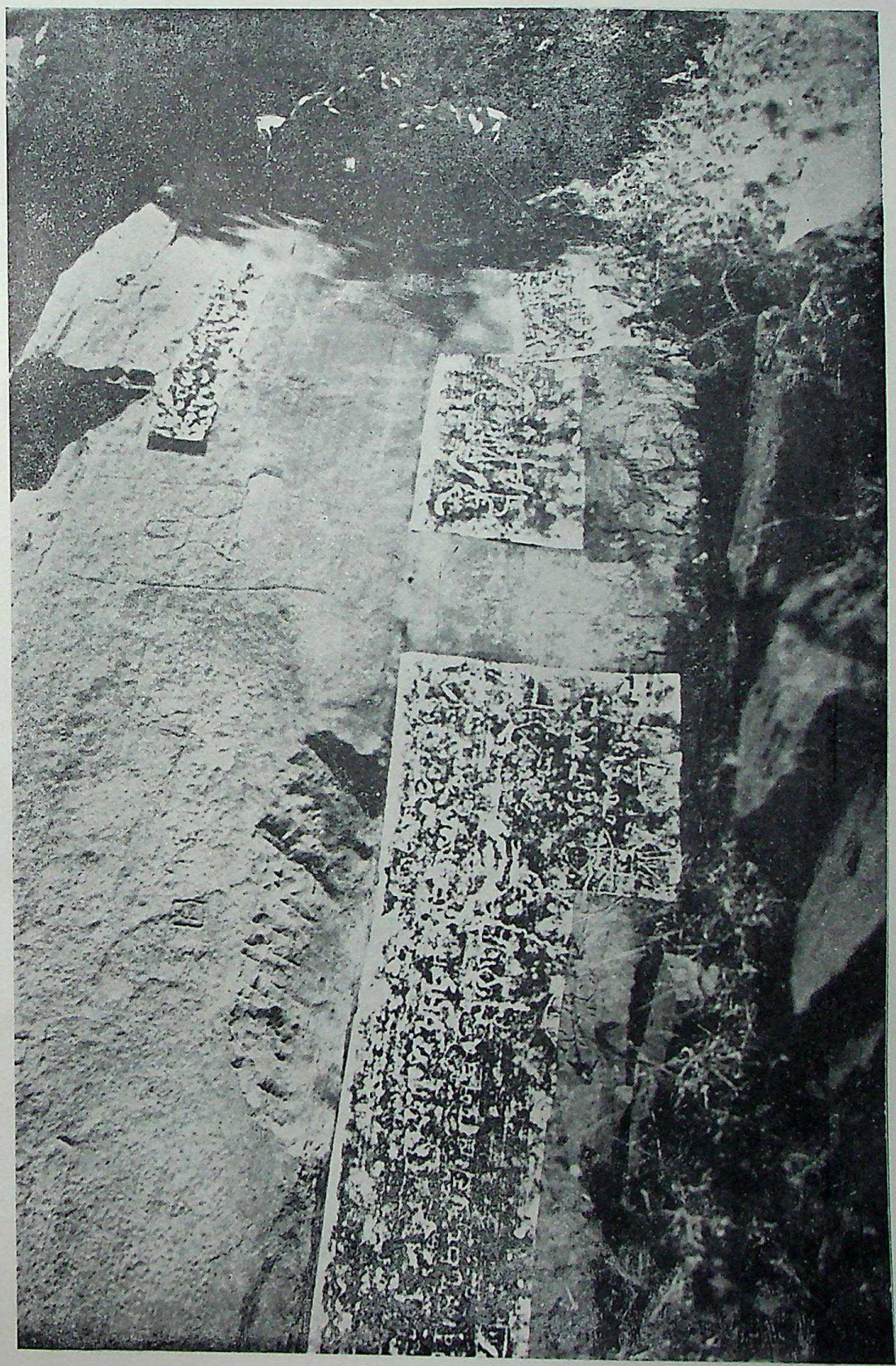

प्रशस्ति के आधार : (५) गुहा लेख (दीवार पर खुदे)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

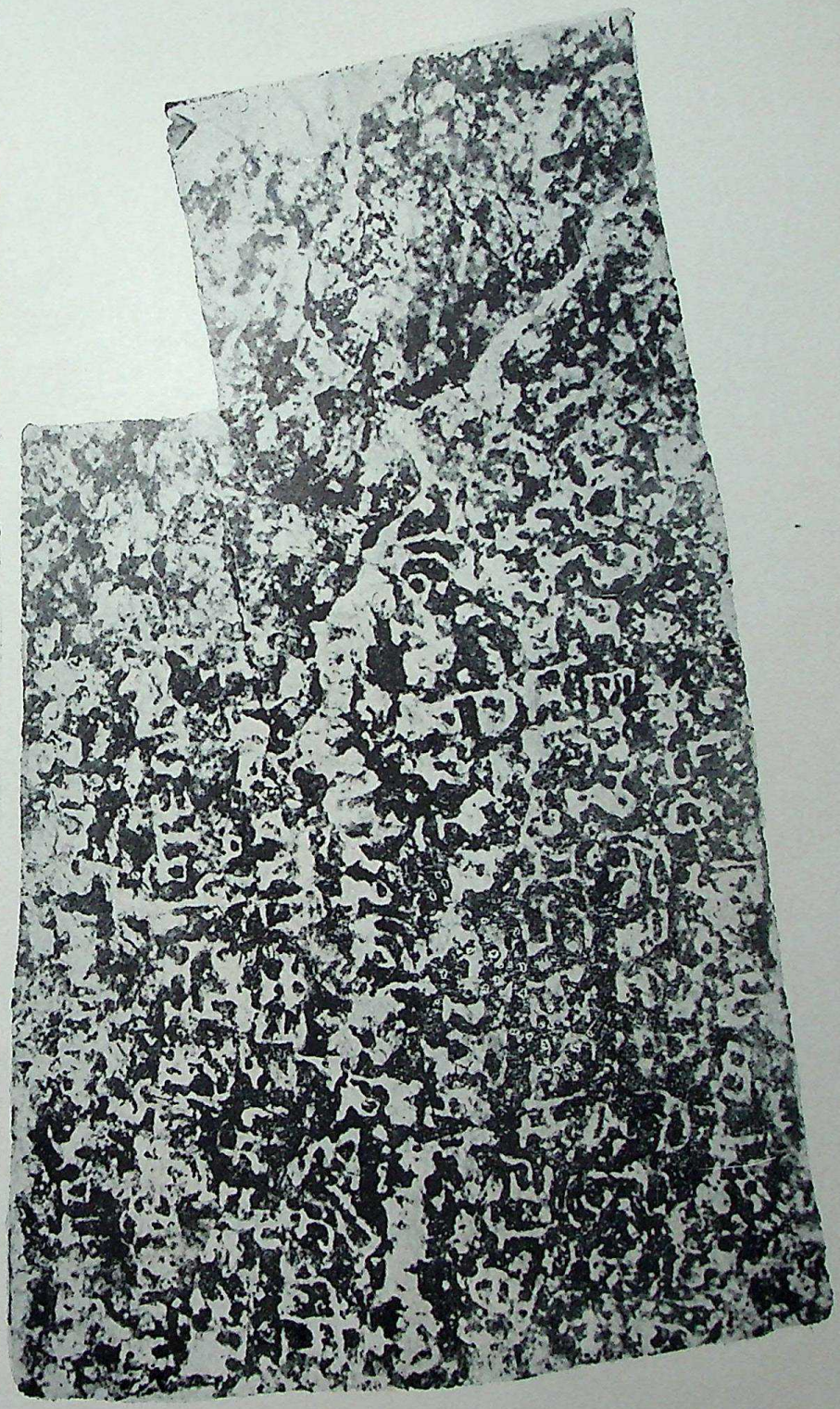

प्रशस्ति के आधार : (६) मंदसोर गुहा लेख (गुप्तकाल)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रशस्ति के आधार : (७) मिट्टी की मुद्रा (विष्णुगुप्त की)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

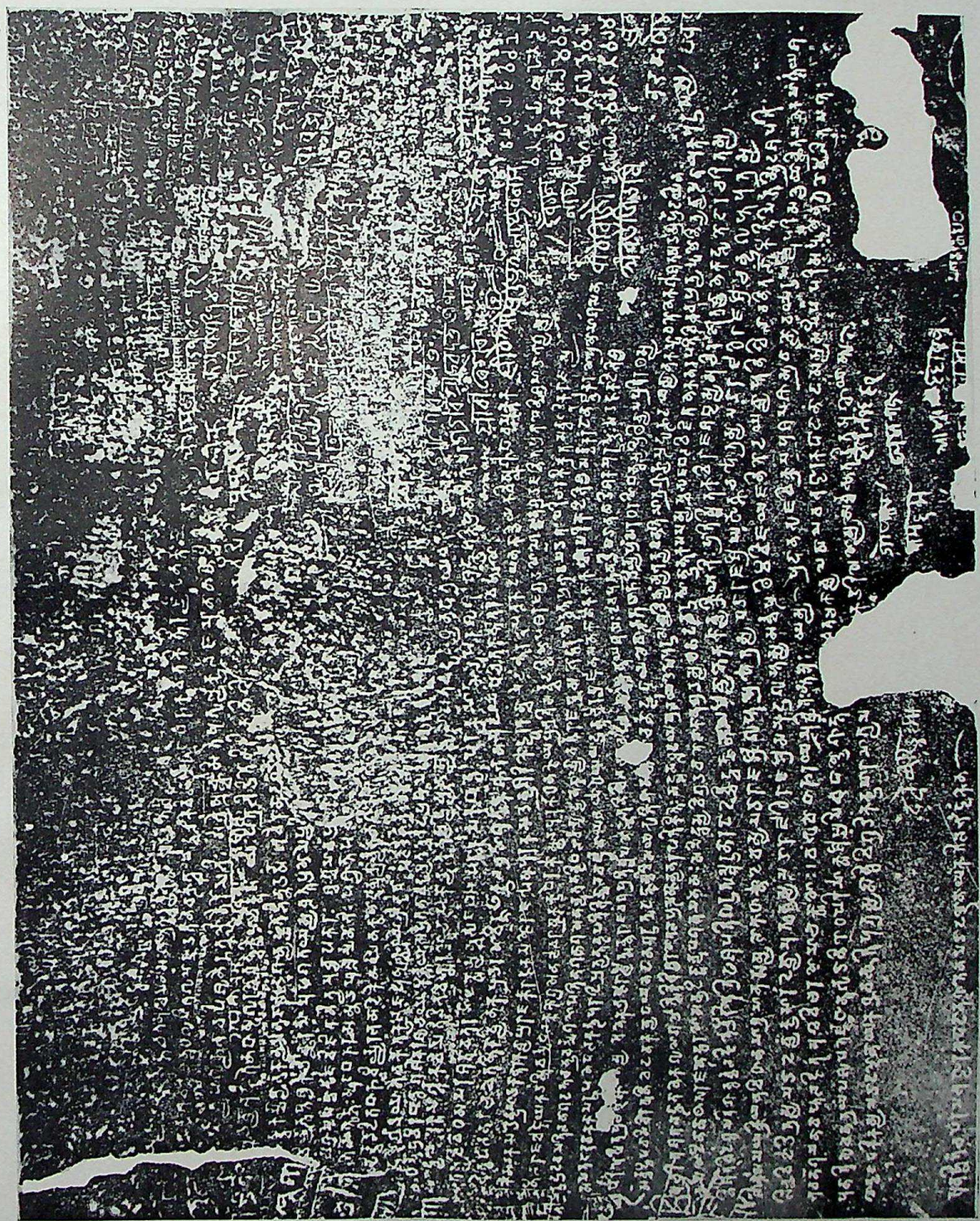

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

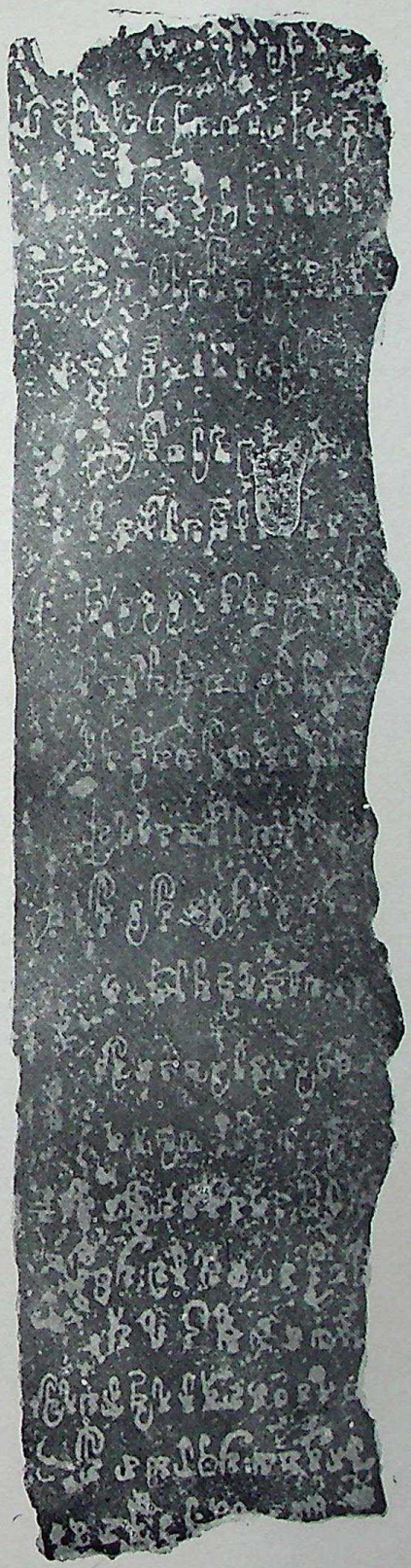

समुद्रगुप्त का एरण लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

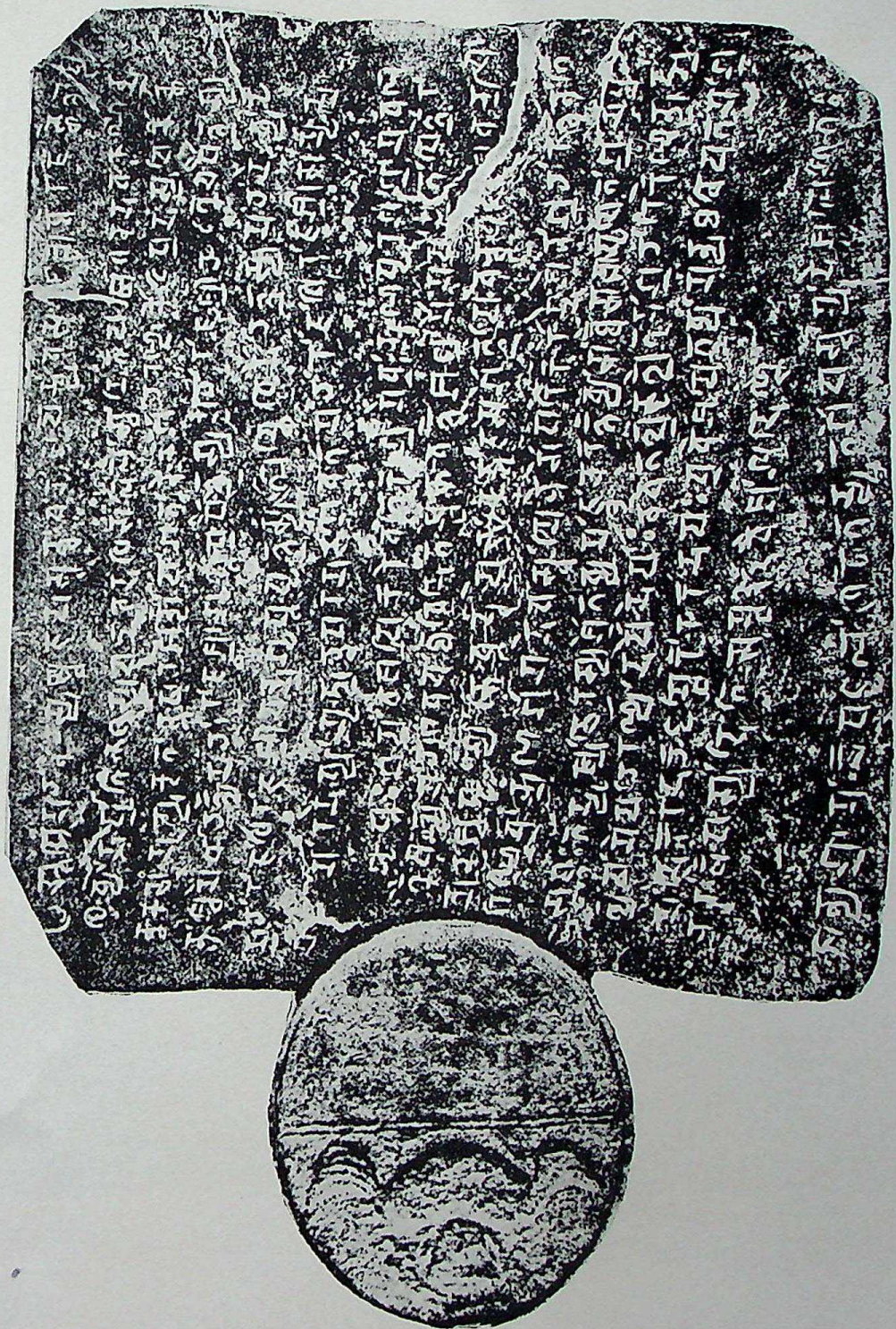

समुद्रगुप्त का गया लेख (जाली)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्रगुप्त का नालंदा ताम्रपत्र लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

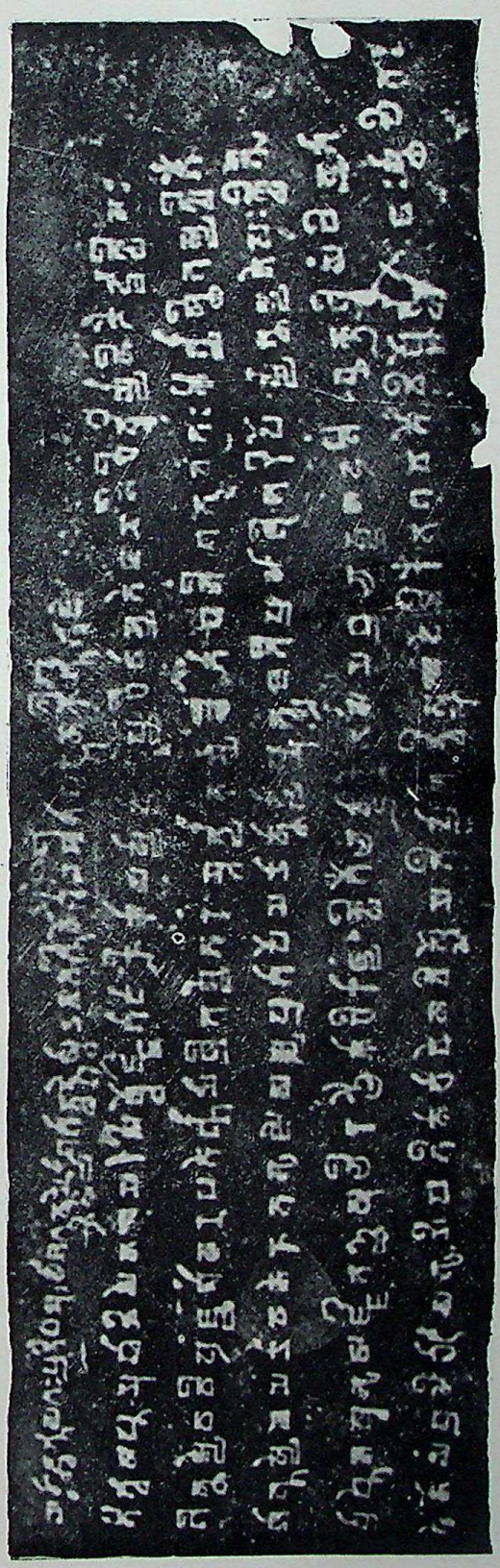

द्वितीय चंद्रगुप्त का मेहरौली स्तंभ लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

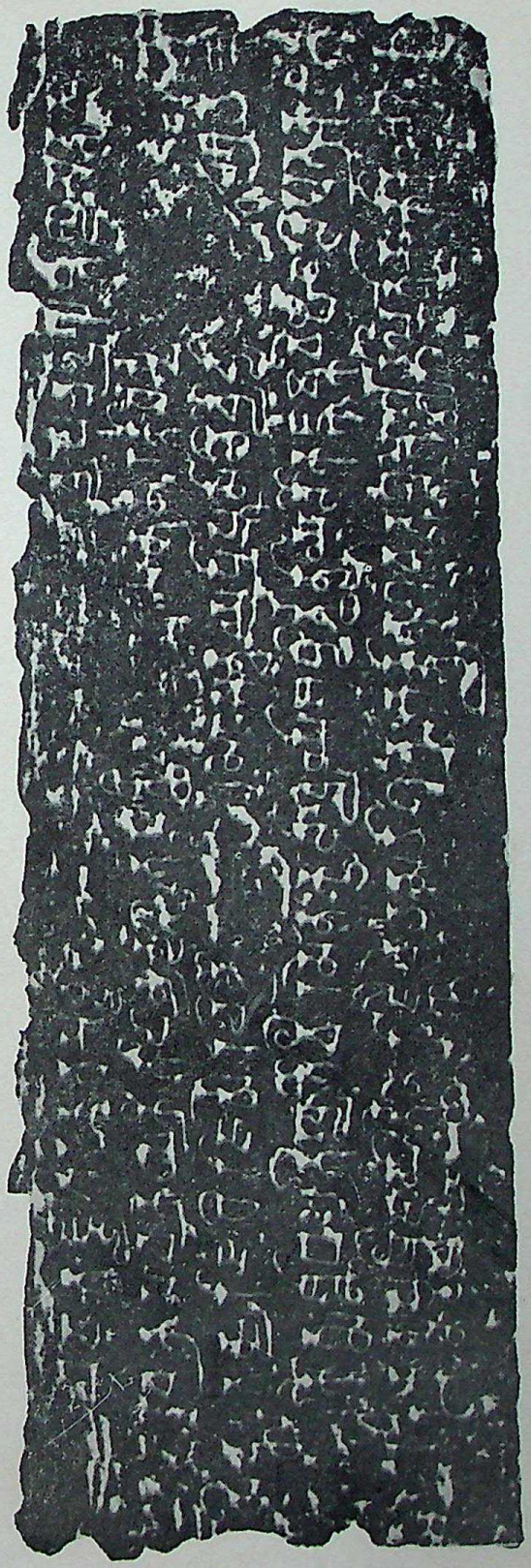

उदयगिरि गुहालेख (चंद्रगुप्त विक्रमादित्य)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय चंद्रगुप्त का मथुरा स्तंभ लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय चंद्रगुप्त का गढ़वा लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय चंद्रगुप्त की उदयगिरि गुहा लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मथुरा लेख द्वितीय चंद्रगुप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मथुरा-लेख द्वितीय चंद्रगुप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

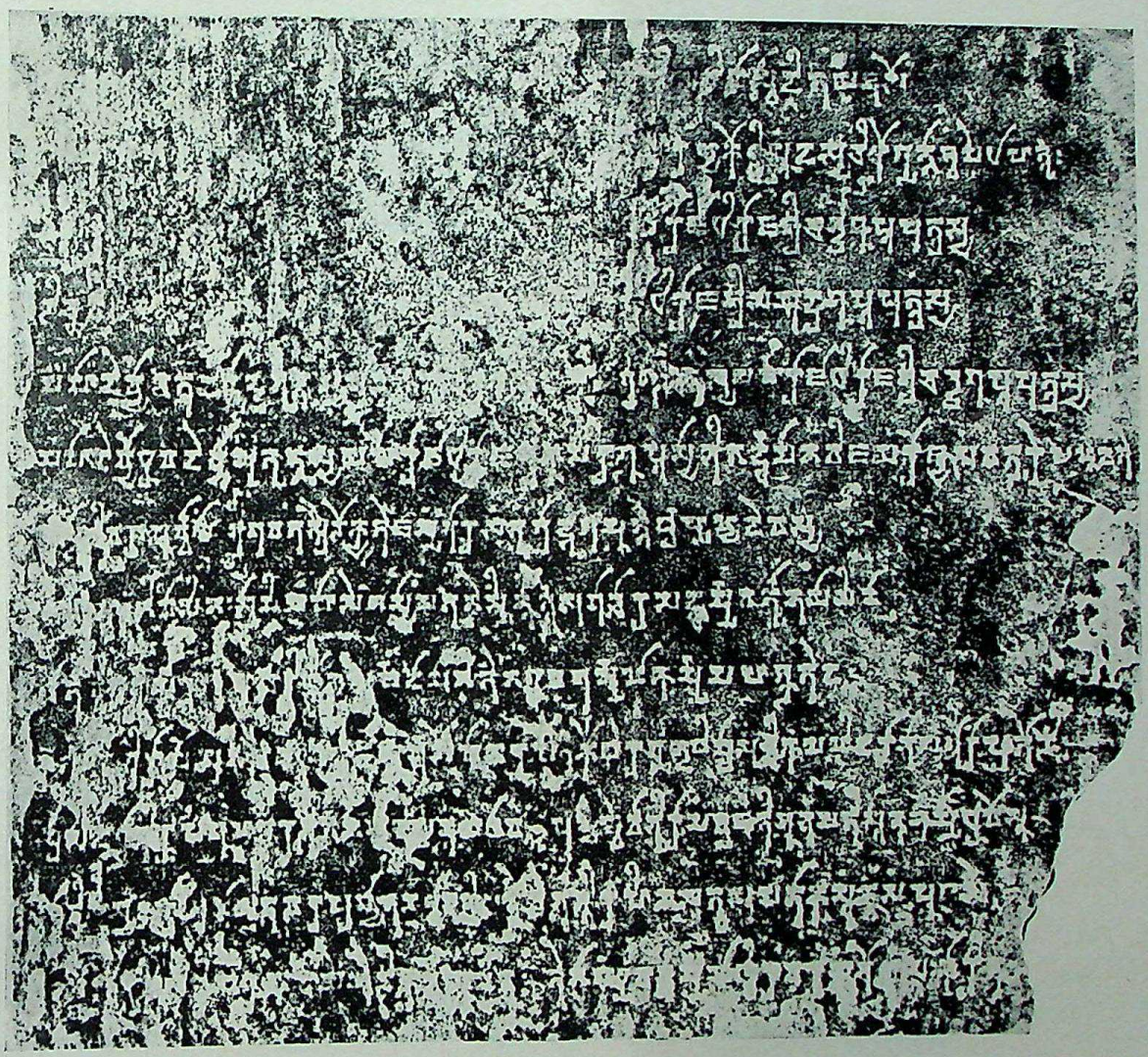

प्रथम कुमार गुप्त का बिलसद स्तंभ लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

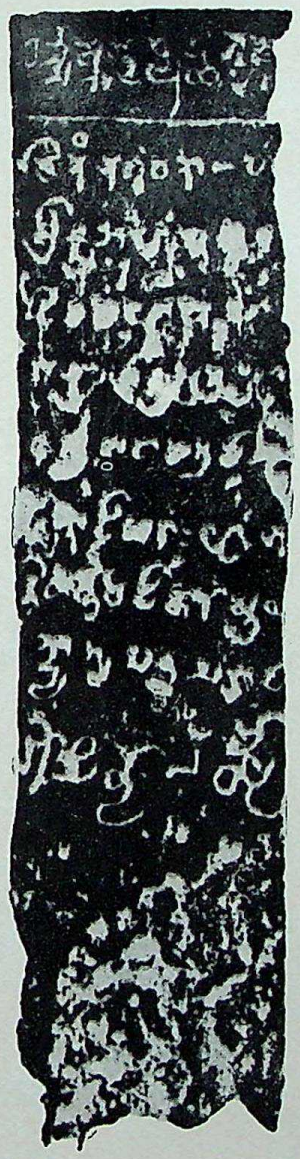

प्रथम कुमार गुप्त की गढ़वा प्रशस्तियां

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम कुमार गुप्त कालीन जैन लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

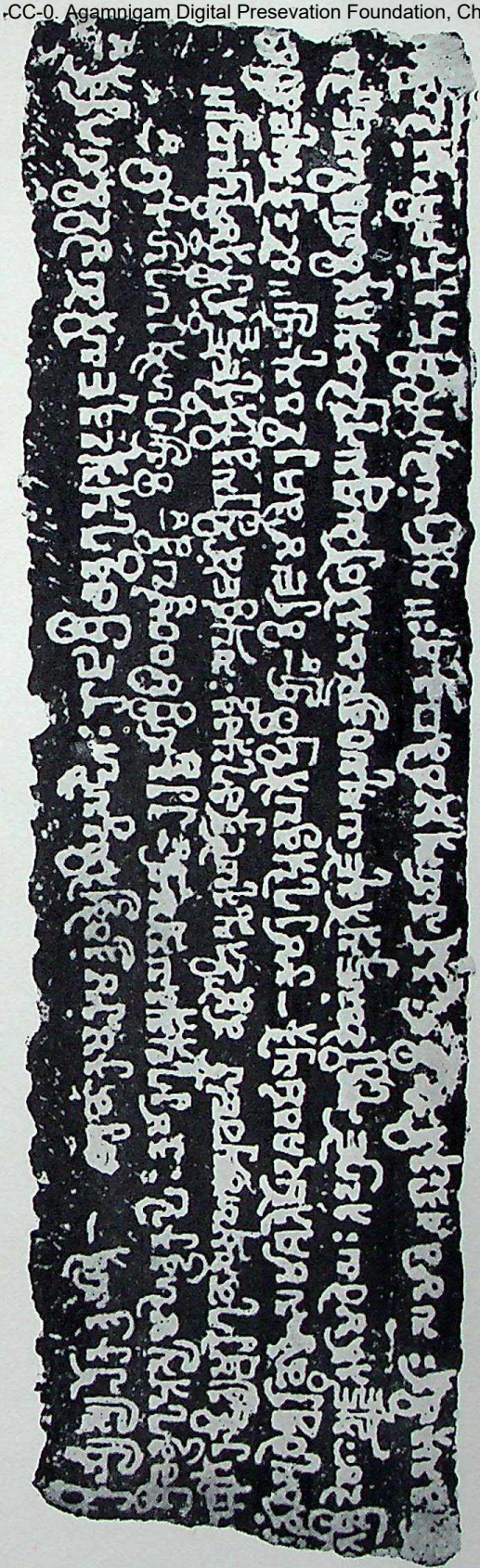

प्रथम कुमार गुप्त का तुमैन लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

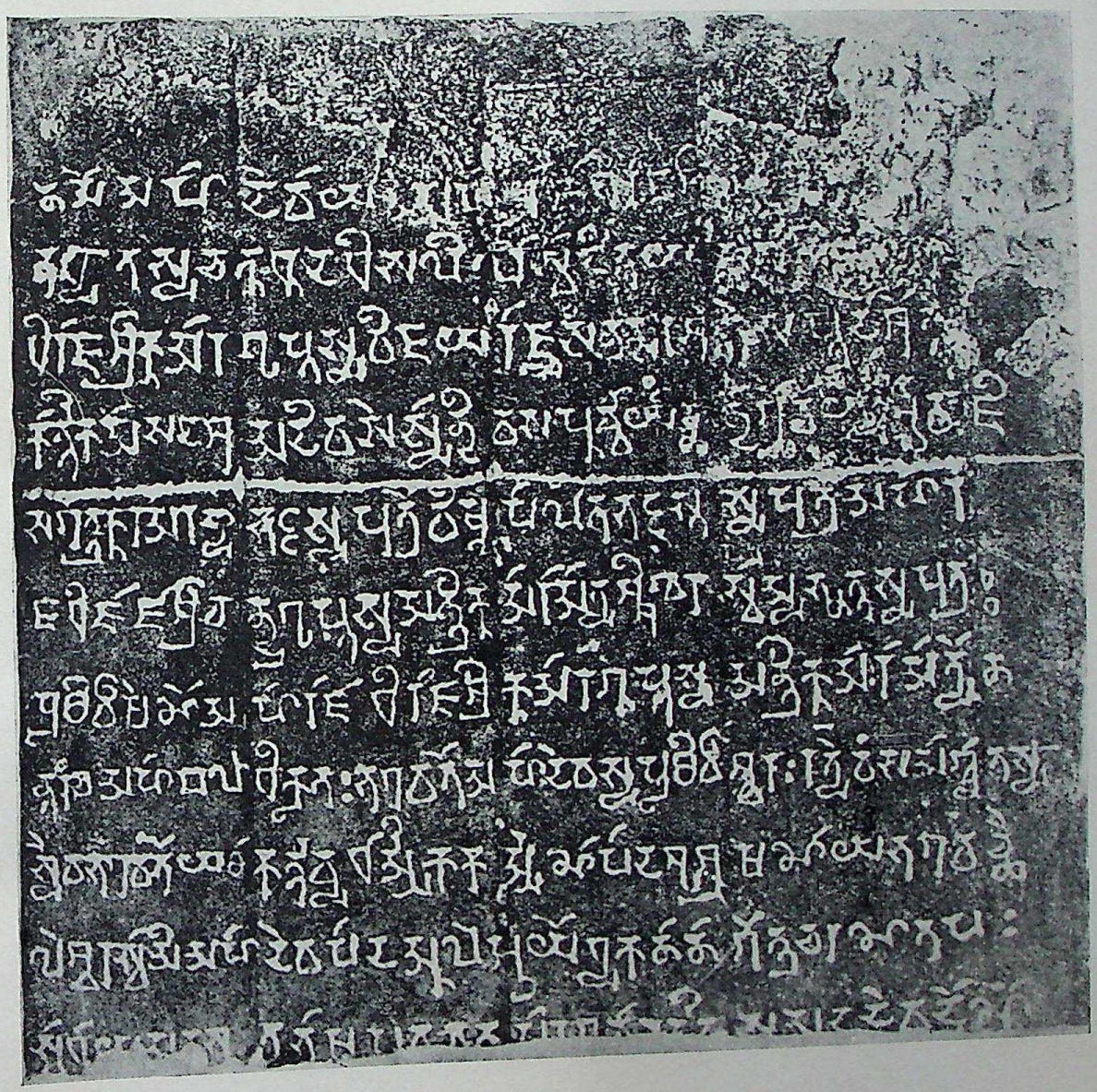

प्रथम कुमार गुप्त का करमदंडा शिवालिंग लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम कुमार गुप्त का ताम्रपत्र लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

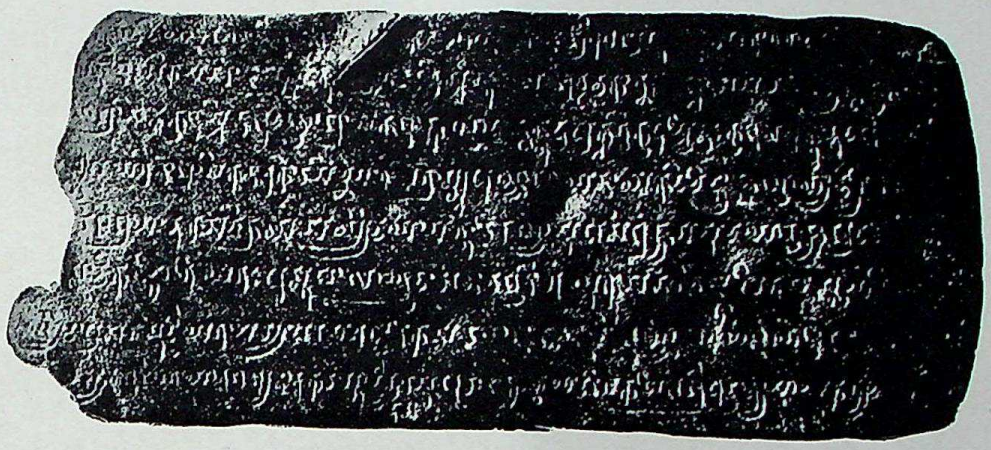

प्रथम कुमार गुप्त का दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम कुमार गुप्त बुद्ध प्रतिमा लेख (मनकुमार)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मंदसोर लेख (प्रथम कुमारगुप्त)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

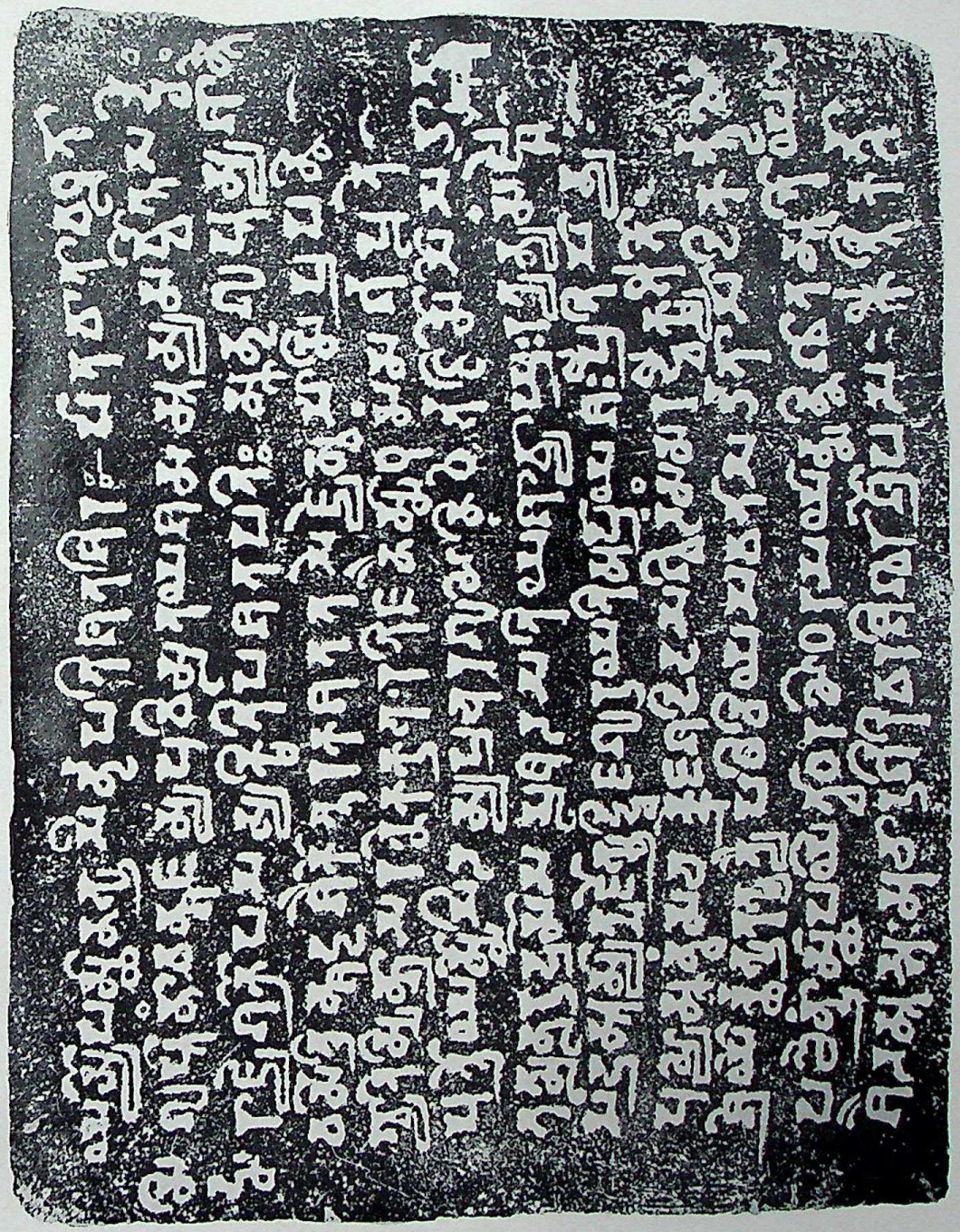

स्कंदगुप्त का कहौम स्तंभ लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

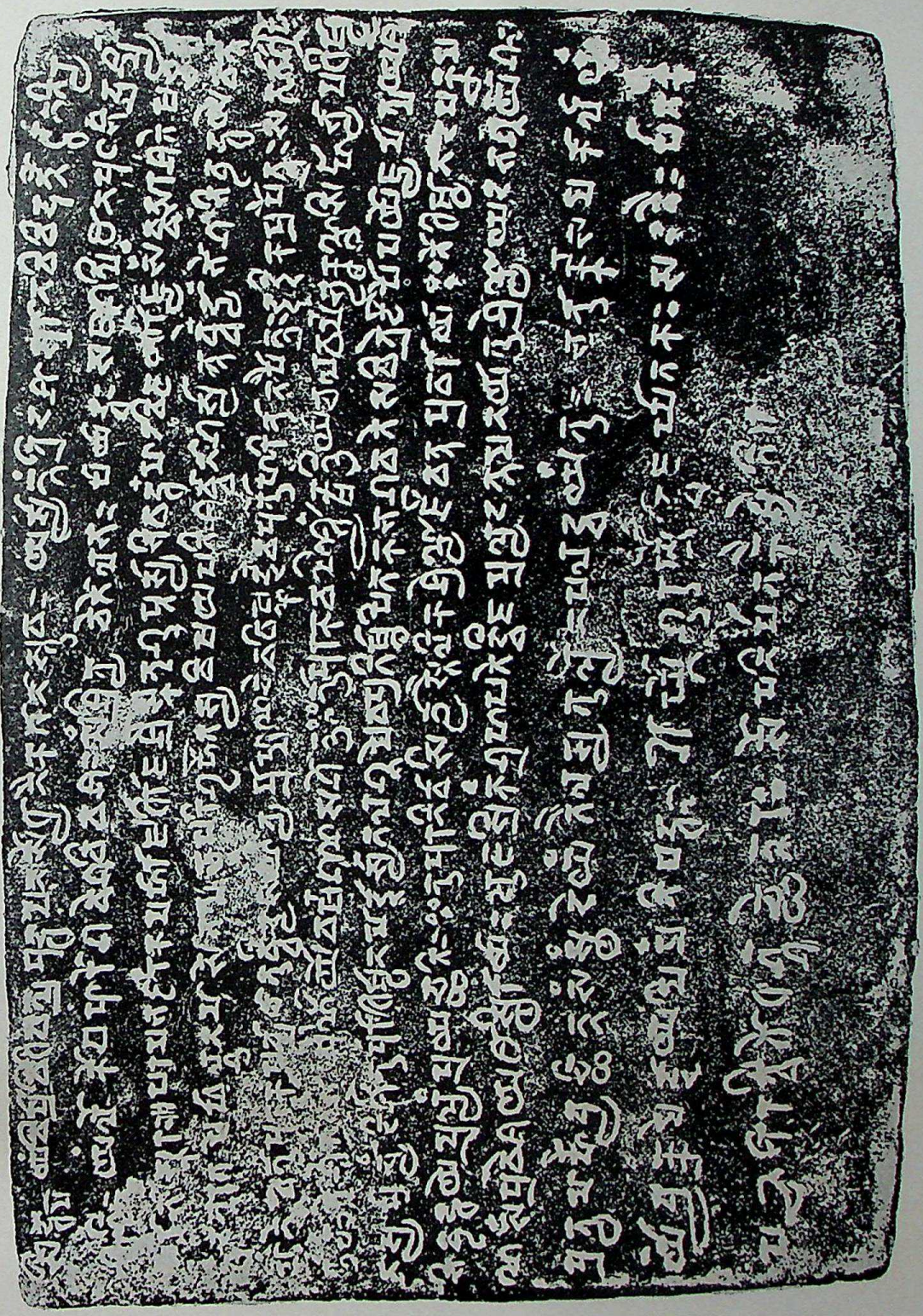

स्कंदगुप्त का इंदौर ताम्रपत्र प्रशस्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

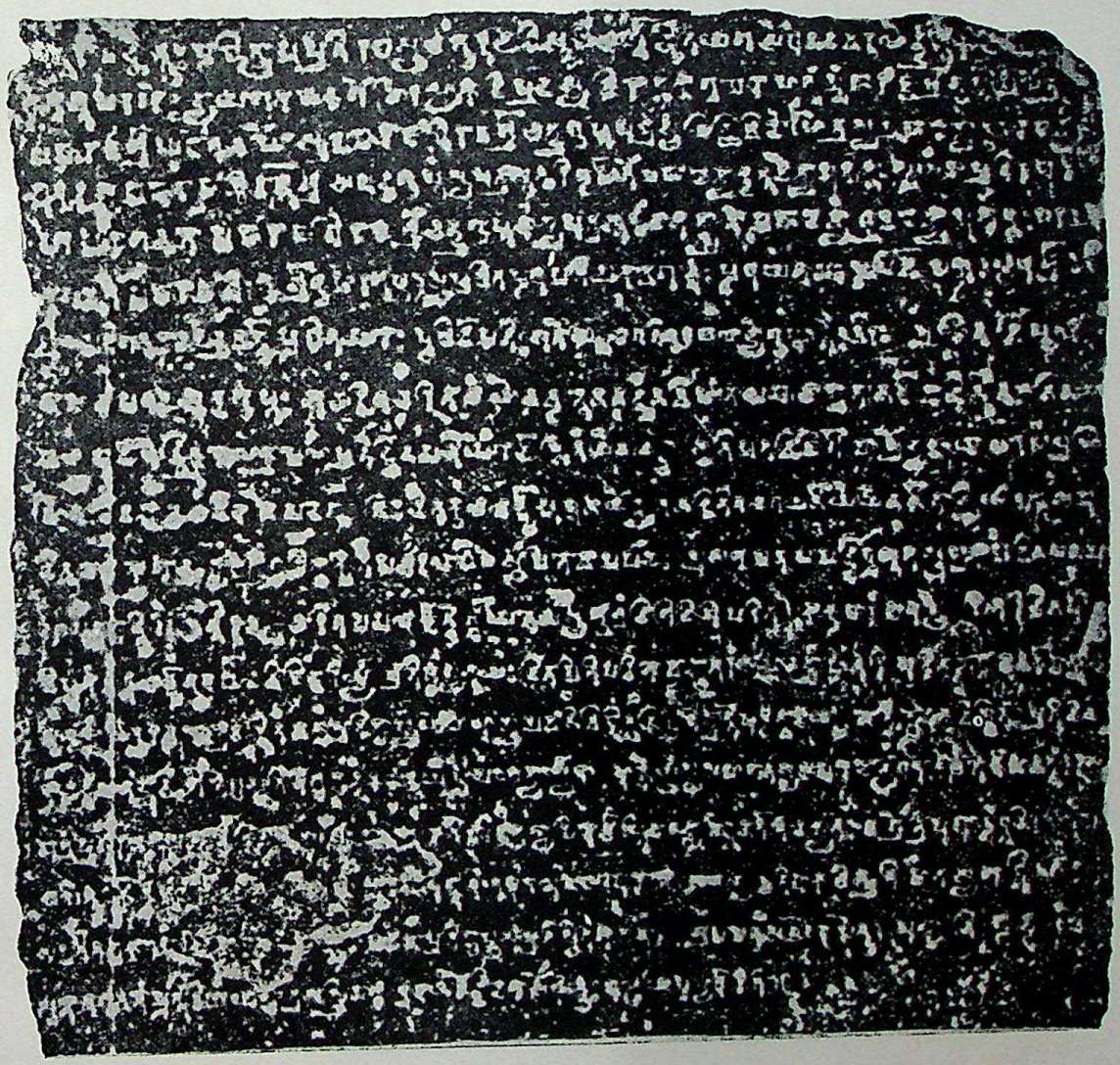

स्कंदगुप्त का भितरी स्तंभ लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्कंदगुप्त का विहार स्तंभ लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय कुमारगुप्त का सारनाथ प्रतिमा लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय कुमारगुप्त की भितरी राजमुद्रा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

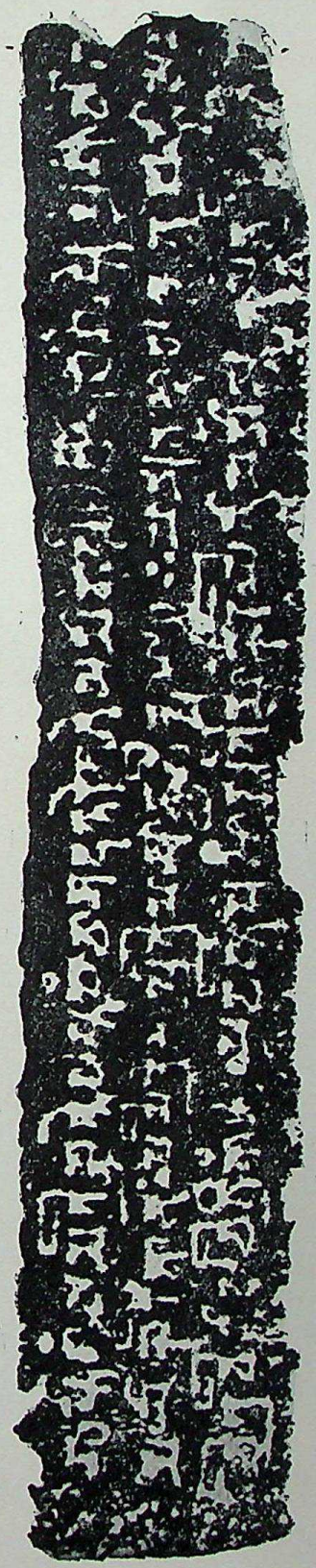

बुधगुप्त का सारनाथ प्रतिमा लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुधगुप्त का दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

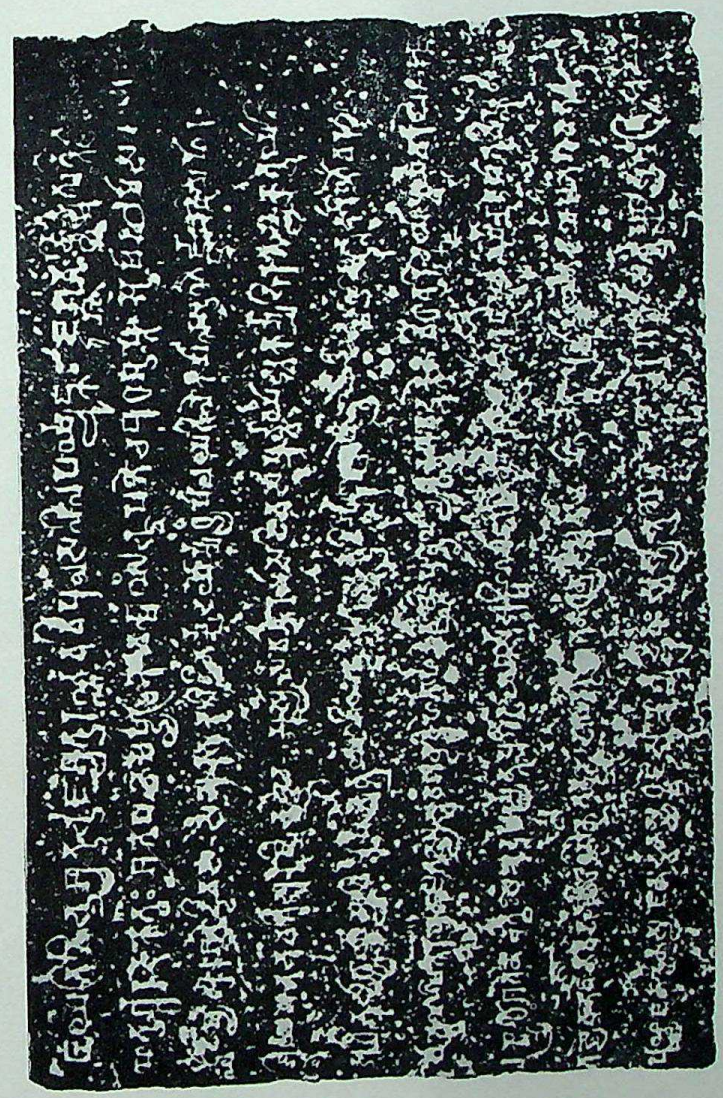

बुधगुप्त का एरण स्तंभ लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुधगुप्त कालीन बुद्ध प्रतिमा लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

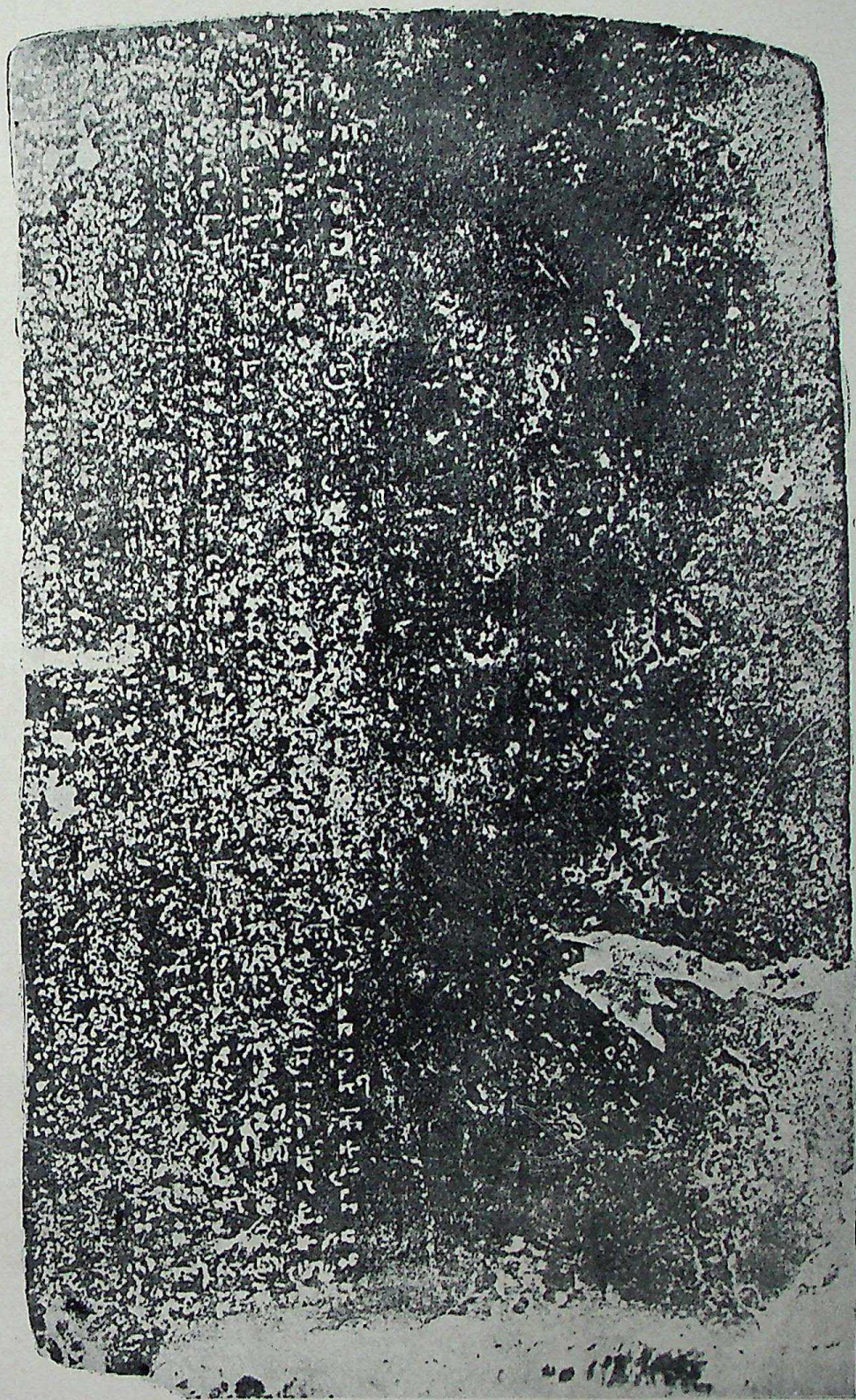

वैन्यगुप्त का गुणैधर ताम्रपत्र अभिलेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

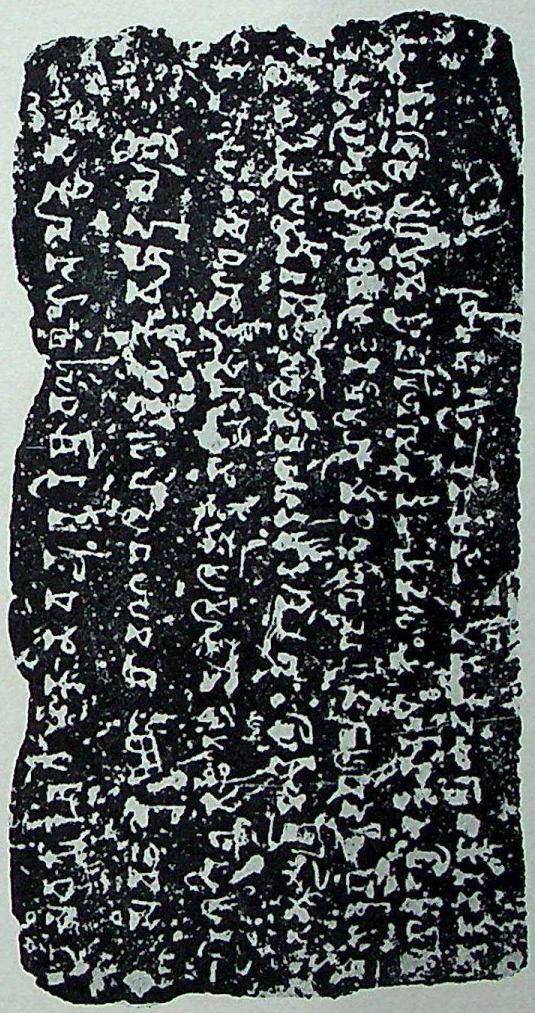

भानुगुप्त कालीन एरण स्तंभ लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

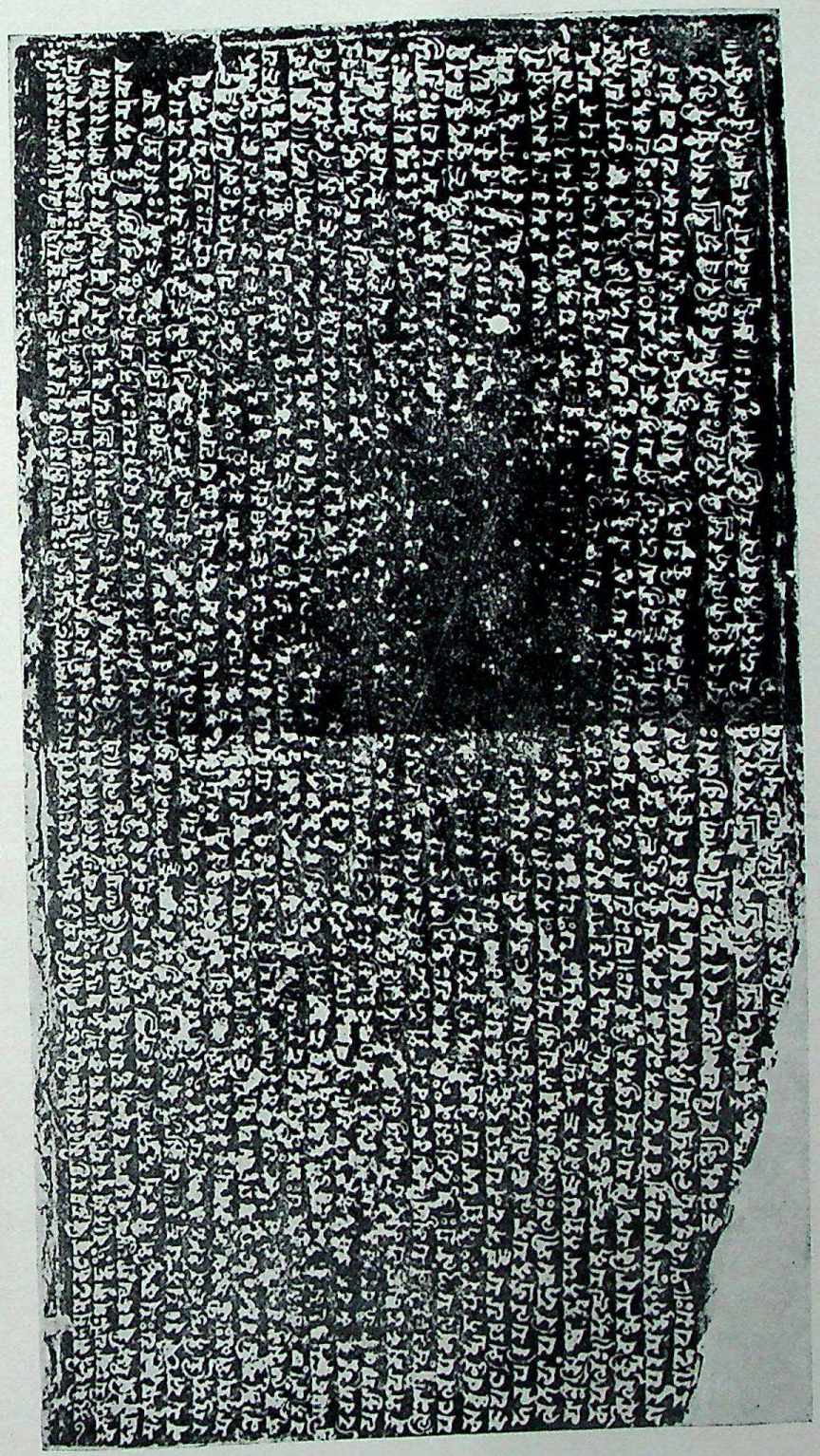

आदित्यसेन का अफसड़ लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मंदर पर्वत लेख (आदित्यसेन) ऊपरी भाग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मंदरपर्वत गुहा लेख (आदित्यसेन) नीचे का भाग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदित्य सेन का माहपुर अभिलेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णुगुप्त का मंगरांव लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

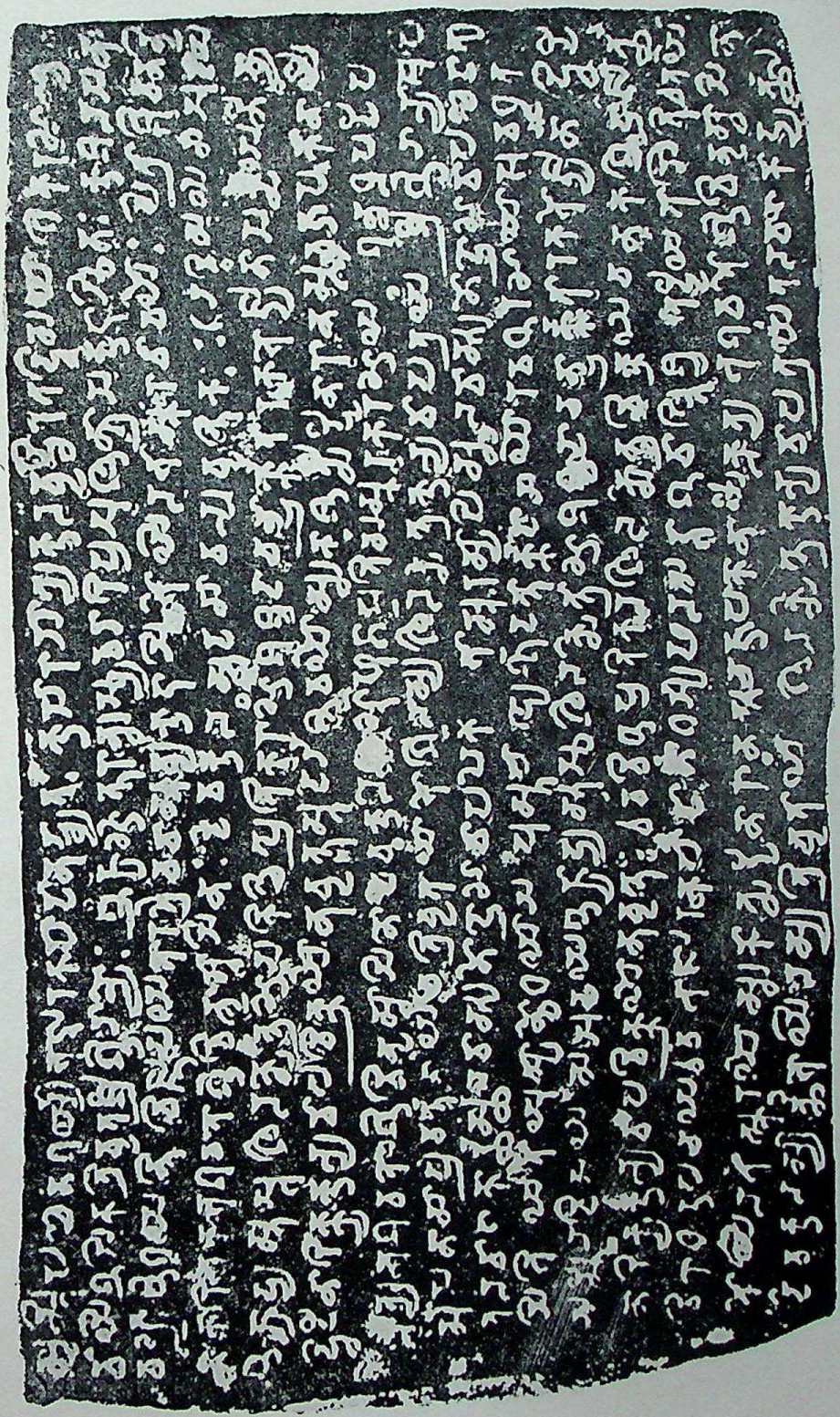

बेंग्राम ताम्रपत्र लेख गु० स० १२८ (अगला भाग)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

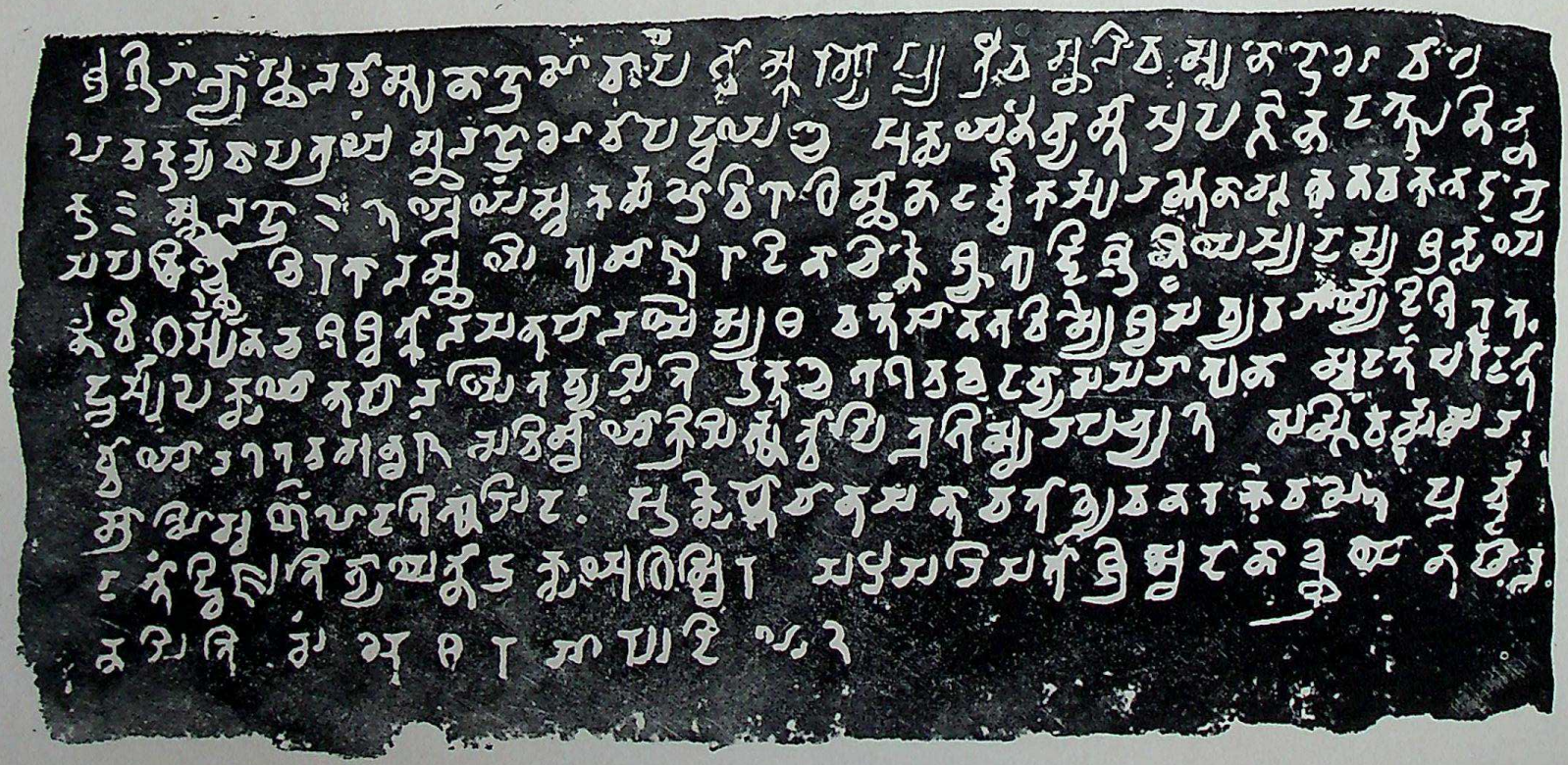

वैग्राम ताम्रपत्र लेख गु० स० १२८ (पिछला भाग)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

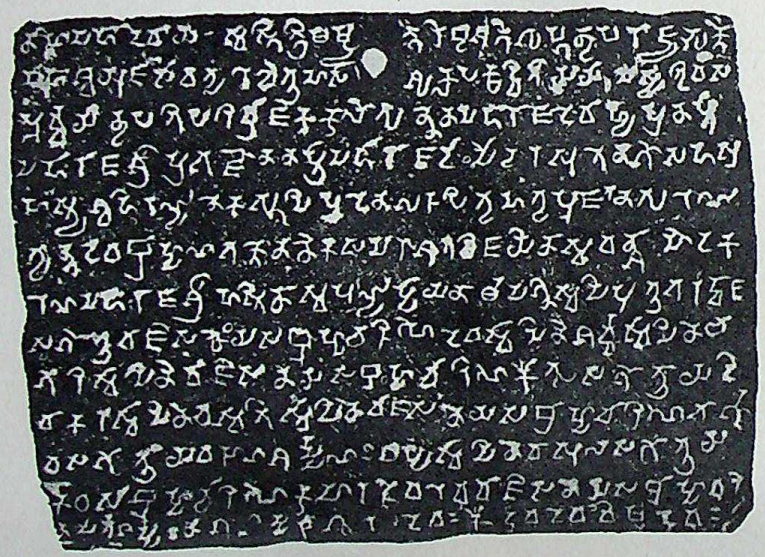

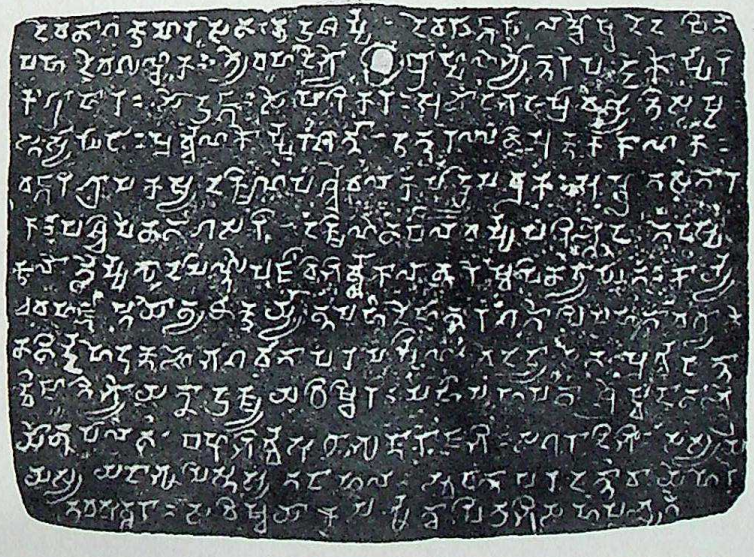

खोह ताम्रपत्र महाराजा हस्तिन (वर्ष १६३)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

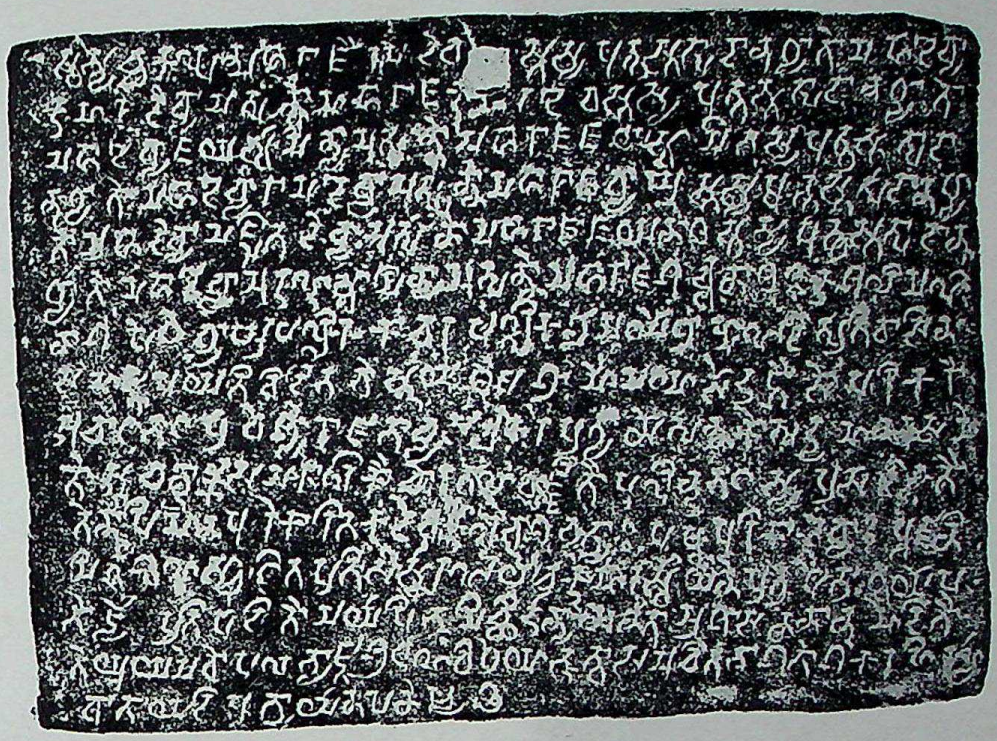

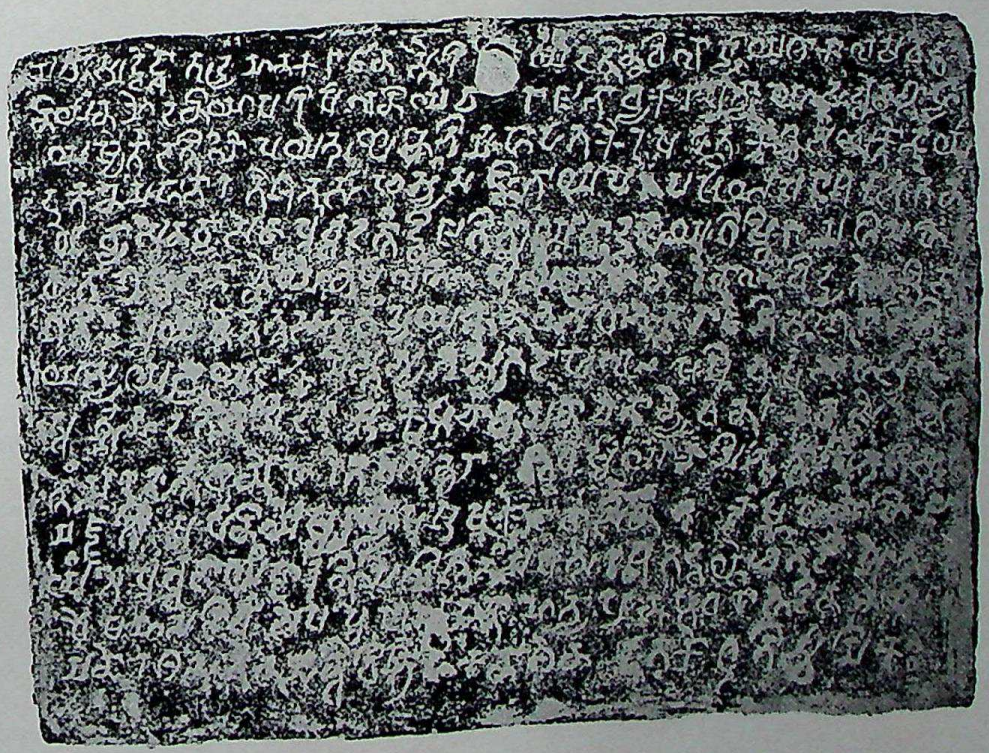

लोह ताम्रपत्र लेख महाराजा जयनाथ (वर्ष १७७)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

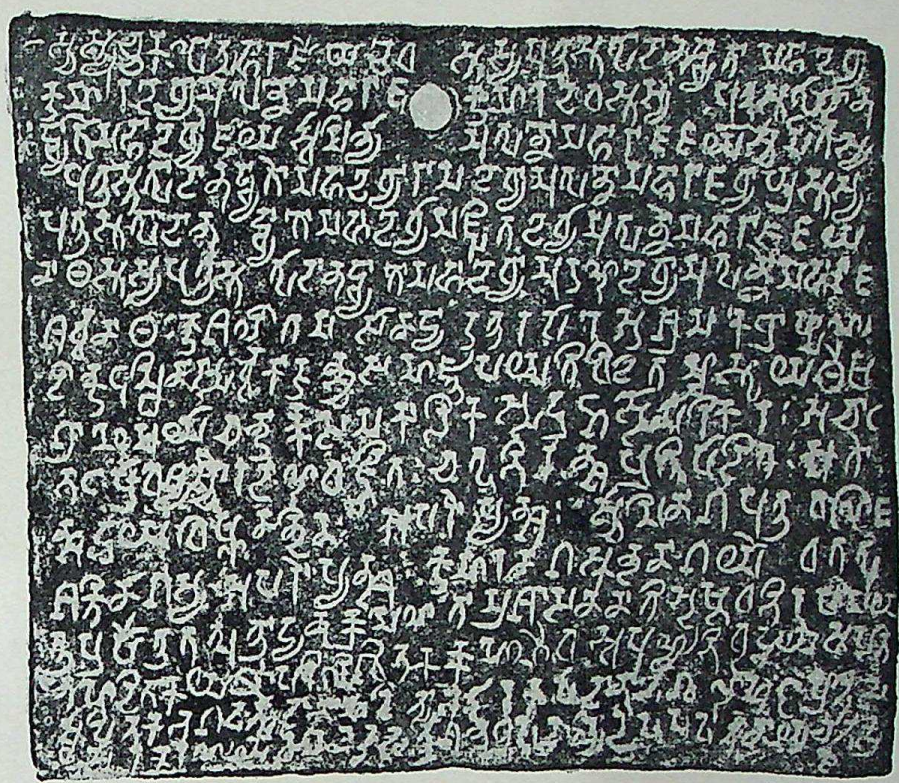

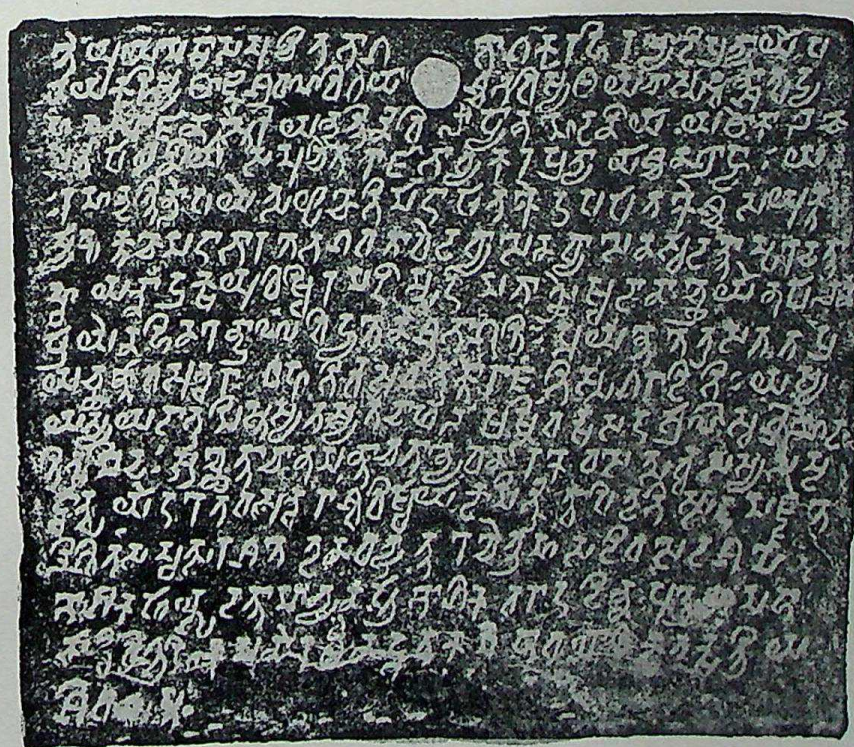

सर्वनाथ का खोह ताम्रपत्र लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

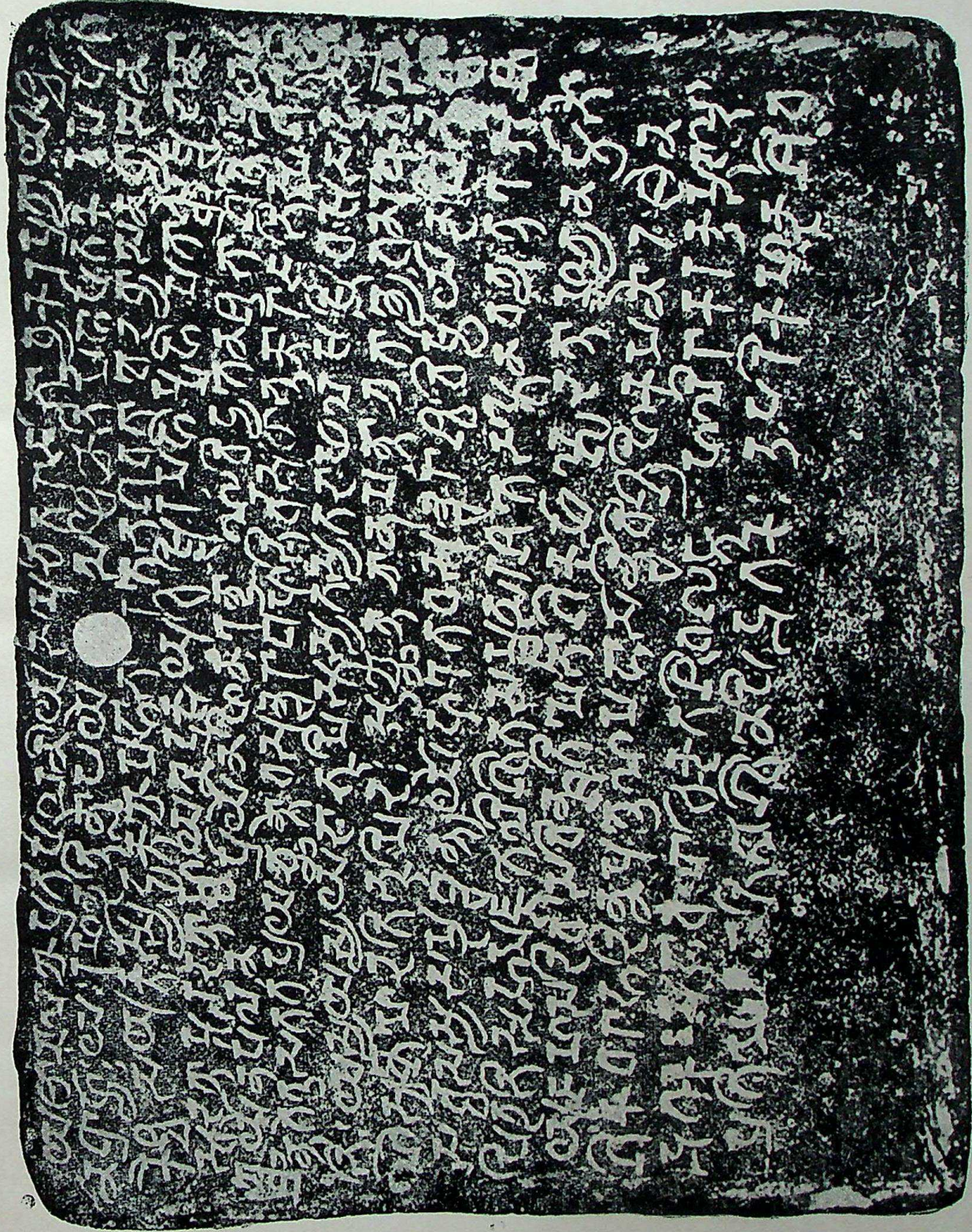

सर्वनाथ का खोह ताम्रपत्र लेख (वर्ष १९७)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

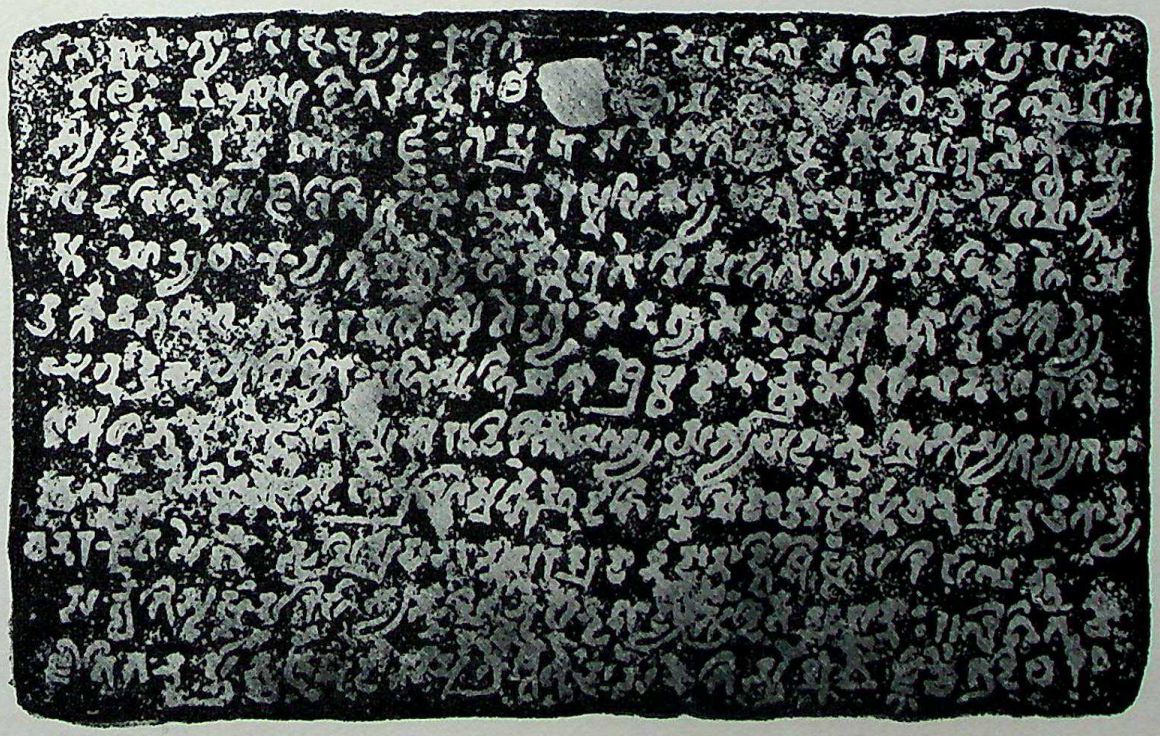

संक्षोभ का खोह ताम्रपत्र लेख (वर्ष २०९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संक्षोभ का खोह ताम्रपत्र लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

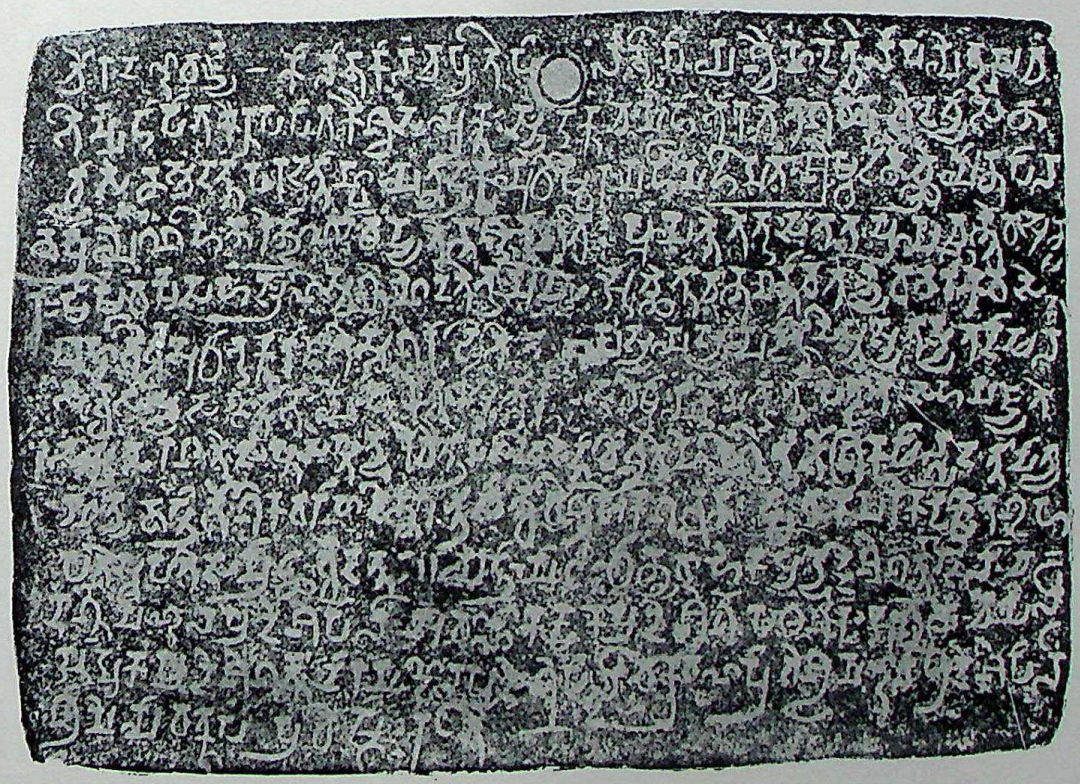

महाराज संक्षोभ का खोह ताम्रपत्र लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहाड़पुर ताम्रपत्र लेख (प्रथम भाग वर्ष १५९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहाड़पुर ताम्रपत्र लेख (वर्ष १५९—पृष्ठ भाग)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

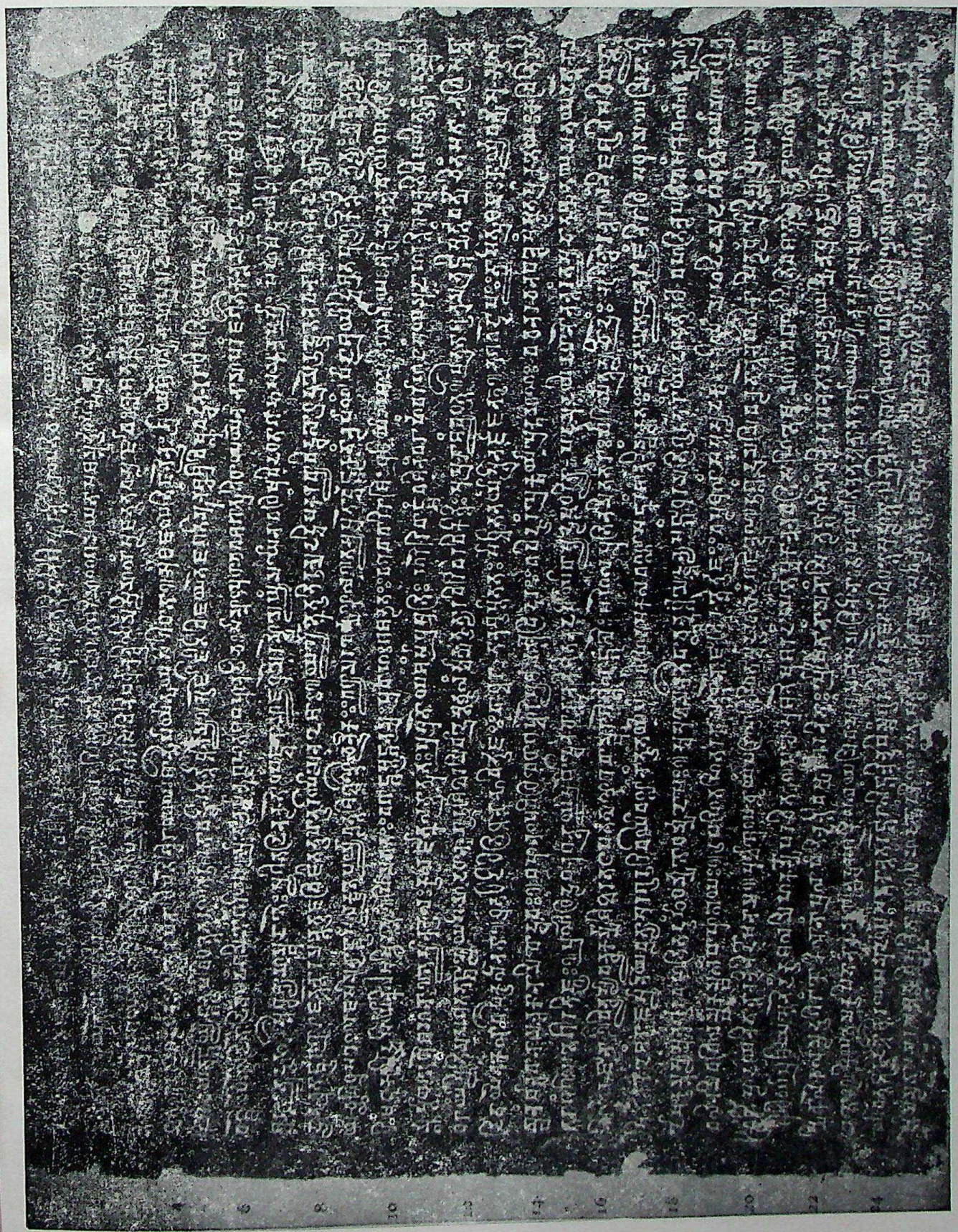

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

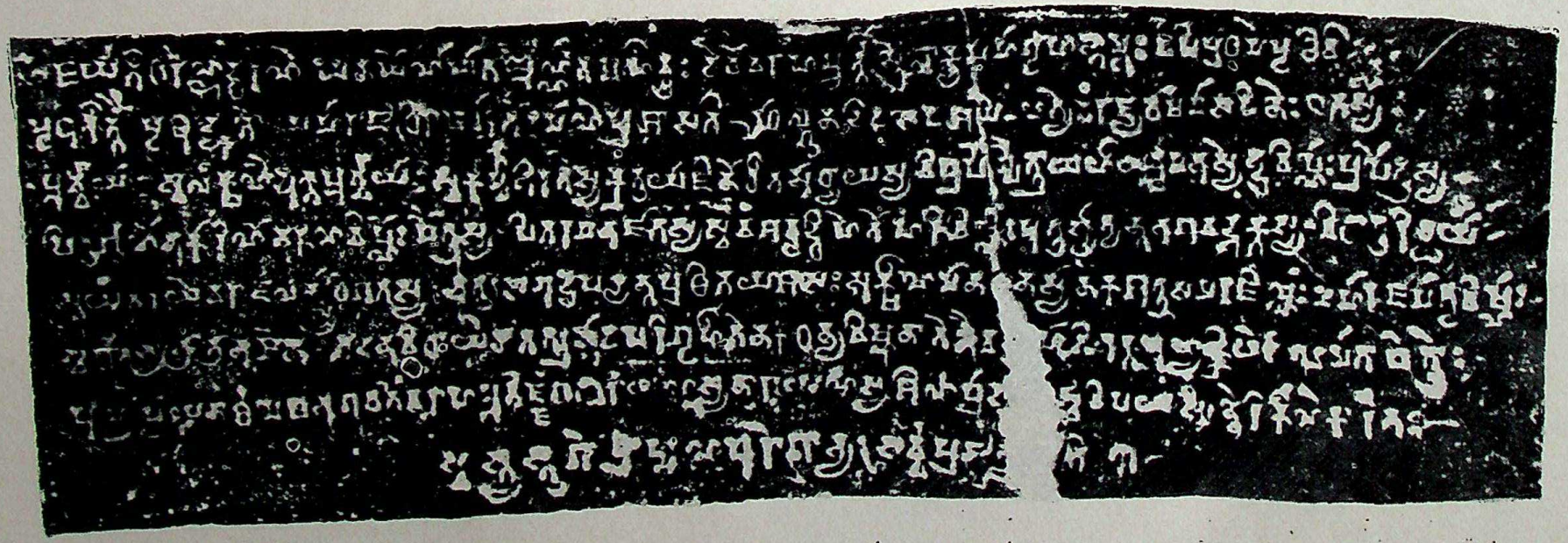

तोरमाण का एरण वराह प्रतिमा लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिहिर कुल की ग्वालियर लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णुगुप्त की मुद्रा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

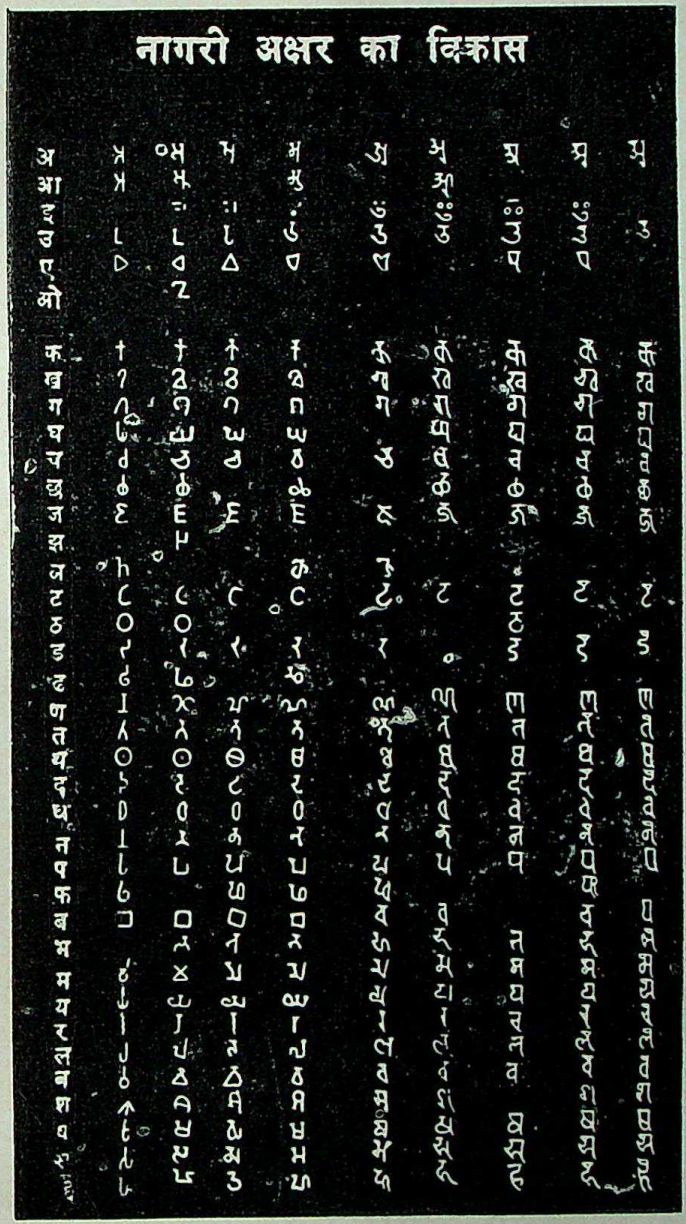

अशोक ब्राह्मी | कुषाण | गुप्त लिपि | यशोधर्मन | बर्धन | प्रतिहार | परमार | नागरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh